CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इतिहास और समकालीन परिदृश्य 3

पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद

रामविलास शर्मा

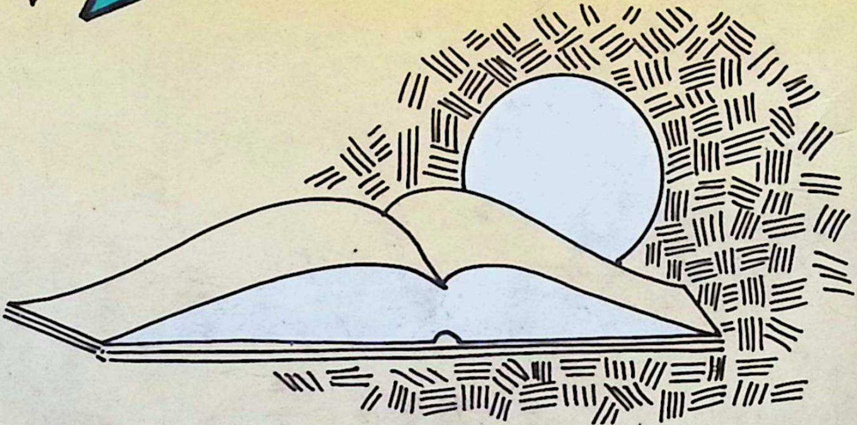

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुविख्यात विचारक, इतिहासकार, भाषाविद् और साहित्य समालोचक डॉक्टर रामविलास शर्मा की यह कृति उनकी "इतिहास और समकालीन परिदृश्य" शीर्षक पुस्तकमाला का तीसरा खंड है। इससे पूर्व "स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य" शीर्षक से पहला और "भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद" शीर्षक से दूसरा खंड प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका छात्रों, अध्यापकों, नौजवानों और आम बुद्धिजीवियों द्वारा व्यापक स्वागत किया गया है। डॉ० शर्मा की इस कृति में पूर्ववर्ती दोनों कृतियों की तरह ही इतिहास दर्शन और भारतीय इतिहास की पेचीदा समस्याओं का एक नए किंतु वैज्ञानिक और वस्तुपरक ढंग से गहन विवेचन और सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में व्याप्त तमाम भ्रांत धारणाओं, कपोल कल्पनाओं और दंतकथाओं का सटीक खंडन करते हुए इतिहास-लेखन के क्षेत्र में जड़ जमाए हुए साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का प्रत्याख्यान किया गया है। इस कृति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि पाठक इस खंडन-मंडन में से प्राचीन भारतीय इतिहास का एक सही और सुस्पष्ट खाका उभरता हुआ महसूस करता है। भारतीय इतिहास, विशेष

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुवि
साहि
कृति
शीर्ष
“

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारतीय इतिहास और समकालीन परिदृश्य-III

पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद

रामविलास शर्मा

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

© लेखक

प्रथम संस्करण 1994, प्रतियाँ 3300

संयोजक मंडल

प्रो० आर० एन० चोपड़ा
अध्यक्ष, सलाहकार समिति

डॉ० जगदीश चन्द्र मूना
संयोजक

श्री लज्जाराम सिंहल

डॉ० (श्रीमती) सुजाता राय

डॉ० सुनील कुमार श्रीवास्तव
सहसंयोजक

श्री श्याम कश्यप
संपादक

यह पुस्तक मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित की गई है

मूल्य 60 रुपये

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, ई०ए० / 6, मॉडल टाउन, दिल्ली-110009 द्वारा प्रकाशित तथा सत्या लेज़र प्रिंटर्स, क्यू - 47 मोहन पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 द्वारा लेज़र कंपोज़ और ख्वाजा प्रेस, 900 दीन दुनिया हाउस, जामा मस्जिद, दिल्ली- 110006 द्वारा मुद्रित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वक्तव्य

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय विगत 15 वर्ष से हिंदी में विभिन्न विषयों से संबंधित विश्वविद्यालय स्तरीय साहित्य तैयार करने में लगा हुआ है । इसके पीछे मुख्य दृष्टि यह रही है कि हिंदी माध्यम से विभिन्न विषयों का अध्ययन करने वाले छात्रों की ज़रूरतों को पूरा किया जाए। निदेशालय इस उद्देश्य से उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित करने के साथ विख्यात विद्वानों के मानक ग्रंथों का भी प्रकाशन करता है ।

डॉ० रामविलास शर्मा जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारक और सुप्रसिद्ध लेखक की **इतिहास और समकालीन परिदृश्य** शीर्षक से चार खंडों की पुस्तकमाला का प्रकाशन करते हुए निदेशालय गौरव का अनुभव कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** इस पुस्तकमाला का तीसरा खंड है ।

डॉ० शर्मा की इस पुस्तकमाला के संदर्भ में विशेष बात यह है कि उन्होंने अपनी लेखकीय रायल्टी का पंद्रह प्रतिशत यह कह कर नहीं लिया है कि वे इसे छात्रों, नौजवानों और इस पुस्तकमाला के पाठकों के लिए छोड़ रहे हैं तथा पुस्तकमाला की चारों पुस्तकों का मूल्य निर्धारित करते हुए इस राशि को पुस्तकों की कीमत में से कम कर दिया जाए । निदेशालय ने यही किया है । इस तरह से डॉ० शर्मा की चारों पुस्तकें पाठकों को और भी कम मूल्य पर सुलभ होंगी । ऐसे लेखक विरले ही होते हैं । हम डॉ० शर्मा की इस उदारता के लिए अत्यंत आभारी हैं । हम दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० उपेन्द्र बख्शी के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिन्होंने निदेशालय के कार्य की सदैव सराहा है ।

जगदीश चन्द्र मूना
निदेशक
हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषयसूची

		पृष्ठ संख्या
	भूमिका	1-15
	प्रस्तावना	17-19
1.	भारत पर आर्यों का 'आक्रमण' और ऋग्वेद	21-44
2.	हड़प्पा : केंद्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र	45-70
3.	पश्चिमी एशिया में आर्यों का प्रभाव-विस्तार	71-94
4.	मिस्र, सुमेर, भारत : प्राचीन सांस्कृतिक संबंध	95-136
5.	सरस्वती, भरत और जल-प्रलय	137-157
6.	देवतंत्र का विकास	158-192
7.	सृष्टि कथाएँ और दार्शनिक उद्भावनाएँ	193-224
8.	अफ्रीकी-एशियाई सभ्यता की प्रसार-भूमि और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान	225-256
	पुस्तक सूची	257-259
	अनुक्रमणिका	261

चित्र 1. तूफानों के देवता, भारतीय रुद्र के प्रतिरूप, इनकी उपासना हित्तियों में प्रचलित थी। (गूर्नें की पुस्तक 'द हिट्टाइट्स' में प्रकाशित, चित्र संख्या 28)।

चित्र 2. सिंधु घाटी की मुद्रा पर अंकित योगी।

चित्र 3. केल्त देवता, लगभग 1000 ई० पू० के भांड पर अंकित। सिंधु घाटी के योगी से इनका आसन तुलनीय है। (मार्क अलेग्ज़ेंडर की पुस्तक 'ब्रिटिश फोकलोर, मिथ्स ऐंड लेजेंड्स' ; लंदन, 1982 में पृष्ठ 13 पर प्रकाशित)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूमिका

समकालीनता एक आदर्श गुण है। इसमें भी संदेह नहीं कि कोई व्यक्ति समकालीन हुए बिना अपने जमाने से न्याय नहीं कर सकता। लेकिन इधर हम लोग समकालीनता के प्रति उत्साह से कुछ इस कदर आक्रांत हैं कि इतिहास और परंपरा का तिरस्कार 'आधुनिक' होने की पहली शर्त बन गया है ! साहित्य, कला, संस्कृति से लेकर शिक्षा तक सभी क्षेत्रों में इसी फैशन की छूत फैली हुई है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिनके लिए इतिहास, विशेष रूप से प्राचीन भारत के इतिहास की समस्याओं से जूझना वक्त को बर्बादी है। कुछ की दृष्टि में सभी समस्याएँ हल हो चुकी हैं और उन्हें नए सिरे से उलझाने की कोशिश करना फिजूल है। कुछ अन्य के लिए आज के ज्वलंत प्रश्नों और वर्तमान चुनौतियों से मुँह मोड़कर यह एक विशुद्ध 'अकादमिक' मशग़ला है। हैरानी तो यह देखकर होती है कि इतिहास और परंपरा का निषेध करने वालों मे कुछ ऐसे विद्वान भी शामिल हैं जो ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांतों से प्रतिबद्धता के दावे करते हैं। **डॉ० रामविलास शर्मा** ने कभी ऐसे ही लोगों को लक्ष्य करके व्यंग्य किया था जो इतिहास के ज्ञान के बिना ऐतिहासिक भौतिकवाद की विजय के स्वप्न देखना चाहते थे। अपनी ताजा कृति **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** की "प्रस्तावना" में भी उन्होंने लिखा है कि "अतीत का वैज्ञानिक, वस्तुपरक विवेचन वर्तमान समाज के पुनर्गठन के प्रश्न से जुड़ा हुआ है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ० शर्मा का कृतित्व इसी बात की जीवंत मिसाल है। जिनके लिए इतिहास की सारी व्याख्याएँ पुनरुत्थानवादी और परंपरा का अर्थ रूढ़िवादिता नहीं है, वे इतिहास और परंपरा के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखते हुए भी निषेधात्मक रुख नहीं अपना सकते। खास तौर से ऐसे दौर में जब इतिहास का विरूपण एक आम बात हो चुकी हो।

भारतीय इतिहास का विरूपण कोई नई बात नहीं है। नित नई स्रोत सामग्री के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न इतिहासकारों ने इस विरूपण को भरसक दूर करने के प्रयास भी बराबर किए हैं। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि तथाकथित 'मध्यकाल' और 'आधुनिक युग' के भारतीय इतिहास को विरूपण से मुक्त कराने के दावेदार भी प्रायः यही मानते प्रतीत होते हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास ऐसे विरूपण से लगभग मुक्त है। जो विद्वान वहाँ विरूपण के कतिपय उदाहरण स्वीकार करते भी हैं, तो वे इस बने-बनाए ढाँचे से बाहर नहीं जाते कि मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा की तथाकथित 'सिंधु सभ्यता' दो हजार ईसा पूर्व से पहले की नहीं है। इस नागर सभ्यता को तकरीबन डेढ़ हजार ई० पू० पशुपालक आर्यों के घुमक्कड़ कबीलों ने नष्ट कर डाला था। लगभग उसी समय (1700-1500 ई० पू० के आसपास) इन हमलावर आर्यों ने ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब में संक्रमण करते हुए **ऋग्वेद** की रचना की थी। यानी, पहले सिंधु सभ्यता, फिर आर्यों का हमला, और उसके बाद वैदिक युग—एक सीधा, सपाट और सरलीकृत ढाँचा बन चुका है जिसमें मनमानी दंतकथाएँ और कपोल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कल्पनाओं के रंग भर दिए जाते हैं। इतिहास में रूपवाद (FORMALISM) का यह विलक्षण उदाहरण है।

इस रूपवादी ढाँचे के भीतर विचरण करने वाले अधिकांश विद्वान यह भी मानते हैं कि सिंधु सभ्यता अपनी समकालीन मिस्री और पश्चिमी एशिया की सुमेरी-बैबिलोनी सभ्यताओं की तुलना में कम प्राचीन, अनेक बातों में उनसे प्रभावित और कुल मिलाकर अपेक्षाकृत कम विकसित सभ्यता थी। इनमें से अनेक की मान्यता है कि सिंधु सभ्यता की नींव डालने वाले पश्चिमी एशिया और अफगानिस्तान से आए थे। कुछ विद्वान उन्हें हित्तियों से संबद्ध करते हैं, तो कुछ मितन्नियों से, और कुछ अन्य उन्हें द्रविड़ मानते हैं। ऐसे विद्वानों की यह भी मान्यता है कि यहाँ के मूल निवासियों को खदेड़कर इन द्रविड़ों ने इस नागर सभ्यता का विकास किया था। कुछ अन्य के मतानुसार ये द्रविड़-पूर्व के तथाकथित 'मूल निवासी' भी हो सकता है कि किसी और जगह से—संभवतः अफ्रीका और आस्ट्रेलिया से—यहाँ आए हों; और वे भी एक के बाद दूसरे समुदाय को पराजित कर यहाँ आ बसे हों ! यानी, इन्हें भी "मूल निवासी" मानना संदिग्ध है। संथाल, भील, गोंड़, बैगा, मोन-खमेर और नागा-जैसे आदिवासी समूह उन्हीं की संतान हैं, जिन्हें द्रविड़ों ने पराजित कर सुदूर पहाड़ों और घने जंगलों में खदेड़ दिया था। बाद में, ठीक उसी तरह, आर्यों ने इन द्रविड़ों को भी पराजित कर, इनके नगरों और दुर्गों का नाश करके, इन्हें धुर दक्षिण में ढकेल दिया। आर्यों की ऐसी कई लहरें आईं जिन्होंने पूर्ववर्तियों को आगे ढकेलना जारी रखा। इन हमलावर आर्यों ने ही वर्णाश्रम-आधारित वैदिक सभ्यता का प्रसार दूर-दूर तक किया। इस तरह से 'इतिहास' का एक अवास्तविक और यांत्रिक ढाँचा तैयार हो जाता है !

आर्यों के मूल प्रदेश को लेकर भी तरह-तरह की दिलचस्प अटकलें लगाई जाती हैं, जिनका विस्तार पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया से लेकर सुदूर ध्रुव प्रदेश तक कल्पित किया गया है। मजे की बात यह है कि इन सभी तथाकथित 'ऐतिहासिक' धारणाओं और सिद्धांतों के कहीं भी कोई प्रमाण नहीं मिलते। न तो **ऋग्वेद** या अन्य किसी साहित्यिक स्रोत से इन तमाम दंतकथाओं की पुष्टि होती है और न ही इन हास्यास्पद कपोल कल्पनाओं का आज तक कोई पुरातात्विक प्रमाण मिला है। लेकिन फिर भी, अधिकांश देशी-विदेशी विद्वानों के मन-मस्तिष्क पर प्राचीन भारतीय इतिहास के इसी काल्पनिक ढाँचे की गहरी छाप लगी हुई है। छोटी कक्षाओं से लेकर उच्चतर स्कूली कक्षाओं में और कालेजों-विश्वविद्यालयों के उच्च अध्ययन के पाठ्यक्रमों में, हर कहीं यही गलत इतिहास पढ़ाया जाता है; जबकि इन तमाम बातों का पुरातत्व और इतिहास की प्रामाणिक जानकारी से कुछ भी लेना-देना नहीं है। यहाँ सहज ही सवाल उठता है कि ऐसी दंतकथाएँ इतिहास की प्रायः सर्वमान्य प्रस्थापनाएँ कैसे बन गईं ? हमारे प्राचीन इतिहास के इस विरूपण के स्रोत क्या हैं ? इनके पीछे निहित उद्देश्य क्या हो सकते हैं ? कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ० शर्मा की कालजयी कृति **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** में इन सभी प्रश्नों के सटीक और प्रामाणिक उत्तर हमें एक साथ मिल जाते हैं। ऐसी बात भी नहीं है कि डॉ० शर्मा अपनी इसी कृति में ये बातें पहली बार कर रहे हों। इतिहास के औपचारिक क्षेत्रों की बात तो मैं नहीं कह सकता, पर इतना निश्चित है कि **रामविलास शर्मा** एक लंबे अर्से से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारतीय समाज और इतिहास के संदर्भ में इन तथा ऐसी ही अन्य तमाम कपोल कल्पनाओं और दंतकथाओं को बराबर चुनौतियाँ देते आ रहे हैं। ठेठ अपनी इतिहास संबंधी पहली कृति **मानव सभ्यता का विकास** (1956) तथा भाषा-विज्ञान संबंधी कृति **भाषा और समाज** (1960) के जमाने से ही। छिट-पुट लेखों और साहित्यिक कृतियों में प्रसंगवश आने वाले उल्लेखों और टिप्पणियों की तो बात ही दीगर है !

हम यदि प्राचीन भारत के प्रसंग में ही बात करें तो आर्यों के भारत के बाहर से आने और आक्रमण करके सिंधु सभ्यता के नगरों को नष्ट करने की दंतकथाओं का डॉ० शर्मा बहुत पहले से और बड़े व्यापक तौर पर सटीक खंडन करते रहे हैं। विशेष रूप से **भाषा और समाज** तथा तीन खंडों में प्रकाशित अपनी कालजयी कृति **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी** में वे अत्यंत प्रामाणिक ढंग से यह सिद्ध कर चुके हैं कि सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों के ईरानी और यूरोपीय प्रतिरूपों में सघोषता और महाप्राणता का संयोग नहीं होता। यह विशेषता **केवल** भारतीय आर्यभाषाओं में ही विद्यमान है। इससे दो बातें साबित होती हैं। पहली यह कि इन ध्वनियों का केंद्र भारत से कहीं बाहर नहीं, बल्कि भारत में ही है। दूसरे, ये ध्वनियाँ भारत से पश्चिम और पश्चिमोत्तर की ओर क्रमशः सुदीर्घ ध्वनिवृत्तों में फैलती चली गई हैं, जैसा कि उन क्षेत्रों की भाषाओं के सतर्क अध्ययन से भी प्रमाणित होता है। यानी, आर्य भारत के बाहर कहीं से नहीं आए, बल्कि इसके विपरीत वे भारत से बाहर अन्य क्षेत्रों में बहिर्गमन करते हुए साबित होते हैं। प्रस्तुत कृति में भी डॉ० शर्मा पुनः इन बातों की ओर ध्यान दिलाकर बलपूर्वक कहते हैं कि यह तथ्य ही (सघोषता और महाप्राणता) भारत पर आर्यों के 'आक्रमण' के गलत सिद्धांत को ध्वस्त करने के लिए काफी है। वास्तव में देखा जाए तो इस गलत सिद्धांत की नींव पर ही सारी कपोल कल्पनाओं के महल खड़े किए गए हैं। इस खोखली नींव के एक बार भहराकर गिर जाने के बाद प्राचीन भारत के इतिहास का सारा रूपवादी ढाँचा ध्वस्त हो जाता है और तथाकथित 'सर्वमान्य' धारणाएँ कोरी दंतकथाएँ साबित हो जाती हैं।

वैसे, देखा जाए तो ये धारणाएँ और मान्यताएँ कभी सर्वमान्य रहीं भी नहीं। यह बात दीगर है कि भारत के स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के तमाम पाठ्यक्रमों से लेकर इतिहासवेत्ताओं तक, आमतौर से इन एकपक्षीय धारणाओं को ही 'सर्वमान्य' बताकर इतिहास का एक गलत और हास्यास्पद ढाँचा सामने रखा जाता रहा है। प्राचीन भारत के इतिहास की धारणाओं, मान्यताओं और सिद्धांतों के ''इतिहास'' के सतर्क अध्ययन से दो बड़ी महत्वपूर्ण बातें उजागर होती हैं। पहली यह कि आर्यों के आक्रमण-सिद्धांत को आरंभ से ही प्रबल चुनौतियाँ दी जाती रही हैं और भारत में आर्यों के निवास के प्रमाण तथाकथित 'सर्दमान्य' तिथियों से कई हजार साल पहले तक मिलते रहे हैं। यहाँ तक कि तथाकथित 'सिंधु सभ्यता' के भी पहले से। दूसरे, सिंधु सभ्यता और उसे नष्ट करने वाले आर्यों के इतिहास को अधिकाधिक ऊपर की ओर खिसकाकर, उन्हें अपेक्षाकृत कम प्राचीन, अपेक्षाकृत कम विकसित और अपनी 'समकालीन' अन्य सभ्यताओं से कई बातों में प्रभावित बताने तथा आर्यों के आक्रमण-सिद्धांत को फैलाने के पीछे उपनिवेशवादी स्वार्थों की निहित भूमिका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रही हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऋग्वेद की मनमानी व्याख्या का सहारा लेने के साथ ही उसके रचना काल को अधिकाधिक बाद की अवधि का साबित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं। यह सभी कुछ एक सोचे-समझे और सुनियोजित साम्राज्यवादी षड्यंत्र का हिस्सा रहा है। इस षड्यंत्र के अंतर्गत प्राचीन भारत के इतिहास में—और परवर्ती अवधि के संदर्भ में मध्यकालीन इतिहास में भी—तोड़-फोड़ करके उसे इस कदर विरूपित किया जाता है कि वह द्रविड़ों और आर्यों से लेकर ठेठ तुर्क-अफ़गानों तक निरंतर बाहरी हमलों का इतिहास लगे ! एक के बाद एक विभिन्न बाहरी जातियों के आधिपत्य का ही इतिहास मालूम पड़े ! जाहिर है कि ऐसी स्थिति में यूरोपीय हमलावरों, खासकर ब्रिटिश लुटेरों के औपनिवेशिक शासन को न्यायोचित ठहराने में कुछ ज्यादा सहूलियत होती है। इससे न केवल यहाँ की बहुजातीय (Multinational) राष्ट्रीयता का दमन करने तथा एक जाति से दूसरी जाति और एक संप्रदाय से दूसरे संप्रदाय को लड़ाकर देश-विभाजन का रास्ता तैयार होता है, बल्कि भारत के स्वाभाविक सामाजिक विकास को अवरुद्ध करके औपनिवेशिक लूट छिपाने तथा "असभ्य और बर्बर पूरब" को पश्चिमी 'शिक्षा' और 'सभ्यता' का पाठ पढ़ाने का झूठा दंभ पालने में भी आसानी होती है। इस 'सभ्यता' के कड़वे जाम का स्वाद हम दो सौ वर्षों की गुलामी के दौरान भली-भाँति चख चुके हैं। इसी की तलछट यदि आज भी शिक्षा-संस्कृति के तमाम क्षेत्रों में दुर्गंध फैलाती दिख रही है तो इसे विडंबना ही कहा जाएगा !

बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। इन अत्यंत खतरनाक सिद्धांतों की सहायता से 1947 के देश-विभाजन के बाद और भी अनेक विभाजनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहयोग लिया जा रहा है। सांप्रदायिक तनाव, आदिवासियों में पृथकतावादी आंदोलन, धर्मोन्माद और आतंकवादी षड्यंत्रों के रूप में नित नई विषैली भुजाएँ फैलाने वाले आक्टोपस का विषबीज यही सिद्धांत कहे जा सकते हैं जिनकी मदद से यूरोप के उपनिवेशवादियों ने अपनी तथाकथित 'सभ्यता' और 'शिक्षा' का प्रसार किया था और जो आज भी नवस्वाधीन देशों में बुद्धिजीवियों के अधिकांश की गुलाम मानसिकता पर जड़ें जमाए हुए हैं। अपनी "प्रस्तावना" में डॉ० शर्मा ने इन्हीं षड्यंत्रों की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "भारत पर आर्यों का 'आक्रमण'—इस मान्यता का जन्म और प्रचार एशिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से जुड़ा हुआ है। विस्तार के समय इस मान्यता का लक्ष्य आर्यों को द्रविड़ों से अलग करना था, ह्रास के समय उत्तर-पश्चिमी भारत को शेष भारत से अलग करना है।" डॉ० शर्मा की इस कृति के अध्ययन से नए-पुराने, इन सभी साम्राज्यवादी षड्यंत्रों का पर्दाफाश होता है तथा हमारे इतिहास के विरूपण को समझने और उसकी जगह एक सही और प्रामाणिक इतिहास का वस्तुनिष्ठ खाका उभारने में मदद मिलती है। वस्तुतः डॉ० शर्मा की यह युगांतरकारी कृति इतिहास-विज्ञान और प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में एक क्रांति का सूत्रपात है। यहाँ पाठक को विरूपणों की प्रकृति, उनके तथाकथित 'सर्वमान्य' मान्यताएँ और सिद्धांत बनते जाने का क्रमिक इतिहास, इस एकपक्षीय धारा को सटीक चुनौतियाँ देने वाली दूसरी वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्न धारा का ज्ञान तथा इन सबके पीछे निहित उद्देश्यों की विस्तृत जानकारी पहली बार एक साथ और क्रमबद्ध रूप से मिलती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इस कालजयी कृति की दूसरी अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें भ्रांत और गलत धारणाओं को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिए तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के वास्तविक, सच्चे और प्रामाणिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करने के लिए डॉ० शर्मा खुद को सिर्फ इतिहास की औपचारिक सीमाओं तक सीमित नहीं रखते। वे इतिहास-विज्ञान के संदर्भ में इतिहास और पुरातत्व के औपचारिक क्षेत्रों की पुरानी से पुरानी जानकारी और नई से नई शोध सामग्री और निष्कर्षों का लाभ उठाने के साथ ही भाषाविज्ञान, दार्शनिक चिंतन, साहित्यिक स्रोतों तथा मिथकों और देवतंत्र के विकास की विभिन्न मंजिलों के समाजशास्त्रीय अध्ययन को भी अपने विश्लेषण का अंग बनाते हैं। इसके साथ ही वे समकालीन मिस्री और सुमेरी-बैबिलोनी सभ्यताओं के तुलनात्मक संदर्भों से भी सहायता लेते हैं। यह कार्य भी डॉ० शर्मा-जैसा विश्व इतिहास और इतिहास-विज्ञान का मर्मज्ञ, भारतीय समाज और संस्कृति की पेचीदगियों का गहरा विश्लेषक, मौलिक भाषाविद्, मार्क्सवादी चिंतन का सृजनात्मक व्याख्याकार और सर्वोपरि एक युगांतरकारी साहित्यकार ही कर सकता था !

अठारहवीं शताब्दी के **विलियम जोन्स** से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के **कार्ल मार्क्स** और **फ्रेडरिक एंगेल्स** तक यूरोपीय विद्वानों की एक धारा ऐसी रही है जो भारत को तमाम भाषाओं और धर्मों का उद्‌गम मानती रही है। यूरोपीय विद्वान जो पहले सामान्यतः यह मानते थे कि उनकी भाषाओं को जन्म देने वाली स्रोतभाषा का भारत से गहरा संबंध है, क्रमशः इस धारणा से दूर हटते चले गए। डॉ० शर्मा ध्यान दिलाते हैं कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ होने का जो दौर है, वही स्रोत भाषा से भारतीय संबंधों के शिथिल होने का भी दौर है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की 'भारी प्रगति' का हवाला देने के बाद वे बताते हैं कि अनेक नई-पुरानी भाषाओं के अपने विकास और उनके आपसी संबंधों की जानकारी के अलावा अनेक देशों के प्राचीन इतिहास के बारे में जो धारणाएँ प्रचलित हैं, वे इसी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की देन हैं। डॉ० शर्मा के शब्दों में, "आर्यों ने भारत में उत्तर-पश्चिम से प्रवेश किया, यह कल्पना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की है। पुरातत्व ने (मार्शल से ह्वीलर तक) उसे वहाँ से ग्रहण किया। **कल्पना निराधार है।**" (**बल** मेरी ओर से)। क्यों निराधार है ? इसके उन्होंने अनेक सटीक कारण दिए हैं, जिनका इस कृति में अत्यंत विस्तार से परिचय दिया गया है।

मिसाल के लिए, एक और सर्वप्रमुख कारण का उल्लेख किया भी जा चुका है; अर्थात भाषावैज्ञानिक आधार। सघोष और महाप्राण ध्वनियों का उद्‌गम और केंद्र भारत और भारतीय आर्य भाषाओं का प्रमाणित होना। दूसरा साहित्यिक कारण है **ऋग्वेद**। डॉ० शर्मा ने अत्यंत ठोस और बहुआयामी प्रमाणों से यह साबित किया है कि **ऋग्वेद** हड़प्पा के लिए ही नहीं, बल्कि मिस्र और सुमेर की सभ्यताओं के लिए भी काफी प्राचीन है। इस संदर्भ में भी भाषावैज्ञानिक आधार के बाद उन्होंने दूसरा आधार देवतंत्र के विकास को माना है। मिस्र, सुमेर और भारत के देवतंत्रों में अनेक समानताओं की जानकारी देते हुए वे बतलाते हैं कि उनके प्राचीनतम रूप **ऋग्वेद** में ही मिलते हैं और एकमात्र **ऋग्वेद** में ही समाजशास्त्रीय दृष्टि से देवतंत्र के विकास की विभिन्न मंजिलें पहचानी जा सकती हैं। इसी तरह, आधुनिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यूरोप के दर्शन और विज्ञान की नींव माने जाने वाले यूनानी दर्शन और विज्ञान की भी अनेक मूलभूत स्थापनाएँ भारतीय चिंतन में विद्यमान हैं, जिनकी डॉ० शर्मा ने अत्यंत विस्तार से जानकारी दी है। इस प्रकार, स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "देवतंत्र की तरह दर्शन में भी चिंतन के उद्भव और विकास की मंजिलें **ऋग्वेद** में, और केवल **ऋग्वेद** में, पहचानी जा सकती हैं।" एक अन्य आधार **ऋग्वेद** में वर्णित अरा-युक्त रथ है, जो पश्चिमी एशिया होता हुआ पहले मिस्र, फिर यूनान और बहुत बाद में उत्तरी यूरोप पहुँचा। वे लिखते हैं कि "पश्चिम की ओर भारतीय रथ की यात्रा का अनुसरण करते हुए हम उस कालखंड का पता लगा सकते हैं और उन भूखंडों को पहचान सकते हैं जब और जहाँ भारतीय प्रभाव से 'इंडोयूरोपियन' भाषा-परिवार का निर्माण हुआ था।" यानी, इतिहास की वस्तुनिष्ठ व्याख्या और इतिहास-लेखन की वैज्ञानिक पद्धति में साहित्यिक साक्ष्य, पुरातत्व, भाषाविज्ञान और दर्शन आदि चिंतन की विभिन्न धाराएँ आपस में जुड़ी हुई होती हैं और एक-दूसरे के निष्कर्षों को परस्पर पुष्ट और प्रामाणिक बनाती हैं। डॉ० शर्मा की इस कृति में हमें इसी पद्धति के दर्शन होते हैं। इसी आधार पर वे यह साबित करते हैं कि दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० का जो युग आर्यों के बहिर्गमन का है, उसे पूँजीवादी इतिहासकार भारत में उनके प्रवेश का युग बताकर एक नितांत गलत इतिहास की उल्टी गंगा बहाते हैं।

ऋग्वेद की प्राचीनता का एक और महत्वपूर्ण आधार **सरस्वती** है, जो अपने विशाल और भरे-पूरे रूप में **ऋग्वेद** के प्रत्येक मंडल में विद्यमान है। हड़प्पा (सिंधु) सभ्यता का ह्रास (जो प्रायः 1750 ई०पू० माना जाता है) सरस्वती के जलहीन होने पर हुआ था। यानी, सरस्वती के जलहीन होने से बहुत पहले (क्योंकि **अथर्ववेद** में भी वह जल से भरी-पूरी है) **ऋग्वेद** की रचना हो चुकी थी। इसी तरह **ऋग्वेद** में जल-प्रलय की घटना का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किंतु **अथर्ववेद** में जल-प्रलय की ओर संकेत है। दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० में आर्यों के पश्चिमी एशिया की तरफ बहिर्गमन के साथ ही जल-प्रलय से संबंधित कहानियाँ भी वहाँ पहुँचीं। डॉ० शर्मा के मतानुसार **सरस्वती** नदी के किनारे जहाँ **भरत** जन की बस्तियाँ थीं वहाँ वैदिक संस्कृति का केंद्र था। उन्होंने इसे **सारस्वत प्रदेश** और इस सभ्यता को **सारस्वत सभ्यता** का एकदम सटीक नाम दिया है। इसी क्षेत्र में सरस्वती के किनारे जब जल-प्रलय की घटना हुई तो वैदिक संस्कृति का केंद्र सारस्वत प्रदेश से खिसककर कुरु-पंचालों के **ब्रह्मर्षि प्रदेश** पहुँच गया। डॉ० शर्मा के शब्दों में "**ऋग्वेद** में जिन गण-समाजों का उल्लेख है, उन्हीं के वंशजों ने हड़प्पा सभ्यता का निर्माण किया था।" उनके मतानुसार "सरस्वती भारत के प्राचीन इतिहास की काल-विभाजक रेखा है। आर्य आक्रमण सिद्धांतवादियों के लिए उसे लाँघ पाना संभव नहीं है।" यही नहीं, सिंधु लिपि के अब तक के विवेचन से भी यही सिद्ध होता है कि वहाँ आर्यभाषा बोली जाती थी। इस लिपि का और भाषा का विवेचन ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा की जानकारी के सहारे ही संतोषजनक ढंग से किया जा सकता है। पुरातत्व से लेकर साहित्यिक साक्ष्यों तक से इतिहास की इसी गति और ऐसे ही क्रम की पुष्टि होती है। लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवादी इतिहास-लेखकों और पुरातत्त्वेत्ताओं तथा उनका अंधानुकरण करने वाले भारतीय पूँजीवादी विद्वानों ने आज तक जो उल्टी गंगा बहाई

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हुई है, हम लगातार उसी में डुबकियाँ लगा रहे हैं और अभी भी इससे निजात नहीं पा सके हैं।

प्रसंगवश, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की इन दंतकथाओं और कुछ पुरातत्ववेत्ताओं की कपोल कल्पनाओं के 'इतिहास' की संक्षिप्त चर्चा यहाँ रोचक होगी। **ग्रिफिथ** के **ऋग्वेद** के अनुवाद की पादटिप्पणियों में पहली बार इन सुझावों के संकेत दिए गए थे कि आर्य हमलावरों ने पश्चिमोत्तर से आकर भारत के मूल निवासियों के दुर्ग तोड़े और उनकी संपत्ति लूटी। नगरों और दुर्गों में रहने वाले ये 'मूल निवासी' इन आर्यों से अधिक सभ्य थे, क्योंकि आर्य अभी सामाजिक विकास की पशुचारण वाली मंजिल में ही थे। **दयाराम साहनी** ने 1920-21 में पश्चिम पंजाब (अब पाकिस्तान) के **हड़प्पा** में और **राखालदास बनर्जी** ने 1921-22 में सिंध (पाकिस्तान) के **मोहेंजो-दड़ो** में जिन दो अत्यंत प्राचीन नगरों के पुरावशेषों का पता लगाया, वे बड़ी विकसित प्राचीनतम सभ्यता के केंद्र थे। डॉ० शर्मा के अनुसार, "भारत पर आर्यों ने आक्रमण किया था—इस सिद्धांत में पुरातात्विक खोज से एक नया आयाम जुड़ गया। नया आयाम जोड़ने का यह काम सबसे पहले एक भारतीय विद्वान **रामप्रसाद चंद** ने 1926 में किया था तथा उसे पल्लवित-पुष्पित 1947 में ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ **मार्टिमर व्हीलर** ने किया।" तब से आज तक प्रायः इसी भ्रांत धारणा पर सर्वाधिक बल दिया जाता रहा है, हालाँकि इन बातों की अनेक विद्वानों ने सप्रमाण धज्जियाँ उड़ाई थीं। रामप्रसाद चंद ने इन प्राचीन नगरों के मूल निवासियों को **ऋग्वेद** के **पणि** बताकर सिंधु सभ्यता के विनाश के लिए आर्यों को जिम्मेदार ठहराया था।

मार्शल ने 1931 में, तब तक जड़ पकड़ चुकी, इस परंपरागत धारणा का तो समर्थन किया था कि आर्यों ने दो हजार ई० पू० के मध्य में भारत में प्रवेश किया था, पर उन्होंने नई बात यह कही कि आर्यों के भारत में प्रवेश के समय तक मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा का लोप हो चुका था। मार्शल तब भी यह नहीं मानते थे कि सिंधु सभ्यता के अवसान के लिए आर्य जिम्मेदार थे। डॉ० शर्मा के शब्दों में "सिंधु घाटी की सभ्यता से पहले-पहल सुमेर की संस्कृति प्रभावित हुई, फिर उस सुमेरी संस्कृति ने बैबिलोन आदि की सभ्यता को प्रभावित किया, इस विकासक्रम को स्वीकार करने वाले मार्शल-जैसे विद्वान 1926 में विद्यमान थे।" मार्शल के विपरीत **गौर्डन चाइल्ड** ने 1934 में "बेहद झिझकते हुए" यह सुझाव दिया था कि मोहेंजो-दड़ो में दखलंदाज "आर्य हमलावर हो सकते हैं।" चाइल्ड की इस "झिझक" का कारण आर्यों के भारत पर आक्रमण (लगभग 1500 ई०पू०) और हड़प्पा सभ्यता के अवसानकाल (लगभग 1750 ई०पू०) के बीच का अंतराल था। डॉ० शर्मा ने अपनी इस कृति में उपर्युक्त संपूर्ण विवरण देते हुए एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है। वह यह कि इस "अंतराल" का कोई समाधान न खोज पाने की वजह से ही चाइल्ड ने अपनी पुस्तक के 1952 वाले संशोधित संस्करण में से "आर्य हमलावरों" की ओर सीधे संकेत वाली बात निकाल दी थी। **मैकाय** भी 1938 से ही यह मत प्रकट कर रहे थे कि मोहेंजो-दड़ो का अवसान किसी बड़े पैमाने के विध्वंस का परिणाम न था। उनको भी आर्य आक्रमण के सिद्धांत पर भरोसा नहीं था। लेकिन उन्होंने खुदाई में मिले थोड़े से अस्थिपंजरों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और कुछ मामूली संघर्ष के चिन्हों के आधार पर यह संभावना जरूर व्यक्त की थी कि ये पश्चिमोत्तर के लुटेरे या कबाइली हो सकते हैं। पर, किसी व्यापक नर-संहार और विध्वंस के कोई प्रमाण नहीं मिलते, जिन्हें आर्य हमलावरों से जोड़ कर बाद में तरह-तरह की दंतकथाएँ गढ़ी गई हैं, और जो आज भी खासी प्रचलित तथा हमारे इतिहास के पाठ्यक्रमों में सजाई हुई हैं। डॉ० शर्मा बतलाते हैं कि किस तरह से फिलाडेल्फिया के पुरातत्वज्ञ **डेल्स** ने 1964 में "दी मिथिकल मैसेकर ऑफ मोहेंजो-दड़ो" शीर्षक अपने एक लेख में इन कपोल कल्पनाओं की खिल्ली उड़ाते हुए ऐसी दंतकथाओं का खंडन किया था।

इन तमाम गलत और भ्रांत धारणाओं के सबसे बड़े प्रचारक ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ सर **मार्टिमर ह्वीलर** रहे हैं, जिन्होंने 1947 में देश-विभाजन के बाद से सिंधु सभ्यता का गौरव पाकिस्तान की झोली में डालकर पुरातत्व की दृष्टि से भारत को दरिद्र मान लिया था। आर्यों के तथाकथित हमले (1500 ई०पू०) और सिंधु सभ्यता के अवसानकाल (1750 ई०पू०) के बीच जिस ढाई शताब्दी के **अंतराल** ने पुरातत्वज्ञों को हैरानी में डाल रखा था उससे ह्वीलर साहेब को कोई परेशानी नहीं हुई। उन्होंने इस "अंतराल" को पाटने के लिए जो करिश्मा किया है, ऐसा शायद ही किसी और ने किया हो। इतिहास और पुरातत्व में ऐसी तोड़-फोड़ की मिसाल भी शायद ही कहीं और मिले ! ह्वीलर ने आर्यों के आक्रमण और सिंधु सभ्यता के अवसानकाल को खिसकाकर एक साथ ला दिया। इस समस्या का ऐसा मनमाना समाधान गढ़कर उन्होंने मैकाय के कबाइलियों की जगह सारा किस्सा "आर्य हमलावरों" से जोड़ दिया। ह्वीलर को ये दुराग्रह कितनी मजबूती से जकड़े हुए हैं, यह इसी से साबित हो जाता है कि जब डेल्स (1964) के लेख ने इन किस्सों की धज्जियाँ उड़ा दीं तो अपनी पुस्तक के 1966 वाले संशोधित संस्करण में सर ह्वीलर को पीछे हटना पड़ा—पर कैसे, यह और भी दिलचस्प है : "बरसों पहले (1947 में) मैंने सुझाया था कि उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम पर आक्रमण करने वाले आर्य विनाश के अंतिम उपादान थे। इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, और संभव है, वह बिल्कुल गलत हो, पर वह असंभव नहीं है।" लेकिन वे प्रचारित इसी "असंभव" को करते रहे, जिसे "सिद्ध नहीं किया जा सकता।" ह्वीलर अपनी इस मान्यता से तो तिल-भर भी पीछे नहीं हटे कि "सभ्यता की अवधारणा सिंधु देश को दो नदियों की भूमि (अर्थात मेसोपोटामिया, इराक़) से प्राप्त हुई थी।" मजे की बात यह कि इस बात के ठोस प्रमाण भी आज तक कोई नहीं मिले। फिर भी, हमारे इतिहासकार और पुरातत्वज्ञ इन्हीं प्रमाण-रहित 'असंभव' दंतकथाओं का अंधानुकरण नहीं छोड़ रहे हैं।

सर ह्वीलर (1947, पुनः 1966) से लेकर **स्टुअर्ट पिगॉट** (1949, पुनः 1962) तक, इन सभी पश्चिमी, विशेषतः ब्रिटिश पुरातत्वज्ञों के दुराग्रहों के पीछे छिपे उनके निहित उद्देश्यों को पहचानना बहुत कठिन भी नहीं है। इन बातों का संबंध विद्वत्ता से उतना नहीं है, जितना राजनीति से। पिगॉट यह मानते रहे हैं कि आर्य मितन्नी से भारत आए थे। ह्वीलर के लिए सिंधु सभ्यता ने नगर निर्माण की कल्पना इराक़ अथवा दक्षिण-पश्चिम ईरान से ली थी। अमरीकी पुरातत्वज्ञ **नार्मन ब्राउन** ने 1953 में घोषित किया था कि "अगर ऐसा कोई दौर रहा भी हो जब पंजाब सांस्कृतिक रूप से शेष भारत का अंग बना हो, तो वह युग बहुत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

छोटा-सा ही रहा होगा।'' इसी तरह, 1954 में संस्कृत और द्रविड़ भाषाओं के अमरीकी विशेषज्ञ **एमेनो** ने लिखा था कि सिंधु घाटी जहाँ यह सभ्यता विकसित हुई, वह घाटी कभी भी भारत से घनिष्ठ रूप से संबद्ध नहीं रही। जो आर्य पंजाब में आकर बसे, वे उस समय के पूर्वी भारतीयों की अपेक्षा अपने धर्मगत और भाषागत संबंधियों—ईरानियों—के अधिक निकट थे। आज पूर्वोत्तर भारत, पंजाब और कश्मीर में आतंकवादी पृथकतावाद के विभिन्न आंदोलनों तथा हिन्दू-सिक्ख और हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक तनावों को दृष्टिगत रखते हुए 'इतिहास' और 'पुरातत्व' की इन खोजों की भूमिका पहचानी जा सकती है। साथ ही 1947 के देश-विभाजन से लेकर आज तक ब्रिटिश-अमरीकी साम्राज्यवादियों की चालों को भी आसानी से समझा जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा 'इतिहास' और ऐसे पुरातात्विक 'शोध' साम्राज्यवादी राजनीति से ही अधिक जुड़े हुए हैं, इतिहास-विज्ञान और प्रामाणिक वस्तुनिष्ठता से नहीं। आर्य-द्रविड़ संघर्ष और द्रविड़-द्रविड़पूर्व आदिवासियों के संघर्ष-जैसी पुरातात्विक दंतकथाओं की भूमिका को भी उत्तर और दक्षिण के तनावों तथा झाड़खंड और ऐसे ही आदिवासियों के अन्य तमाम पृथकतावादी आंदोलनों को दृष्टिगत रखकर समझा जा सकता है। डॉ० शर्मा ने इतिहास और पुरातत्व के नाम पर साम्राज्यवादी राजनीतिक षड्यंत्रों के अंग के रूप में आज तक प्रचारित इन 'खोजों' को विस्तार के साथ बेनकाब करते हुए यह ठीक लिखा है कि ''सिंधु सभ्यता का शेष भारत से अलगाव और इस सभ्यता का आर्यों द्वारा विनाश—एक ही स्थापना के ये दो पक्ष थे।'' अपनी इस कृति में उन्होंने इन दोनों गलत पक्षों का सप्रमाण खंडन करते हुए हमारा ध्यान विद्वानों की उस पूर्वाग्रह-मुक्त धारा की ओर दिलाया है जो बराबर आरंभ से ही इन भ्रांत धारणाओं का सटीक खंडन करते आ रहे हैं।

मिसाल के लिए, **पार्टिजर** ने 1922 में ही इस धारणा का जोरदार खंडन किया था कि आर्यों ने उत्तर-पश्चिम से भारत में प्रवेश किया था। उन्होंने सबसे पहले पश्चिमी एशिया में भारतीय आर्यों के प्रसार की बात कही थी। वे इस बात पर बहुत बल देते थे कि भारतीय साहित्य परंपरा से आर्यों के आक्रमण का तो कोई संकेत नहीं मिलता, पर उनके भारत से बाहर जाने के उल्लेख एकदम स्पष्ट हैं। इसी तरह, **लैंगडन** ने भी 1928 में यह मत प्रतिपादित किया था कि आर्य भारत के प्राचीनतम निवासी हैं। उनके विवेचन में यह संकेत भी अंतर्निहित था कि मोहेंजो-दड़ो के लोग संस्कृत या उससे मिलती-जुलती कोई आर्यभाषा बोलते थे। वे मानते थे कि सिंधु लिपि का व्यवहार पूरी तरह से नष्ट नहीं हुआ था, बल्कि ब्राह्मी लिपि के रूप में उसी का विकास हुआ था। इसी तरह एकदम इधर की मिसाल लें तो **ब्रिजेट अलचिन** और **रेमंड अलचिन** (1968) से लेकर **कौलिन रेनफ्रीव** (1987) तक पुरातत्वज्ञों, भाषाविदों और इतिहासवेत्ताओं की एक समूची परंपरा है जो हमारे प्राचीन इतिहास के वस्तुनिष्ठ और पूर्वाग्रह-मुक्त विवेचन में संलग्न रही है। इसी परंपरा में कई भारतीय इतिहासकार और पुरातत्वज्ञ भी शामिल हैं जिनके शोध, विश्लेषण और निष्कर्ष सर्वमान्य दंतकथाओं से बिल्कुल उल्टी दिशा में ले जाते हैं। हमारे शिक्षा संस्थानों और शोध केंद्रों में आज अगर यह धारा उपेक्षित, विस्मृत या बहिष्कृत है तो इससे इन क्षेत्रों पर साम्राज्यवादी चिंतन और उसके

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अंधानुकरण की जकड़बंदी ही साबित होती है। डॉ० शर्मा की इस कृति का महत्व इस बात के लिए भी है कि वे इसमें पहली बार इस धारा को एक क्रमबद्ध और सटीक ढंग से सामने लाते हैं तथा इसके माध्यम से इस साम्राज्यवादी शिंकजे की जकड़बंदी ध्वस्त करके वैज्ञानिक विवेचन और वस्तुनिष्ठ चिंतन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस कृति की इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि डॉ० शर्मा द्वारा किए गए इस समूचे खंडन-मंडन में से प्राचीन भारतीय इतिहास का एक सच्चा और सुस्पष्ट नक्शा उभरता हुआ महसूस किया जा सकता है। उनके इस विस्तृत विवेचन में से जो अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष उभरते हैं, वे इस प्रकार हैं : यह धारणा गलत है कि हड़प्पा (सिंधु) सभ्यता आर्येतर है और बाहर से आने वाले आर्यों ने उसका विनाश किया। यह धारणा ठीक नहीं है कि हड़प्पा सभ्यता **ऋग्वेद** से पहले की है। इसी तरह, इस बात के भी कोई प्रमाण नहीं मिले कि सिंधु सभ्यता की नींव पश्चिम एशिया से आने वाले लोगों ने डाली थी। यह धारणा भी ठीक नहीं है कि सिंधु सभ्यता समकालीन मिस्र की सभ्यता तथा इराक़ की सुमेर और बैबिलोन की सभ्यताओं से प्रभावित अथवा कम विकसित थी। तब फिर, सही स्थिति क्या है ? अध्ययन की ठीक दिशा और पद्धति क्या होनी चाहिए ? यह सभ्यता सामाजिक विकास की किस मंजिल को सूचित करती है ? कुल मिलाकर प्राचीन भारत का इतिहास अपने वास्तविक, वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक रूप में कैसा है ? डॉ० शर्मा की कृति **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** में इन्हीं समस्याओं की विशद् व्याख्या है और वह इन सभी पेचीदा प्रश्नों के सटीक उत्तर देती है !

सबसे पहले अध्ययन की सही दिशा। डॉ० शर्मा की मान्यता है कि प्राचीन सभ्यता के तीनों केंद्र— मिस्र, सुमेर और भारत—परस्पर संबद्ध थे और इस विशाल अफ्रीकी-एशियाई भूखंड की संस्कृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती रहीं। इसी विशाल क्षेत्र में हम दूसरी सहस्राब्दी में हामी, सामी और आर्य—इन तीन भाषा-परिवारों को भी परस्पर संपर्क में आते देखते हैं। अतः किसी भी एक सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन शेष दो को दृष्टिगत रखकर, उनकी सहायता से ही किया जाना चाहिए। यही नहीं, प्राचीन भारत के अध्ययन के लिए मिस्र और पश्चिमी एशिया के साथ ही **क्रीट** की प्राचीन **मिनोअन-मिकिनीअन** सभ्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। डॉ० शर्मा ने यही पद्धति अपनाई है। इस समन्वित अध्ययन में उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनकी भाषा-वैज्ञानिक और पुरातात्विक साक्ष्यों से पूरी तरह से पुष्टि होती है। दार्शनिक चिंतन और देवतंत्र के विकास के अध्ययन से भी इन्हीं निष्कर्षों की पुष्टि होती है। इनमें से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

मिस्र और सुमेर में भारत से निर्यात की हुई अनेक वस्तुएँ मिली हैं। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि सुमेर में भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश थे। सत्रहवीं सदी ई०पू० के आरंभ में मिस्र पर ''हिक्सोस'' कहे जाने वाले विदेशी शासकों ने अधिकार कर लिया था। उन्होंने वहाँ डेढ़ सौ वर्ष तक शासन किया। **टॉयनबी** ने उन्हें ''पश्चिमी एशिया नेआए आर्य'' कहा है। उनके साम्राज्य में मिस्र और सीरिया के अलावा मेसोपोटामिया भी था। सीरिया और फिलिस्तीन के अनेक सामंतों के नाम भारतीय उद्‌भव के माने गए हैं और ये मिस्र के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अधीन थे। इसी तरह सोलहवीं सदी ई०पू० मितन्नी राजवंश के संस्थापक और उनके उत्तराधिकारियों के नाम भी भारतीय मूल के थे। मितन्नी शासक मित्र, वरुण, इंद्र और नासत्य आदि आर्य देवताओं के उपासक थे। इसी तरह मिस्री राजवंश में भी विदेशी शासकों के अधीन ही सूर्यपूजा आरंभ हुई, जो **ऋग्वेद** और **उपनिषदों** का स्मरण कराती है। डॉ० शर्मा का अनुमान है कि भारत ने सुमेर के साथ मिस्र को भी प्रभावित किया था—सीधे, अथवा सुमेर के माध्यम से। हित्ती राज्य में अनेक वैदिक देवताओं की पूजा होती थी। मिस्र, सुमेर और भारत के देवतंत्र ही नहीं, इनके सृष्टि संबंधी चिंतन में भी बहुत समानता है। सूर्योपासना की तरह ही वायु, वरुण (जल), रुद्र और वृषभ के संदर्भ में भी भारतीय (वैदिक) आर्यों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह अनुमान भी लगाया गया है कि भारत से पश्चिमी एशिया जाकर वहाँ नई सभ्यता की नींव रखने वाले आर्यों का संबंध मत्स्य जन से था।

बोगाजकुई और अमरी आदि स्थलों में प्राप्त पुरातात्विक सामग्री के आधार पर **आलब्राइट** और **लैंबडिन** ने भी यही साबित किया है कि दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० में दक्खिनी-पश्चिमी एशिया में "इंडोआर्यन" भाषा बोली जाती थी और इसे बोलने वाले जिन देवताओं की उपासना करते थे वे "विशिष्ट रूप में वैदिक" थे। वे संख्यासूचक जिन शब्दों का व्यवहार करते थे, वे भी "विशिष्ट भारतीय रूप" के हैं। डॉ० शर्मा ने इस संपूर्ण विवरण से यह निष्कर्ष सामने रखा है कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य में भारतीय मूल के आर्य पश्चिमी एशिया में फैले हुए थे। ये तथाकथित "इंडो-आर्यन" शाखा के घुमंतू आर्य नहीं, बल्कि वे भारतीय आर्य थे जो **ऋग्वेद** की रचना के बाद भारत से बाहर गए थे। इसीलिए कई नामों के जो मूल रूप **ऋग्वेद** में सुरक्षित हैं, उनके परिवर्तित रूप हमें पश्चिमी एशिया के अभिलेखों में मिलते हैं। डॉ० शर्मा के अनुसार ये आर्य भारत से बाहर उस भूखंड में **सामंती शासकों** की भूमिका निभाते हैं। ये आर्य पश्चिमी एशिया और मिस्र से लेकर क्रीट तक फैलेनजर आते हैं।

इसी तरह, अनेक मिथकीय कल्पनाएँ, जो मिस्रियों और सुमेरियों के लिए कठिन प्रतीत होती हैं, वे सभी कल्पनाएँ सप्त-सिंधुवासी भारतीयों के लिए आसान लगती हैं। इस आधार पर जल-प्रलय की कथा-भूमि ही नहीं, बल्कि सृष्टि-कथा के मूल स्रोत को भी भारत में खोजा जा सकता है। **ऋग्वेद** के भौगोलिक परिवेश पर ध्यान देकर सृष्टि-कथा के मूल स्रोत को पहचाना जा सकता है। डॉ० शर्मा के अनुसार सुमेर से पश्चिम की ओर जाने वाली मिथकीय कथाओं का मूल स्रोत भारत ही है। इन तमाम कथाओं में अमरत्व की खोज से लेकर देवों की विशेषताओं और स्वर्गोपम देश (दिलमुन) के वर्णन तक, सारी बातें भारत की ओर ही संकेत करती हैं। डॉ० शर्मा ने **ऋग्वेद** के देवतंत्र की विभिन्न मंजिलों का उल्लेख करते हुए बहुवचन स्त्रीलिंग रूपों की ओर विशेष ध्यान दिलाया है जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इंडो-यूरोपियन देवतंत्र में भारतीय देवी-नामों की विरलता से वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि उस देवतंत्र का निर्माण **पितृसत्ताक** व्यवस्था की उस परवर्ती मंजिल में हुआ था जब देवियों का महत्व क्षीण हो गया था। इसके विपरीत, भारतीय देवतंत्र पर जहाँ भी **मातृसत्ताक** व्यवस्था की छाप है,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वहाँ उसे देव-शास्त्रीय विकास की पूर्व-अवस्था मानना होगा। यह भी उसकी **प्राचीनता** का एक अन्य प्रमाण है। इस सारे विवरण से यही दो निष्कर्ष निकलते हैं : पहला यह है कि दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० में भारतीय आर्यों ने पश्चिम एशिया जाकर वहाँ, फिर मिस्र और क्रीट में, सामंती शासन व्यवस्था कायम की थी। इन सभी क्षेत्रों के साथ और भी पहले व्यापारिक संबंध हो सकते हैं और वहाँ भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश भी हो सकते हैं। दूसरा निष्कर्ष यह कि भाषा से लेकर शासनतंत्र, उपासना-पद्धति, दार्शनिक चिंतन और जीवन-व्यवहार की अनेक वस्तुओं (नाप-तौल, नगर निर्माण और लेखन-कला आदि) तक प्राचीन आर्य (वैदिक) सभ्यता ने इन सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया था। यह सभ्यता अपनी समकालीन इन सभी सभ्यताओं से ज्यादा प्राचीन ही नहीं थी, बल्कि अधिक विकसित भी थी।

अब यह प्रश्न उठता है कि यह सभ्यता कुल-मिलाकर थी क्या ? इसका स्वरूप क्या था और यह सामाजिक विकास की किस मंजिल की परिचायक कही जा सकती है ? विभिन्न स्रोतों से डॉ० शर्मा ने जो प्रामाणिक सामग्री जुटाई है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि :

सुमेर में चूँकि जल-प्रलय का समय 3100 ई०पू० माना जाता है, अतः यह निर्विवाद है कि **ऋग्वेद** की रचना उससे काफी पहले हो चुकी थी। भारतीय परंपरा में 'कलियुग' का आरंभ 3102 ई०पू० से कल्पित किया गया है। डॉ० शर्मा के अनुसार कलियुग की विशेषता है पुराने दादापंथी सामाजिक संबंधों का टूटना, वित्त का चलन और नगर सभ्यता का विकास। अतः वे निष्कर्ष रूप में यह लिखते हैं कि यदि जल-प्रलय 3100 ई०पू० हुआ था तो इससे सिद्ध होता है कि यह तिथि वैदिक काल की शुरुआत की नहीं है, वह **ऋग्वेद** के रचनाकाल की अंतिम सीमा है। हड़प्पा (सिंधु) सभ्यता का यह प्रारंभिक दौर हो सकता है। जल-प्रलय से बचे भरत-जन पूर्व की ओर जाकर कुरु-जन में घुल-मिल गए। **ऋग्वेद** की अधिकांश रचना सारस्वत प्रदेश में हुई थी और वह जल-प्रलय से पहले, यानी 3100 ई० पू० से पहले हुई थी।

सिंधु सभ्यता का विनाश आर्यों ने नहीं किया, बल्कि इस सभ्यता की नींव **ऋग्वेद** के रचनाकार आर्यों के वंशजों ने ही डाली थी। इस सभ्यता का ह्रास (लगभग 1750 ई०पू०में), कम से कम पंजाब में, यमुना और सतलुज नदियों के मार्ग-परिवर्तन के फलस्वरूप सरस्वती में जल की भारी कमी के कारण हुआ था। यह आर्यों के तथाकथित हमलों और किसी बड़े विध्वंस की कहानी न होकर **पर्यावरण में परिवर्तन** के फलस्वरूप ही हुआ था। सिंधु सभ्यता के मात्र **मोहेंजो-दड़ो** और **हड़प्पा** ही प्रमुख केंद्र नहीं थे जो अब पाकिस्तान में चले गए, बल्कि इस सभ्यता का अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र **कालीबंगाँ** में भी था जो राजस्थान में सरस्वती नदी के किनारे बसा हुआ था। उसके विनाश की वजह सरस्वती के जल में भारी कमी और जलमार्ग में आया बहुत बड़ा परिवर्तन था। वह राजस्थान से होती हुई सिंध की तरफ बहने के बदले पूरब की ओर घूमकर यमुना के जलमार्ग से प्रयाग की ओर बहने लगी थी और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राजस्थान में उसका लोप हो गया था। मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा के अलावा सतलुज, सरस्वती, दृषद्वती घाटियों में 20 से अधिक स्थान बीकानेर (भारत) क्षेत्र में हैं जो सिंधु सभ्यता के प्रमुख स्थान हैं। गुजरात में **लोथल** बंदरगाह और वहाँ विशाल गोदी खोजी जा चुकी है। **अंबाला, रोपड़, कुरुक्षेत्र** और **सहारनपुर** के पास भी अनेक पुरावशेष मिले हैं जिनका इस सभ्यता से संबंध जोड़ा गया है। कालक्रम से मितन्नी और हित्ती सभ्यताएँ सिंधु सभ्यता के उत्तरकाल अथवा ह्रासकाल की हैं।

अब सभ्यता की प्रसार-भूमि और इसके स्वरूप के बारे में : सिंधु सभ्यता बहुत विशाल क्षेत्र में फैली हुई थी। उत्तर में अफगानिस्तान की सरहदों से शुरू होकर दक्षिण में वह पूरे गुजरात को समेटे हुए थी। पश्चिम में ईरान की सीमाओं से आरंभ करके पूर्व में वह दिल्ली, सहारनपुर और अलीगढ़ के इलाकों तक चली आई है। डॉ० शर्मा के शब्दों में, "प्राचीन समय की ज्ञात सभ्यताओं में किसी से भी इसका विस्तार अधिक है।" **फेयरसर्विस** के हवाले से वे बतलाते हैं कि इसका विकासकाल लगभग 2300 ई० पू० से 1700 ई० पू० तक है और इसकी आदिम अवस्था पाँचवीं सहस्राब्दी ई० पू० तक पहुँच सकती है। इस प्रकार, यह सभ्यता सबसे विकसित और प्राचीनतम ही नहीं, बल्कि अपने प्रसार में भी सर्वाधिक विशाल भू-क्षेत्र में फैली हुई है। इसके प्रभाव का प्रसार तो दूर-दूर तक साबित होता ही है। इस सभ्यता की विकसित अवस्था का अनुमान इन तथ्यों से भलीभाँति हो जाता है कि यहीं सबसे पहले नगर नियोजित ढंग से बसाए गए, सफाई की व्यवस्था की गई, यहाँ के मृद्भांड, मुद्राएँ, बांट-बटखरे, आवास—सभी किसी न किसी सुनिश्चित मानदंड के अनुरूप हैं। इस राज्य के अर्थतंत्र की विशेषता है सचेत ढंग से संगठित उद्योग और उसका योजना के अनुसार संचालन।

इन तमाम प्रमाणों के आधार पर डॉ० शर्मा ने इसे तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० का सर्वाधिक विकसित उद्योग कहा है और यहाँ के धातु उद्योग, विशाल अन्नागारों, बड़े पैमाने पर कपास की खेती और वस्त्र-निर्माण के तथ्यों पर विशेष ध्यान दिलाया है। यहाँ की ठप्पा मोहरों से भी विकास की ऊँची अवस्था का बोध होता है। लगभग 250 प्रतीकों तक सीमित की गई चित्रलिपि और स्वरपात या विशेषक लगाने की पद्धति लिपि और ध्वनिविज्ञान के विकास की सूचक है। विकसित व्यापार, लिपि और लेखन-कौशल के साथ मुद्रा और गणित के विकास, केंद्रबद्ध सत्ता, नियोजित अर्थतंत्र, नियोजित नगर निर्माण, संगठित उद्योग तथा पगार पर आधारित श्रम-जैसी विशिष्ट बातों के आधार पर डॉ० शर्मा ने लिखा है कि "हड़प्पा सभ्यता अनेक बातों में आधुनिक व्यवसायिक सभ्यता का पूर्वाभास देती है।" हड़प्पा सभ्यता की अनेक बातों की तुलना वे मौर्य साम्राज्य से करते हैं और यह निष्कर्ष देते हैं कि हड़प्पाई राज्यसत्ता का प्रधान लक्ष्य **बिकाऊ माल** का उत्पादन और वितरण था। यही लक्ष्य मौर्य साम्राज्य का भी था। इस मौर्य राज्यव्यवस्था की वे हित्तियों की राज्यव्यवस्था से भी काफी समानता देखते हैं।

डॉ० शर्मा हड़प्पा और मौर्य साम्राज्यों में, यूरोप से भिन्न, **भारतीय सामंतवाद** का एक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऐसा रूप देखते हैं, जिसके गर्भ में **व्यापारिक पूँजीवाद** विकसित हो रहा था। वे लिखते हैं कि "केंद्रबद्ध राज्यसत्ता, नियोजित उत्पादन, खनिज उद्योग का विकास, नागरिक अर्थतंत्र के अधीन कृषितंत्र का संचालन, कारीगरों को पगार, देश-विदेश में व्यापारिक संबंधों का प्रसार, राज्यसत्ता का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, अर्थतंत्र के संगठन में उसकी सक्रिय भूमिका, सामंती पृथकता और स्वेच्छाचारिता का दमन—हड़प्पा के साथ हित्ती और मौर्य साम्राज्यों को मिलाकर देखने से भारतीय सामंतवाद की ये विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।" कहने की आवश्यकता नहीं कि ये विशेषताएँ इस कृति में ठोस साक्ष्यों के आधार पर उभारी गई हैं। इसीलिए इस कालजयी कृति के निष्कर्ष अपनी मौलिकता में आकर्षक और वस्तुनिष्ठता में प्रामाणिक साबित होते हैं। इसमें किसी संदेह की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए कि **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** प्राचीन भारतीय इतिहास और इतिहास-विज्ञान के क्षेत्र में एक व्यापक क्रांति का सूत्रपात है।

—श्याम कश्यप

दिनांक : 21नवंबर, 1993.

पुनश्च : प्रसंगवश, ये पंक्तियाँ लिखे जाने के बाद अँग्रेजी दैनिक **दि हिन्दुस्तान टाइम्स** के 28 नवंबर, 1993 के अंक में प्रकाशित लेख "दि पालिटिक्स आफ आर्केओलौजी" पर नजर पड़ी और यह पढ़कर अच्छा लगा कि अब कुछ विद्वानों को इस बात का विश्वास होने लगा है कि इन दंतकथाओं का संबंध भारतीय पुरातत्व के साक्ष्यों से नहीं, बल्कि 'यूरोपीय राजनीति' से है। यह एक शुभ लक्षण है। इससे डॉ० शर्मा की धारणाएँ ही पुष्ट होती हैं। ये विद्वान इस साम्राज्यवादी 'यूरोपीय राजनीति' का चरित्र और भी अच्छी तरह से पहचानने लग जाएँ तो और भी शुभ होगा। इसके लिए **डॉ० रामविलास शर्मा** की कृतियाँ उनके लिए विश्वसनीय कुतुबनुमा साबित होंगी, इसमें भी कोई संदेह नहीं। लेकिन तब उन्हें अपनी सांस्कृतिक भाषा (अंग्रेजी) के प्रति अपना व्यामोह त्यागकर भारतीय भाषाओं से प्रेम करना होगा। इतना ही नहीं, उनकी मातृभाषा चाहे जो हो, उन्हें अपने देश की अखिल भारतीय संपर्क-भाषा **हिन्दी** का समुचित ज्ञान भी हासिल करना होगा, क्योंकि तभी उन्हें डॉ० शर्मा की कृतियों से मार्गदर्शन और सहायता प्राप्त हो पाएगी।

इस "भूमिका" को समाप्त करने के बाद, यह "पुनश्च" जोड़ने की जरूरत इसलिए भी अनुभव हुई कि **दि हिन्दुस्तान टाइम्स** के 6 मार्च, 1994 के अंक में प्रकाशित एन०एस० राजाराम के लेख "ट्वीलाइट ऑफ दि वैदिक एज" से कुछ नई और महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। इनसे डॉ० शर्मा के उपर्युक्त तमाम निष्कर्षों की ही जोरदार पुष्टि होती है। इस लेख से पता चलता है कि फ्रेंच स्पॉट (spot) सैटेलाइट (उपग्रह) से प्राप्त आँकडों और इंडो-फ्रेंच फील्ड स्टडी के अध्ययन-निष्कर्षों से यही साबित होता है कि पर्यावरण में परिवर्तन (जो तब एक विश्वव्यापी परिघटना के रूप में घटित हुआ था) के फलस्वरूप सरस्वती नदी ने अपना मार्ग परिवर्तित किया था। इस जल-क्षीणता की वजह से ही 2200 ई०पू० (न कि 1750ई० पू०, जैसाकि अब तक प्रायः माना जाता है) सिंधु सभ्यता का ह्रास हुआ था। इसी तरह **ऋग्वेद** की रचना भी 3500

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ई० पू० से पहले हुई थी। उसमें इस तिथि से काफी पहले के भौगोलिक परिदृश्य का वर्णन किया गया है। भारत में जो पुरावशेष मिले हैं, उनमें से कई तो 7000 ई० पू० तक के हैं। निःसंदेह, इन सभी तथ्यों और साक्ष्यों से **डॉ० रामविलास शर्मा** के निष्कर्षों की ही पुष्टि होती है। प्रसंगवश, दि हिन्दुस्तान टाइम्स के ही4फरवरी, 1994 के अंक में कालीबंगाँ (श्रीगंगानगर) से लोकपाल सेठी की अत्यंत चौंकाने वाली एक सचित्र रिपोर्ट "हड़प्पा रुइनूस इन ए स्टेट आफ नेगलेक्ट" छपी है। इस रिपोर्ट से पता चलता है कि विश्व महत्व के इन पुरावशेषों की कितनी बुरी स्थिति है और अगर शीघ्र कुछ नहीं किया गया तो वे नष्ट हो जाएँगे। यह स्थिति अत्यंत विडंबनापूर्ण ही नहीं, बेहद शर्मनाक भी है। उसके लिए एक राष्ट्रव्यापी जन-अभियान चलाने की जरूरत है। देश के शिक्षकों, छात्रों और बुद्धिजीवियों का इन पंक्तियों में इस ओर ध्यान दिलाते हुए, इस अवसर पर, फिलहाल, इत्यलम् !!

दिनांक : 21 मार्च, 1994,

सी-3/13, माडल टाउन–III, दिल्ली-110 009.

श्याम कश्यप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

डॉ० रामविलास शर्मा

ऊंचगांव - सानी (जिला उन्नाव) में 10 अक्तूबर, 1912 को जन्मे रामविलास शर्मा ने 1934 में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया था। वहीं से 1938 में पी०एच०डी० के बाद पाँच वर्ष तक लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन। सन् 1943 से 1971 तक आगरा के बी० आर० कालेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे। आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति के विशेष अनुरोध पर सन् 1974 तक के० एम० हिंदी संस्थान के निदेशक का कार्यभार स्वीकार किया तथा पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली में निवास और अनेक युगांतरकारी कृतियों की रचना।

देशभक्ति और मार्क्सवादी चेतना रामविलासजी के चिंतन का केंद्र-बिंदु है। उन्होंने शुरुआत एक कवि के रूप में की थी तथा "तारसप्तक" में संकलित कविताओं के अलावा उनके दो काव्य-संग्रह छप चुके हैं। डॉ० शर्मा ने हिंदी आलोचना को कलावाद की अंधेरी खाई से निकाल कर यथार्थवादी चिंतन की दृढ़ आधारभूमि प्रदान की तथा हमारे देश में मार्क्सवादी समीक्षा और सौंदर्यशास्त्र की नींव रखी, जिसके सिरमौर आज भी वही हैं। उन्हें शुक्लजी के बाद देश का सर्वोच्च समालोचक माना जाता है। उनकी लेखनी से बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और भक्ति आंदोलन से लेकर भारतेंदु, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध, केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन और अमृतलाल नागर तक के संपूर्ण हिंदी साहित्य और विशिष्ट रचनाकारों का सर्वाधिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम "भारतीय साहित्य" और "हिंदी जाति के साहित्य" की सही अवधारणाएं उनके ठीक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर साहित्य के इतिहास-लेखन का एक नया और वैज्ञानिक दृष्टिकोण सामने रखा है।

डॉ० शर्मा ने अपनी भाषावैज्ञानिक कृतियों से इस विज्ञान में एक नए "स्कूल" का आरंभ करने के बाद अब अपनी इतिहास और दर्शन संबंधी रचनाओं से प्रचलित मान्यताओं को एक सिरे से बदल डाला है। रामविलास शर्मा 1949 से 1953 तक अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव भी रहे हैं। वे साहित्य अकादमी सहित अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रस्तावना

पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद—पुस्तक का नाम देखकर शायद आप यह समझें कि ऋग्वेद रचने वाले आर्य पश्चिमी एशिया में कहाँ-कहाँ से होकर भारत आए, वहाँ उनका जीवन कैसा था, ईरानियों से वे कब-कहाँ जुदा हुए, आदि बातों का विवरण यहाँ होगा। पर ऐसा है नहीं। आमतौर से माना यही जाता है कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में आर्यों ने उत्तर-पश्चिम से भारत में प्रवेश किया। पाश्चात्य विद्वानों में अल्पसंख्यक समुदाय ऐसा भी रहा है जो मानता था कि आर्य मूलतः भारत के निवासी थे। किंतु इन्होंने पश्चिमी एशिया से भारतीय आर्यों का कोई विशेष संबंध नहीं जोड़ा। यह बात उन भारतीय विद्वानों के बारे में भी कही जा सकती है जो आर्यों को इसी देश का निवासी मानते रहे है।

पिछले दो तीन दशकों में यूनानी संस्कृति के विवेचकों ने एक नई स्वस्थ प्रवृत्ति का परिचय दिया है। वे इस संस्कृति के पूर्वी स्रोतों का अनुसंधान करते रहे हैं। यूनानी संस्कृति को आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का मूलाधार माना जाता है। कहा जाता है, आधुनिक संस्कृति एशिया में दर्शन-विज्ञान का प्रकाश फैला रही है। यही काम उसकी मूलाधार यूनानी संस्कृति ने, विशेष रूप से सिकंदर के एशियाई अभियान के बाद किया था। जिस समय यूरोप की जातियाँ एशिया में अपना साम्राज्य-विस्तार कर रही थीं, उस समय इतिहास के प्रति इस दृष्टिकोण का विकास हुआ था। साम्राज्यवादी हमलावर यह प्रचार करते थे कि पूरब के देश पिछड़े हुए हैं, उनमें सभ्यता का प्रसार करने के लिए वे उन पर अधिकार जमाए हैं। इसी दृष्टिकोण को वे इन देशों के अतीत पर प्रक्षेपित करते थे। उनका हीरो था सिकंदर। जैसे उसके मुट्ठी-भर सैनिकों ने लाखों एशियाइयों को खदेड़ दिया, वैसे ही उसके वर्तमान उत्तराधिकारी एशियाइयों से निपट रहे हैं। जैसे सिकंदर की विजय के साथ एशिया में ज्ञान का नया प्रकाश फैला, वैसे ही अपनी विजय के साथ ये अपने ज्ञान का प्रकाश फैला रहे हैं। ऐसे में यदि कोई कहे कि यूनानी संस्कृति के स्रोत पूर्व में थे तो यूरोप के समूचे सांस्कृतिक विकास में बट्टा लगता था।

इसीलिए यह बात महत्वपूर्ण है कि पिछले दिनों यूनानी संस्कृति के विवेचकों ने उसके पूर्वी स्रोतों की ओर ध्यान दिया है। इनमें प्राचीन मिस्र और इराक (सुमेर-बैबिलोन) के स्रोत मुख्य हैं। 'पूर्व' में वे मिस्र को शामिल करते हैं, यह उचित है। किंतु 'पूर्व' से वे भारत को अलग रखते हैं। वे मिस्र और सुमेर की सभ्यताओं को हड़प्पा और ऋग्वेद दोनों से ही अधिक प्राचीन मानते हैं, शायद इसलिए ऐसा करते हों। लेकिन यूनान की सभ्यता का विकास तो इराक और मिस्र के प्राचीनकाल से बहुत बाद में हुआ। इसके सिवा ग्रीक भाषा का जैसा संबंध संस्कृत से है, उसका वैसा संबंध एशियाई-अफ्रीकी क्षेत्रों की किसी भी भाषा से नहीं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है। ग्रीक समेत यूरोप की भाषाओं के लिए भारतीय संदर्भ कितना महत्वपूर्ण है, यह 'इंडोजर्मैनिक' और 'इंडोयूरोपियन' जैसे शब्दों से प्रकट हो जाता है।

आर्यों ने भारत में उत्तर-पश्चिम से प्रवेश किया, यह कल्पना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की है। पुरातत्व ने (मार्शल से व्हीलर तक) उसे वहाँ से ग्रहण किया। कल्पना निराधार है। सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों के ईरानी-यूरोपियन प्रतिरूपों में सघोषता और महाप्राणता का संयोग नहीं होता। यह विशेषता केवल भारतीय आर्य भाषाओं की है। यह एक तथ्य भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत को ध्वस्त करने के लिए काफी है। आक्रमणकारी आर्यों ने हड़प्पा सभ्यता का नाश किया, यह कल्पना भी निराधार है। हड़प्पा सभ्यता का ह्रास 1750 ई० पू० के लगभग होता है। उस समय सरस्वती जलहीन हो रही है, कालीबंगाँ के उत्खनन से यह तथ्य सामने आया है। किंतु ऋग्वेद में सरस्वती जल से भरी शक्तिशाली नदी है। ऋग्वेद ही नहीं, उसके बहुत समय बाद रचे गए यजुर्वेद में भी उसका यही स्वरूप है। इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद की रचना हड़प्पा सभ्यता के ह्रास से, 1750 ई० पू० से, बहुत पहले हुई थी। सरस्वती भारत के प्राचीन इतिहास की काल-विभाजक रेखा है। आर्य आंक्रमण सिद्धांतवादियों के लिए उसे लाँघ पाना संभव नहीं है।

ऋग्वेद हड़प्पा के लिए ही नहीं मिस्र और सुमेर के लिए भी प्रचीन है। मिस्र से लेकर भारत तक, चौथी-तीसरी सहस्राब्दियों ई० पू० में, सारा भूखंड एक सांस्कृतिक इकाई है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, पुरातत्व, पुराण कथाओं और काव्य ग्रंथों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। ऋग्वेद की एक विशेषता यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से उसमें देवतंत्र के विकास की मंज़िलें पहचानी जा सकती हैं। मिस्र, सुमेर और भारत के देवतंत्रों में अनेक समानताएँ हैं। इनके प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलते हैं। मातृसत्तात्मक समाज में जब पितृत्व से अधिक महत्वपूर्ण मातृत्व था, और जब अनेक माताएँ एक ही कुटुंब में, एक ही घर में, एक साथ रहती थीं, तब जलों को माताओं के रूप में ग्रहण किया गया था। जलवाचक **अपः** और **आपः** माताएँ हैं और ऋग्वेद में इनका प्रयोग सदा बहुवचन में होता है। जल की पूजा भारत से लेकर मिस्र तक होती थी, उसकी बहुवचन **मातरः** के रूप में कल्पना केवल ऋग्वेद में है।

भारतीय आर्य अश्वारोहण और रथसंचालन में बड़े प्रवीण थे। भारतीय रथ का पहिया अरायुक्त होता था, सुमेरी रथ में अरा न होते थे, वह ठस और भारी होता था। तीसरी-दूसरी सहस्राब्दियों में यह रथ पश्चिमी एशिया होता हुआ पहले मिस्र, फिर यूनान, और बहुत बाद में उत्तरी यूरोप पहुँचा। यह रथ पश्चिमी एशिया से आर्यों के संबंध का बहुत पुष्ट प्रमाण है। और यह रथ ऋग्वेद में है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, पुरातत्व, देवतंत्र, काव्य साहित्य—विद्वान किसी भी क्षेत्र में काम करें उन्हें अंततः ऋग्वेद की ओर लौटना पड़ेगा। इसलिए इस पुस्तक का नाम **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** है। और ये क्षेत्र परस्पर संबद्ध हैं। पश्चिम की ओर भारतीय रथ की यात्रा का अनुसरण करते हुए हम उस कालखंड का पता लगा सकते हैं और उन भूखंडों को पहचान सकते हैं जब और जहाँ भारतीय प्रभाव से इंडोयूरोपियन भाषापरिवार का निर्माण हुआ था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यूनान का दर्शन-विज्ञान आधुनिक यूरोप के दर्शन-विज्ञान की आधारशिला है। इस दर्शन-विज्ञान की अनेक मूलभूत स्थापनाएँ भारतीय चिंतन में, सब से पहले ऋग्वेद में, विद्यमान हैं। ऋग्वेद में काव्य है, उसके साथ दर्शन है। इस काव्य-दर्शन की विशेषता है विश्व-प्रपंच की गतिशीलता और भौतिकता का चित्रण और विवेचन। प्रकृति की गतिशीलता और भौतिकता के लिए ऐसा आग्रह अन्यत्र नहीं है। देवतंत्र की तरह दर्शन में भी चिंतन के उद्भव और विकास की मंज़िलें ऋग्वेद में, और केवल ऋग्वेद में पहचानी जा सकती हैं। प्रसिद्ध है, पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश, इन पाँच तत्वों से पिंड और ब्रह्मांड की रचना हुई है। दर्शन के तत्व बनने से पहले ये प्रपंच काव्य के विषय हैं और परस्पर संबद्ध हैं। प्रकृति से मनुष्य का यह रागात्मक संबंध उसकी दार्शनिक उद्भावनाओं का स्रोत है। यूनान में इन पर अंशतः काव्य रचा गया था, उनकी पूर्णता और संबद्धता के अनुसार नहीं। यूनान में और यूरोप में केवल चार तत्व माने गए थे, आकाश भी तत्व है, यह विशिष्ट भारतीय उद्भावना है। ऐसी अनेक दार्शनिक उद्भावनाएँ यूनानियों ने भारत से आंशिक रूप में ग्रहण की थीं। कौन-सी उद्भावना मूलतः भारतीय है, कौन-सी यूनानी, इसे पहचानने की प्रमाण सामग्री का अपूर्व स्रोत ग्रंथ है ऋग्वेद। दार्शनिक उद्भावनाओं के विवेचन को पुरातत्व, देवतंत्र और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से संबंधित विवेचन से मिला दिया जाए, तो भारत से पश्चिमी एशिया के सांस्कृतिक संबंध पूरी तरह स्पष्ट हो जाएँगे। यहाँ यूनान को पश्चिमी एशिया का सीमांत क्षेत्र माना गया है।

दार्शनिक उद्भावनाओं से संबंधित यह विवेचन मेरी अगली पुस्तक **भारतीय नवजागरण और यूरोप** में है। बहुत से लोग मानते हैं, वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा भारतीय समाज की विशेषता हैं, यूरोप और खास तौर से यूनान उनसे मुक्त रहे हैं। उस पुस्तक में सामाजिक विकास की समस्याओं का विवेचन भी है। यूरोप से एशिया को अलग करना, एशिया में भारत को पश्चिमी एशिया से अलग करना अनेक पाश्चात्य विद्वानों की सामान्य नीति रही है। कहीं-कहीं इस नीति का राजनीतिक उद्देश्य बहुत साफ़ उभर आता है। अब प्रस्तुत पुस्तक के बारे में।

भारत पर आर्यों का 'आक्रमण'—इस मान्यता का जन्म और प्रचार एशिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से जुड़ा हुआ है। विस्तार के समय इस मान्यता का लक्ष्य आर्यों को द्रविड़ों से अलग करना है, ह्रास के समय उत्तर-पश्चिमी भारत को शेष भारत से अलग करना है। पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों के राजनीतिक दुराग्रहों और उनके बदलते हुए दृष्टिकोण का विवेचन पहले अध्याय में है।

विश्व पूँजीवाद के संकटकाल में केंद्रबद्ध, सुनियोजित अर्थतंत्र को समाजवादी व्यवस्था की विशेषता कह कर उसकी खूब ले-दे हुई है। वास्तव में भारतीय इतिहास के अनेक गौरवशाली युगों का संबंध इस अर्थतंत्र से है। इनमें सबसे पहले आता है हड़प्पा सभ्यता का युग। यह युग उस समय के सबसे बड़े राज्य में केंद्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र का युग है, इस तथ्य को उजागर करने का श्रेय पुरातत्वज्ञ पिगॉट को है। उन्होंने ही बताया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है कि आर्थिक विकास की यह पद्धति हड़प्पा के साथ मिट नहीं जाती, उसकी आवृत्ति मौर्य साम्राज्य में होती है। हड़प्पा संबंधी यह विवेचन दूसरे अध्याय का विषय है।

तीसरे अध्याय में पश्चिमी एशिया में आर्यों के प्रभाव-विस्तार की चर्चा है। इस प्रभाव-विस्तार से पहले मिस्र और सुमेर से भारत के सांस्कृतिक संबंध कायम होते हैं। इन संबंधों का विवेचन चौथे अध्याय में है। इतिहास और पुरातत्व के लिए सरस्वती का महत्व, जल-प्रलय की घटना से भरतों का विस्थापन, यह घटना ऋग्वेद की रचना से बाद की और अथर्ववेद से पहले की है, जल-प्रलय के बाद संस्कृत का केंद्र कुरु-पाँचाल प्रदेश में सरक आया, इस सब का विवेचन पाँचवें अध्याय में है। छठे अध्याय में, ऋग्वेद के आधार पर आर्यों के परिवर्तनशील और विकासमान देवतंत्र की चर्चा है। मिस्र, सुमेर और भारत की सृष्टि कथाओं में अनेक तत्व सामान्य हैं। कुछ दार्शनिक उद्‌भावनाएँ भारत से मिस्र पहुँची थीं। इनमें बहुत दिलचस्प ऋग्वेद की सत्-असत् संबंधी अवधारणा है। इनका विश्लेषण सातवें अध्याय में है। बात शुरू हुई थी भाषाविज्ञान से। आठवें अध्याय में वह उसी से समाप्त होती है, किंतु इंडोयूरोपियन परिवार से इसका क्षेत्र भिन्न है और संस्कृत को छोड़कर विवेचित अनेक भाषाएँ उक्त परिवार की भाषाओं से अधिक प्राचीन हैं। 'अफ्रीकी-एशियाई सभ्यता की प्रसारभूमि और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान' नाम का यह अध्याय इंडोयूरोपियन परिवार के निर्माण की पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है।

दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० बड़े-बड़े जन-अभियानों की सहस्राब्दी है। इसी के दौरान भारतीय आर्यों के दल के दल इराक से लेकर तुर्की तक फैल जाते हैं। वे अपनी-अपनी भाषा और संस्कृति की छाप सर्वत्र छोड़ते जाते हैं। पूँजीवादी इतिहासकारों ने उल्टी गंगा बहाई है। जो युग आर्यों के बहिर्गमन का है, उसे वे भारत में उनके प्रवेश का युग कहते हैं। इसके साथ वे यह प्रयास भी करते हैं कि पश्चिमी एशिया के वर्तमान निवासियों की आँखों से उनकी प्राचीन संस्कृति का वह पक्ष ओझल रहे जिसका संबंध भारत से है। सबसे पहले स्वयं भारतवासियों को यह संबंध समझना है, फिर उसे अपने पड़ोसियों को समझाना है। भुखमरी, अशिक्षा, अंधविश्वास और नए-नए रोग फैलाने वाली वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलना है। इसके लिए भारत और उसके पड़ोसियों का सम्मिलित प्रयास आवश्यक है। यह प्रयास जब भी हो, यह अनिवार्य है कि तब पड़ोसियों से हमारे वर्तमान संबंध बदलेंगे और उनके बदलने के साथ वे और हम अपने पुराने संबंधों को नए सिरे से पहचानेंगे। अतीत का वैज्ञानिक, वस्तुपरक विवेचन वर्तमान समाज के पुनर्गठन के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। समाज के पुनर्गठन से जुड़े अतीत के उसी वस्तुपरक विवेचन की दिशा में इस पुस्तक का लेखन एक विनम्र प्रयासहै।

नई दिल्ली

रामविलास शर्मा

1 दिसंबर, 1993

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

1

भारत पर आर्यों का 'आक्रमण' और पुरातत्व

क. आक्रमण सिद्धांत के पुराने आधार

1786 में ग्रीक, लैटिन और संस्कृत के विद्वान **विलियम जोन्स** ने कहा था, "ग्रीक की अपेक्षा संस्कृत अधिक पूर्ण है, लैटिन की अपेक्षा अधिक समृद्ध है और दोनों में किसी की भी अपेक्षा अधिक सुचारु रूप से परिष्कृत है। पर दोनों से, क्रियामूलों और व्याकरण रूपों में, उसका इतना गहरा संबंध है जितना अकस्मात् उत्पन्न नहीं हो सकता। यह संबंध सचमुच ही इतना सुस्पष्ट है कि कोई भी भाषाशास्त्री इन तीनों की परीक्षा करने पर यह विश्वास किए बिना नहीं रह सकता कि वे एक ही स्रोत से जन्मी हैं, जो स्रोत शायद अब विद्यमान नहीं हैं।[1] इसके बाद एक स्रोत भाषा की शाखाओं के रूप में जर्मन, स्लाव, केल्त आदि भाषा समुदायों को मिलाकर एक विशाल इंडोयूरोपियन परिवार की धारणा प्रस्तुत की गई। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने भारी प्रगति की; अनेक नई पुरानी भाषाओं के अपने विकास तथा पारस्परिक संबंधों की जानकारी के अलावा बहुत से देशों के प्राचीन इतिहास के बारे में जो धारणाएँ प्रचलित हैं, वे इसी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की देन हैं।

आरंभ में यूरोप के विद्वान मानते थे कि उनकी भाषाओं को जन्म देने वाली स्रोत भाषा का गहरा संबंध भारत से है। यह मान्यता **मार्क्स** के एक भारत संबंधी लेख में भी है। अँग्रेज़ों के प्रभुत्व से भारतीय जनता की मुक्ति की कामना करते हुए उन्होंने 1853 में लिखा था, "हम निश्चयपूर्वक, न्यूनाधिक सुदूर अवधि में, उस महान् और दिलचस्प देश को पुनर्जीवित होते देखने की आशा कर सकते हैं जहाँ के सज्जन निवासी, राजकुमार साल्तिकोव (रूसी लेखक) के शब्दों में 'इटालियन लोगों से अधिक चतुर और कुशल हैं,' जिनकी अधीनता भी एक शांत गरिमा से संतुलित रहती है, जिन्होंने अपने सहज आलस्य के बावजूद अँग्रेज़ अफ़सरों को अपनी वीरता से चकित कर दिया है, **जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मों का उद्गम** है, और जहाँ प्राचीन जर्मन का स्वरूप जाट में, प्राचीन यूनानी का स्वरूप ब्राह्मण में प्रतिबिंबित है"।[2]

क्रमशः भारत से स्रोत भाषा का यह संबंध शिथिल होता गया। ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि शाखाएँ मूल स्रोत भाषा से पहले अलग हुईं, इसलिए एक तरह वे संस्कृत से अधिक प्राचीन भी हुईं। सब शाखाओं के अलग हो जाने पर इंडोईरानियन शाखा बच रही। ईरानियों से अलग होकर आर्य जब भारत आए, तब वैदिक भाषा का विकास हुआ। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ होने का जो दौर है, वही स्रोत भाषा से भारतीय संबंध के शिथिल होने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का दौर भी है। आर्यों ने ईरान से आगे बढ़ते हुए भारत में प्रवेश किया था, इसलिए वे हमलावर हुए। यद्यपि उत्खनन से अभी किसी प्राचीन सभ्यता का पता न लगा था पर यहाँ आर्येतर भाषाएँ बोलने वाले जनसमुदाय रहते हैं, यह बात लोगों को मालूम थी। ये सब आदिवासी माने गए। आर्य इन्हें परास्त करके इनकी भूमि पर बस गए, देशी-विदेशी विद्वानों में यह धारणा खूब लोकप्रिय हुई। इस धारणा में तीन स्थापनाएँ निंहित थीं : (1) सामाजिक विकासक्रम में आर्य अभी पशुचारण वाली घुमंतू मंज़िल से आगे न बढ़े थे ; (2) उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों के दुर्ग तोड़े और उनकी संपत्ति लूटी ; (3) स्वभावतः घुमंतू लुटेरों के मुक़ाबले दुर्गों और नगरों में रहने वाले आदिवासी अधिक सभ्य थे। **ग्रिफ़िथ** ने 1889 में **ऋग्वेद** का जो अनुवाद पूरा किया, उसमें, विशेष रूप से पादटिप्पणियों में, पहली दो स्थापनाएँ प्रत्यक्ष हैं, तीसरी अप्रत्यक्ष।

1921 और 1922 में **दयाराम साहनी** तथा **राखाल दास बनर्जी** ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो, दो प्राचीन नगरों का पता लगाया।[3] भारत पर आर्यों ने आक्रमण किया था, इस सिद्धांत में पुरातत्विक खोज से एक नया आयाम जुड़ गया। दर्शनशास्त्र के विवेचक **देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय** के विवरण से ज्ञात होता है कि नया आयाम जोड़ने का यह काम सबसे पहँले भारतीय विद्वान **रामप्रसाद चंद ने** 1926 में किया तथा उसे पुष्पित और पल्लवित ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ **मॉर्टिमर व्हीलर** ने 1947 में किया था।[4]

1920-21 में दयाराम साहनी ने पंजाब में **हड़प्पा** नामक स्थान पर एक प्राचीन नगर का पता लगाया ; 1921-22 में राखालदास बनर्जी ने सिंध में **मोहेंजोदड़ो** नामक स्थान पर एक अन्य प्राचीन नगर का पता लगाया।[5] ये दोनों नगर हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो नामों से ही जाने जाते हैं, इनका वास्तविक नाम जो भी रहा हो। मोहेंजोदड़ो सिंधु नदी के किनारे है, इसलिए इन नगरों की सभ्यता को **सिंधु घाटी की सभ्यता** कहा गया। पर हड़प्पा रावी के तट पर है और उसका पता भी पहले लगा था, इसलिए दोनों नगरों की सभ्यता को **हड़प्पा सभ्यता** भी कहा गया। इस सभ्यता का जन्म कैसे हुआ, इस बारे में कुछ विद्वानों ने कहा, उसे मूल प्रेरणा इराक की प्राचीन सुमेरी सभ्यता से मिली। उसका अंत कैसे हुआ, इस बारे में कुछ विद्वानों ने कहा, आर्यों के आक्रमण से उसका अंत हुआ। दर्शनशास्त्र के विवेचक देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय के विवरण से ज्ञात होता है कि सबसे पहले रामप्रसाद चंद ने 1926 में सिंधु सभ्यता के विनाश के लिए आक्रमणकारी आर्यों को जिम्मेदार ठहराया था।[6]

रामप्रसाद चंद का विचार था कि **ऋग्वेद** में जिन्हें **पणि** कहा गया है, वे ही इन नगरों के आदिवासी थे। दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में जैसे यूनानी आर्यों ने ईजियन क्षेत्र पर हमला किया, वैसे ही भारतीय आर्यों ने सिंधु क्षेत्र पर हमला किया। वहाँ "उनकी भेंट ऐसे सभ्य जनों से हुई जो नगरों और दुर्गों में रहते थे और अपनी जीविका के लिए मुख्यतः व्यापार पर निर्भर थे। आर्य विजेता भौतिक संस्कृति में हेठे थे। उन्होंने या तो नगरों का नाश कर दिया या उन्हें उजड़ जाने दिया। उनके महान देवता इंद्र को पुरोहा अथवा पुरंदर—'नगरों का विध्वंसक'—कहा गया है। ईजियन क्षेत्र की प्रागैतिहासिक सभ्यता की तरह सिंधु घाटी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की प्रागैतिहासिक सभ्यता भी आर्य आक्रमण का धक्का झेलकर जीवित न रह सकी"।[7] चंदने 'पुर्' अथवा 'पुर' और 'दुर्ग' शब्दों में भेद किया था। पुर था नगरवाचक, क़िले के लिए दुर्ग शब्द का व्यवहार होता था। आर्यों ने दुर्गों को ध्वस्त किया, नगरों का नाश किया। "एक समय इंद्र के ऐसे आर्य उपासकों का अस्तित्व था जो नगरों मे रहने वाले, क़िलों के भीतर से लड़ने वाले सभ्य आदिवासी पड़ोसियों से युद्ध करते रहे थे। और लोक स्मृति में यह बात जमी रही"।[8]

चंद के विवेचन में कुछ दिलचस्प बातों की ओर संकेत है। ऋग्वेद के एक मंत्र (1.58.8) में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह आयस (ताँबे या लोहे) के बने पुर द्वारा उपासक की रक्षा करें।[9] इससे सिद्ध हुआ कि नगरों और दुर्गों में आदिवासी ही नहीं, आर्य भी रहते थे। चंद के अनुसार इंद्र ने दिवोदास के लिए जो पुर जीते, वे शंबर के थे। शंबर दास था—अनार्य अथवा दैत्य, और वह पहाड़ पर रहता था। (पहाड़ पर न तो हड़प्पा बसा हुआ था, न मोहेंजोदड़ो)। एक मंत्र (9.61.2) में दिवोदास के शत्रु गिनाए गए हैं। उनमें शंबर के साथ यदुओं के नेता यदु और तुर्वसों के नेता तुर्वस भी हैं।[10] इससे निष्कर्ष यह निकलेगा कि आर्यों के आक्रमण का मुक़ाबला शंबर जैसे आदिवासी ही न कर रहे थे वरन् यदु और तुर्वस जैसे आर्य भी कर रहे थे। सब से अद्‌भुत बात यह है कि शुष्ण नामक दैत्य के पास एक गतिशील पुर ("a moveable Pura," 8. 1. 28) है। कोई दुर्ग गतिशील होता तो भी आश्चर्य की बात होती ; यहाँ तो पूरा नगर गतिशील है। रामप्रसाद चंद ने इस गतिशीलता की कोई कैफ़ियत नहीं दी,, उनकी विद्वत्ता की दाद देने वाले देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने भी कैफ़ियत देना ज़रूरी नहीं समझा। अलबत्ता व्हीलर ने आयसी, शारदो आदि पुरों के उल्लेख चंद के लेख से उतार लिए थे किंतु **चरिष्ण्वं पुरं** को उन्होंने छोड़ दिया था। और पुरंदर का अर्थ उन्होंने दुर्गध्वंसक ("fort destroyer") ही किया था।[11] पर एक समस्या और थी ; आर्यों का आक्रमण सिंधु सभ्यता के अवसान के कुछ शताब्दियों बाद हुआ हो, तब क्या होगा ?

आर्यों के आक्रमण और सिंधु सभ्यता के अवसान के बीच कई शताब्दियों का फ़ासला हो सकता है, ऐसी कोई समस्या रामप्रसाद चंद के लिए नहीं थी। पर यह समस्या मार्शल के लिए थी, वह दोनों के बीच लगभग दो शताब्दियों का अंतराल मानते थे ; इसलिए वह सिंधु सभ्यता के अवसान से आर्यों के आक्रमण का संबंध न जोड़ सकते थे। सिंधु सभ्यता के अवसान काल को थोड़ा और नीचे उतारें, आर्यों के आक्रमण को थोड़ा और ऊपर खींचें , तो समय की खाई पाटी जा सकती थी। यही कार्य व्हीलर ने किया। इस खींचतान के बारे में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुरातत्व प्रोफ़ेसर कौलिन रेनूफ्रीव ने लिखा है : "आर्य आक्रमणकारियों के सिद्धांत के लिए कालक्रम का निर्धारण निस्संदेह डाँवाँडोल है। सिंधु घाटी की सभ्यता के ह्रास को अब 1800 ई० पू० के लगभग स्थिर किया जा सकता है। पर हम देख चुके हैं कि बहुत से विद्वान ऋग्वेद का रचनाकाल 1000 ई० पू० के आसपास रखना चाहेंगे। रचनाकाल इससे और पहले था, इसके बारे में आवश्यक तर्क दिया जा सकता है। पर ऐसा करना इसलिए तो उचित नहीं है कि वह काल हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के निकट आ जाए जिससे कि फिर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह दावा कर सकें कि इस निकटता से यह संकेत मिलता है कि यह (आर्यों का आक्रमण काल) उस (सिंधु सभ्यता के अवसान) का कारण है। पर कुछ तर्कों में यही किया गया है''।[12]

मार्शल के लिए वैदिक आर्य वैसे ही आक्रमणकारी विजेता थे जैसे अधिकांश अन्य विद्वानों के लिए। गौर वर्ण के आर्यों ने श्याम वर्ण के आदिवासियों को जीता पर ''इसके साथ यह भी स्पष्ट था कि वे पशुधन से समृद्ध थे, अच्छे योद्धा थे; और उनके पास बहुत से दुर्ग थे जिनके भीतर उन्होंने आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा की थी।'' पर इन दुर्गों को जब तब शरण पाने के स्थान मान लिया गया था। आर्य अभी आदिम ग्रामसमाजों की अवस्था में थे, इसलिए यह असंभव था कि उनसे पहले की नस्लें ''सुनिर्मित नगरों अथवा दुर्गों में रहती आई हों''। लेकिन सिंधु सभ्यता का पता लगाने से यह सब बदल गया। ज्ञात हुआ कि, ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दियों में भारत के लोग एक अत्यंत विकसित ऐसी संस्कृति के धनी थे ''जिसमें भारतीय आर्य प्रभाव का लेश भी नहीं है''।[13]

आक्रमणकारी आर्यों, आदिवासी दुर्गों से संबंधित मान्यताएँ मार्शल ने उन्नीसवीं सदी की व्याख्याओं से प्राप्त की थीं। उन्हें सिंधु सभ्यता के अवसान से जोड़ना कठिन नहीं था। पर मार्शल इस परंपरागत धारणा से सहमत थे कि आर्यों ने दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य के आसपास भारत में प्रवेश किया। तब तक मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा का लोप हो चुका था; ''आर्यों से पहले की आबादी की जो तस्वीर वेदों में मिलती है, उससे मुझे यह प्रतीत होता है कि उस समय सिंधु सभ्यता अपने पूर्व रूप की छाया मात्र रह गई होगी''[14] अर्थात् इस सभ्यता का अवसान पहले हुआ, आर्यों ने भारत पर आक्रमण उसके बाद किया।

ख. आक्रमण सिद्धांत के नए आधार

मोहेंजोदड़ो और सिंधु सभ्यता पर मार्शल का ग्रंथ 1931 में प्रकाशित हुआ। 1934 में पुरातत्वज्ञ **गौर्डन चाइल्ड** ने सुझाया था (व्हीलर के अनुसार ''बहुत झिझकते हुए'' सुझाया था) कि मोहेंजोदड़ो के ऐच (H) कब्रिस्तान के दखलंदाज़ ''आर्य हमलावर हो सकते हैं''। झिझक का कारण समय का अंतराल हो सकता है। व्हीलर ने प्राप्य सामग्री के आधार पर निश्चित किया कि आर्यों ने 1500 ई० पू० में भारत पर आक्रमण किया और वही समय सिंधु सभ्यता के अवसान का भी है। इस तरह वह इस अवसान काल को कुछ शताब्दियों नीचे उतार लाए। मज़ेदार बात यह है कि **ऋग्वेद** का रचनाकाल स्वयं अनिश्चित था। सिंधु सभ्यता के अवसान का समय निश्चित करने के लिए वह इसी **ऋग्वेद** की सामग्री का हवाला दे रहे थे। उनका कहना था, सिंधु घाटी के नए उत्खनन से दुर्गों के अस्तित्व का पता चल गया है। ये दुर्ग वही होंगे जिनके विध्वंस का वर्णन **ऋग्वेद** में है। यदि आर्यों ने इन दुर्गों का नाश नहीं किया तो क्या सिंधु सभ्यता के अवसान के बाद उसी स्थान पर इतनी जल्दी एक नई सभ्यता उठ खड़ी हुई थी जिसके दुर्गों का नाश इंद्र ने किया ?[15] स्वभावत निष्कर्ष यही निकलेगा कि आर्यों ने सिंधु घाटी के दुर्गों का ही नाश किया होगा, इस कारण आर्यों के आक्रमण का समय भी वही होगा जो सिंधु सभ्यता की समाप्ति का होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ह्वीलर ने दो बातों पर विशेष बल दिया : (1) आर्यों ने जिन दुर्गों का ध्वंस किया था, उनके अवशेष सिंधु घाटी में मिल गए हैं, (2) वहाँ अस्थिपंजर मिले हैं जो आर्यों द्वारा किए हुए नरसंहार का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन दोनों बातों से उनसे पहले के पुरातत्वज्ञ नितांत अपरिचित नहीं थे। मोहेंजोदड़ो में जो नया उत्खनन कार्य हुआ, उसका विवरण देते हुए मैकाय ने लिखा था, नगर के "मध्य दौर में प्राचीरों और सिंह द्वारों के, रणनीतिक ठिकानों पर निरीक्षण बुर्जियों के भी, अस्तित्व की कुछ प्रमाण सामग्री है"।[16] इसके सिवा **एन० जी० मजूमदार** ने बलूचिस्तान की सीमा और सिंधु नदी के बीच की पट्टी में दो बस्तियों का पता लगाया था जिनमें "प्रत्येक की सुरक्षा पत्थरों की भारी क़िलेबंदी से की गई थी"।[17]

मोहेंजोदड़ो के डीके (DK) क्षेत्र, जी (G) विभाग में जो अस्थिपंजर मिले थे, उनके बारे में मैकाय ने अपने ग्रंथ में लिखा था, "नगर के अंतिम दौर में इस कुएँ वाले कोठे के भीतर एक दुःखद घटना का दृश्य उपस्थित हुआ। सीढ़ियों पर दो व्यक्तियों के अस्थिपंजर थे। अपना आखिरी ज़ोर लगाकर उन्होंने सीढ़ियाँ चढ़ कर गली में आने का विफल प्रयास किया था।" अस्थिपंजर और उनके अंश कहाँ किस रूप में पड़े थे, यह बताने के बाद मैकाय ने लिखा "इन चार व्यक्तियों की हत्या की गई थी, इसमें संदेह प्रतीत नहीं होता। पर हत्यारे कौन थे, छापामार (raiders) या लुटेरे, यह कहना कठिन है"।[18] पादटिप्पणी में संकेत है कि उनके विचार से वे छापामार ही थे। उसी क्षेत्र के अन्य भाग में नौ अस्थिपंजर मिले जो टेढ़ी-मेढ़ी मुद्राओं में दफनाए पड़े थे। इनके बारे में मैकाय ने लिखा, "ये कैसे मरे, यह कहना कठिन है।...मेरा अनुमान है कि छापा पड़ने के समय एक परिवार ने अपना माल असबाब लेकर शहर से बच निकलने का प्रयास किया पर छापामारों ने उसे रोका और उसकी हत्या कर दी। ये अवशेष उसी के थे।...जल्दी में खोदे हुए गढ़े में शव बेतरतीब डाल दिए गए। यदि वे खुले छोड़े गए होते तो मांसाहारी पशु पक्षी उन्हें बिखेर देते"।[19] मैकाय के लिए छापा मारने और शहर को लूटने तथा आग लगाकर उसे नष्ट करने में भेद था। मोहेंजोदड़ो की सुरक्षा व्यवस्था के प्रसंग में उन्होंने लिखा था, "इसके सिवा यद्यपि शहर का मध्य दौर वाला बहुत-सा भाग साफ़ किया जा चुका है, और उसमें एक महल, सार्वजनिक भवन और घर हैं, फिर भी उसके किसी भाग के लूटे अथवा जलाए जाने (sacked and burned) का कोई चिह्न नहीं है, जैसा कि मेसोपोटामिया के बहुत से नगरों के साथ एक से अधिक बार हुआ है। दो-चार जगह जिन घरों में आग लगी थी, बस वही घर उसकी लपेट में आए थे"।[20] इससे स्पष्ट है कि मोहेंजोदड़ो का अवसान किसी बड़े पैमाने के विध्वंस का परिणाम न था।

मैकाय का विचार था कि छापा मारने वाले लोग बलूचिस्तान की पहाड़ियों से आए थे। "मोहेंजोदड़ो के ऊपरी स्तरों के विभिन्न भागों में जो अस्थिपंजर मिले हैं, पहाड़ी कबायलियों के छापा मारने से उनकी व्याख्या बहुत अच्छी तरह हो जाती है...बच्चों की हत्या से, नौ के समूह में पाँच बच्चे ही थे, लगता है कि छापामार मोहेंजोदड़ो के सभी निवासियों से निरंतर घृणा करते रहे थे। लगता है, उनकी कोशिश यह थी कि सभी का सफ़ाया कर दें। इस मामले में वे उत्तर-पश्चिमी भारतीय सीमांत के कुछ कबीलों से बदतर नहीं थे। इनके बारे में ज्ञात है

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कि वे मृत व्यक्तियों का, अपने धर्मावलंबियों का भी, अंग-भंग कर देते हैं और समान रूप से पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को मार डालते हैं"।[21] व्हीलर ने कबायलियों को हटाकर सारा वृत्तांत आर्य आक्रमणकारियों से जोड़ दिया। यह बात उनसे पहले और किसी को न सूझी थी।

ऋग्वेद में दुर्ग के विध्वंस का उल्लेख है। सिंधु नदी की घाटी में दुर्ग तो मिल गए थे, पर उनके विध्वंस के चिह्न किसी को न मिले थे, व्हीलर को भी नहीं। विध्वंस के चिह्नों की कमी उन्होंने अस्थिपंजरों से पूरी की। समस्या थी सिंधु सभ्यता का अवसान-काल निश्चित करने की। पर यह समस्या विवेचन में कहीं पीछे रह गई, आगे आ गया आर्यों के आक्रमण का अन्याय, एक महान सभ्यता का विनाश, स्त्रियों-बच्चों को भी न छोड़ने वाला क्रूर नर-संहार!

पुरातत्व में प्रमाणसामग्री न मिले तो उसकी कमी को साहित्य की सामग्री से पूरा करने में खतरा तो होता ही है। व्हीलर ने कहा, "और यहाँ साहित्यिक संदर्भ की तलाश में जो खतरा उठाने को भारतीय पुरातत्व सदा तत्पर रहता है, वह फिर एक बार हमारे रास्ते में है। और मैं वह खतरा उठाने को बहुत अनिच्छुक भी नहीं हूँ"।[22] व्हीलर ने जिस नाटकीय शैली में अपनी बात कही, उसके दर्शन पुरातत्वज्ञों के लेखों में जरा कम ही होते हैं। "सात नदियों के देश पंजाब और उसके पड़ोसी क्षेत्र पर आर्यों का आक्रमण निरंतर आदिवासियों के परकोटे वाले नगरों पर धावा बोलने का रूप लेता जाता है। इन नगरों के लिए ऋग्वेद में पुर शब्द का व्यवहार हुआ है जिसका अर्थ है परकोटा, दुर्ग या सुदृढ़ स्थान।" नगर और दुर्ग का भेद मिटाने के बाद व्हीलर ने आयसी, शारदी आदि अनेक प्रकार के दुर्गों का नाम लिया, फिर लिखा, "गढ़ (citadel) पत्थरों का बना (अश्ममयी) हो सकता है। इसके बदले आमा (कच्चा अपरिपक्व) से संभवतः कच्ची ईंटों के व्यवहार की ओर संकेत है। आर्यों का युद्ध देवता पुरंदर, दुर्गविध्वंसक, है। वह अपने आर्य उपासक दिवोदास के लिए 'निन्नानबे दुर्ग' ध्वस्त कर देता है। दूसरे सूक्तों में जहाँ वह आदिवासी नेता शंबर के कभी निन्नानबे, कभी सौ 'प्राचीन दुर्ग' ढहाता है, वहाँ निस्संदेह उन्हीं दुर्गों की ओर संकेत है। संक्षेप में यह कि 'जैसे समय वस्त्र को जीर्ण कर देता है, वैसे ही वह दुर्गों को तोड़ता है।'

"ये गढ़ कहाँ हैं—अथवा थे ? पिछले समय में माना गया था कि वे देवकथाओं के काल्पनिक गढ़ हैं अथवा 'आक्रमण से बचने के शरणस्थल मात्र, चहारदीवारी और खाई से घिरे सख्त मिट्टी के परकोटे थे'। हाल में हड़प्पा के उत्खनन से तस्वीर बदल गई है, यह माना जा सकता है। हमारे सामने यहाँ एक अत्यंत विकसित सभ्यता है जो मूलतः आर्येतर साँचे की है ; उसके बारे में अब ज्ञात है कि उसने भारी क़िलेबंदी का उपयोग किया था। उसके बारे में यह भी ज्ञात है कि वह उत्तर-पश्चिमी भारत की नदियों के ताने-बाने पर हावी थी, और उस समय हावी थी जो उस क्षेत्र पर प्रारंभिक आर्य आक्रमणों के संभावित काल से दूर न रहा होगा। दृढ़ता से जमी हुई इस सभ्यता का नाश कैसे हुआ ? हो सकता है, वह आर्थिक, राजनीतिक, जलवायु संबंधी ह्रास से कमज़ोर पड़ी हो, पर इसकी संभावना अधिक है कि उसकी अंतिम परिसमाप्ति जान बूझकर किए गए बड़े पैमाने के विनाश से हुई हो। यह बात

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आकस्मिक होगी कि मोहेंजोदड़ो के बाद वाले दौर में वहाँ पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे हत्याकांड में मारे गए प्रतीत होते हैं। (मैकाय, 1938 बी, 94, 116, 172) परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर इंद्र अभियुक्त है''।[23]

ग. भारत का पुरातात्विक विभाजन

दुर्ग, अस्थिपंजर, आर्यों का आक्रमण—इनकी चर्चा बहुत पहले से होती आई थी। आर्यों के आक्रमण के प्रति अचानक व्हीलर के इस सात्विक रोष के उभार का कारण क्या है ? कारण यह है कि उनका यह लेख 1947 में प्रकाशित हुआ था। उस वर्ष यहाँ पाकिस्तान नाम के नए राष्ट्र का जन्म हुआ। जिस धरती पर आर्यों ने अन्याय किया था, उस पर अँग्रेज़ अब न्याय कर रहे थे। इस नए राष्ट्र को ऐतिहासिक विरासत की ज़रूरत थी। उसके लिए वह विरासत व्हीलर ने जुटाई। 1949 में **पाकिस्तान क्वार्टरली** में उनका लेख छपा, 'पाकिस्तान—चार हज़ार साल पहले'। पाकिस्तान बने दो साल न हुए थे, उसका इतिहास हो गया चार हज़ार साल पुराना ! 1950 में उनकी पुस्तक छपी—**पाकिस्तान के पाँच हज़ार साल, एक पुरातात्विक रूपरेखा**। पाकिस्तान के इतिहास में एक हज़ार साल का इजाफ़ा हुआ—एक साल के अंदर !

पाकिस्तान, ईरान, इराक—एक विशाल भूखंड, उसके निवासियों का धर्म एक, उनका सांस्कृतिक इतिहास एक ! उनकी एकता को सुदृढ़ करना कितना ज़रूरी है ! **एन्शेंट इंडिया** पत्रिका (1947-48) में व्हीलर का लेख छपा—'इस्लाम से पहले ईरान और भारत'। इसमें उन्होंने सुझाया, सिंधु घाटी का-सा विकास दक्षिण-पश्चिमी ईरान तथा इराक में पहले हुआ; नगर निर्माण की परिकल्पना किसी न किसी रूप में इराक या दक्षिण-पश्चिमी ईरान से भारत में आई। 1953 में अमरीकी पुरातत्वज्ञ **नार्मन ब्राउन** ने पंजाब के लिए लिखा, ''यदि कोई ऐसा युग रहा हो जब सांस्कृतिक रूप से पंजाब शेष भारत का अंग बना हो, तो वह युग बहुत ही छोटा रहा होगा''।[24] 1954 में संस्कृत और द्रविड़ भाषाओं के अमरीकी विशेषज्ञ **एमेनो** ने लिखा : सिंधु घाटी में हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की सभ्यता विकसित हुई, वह घाटी कभी भारत से घनिष्ठ रूप में संबद्ध नहीं रही; जो आर्य पंजाब में आकर बसे थे वे उस समय के पूर्वी भारतीयों की अपेक्षा अपने धर्मगत, भाषागत संबंधियों—ईरानियों—के अधिक निकट थे।[25] पाकिस्तान के पुरातत्व विभाग की ओर से 1964 में प्रकाशित **एफ॰ ए॰ खान** की पुस्तक **द इंडस वैली ऐंड अर्ली ईरान**, मानो इस धारणा की पुष्टि के लिए लिखी गई थी। इसमें दो मानचित्र दिए गए हैं जो इसी धारणा के प्रतिबिंब हैं। पहला सिंधु घाटी, ईरान और मेसोपोटाममिया का है, दूसरा सिंधु घाटी तथा काँस्ययुगीन प्राच्य का है। दोनों में इराक, ईरान और सिंध के साथ पंजाब का पश्चिमी भाग है, भारत का कोई भाग नहीं है। किंतु खान की पुस्तक के प्रकाशन तक गुजरात और राजस्थान में हड़प्पाकालीन अनेक स्थानों का पता लग चुका था। और 1947 में भी पाकिस्तान से हटकर भारत में ऐसे स्थानों का नितांत अभाव नहीं था। जैसा कि पाकिस्तान के पुरातत्वज्ञ **रफ़ीक मुग़ल** ने लिखा है, ''1947 में जिन हड़प्पाई स्थानों का पता भारतीय क्षेत्र में था, वे बहुत थोड़े थे। जिन स्थानों का पता था और जिनमें बड़े स्थान शामिल हैं, वे अधिकतर पाकिस्तान में थे। इस स्थिति ने भारतीय पुरातत्वज्ञों को

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाकिस्तानी सरहदों के पास ज़ोरदार खोज के लिए प्रेरित किया। नतीजा यह कि राजस्थान और गुजरात में हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की समकालीन और उत्तरकालीन बस्तियाँ मानचित्र में अंकित हो गईं और उनकी संख्या प्रभावशाली है। कालीबंगाँ, लोथल और रंगपुर—इन तीन प्रमुख स्थानों में लगभग एक दशक से व्यवस्थित उत्खनन होता रहा है (लाल 1962; राव 1957, 1962 और 1963ए)"।[26] 1962 तक भारत में सिंधु सभ्यता के यथेष्ट विस्तार का पता लग चुका था। व्हीलर, नार्मन ब्राउन आदि ने उत्तर-पश्चिमी भारत को ऐतिहासिक आधार पर शेष भारत से अलगाने का जो प्रयत्न किया था, वह असफल सिद्ध हो रहा था। उसे असफल सिद्ध करने का पूरा श्रेय भारतीय पुरातत्वज्ञों को है। स्वयं व्हीलर ने यह असफलता अंशतः स्वीकार की। खान की पुस्तक के प्राक्कथन में सिंधु सभ्यता की जीवंतता की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा "1924 में इस सभ्यता को पहली बार पहचाना गया। वह पाकिस्तान में प्रथम और (वर्तमान जानकारी के अनुसार) धरती पर मनुष्य के बिताए हुए समस्त काल में तृतीय सभ्यता ही है। तब से [1924 से] उसके प्रति कभी इतनी रुचि और परिकल्पना जागृत नहीं हुई जितनी आज जागृत है। यह स्थिति केवल पाकिस्तान और भारत में नहीं है—जिन दोनों का उस पर भौतिक अधिकार है (to both of which it physically belongs), वरन परिपार्श्व में स्थित सुदूर पैरिस, लंदन और फिलाडेल्फिया में है जो मोहेंजोदड़ो से शताब्दियों अथवा सहस्राब्दियों छोटे हैं।"

सिंधु घाटी की सभ्यता पर भारत और पाकिस्तान दोनों का भौतिक आधार था, इस आधार को दो राज्यों में बाँट देने के जो परिणाम पुरातत्व के लिए हो सकते थे, उनकी कल्पना की जा सकती है। भौतिक आधार एक था, पुरातत्व विभाग अब दो थे। वैसे ही पैसे के मामले में ब्रिटिश सरकार पुरातत्व के प्रति बहुत उदार न थी। 1924 में मार्शल ने पुरातात्विक सामग्री के प्राप्त होने की अपार संभावनाओं की तुलना में साधनों के अभाव का ज़िक्र करते हुए लिखा था, "किंतु पुरातत्व विभाग के पास जो अत्यंत सीमित साधन (the meagre resources) हैं, उनसे वह उन दो स्थानों [हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो] पर अब तक आरंभिक परीक्षात्मक उत्खनन से ज़्यादा किसी काम में नहीं लग पाया है। कहना न होगा कि जो अवशेष मिले हैं, वे उसी अनुपात में सीमित हैं।" जो कार्य विलंबित गति से चला था, वह 1947 में दो भागों में बँट गया। इससे पुरातत्व की जो क्षति हुई, उसकी अनदेखी व्हीलर भी न कर सके।

लोथल पर ऐस० आर० राव की पुस्तक के प्राक्कथन में व्हीलर ने लिखा, "1947 में उपमहाद्वीप का राजनीतिक विभाजन हुआ, एक नया भारत और एक नया दो अंगों वाला पाकिस्तान राज्य बना। उसके तात्कालिक परिणामों में एक यह था कि प्राचीनतम भारतीय सभ्यता, जैसी कि वह उस समय जानी जाती थी, भारत के पुरातत्व विभाग के गर्वीले नियंत्रण से बाहर हो गई। 1921 में और उसके बाद इस सभ्यता को विश्व के पुरातात्विक मानचित्र में इस विभाग द्वारा प्रवेश मिला था। उस आकस्मिक संक्रमण के वे अगस्त के दिन मुझे याद हैं जब मेरी आँखें घूम फिर कर परंपरागत भारत के उस विशाल मानचित्र पर अटक जाती

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

थीं जो मेरी मेज के सामने टँगा था। और मैंने स्वयं को उन परिवर्तनों के बारे में सोच-विचार में डूबा पाया—शायद कुछ भावुकतापूर्ण ढंग से, बेशक एकदम विवेकहीन ढंग से—जो उस बड़ी नदी को भारत से बाहर करने के दौर में थे जिसने उपमहाद्वीप और उसकी पहली सभ्यता को उनके सुपरिचित नाम [सिंधु-हिंद-इंडिया, इंडियन] नाम दिए थे।''

व्हीलर ने आकस्मिक संक्रमण की बात कही है। यदि पाकिस्तान का पुरातात्विक इतिहास पाँच हज़ार साल पुराना था तो यह संक्रमण आकस्मिक कैसे हुआ ? व्हीलर ने राजनीतिक विभाजन की बात कही है पर यदि पाकिस्तान सदा ईरान, इराक से जुड़ा रहा था, तो यह विभाजन सांस्कृतिक क्यों नहीं था ? 1947 में व्हीलर जब भावुकतापूर्ण आँखों से भारत का मानचित्र देख रहे थे तभी वह आर्यों द्वारा सिंधु सभ्यता के विनाश का उत्तेजक चित्र भी प्रस्तुत कर रहे थे। सिंधु सभ्यता का शेष भारत से अलगाव और इस सभ्यता का आर्यों द्वारा विनाश—एक ही स्थापना के ये दो पक्ष थे। आर्यों के आक्रमण के अब तक कोई ठोस भौतिक प्रमाण न मिले थे, व्हीलर के उस लेख ने मानों अति आवश्यक भौतिक प्रमाण जुटा दिए। अमरीकी पुरातत्वज्ञ डेल्स ने उस लेख के व्यापक प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है :

''हत्याकांड के विचार ने तुरंत आग पकड़ ली, कुछ इतिहासकार, भाषाविद् और पुरातत्वज्ञ उसे अब तक मशाल की तरह उठाए चलते हैं कि उपमहाद्वीप पर वह आर्यों के आक्रमण का प्रत्यक्ष, भयावह प्रमाण है...कुछ अल्पज्ञात प्रकाशनों में दो चार असहमतिसूचक टिप्पणियाँ छोड़कर आज इस विषय पर जिस आम साहित्य का चलन है, उसमें सिंधु सभ्यता के एक समय के महान और गर्वीले नगरों पर बर्बर जनसमूहों के चढ़ आने का सजीव, नाटकीय वर्णन अब भी दोहराया जाता है यथा :

''बर्बर जनों के हाथों भारतीय नगरों का पतन हुआ उन्हें विजय प्राप्त हुई अपनी सैन्य क्षमता के कारण। यही नहीं, इस कारण भी कि उनके पास ज़्यादा अच्छे हथियार थे, और वे सपाट मैदानों में तेज भागने और आतंक पैदा करने वाले जानवर (अर्थात घोड़े) का उपयोग सीख चुके थे (बैशम 1954 : 27)''।[27]

घ. आक्रमण सिद्धांत निराधार

एफ० ए० खान की पुस्तक के प्राक्कथन में व्हीलर ने लंदन और पैरिस के साथ फ़िलाडेल्फ़िया का नाम लिया था, डेल्स वहीं के थे। 1960 वाले दशक में वह पाकिस्तान में उत्खनन कार्य से सक्रिय रूप में संबद्ध थे। 1964 में उनका लेख प्रकाशित हुआ—'मोहेंजोदड़ो के हत्याकांड की दंत-कथा' (the mythical massacre of Mohenjodaro)। इसमें उन्होंने व्हीलर की धारणाओं का खंडन किया। उन्होंने ध्यान दिलाया कि सिंधु सभ्यता के अवसान और आर्यों के आक्रमण के बीच समय को लेकर तालमेल नहीं बिठाया जा सका। मार्शल, मैकाय आदि ने विवरण तैयार करते समय अनेक तकनीकी भूलें कीं और उनके विवरणों में परस्पर विरोधी बातें भी कही गई हैं। मुख्य बात यह कि आक्रमण और हत्याकांड की पुष्टि के भौतिक प्रमाण नहीं हैं। मोहेंजोदड़ो लगभग तीन मील के दायरे में है।1922 से 1931 तक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नौ साल तक खोदते रहने के बाद कुल सैंतीस अस्थिपंजर या उनके टुकड़े ऐसे मिले हैं जिन्हें थोड़े बहुत निश्चय के साथ सिंधु घाटी की सभ्यता के समय का माना जा सके। वे सब नगर के निचले भाग में मिले थे जो शायद लोगों के रहने का इलाक़ा था। [अर्थात इंद्र ने जिन दुर्गों का ध्वंस किया था, उनमें ये अस्थिपंजर न मिले थे] दो एक अस्थिपंजर मारे गए लोगों के जान पड़ते हैं पर अधिकांश ऐसे हैं जिन्हें देखकर लगता है, वे अव्यवस्थित ढंग से दफ़नाए गए थे। "विनाश का कोई ऐसा स्तर नहीं है जो नगर के सबसे बाद वाले दौर का हो। बड़े पैमाने के अग्निकांड का कोई चिह्न नहीं है। कवच पहने, सामरिक अस्त्र-शस्त्रों के बीच पड़े हुए योद्धाओं के शव नहीं हैं। नगर के एकमात्र क़िलेबंदी वाले भाग —दुर्ग—में अंतिम रक्षात्मक संघर्ष का कोई प्रमाण नहीं है।"

व्हीलर के पास डेल्स के तर्कों का कोई उत्तर नहीं था। 1962 में प्रकाशित सिंधु सभ्यता पर अपनी पुस्तक में हत्याकांड के चित्र को बहुत विस्तार देकर उन्होंने इंद्र के अभियुक्त होने की बात दोहराई। पर 1966 में प्रकाशित, सिंधु घाटी और उससे परे की सभ्यताओं पर, पुस्तक के संशोधित-परिवर्धित संस्करण में उन्होंने लिखा, "एक विशेष संदर्भ में, जिसे दूसरे लेखकों ने बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया था अथवा औचित्य से परे उसे हीन बना दिया था, मैने कभी हल्के-फुल्के ढंग से (I once light heartedly) इस प्रपंच के लिए इंद्र और उनके आर्यों को दोषी ठहराया था।" स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों के हत्याकांड की बात हल्के-फुल्के ढंग से न की जा सकती थी। वास्तव में आर्यों के आक्रमण को ऐतिहासिक सत्य सिद्ध करने के लिए व्हीलर ने जो प्रमाण जुटाए थे, वे डेल्स के लेख से असिद्ध हो गए थे। उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि आर्यों द्वारा सिंधु सभ्यता के नष्ट किए जाने का कोई प्रमाण नहीं है। जो बात उन्होंने 1962 में दोहराई थी, उसे बहुत पुरानी बात की तरह याद करते हुए उन्होंने लिखा, "बरसों पहले मैने सुझाया था कि उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम पर आक्रमण करने वाले आर्य विनाश के अंतिम उपादान थे। इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, और संभव है, वह बिल्कुल ग़लत हो, पर वह असंभव नहीं है।" 1947 में व्हीलर का रुख आक्रामक था, 1966 में वह पीछे हट रहे थे। निस्संदेह पीछे हटने का कारण डेल्स का लेख था। 1962 तक वह अपनी पुरानी स्थापना पर डटे हुए थे। परंपरागत भारत के मानचित्र को भावुकतापूर्ण आँखों से देखने की बात इसके बाद की है। मोहेंजोदड़ो का हत्याकांड आर्यों के आक्रमण का अकाट्य प्रमाण न बना, तब उत्तर-पश्चिमी भारत का प्राचीन इतिहास भी शेष भारत के कुछ नजदीक आ गया। तब इस देश का विभाजन, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक न होकर, केवल राजनीतिक रह गया। और सिंधु सभ्यता पर केवल पाकिस्तान का नहीं, भारत का अधिकार भी स्वीकृत हुआ। इसके साथ ही सिंधु सभ्यता को जन्म देने में सुमेर की प्रेरक भूमिका भी प्रायः निरस्त हुई।

व्हीलर 1947 से इस बात के लिए आग्रह करते आए थे कि नगर निर्माण की परिकल्पना ईरान और इराक से भारत आई। सिंधु सभ्यता पर अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा था, "यह कहना वाजिब होगा कि सभ्यता की अवधारणा सिंधु देश को दो नदियों की भूमि [मेसोपोटामिया,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इराक] से प्राप्त हुई थी''।[28] एफ० ए० खान ने इसी दिशा में काम किया था पर उनकी पुस्तक के प्राक्कथन में व्हीलर ने कहीं भी उस अवधारणा का स्पष्ट समर्थन नहीं किया। कूटनीतिक दक्षता का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा, ''वह (खान) यहाँ विशेष रूप से पाकिस्तान की आधारभूत सभ्यता के पड़ोसी देशों की संस्कृतियों से संबंधों, अथवा संभावित संबंधों, पर काम कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में वह उस आदान-प्रदान (interchanges) के बारे में कुछ ढूँढ़ निकालने को प्रयत्नशील हैं जिसका, सिंधु सभ्यता के प्रारंभ और विकास में योगदान था। इससे अधिक आकर्षक जाँच-पड़ताल दूसरी नहीं हो सकती जिसमें, विकासमान वय के एक मानस पर दूसरे मानस का, (भोंड़े शब्द प्रयोग करें तो) एक 'जाति' पर दूसरी जाति का घात-प्रतिघात समाहित हो। डॉ० खान का सा अध्ययन अनिवार्यतः उन मार्गों की ओर ले जाता है जो अभी मानचित्र में स्पष्ट अंकित नहीं हैं। यह अपने में कोई खामी नहीं है। जहाँ वह अभी कोई सारभूत खोज (substantive discovery) नहीं कर पाए हैं, वहाँ कम से कम वह यह दिखाने में मदद कर सकते हैं कि खोज की सर्वाधिक आवश्यकता कहाँ है। यदि वह अभी रास्ता नहीं दिखा सकते तो कम से कम वह उस ओर इशारे की शुरुआत कर सकते हैं।''

खान संभावित संबंधों की खोजकर रहे हैं; ये संबंध वास्तविक हो सकते हैं, काल्पनिक भी। अभी तक वह कोई सारभूत खोज़ नहीं कर पाए, अर्थात् नगर निर्माण की प्रेरणा भारत को इराक-ईरान से मिली, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है।

यह एक दिलचस्प बात है कि मार्शल को सिंधु सभ्यता के अवसान के लिए जैसे आर्यों को जिम्मेदार ठहराने से दिलचस्पी नहीं थी वैसे ही उस सभ्यता के उद्‌भव के लिए उन्हें बाहर के स्रोत खोजने से दिलचस्पी नहीं थी। सिंधु घाटी के लोग बाहर से आए थे, इसका कोई प्रमाण न था, पर सुमेर के लोग बाहर से आए थे, यह बात उनके अभिलेखों से प्रमाणित है। क्या पता, सुमेरियों को अपनी सभ्यता की प्रेरणा सिंधु घाटी से मिली हो। ''उनकी संस्कृति से मिलती-जुलती यह संस्कृति सिंघु घाटी में दूर-दूर तक फैली रही होगी और भारत की धरती पर उसे विकसित होने में अकूत शताब्दियाँ लगी होंगी। इसलिए यदि वे विद्वान सही हैं जो सुमेरियों को मेसोपोटामिया में दखलंदाज तत्व मानते हैं, तो यह संभावना स्पष्ट ही सामने आती है कि अंततः भारत ही उनकी सभ्यता की पोषक भूमि सिद्ध हो, जो सभ्यता अपनी बारी में बैबिलोन, असीरिया और आम तौर से पश्चिमी एशिया की संस्कृति की आधार भूमि बनी''।[29] सिंधु घाटी की सभ्यता से पहले पहल सुमेर की संस्कृति प्रभावित हुई, फिर इस सुमेरी संस्कृति ने बैबिलोन आदि की सभ्यता को प्रभावित किया, इस विकासक्रम को स्वीकार करने वाले मार्शल जैसे विद्वान 1926 में विद्यमान थे।

ङ. सिंधु सभ्यता की निरंतरता

मार्शल का प्रयास सिंधु सभ्यता को पश्चिमी एशिया से जोड़ने की ओर न था ; इसके विपरीत वह सिद्ध यह करना चाहते थे कि भारत की सभ्यता, वैदिक संस्कृति से अलग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हटकर, सिंधु सभ्यता का विकास है। धरती माता की उपासना महायोगी शिव की पूजा, वृक्षों और पशुओं की पूजा, जल और नागों आदि की पूजा—यह सब बाद की भारतीय सभ्यता में था, उसके स्रोत सिंधु घाटी में थे। और ये स्रोत ऋग्वेद से पहले थे, वे आर्येतर थे। सिंधु सभ्यता ऋग्वेद से दूर है, उत्तरकालीन भारतीय सभ्यता ऋग्वेद से दूर है। इस सभ्यता के स्रोतों का पता न था, मोहेंजोदड़ो के उत्खनन से उन स्रोतों का पता चल गया है। ऋग्वेद इस सारे विकास में व्यवधान की तरह है। मार्शल इसे अपना और अपने सहयोगियों का ऐतिहासिक कार्य मानते थे कि भारत की आर्येतर सभ्यता के मूल स्रोत उन्होंने खोज निकाले हैं। पर यदि उत्तरकालीन भारतीय संस्कृति सिंधु सभ्यता का ही विकास है, तब उस सभ्यता का अवसान कहाँ हुआ ? वास्तव में मार्शल के सामने मूल प्रश्न सिंधु सभ्यता की निरंतरता का है, उसके अवसान का नहीं। यही स्थिति मैकाय की है।

मैकाय को ऋग्वेद से, आर्य-अनार्य के प्रश्न से विशेष कुछ लेना-देना नहीं है। सिंधु देश से लेकर मिस्र तक पश्चिमी एशिया और दक्षिणी यूरोप के पुरातात्विक इतिहास की उन्हें विस्तृत जानकारी है। मोहेंजोदड़ो के उत्खनन-विवरण में वह जगह-जगह भारतीय वस्तुओं की सुमेरी, मिस्री आदि वस्तुओं से तुलना करते चलते हैं। वह यह तो नहीं कहते कि सुमेरी लोगों ने सिंधु सभ्यता की नींव डाली या उसे प्रेरित किया, पर वह मानते हैं कि उन लोगों का एक अंश भारत आया होगा और यहाँ की मूल सभ्यता में घुल-मिल गया होगा। लिखा है : "सिंधु क्षेत्र के मृद्भांडों का निकटतम संबंध उरुक मृद्भांडों (उरुक दौर के सुमेरी मृद्भांडों) से है। इस समय जो अन्य सामग्री प्राप्त हुई है, उसके साथ इसे मिला कर देखें तो वह यह संकेत देती प्रतीत होती है कि सुमेर की उरुक संस्कृति से सिंधु घाटी की सभ्यता का कुछ संबंध था। वुली के अनुसार यह, अथवा ये, सुमेरी जन उत्तर से आने वाले आक्रमणकारी थे। बहुत संभव है कि सुदूर अतीत में उनका एक अंश भारत में भी आ गया हो और अपने साथ एक भिन्न परिवेश में विकसित संस्कृति लाया हो। शायद वह देशज संस्कृति में घुल-मिल गई। (इस तरह) उस सभ्यता का आविर्भाव हुआ जिसके विकास की परिणति मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के महान नगर हैं"।[30] पादटिप्पणी में उन्होंने चाइल्ड का हवाला दिया कि अति-पुराकालीन प्राच्य पर अपने ग्रंथ में उन्होंने भी यही मत प्रकट किया है।

मैकाय ने सिंधु सभ्यता का विहंगावलोकन करते हुए ये बातें कही हैं। उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं का ब्यौरा देते हुए कभी-कभी वह ऐसी सामग्री का हवाला देते हैं कि संस्कृति के अनेक तत्व भारत से न केवल सुमेर की ओर वरन् पश्चिमी एशिया और दक्षिणी यूरोप की ओर यात्रा करते दिखाई देते हैं। मोहेंजोदड़ो में मैकाय को कंगन का एक टुकड़ा (डी के 3381) मिला जिसका एक सिरा पीछे को मुड़ा हुआ था। ऐसे कुछ कंगन 1927 के उत्खनन से पहले प्राप्त हुए थे, मार्शल संपादित ग्रंथ में उनके चित्र (144, 9; 164, ए, बी) दिए गए थे। ऐसे कंगन उत्तरकालीन मेसोपोटामिया में, तथा 500 ई० पू० के आसपास निर्मित, साइ-प्रस [किब्रूस अथवा कुब्रूस द्वीप] में पाए गए। अखमनी दौर के ईरानी नगर सूसा में कुछ सोने के कंगन मिले जिनका एक सिरा उसी तरह मुड़ा था। "वहाँ तथा अन्य देशों में प्राप्त प्राचीन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कंगनों में मुझे यह विचित्र मोड़ नहीं मिला। इसलिए यह संभव है कि उसकी उत्पत्ति भारत में हुई और क्रमशः वह दूर साइप्रस तक पहुँच गया जहाँ इस तरह के कंगन संभवतः आयात किएगएथे"।[31] नगर निर्माण से लेकर आभूषणों के निर्माण तक भारतीय और सुमेरी कारीगरों की दक्षता की तुलना की जाए तो मुर्कीवाले कंगन भारतीय कारीगरी के नमूने थे, इसमें संदेह न रहेगा।

मोहेंजोदड़ो में मिट्टी के मोर !—कोई आश्चर्य की बात नहीं। "कहते हैं, यह भारत का देशज पक्षी है। वह पवित्र पक्षी है,विशेष रूप से जाटों के लिए। कुछ कृत्यों में लोग अलाय-बलाय दूर करने के लिए उसके पंख लेकर चलते हैं, साँप काटे तो मंत्रोपचार के तौर पर लोग उन्हें चिलम में रखकर पीते भी हैं। भारत में दो जातियों के मोर हैं। हम नहीं कह सकते, ये मृद्भांड वाले नमूने किस जाति के हैं। मिट्टी की मूर्तियों में अथवा मृद्भांडों की चित्रकारी में यह पक्षी देखा जाता है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अन्य देशों की प्राचीन कला में यह पक्षी अंकित नहीं है, यद्यपि [और यह है आश्चर्य की बात !] मिनोस वंशीय राजकुमार उसके पंख कलँगी के तौर पर धारण करते थे। [पुनश्च !] उत्तरकाल में वह अक्सर यूनानी और रोमन कला में अंकित किया जाता था"।[32] क्रीट [क्रेते] द्वीप की सभ्यता यूनानी सभ्यता से अधिक प्राचीन थी। मिनोस वहाँ के राजा थे। उनके वंशज सिर पर मोर पंख धारण करते थे। मोर भारत का देशज पक्षी है, अनादिकाल से वह पवित्र माना जाता रहा है। किसी देश की प्राचीन कला में वह अंकित नहीं है। पर वह रोम और यूनान की उत्तरकालीन कला में अंकित है। मुर्कीवाले कंगन की तरह यहाँ भी संदेह की गुंजाइश नहीं है कि मयूर का अंकन रोमन और यूनानी कला में भारत से आयात किया हुआ तत्व है। क्रीट द्वीप के राजकुमार सिर पर मोर पंख धारण करते थे तो इसका यही कारण हो सकता है कि वे इस पक्षी की गरिमा और शक्ति की जनश्रुति से प्रभावित थे। **मोर पखा सिर ऊपर राजत** – बहुत पुरानी परंपरा है !

मोहेंजोदड़ो में वानरों की बहुत सी मूर्तियाँ मिली हैं। "संभव है, आज की तरह प्राचीन काल में भी वानर को लोग पवित्र मानते रहे हों यद्यपि **क्रुक** के अनुसार इस पशु की पूजा प्राचीनतम हिंदू धर्म से नहीं चली आ रही। [जब आर्येतर संस्कृति के इतने तत्व हिंदू धर्म में आ गए तो वानर को ही क्यों बाहर रखा जाए ? वैसे एक वृषाकपि **ऋग्वेद** में हैं। इंद्र चाहते थे, स्तोता उनकी स्तुति करें, "उन्होंने मुझ इंद्र की स्तुति नहीं की—वृषाकपि की ही स्तुति की !" इन्हें इंद्र ने **मत्सखा**, अपना मित्र, कहा है (सातवलेकर)। वह अत्यंत शक्तिशाली कपि हैं, इसलिए वृषाकपि हैं। उन्हें केवल कपि भी कहा गया है (10.86.1,5)। उन्हीं अधिकारी विद्वान के अनुसार पंजाब की अपेक्षा संयुक्त प्रान्त में वानर-पूजा का चलन अधिक है और दक्षिण भारत में यह पशु विशेष रूप से पूज्य माना जाता है। [मैकाय का ध्यान सिंधु सभ्यता की निरंतरता पर है। यदि उस सभ्यता के प्रसार काल में वानर-पूजा का चलन पंजाब में रहा होता तो वहाँ अब भी वह चलन बना होता ! वैसे वह मोहेंजोदड़ो में प्राप्त सामग्री का विवरण लिख रहे थे, हड़प्पा की सामग्री का नहीं]। इस पशु की कुछ मूर्तियाँ स्पष्ट ही खिलौने हैं। इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथ्य से यह तर्कसंगत अनुमान किया जा सकता है कि मोहेंजोदड़ो में लोग उसे पालतू प्रिय पशु बनाकर रखते थे। हाल का कहना है, 'बैबिलोन की बनमानुस-मूर्तियाँ उतना ही भारतीय संबंध की द्योतक हो सकती हैं जितना मिस्री संबंध की।' मैं इससे सहमत हूँ, केवल 'बनमानुस' की जगह 'वानर' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

"[अब आती है आश्चर्य की बात]। सुमेर और ईलाम की वानर मूर्तियों से प्राचीन सिंधु घाटी में प्राप्त मूर्तियों की घनिष्ठ समानता मार्के की चीज़ है। इन तीनों देशों में उन्हें घुटने पर एक एक हाथ रखे दिखाया गया है। मैंने वानर को कभी इस विशेष मुद्रा में नहीं देखा, यद्यपि संभव है बनमानुस वैसा करता हो। सूसा में प्राप्त वानरों की प्रस्तरमूर्तियाँ दूसरे दौर की हैं। उर [सुमेर के मुख्य नगर] में प्राप्त मूर्ति सुवर्ण शलाका का शिरोभाग है। बैबिलोन की मूर्तियाँ और भी उत्तरकाल की हैं, और प्रचीन मिस्र की बनमानुस आकृतियाँ उसी रूढ़ मुद्रा में बनाई गई हैं। पर संभव है, कुत्ते जैसे सिर वाला बैबून इस मुद्रा में बैठता हो। बैठे हुए बालकों (प्लेट 74, संख्या 14,16) से ये बैठे हुए वानर अलग ही पहचाने जाते हैं। उनके हाथ सदा घुटनों पर होते हैं जब कि बालक मूर्तियों में हाथ घुटनों को बाँधे हुए हैं।

"[पुनश्च] भारत में हनुमान देवता माया (magic), व्याकरण और भिषगविद्या में अपने कौशल के लिए विख्यात हैं। और यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन्हीं में से कुछ विशेषताएँ मिस्री देवता थोथ की मानी गई हैं जो साधारणतः बनमानुष के रूप में अंकित किए जाते हैं"।[33] भारतीय मूर्तिकला मुद्राओं के अंकन के लिए विख्यात है। क्या शिल्प और क्या नृत्य, मुद्राओं के बिना व्यंजना पूरी नहीं होती। अन्य अंगों की अपेक्षा हाथों का महत्व विशेष है। वानर घुटनों पर एक-एक हाथ रखकर बैठे, यह अत्यंत असाधारण क्रिया है। संभवतः कलाकार की ओर से वह वानर पर आरोपित मुद्रा है। सिंधु प्रदेश, ईलाम, सुमेर, मिस्र—यह है प्राचीन सभ्य संसार जहाँ के शिल्प में एक ही मुद्रा में वानर अंकित हैं। संस्कृति के अन्य तत्वों की तरह मूर्तिकला की निरंतरता पर भी ध्यान दिया जाए तो मानना होगा कि घुटनों पर हाथ धरे वानरों की मूर्तियाँ गढ़ने की प्रथा भारत से ही सुमेर होते हुए मिस्र तक पहुँची है।

च. सिंधु सभ्यता और आज का भारत

मैकाय का ध्यान मुख्यतः भारत के सांस्कृतिक प्रवाह की निरंतरता पर केंद्रित है। जो सिंधु घाटी में था, वह बाद में भी था, सिंधु घाटी की किसी वस्तु के बारे में संशय हो तो देखना चाहिए, बाद में वैसा ही यहाँ कुछ सुलभ था या नहीं। मोहेंजोदड़ो की छतों के पनाले : "जो लोग पूरब की गलियों से परिचित हैं, उन्होंने मकानों की छतों से बाहर को निकले पनाले जरूर देखे होंगे और शायद दुर्भाग्यवश उनसे गिरने वाली सामग्री भी झेली हो। पुराने घरों में इस तरह के पनाले छतों से बरसात का पानी निकालने का एकमात्र साधन हैं। इस बात की बहुत संभावना है कि मोहेंजोदड़ो जब एक समृद्ध नगर था, तब स्थिति यही थी"।[34] लिखने की पाटी : "ये दो चीज़ें किस काम आती थीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मेरा सुझाव है कि वे लिखने की तख्तियाँ थीं...आकार-प्रकार में वे ठीक लकड़ी की बड़ी पाटियों जैसी हैं जिन्हें आज पंजाब में और अन्यत्र बच्चे इस्तेमाल करते हैं''।[35] कानों की बालियाँ: ''ऐसी चीज़ें अभी हाल के उत्खनन में नहीं मिलीं जिन्हें निश्चित रूप से कानों की बालियाँ कहा जा सके, यद्यपि संभावना यही है कि कानों में बालियाँ पहनी जाती थीं, शायद स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे जैसे कि आज के भारत में''।[36] पशुओं पर अंकित चिह्न : ''यह बहुत संभव है कि मोहेंजोदड़ो के पशु कभी-कभी चित्रित रूपांकन से सजाए जाते थे। मैंने स्वयं पंजाब में बकरियों पर विविध प्रकार के चित्रित रूपांकन देखे हैं। लोगों का कहना था, यह जानवरों की पहचान के लिए है यद्यपि इस उद्देश्य मात्र के लिए रूपांकन का ऐसा विस्तार आवश्यक नहीं था। सिंध में अभी बैलों को नजर लगने से बचाने के लिए या सौभाग्य के लिए दागा जाता है। इसके लिए मुसलमान अक्सर स्वस्तिक का इस्तेमाल करते हैं''।[37] उल्लेखनाय है कि मोहेंजोदड़ो के ताबीजों में स्वस्तिका अंकित था।[38] चौड़े मुँह के ढक्कनदार बर्तन : ''बहुत संभव है, इस तरह के बर्तन खाना पकाने के काम आते थे। चौड़े मुँह और बहुत कुछ नाटे आकार की वजह से वे इस काम के सर्वथा योग्य थे। दरअसल इनसे बहुत मिलते-जुलते धातु के बर्तन इस समय सिंध में या भारत के अन्य भागों में शाम का भोजन पकाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं''।[39]

ऐतिहासिक वस्तुओं की पहचान के लिए संदर्भ ग्रंथ है आज का भारत। स्त्रियाँ सिर पर एक आभूषण पहनती थीं। ''सिर के वस्त्र से ठीक आगे माथे के ऊपर पहना हुआ शंकु (cone) एकदम वैसा ही है जैसा आज कल आमतौर से पंजाब में स्त्रियाँ पहनती हैं''।[40] (संभवतः दिल्ली में जिसे बरलो और राजस्थान में हिंगड़ो कहते हैं, वह उसी शंकु का उत्तराधिकारी है)। मुद्राओं पर अंकित नग्नप्राय आकार ''कमर में केवल एक कर्धनी पहने हैं और स्पष्ट ही उसका एक अंश टाँगों के बीच में भी होगा। यह वस्त्र लंगट [लंगोट] से बहुत मिलता है जो आजकल भारत में पहना जाता है''।[41] धातु के बने नाशपाती की आकृति के दर्पण मोहेंजोदड़ो में मिले हैं। प्राचीन मिस्र में प्राप्त ऐसे एक दर्पण के बारे में फ्लिंडर्स पेट्री का विचार था कि वह कहीं दूर से, संभवतः एशिया से पहुँचा है। मैकाय नहीं मानते कि वह भारत से आयात किया गया था पर एशियाई ज़रूर था क्योंकि सीरिया [शाम] में वैसा ही दर्पण मिला है। उल्लेखनीय यह है, ''मुझे ज्ञात हुआ है कि धातु के दर्पण भारत में आज भी इस्तेमाल किए जाते हैं। कुछ प्राचीनपंथी हिंदू अपने धार्मिक कृत्यों में काँच के दर्पणों की अपेक्षा उनका व्यवहार पसंद करते हैं''।[42] एक मुद्रा पर अंकित नृसिंह की आकृति दुर्गा की हो सकती है, शिव की भी, ''एक मुद्रा में शिव पशुपति रूप में पहचाने जा चुके हैं, अतः मुद्रा 437 की आकृति को उनकी सहधर्मिणी दुर्गा से जोड़ना असंगत न होगा। उनका वाहन बाघ (tiger) है। सब कुछ इस पर निर्भर है कि इस संयुक्त आकृति का मानव अंश नर है या नारी। यदि वह नर हो तो याद करना चाहिए कि स्वयं शिव बहुधा व्याघ्र चर्म पर बैठे हुए दिखाए जाते हैं''।[43] जहाँ तक नहाने-धोने का संबंध है, कहा जा सकता है कि ''भारत में पाँच हज़ार या अधिक वर्ष पहले जिस प्रथा का चलन था, हिंदुओं की वर्तमान रीति उसी का अवशेष है''।[44]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मोहेंजोदड़ो की मुद्राओं में कुछ रूपांकन ऐसे हैं जिनका संबंध सूर्य से है। मैकाय के अनुसार ऐसे रूपांकनों (skirl devices) का चलन बंगाल और मद्रास की प्रेसीडेंसियों में था। ये घर के फ़र्श पर और दीवालों पर बनाए जाते हैं, अक्सर वे घर के सामने साफ़ की हुई ज़मीन पर भी बनाए जाते हैं। कुछ तो प्रतिदिन, कुछ विशेष अवसरों पर बनाए जाते हैं। "घर के भीतर हो चाहे बाहर, फ़र्श पर उनके बने रहने से यह समझा जाता था, और शायद अब भी समझा जाता है कि अलाय-बलाय दूर हो जाएगी...यह बात बेहद दिलचस्प है कि प्राचीन ताबीजों के रेखांकन का चलन, कुछ परिवर्तित रूप में ही सही, आधुनिक भारत में बचा हुआ है। और मुझे इस बारे में कुछ भी संदेह नहीं है कि यदि ऐसे रेखांकनों का संग्रह किया जाए और उन्हें प्रकाशित किया जाए तो ज्ञात होगा कि प्राचीन और आधुनिक दोनों कालों में उनका बहुत विस्तृत प्रसार था"।[45] यह प्रसार अखिल भारतीय है, वह अपने में पूर्व और दक्षिण के प्रदेश समेटे हुए है।

दूसरे महायुद्ध के बाद व्हीलर और उनके सहधर्मियों ने इस प्रसार को संकुचित करके सिंध और पंजाब [केवल पश्चिमी भाग !] तक सीमित कर दिया। मार्शल और मैकाय ने सिंधु संस्कृति की निरंतरता के जितने प्रमाण दिए थे, व्हीलर ने उनका खंडन नहीं किया। वह उनके बारे में चुप्पी साध गए, ज़ोर दिया इराक-ईरान से संबंधों पर, शेष भारत से संबंध भुलाने में सहायता मिली। निरंतरता की जगह व्हीलर ने सिंधु सभ्यता के अवसान को विचार-विमर्श का खास मुद्दा बनाया। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के ह्रास और अवसान से मार्शल और मैकाय परिचित थे पर वे जानते थे कि दो नगरों का अवसान पूरी सभ्यता का अवसान नहीं है। इसीलिए हज़ारों साल बाद उसके अवशेषों के बने रहने का प्रसंग वे बार-बार उठाते हैं। दरअसल जाति और राष्ट्र की वैज्ञानिक धारणाएँ उनके चिंतन से दूर हैं। वे सिद्ध यह करना चाहते हैं कि हिंदू संस्कृति आर्येतर है, अवैदिक और प्राग्वैदिक है, उसका मूल स्रोत सिंधु सभ्यता है। व्हीलर ने हिंदू संस्कृति को अलग किया, पूर्वी बंगाल को छोड़ दिया, पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी भाग से उन्होंने सिंधु सभ्यता का तादात्म्य स्थापित किया। इस उलटफेर से आर्यों के आक्रमण सिद्धांत का गहरा संबंध है। मार्शल के लिए सिंधु सभ्यता की निरंतरता महत्वपूर्ण है, आर्यों ने उस सभ्यता का नाश नहीं किया। व्हीलर के लिए सिंधु सभ्यता का अवसान महत्वपूर्ण है, आर्यों ने उस सभ्यता का नाश किया। दूसरे महायुद्ध के बाद क्रांतिकारी जन-आंदोलन को विघटित करने के लिए अँग्रेज़ों ने जो कपटनीति अपनाई थी, व्हीलर का पुरातत्व उसके अनुरूप ढाला गया था।

व्हीलर ने अपने 1947 वाले लेख में चाइल्ड का हवाला दिया था जिन्होंने बहुत झिझकते हुए सुझाया था कि ऐच (H) कब्रिस्तान के दखलंदाज आर्य हमलावर हो सकते हैं। चाइल्ड की यह सूझ **उनकी प्राचीनतम पूर्व पर नया प्रकाश** (1934) पुस्तक में व्यक्त हुई थी। इसके संशोधित संस्करण (1952; कुछ संशोधनों के बाद पुनर्मुद्रित 1954) से उन्होंने अपनी झिझक, ऐच कब्रिस्तान और आर्य हमलावरों की ओर सीधे संकेत की बातें निकाल दी थीं। मैकाय के आधार पर उन्होंने माना कि हड़प्पाई नगर ह्रास की दशा में थे। आगे लिखा, "फिर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बर्बर हमलावरों द्वारा सभ्यता नष्ट कर दी गई और नगरों में अपढ़ अजनबी आ बसे''।[46] उन्होंने यह साफ़-साफ़ नहीं कहा कि ये हमलावर आर्य थे। इनमें कुछ उत्तर-पश्चिमी ईरान के अवश्य थे, यह सुझाने के बाद उन्होंने लिखा, ''व्हीलर ने साहसपूर्वक सुझाया है कि ये वैदिक आर्य थे (Wheeler has boldly suggested their identification with the Vedic Aryas)''।[47]

चाइल्ड यह नहीं कहते कि उनके सुझाव को व्हीलर का समर्थन मिला है। इसके बदले वह इस सुझाव का श्रेय व्हीलर को देते हैं, यह इशारा करते हुए कि व्हीलर ने विवेक से कम, साहस से अधिक काम लिया था। आगे लिखा था, ''जो भी हो, ऋषियों ने अपने सूक्त प्रागैतिहासिक रात्रि में गाए थे, क्योंकि आक्रमण ने साक्षरता परंपरा (literary tradition) को बिल्कुल विच्छिन्न कर दिया, और भारतीय इतिहास में दारिउस के शासनकाल तक कोई स्थिर बिंदु नहीं है''।[48]

आर्यों का आक्रमण कब हुआ, सिंधु सभ्यता का अवसान कब हुआ, स्पष्ट ही काल-निर्णय की समस्याओं ने चाइल्ड को उलझन में डाला था, इसलिए यह मानते हुए भी कि हमलावरों ने सिंधु सभ्यता का नाश किया, वे इन्हें साफ़-साफ़ आर्य हमलावर कहने को तैयार न थे। व्हीलर की स्थापना से उन्होंने स्वयं को कुछ दूर रखा। वह हमलावरों द्वारा इस सभ्यता के नष्ट किए जाने का सिद्धांत मानते थे, साथ ही मार्शल-मैकाय की तरह हज़ारों साल तक वह उसके जीवित रहने की बात भी कहते थे। भारतीय परिस्थितियों में उसके स्वतंत्र विकास पर ज़ोर देते हुए उन्होंने लिखा, ''यह बताने के लिए काफ़ी कहा जा चुका है कि तीसरी सहस्राब्दी में भारत एकदम निजी और स्वतंत्र सभ्यता के साथ मिस्र और बैबिलोनिया के मुक़ाबले में खड़ा था, तकनीकी विचार से यह सभ्यता उन सबके समकक्ष थी। और स्पष्ट ही भारत की धरती में उसकी जड़ें बहुत गहरे पैठी हुई हैं। सिंधु सभ्यता एक विशिष्ट परिवेश से मानव जीवन का बहुत पूर्ण समायोजन (adjustment) है; वर्षों तक धैर्यपूर्वक किए गए प्रयत्न से ही वह निष्पन्न हो सकता था। और वह कायम रहा है, अभी भी वह विशिष्ट रूप में भारतीय है और आधुनिक भारतीय संस्कृति का आधार है। स्थापत्य और उद्योग में, इनसे भी अधिक वेशभूषा और धर्म में, मोहेंजोदड़ो ऐसे लक्षण प्रकट करता है जो ऐतिहासिक भारत की विशेषता हैं''।[49]

छ. कौशल और लिपि के अवशेष

सभ्यता नष्ट हो गई, सभ्यता बनी रही—चाइल्ड दो परस्पर विरोधी बातें कहते हैं। शायद वह स्वयं इस अंतर्विरोध से परिचित थे, इसलिए उन्होंने लिखा था, ''अंकित 'मुद्राओं' से जो साक्षरता परंपरा व्यंजित है, वह हर जगह नष्ट हो गई। लेकिन ऐच कब्रिस्तान और झूकर स्थानों के मृद्भांडों पर और इन स्थानों की धातु-निर्मित सामग्री पर विचार करने से ज्ञात होता है, कुछ तकनीकी परंपराएँ जारी रहीं। संभवतः कुम्हार और धातुकर्मी कारीगर नवागंतुकों के लिए काम करने को बचे रह गए। स्वभावतः विदेशी रुचि की तुष्टि के लिए उन्होंने एकदम नई चीज़ें बनाई''।[50] यदि तकनीक पुरानी थी, चीजें नई थीं, तो सभ्यता की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परंपरा टूट गई। जो लोग सिंधु सभ्यता के विनाश की बात करते हैं, वे यह नहीं बताते कि आक्रमणकारी आर्यों की सभ्यता का नाश किसने किया जिससे मरी हुई सिंधु सभ्यता जी उठी और फिर शताब्दियों तक जीती रही। सिंधु सभ्यता का पुनरुत्थान कब हुआ, किसके द्वारा संपन्न हुआ ? पुरातत्वज्ञ ऐसे प्रश्नों से उलझना पसंद नहीं करते। यदि हड़प्पाई नगरों के धनी नागरिक मारे गए या भाग गए और केवल कारीगर बच रहे, तो भी साक्षरता की परंपरा सुरक्षित रहनी चाहिए थी क्योंकि मुद्राओं, ताबीजों, मृद्भांडों का निर्माण कारीगर ही करते थे। बड़े आश्चर्य की बात होगी यदि धार्मिक कर्मकांड जारी रहें पर उनसे घनिष्ठ रूप में संबद्ध लिपि का व्यवहार पूर्णतः नष्ट हो जाए।

लैंगडन का विचार था कि सिंधु लिपि का व्यवहार पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ वरन ब्राह्मी लिपि के रूप में उसका विकास हुआ। इस विषय पर उनका लेख मार्शल संपादित ग्रंथ के दूसरे खंड में प्रकाशित हुआ था। सिंधु लिपि की जानकारी से पहले कनिंघम ने कहा था कि ब्राह्मी लिपि का जन्म किसी प्राचीन भारतीय चित्रलिपि से हुआ होगा।[51] ब्राह्मी लिपि का विकास सामी वर्णमालाओं से हुआ है, यह सिद्ध करने के लिए सारे प्रयास, लैंगडन के अनुसार विफल हुए हैं।[52] उन्हें विश्वास था कि सिंधु क्षेत्र की चित्रलिपि से ही ब्राह्मी का विकास हुआ था। उनके विचार से सिंधु लिपि के व्यवहार का समय 2800 ई० पू० था, ब्राह्मी लिपि का व्यवहार अशोक के समय में, तीसरी शताब्दी ई० पू० में, होता दिखाई देता है। "तब क्या यह कल्पना तर्कसंगत होगी कि प्राचीन भारत की यह चित्रलिपि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की मुद्राओं के युग से लेकर तीसरी शताब्दी ई० पू० में अशोक के शासनकाल तक के दीर्घ अंतराल में अपने अस्तित्व की कोई पुरातात्विक प्रमाण सामग्री छोड़े बिना जीवित बनी रही ? स्पष्ट ही समस्या के भौगोलिक और ऐतिहासिक पहलू इस मत का अनुमोदन करते हैं कि भारत में आर्यों ने अंततः जो वर्णमाला अपनाई, उसका जन्म किसी प्राचीन लिपि व्यवस्था से हुआ था"।[53]

सिंधु लिपि और ब्राह्मी लिपि के बीच की कड़ियाँ प्राप्त नहीं थीं, लंबे अंतराल के बाद ही ब्राह्मी लिपि के व्यवहार के प्रमाण मिलते हैं। इस लिपि का उद्भव अकस्मात न हुआ होगा। लैंगडन को आशा थी, "पुरालेखन सामग्री प्राप्त हो सकती है और तब प्राचीन चित्रलिपि की उत्तरकालीन भारतीय वर्णमाला में विकास की रेखाएँ निश्चित हो जाएँगी"।[54] यद्यपि लैंगडन ने सावधान किया था कि लिपि संबंधी विकास से यह सिद्ध नहीं होता कि सिंधु क्षेत्र में आर्य भाषा बोली जाती थी, पर उनका झुकाव इसी मत की ओर था।

ज. आर्य : भारत के मूल निवासी

अपने निबंध के अंत में लैंगडन ने लिखा था, "समस्या को चाहे जिस ओर से देखें, इतिहास जितना मानता है, भारत में आर्य उससे कहीं अधिक प्राचीन हैं। अनातोलिया में हित्तियों की राजधानी में उनके अस्तित्व के, सत्रहवीं सदी तक के पुराने, चिह्न मिले हैं। वहाँ से [भारत की ओर] उनकी परिव्रजन की कल्पना, सिंधु घाटी की इस नवज्ञात सामग्री से जो नई परिस्थिति सामने आती है, उससे एकदम उल्टी है। कहीं अधिक संभावना इस बात की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है कि भारत में आर्य इंडोजर्मैनिक नस्ल के सबसे पुराने प्रतिनिधि हैं''।[55]

प्रश्न : यदि सबसे पुराने प्रतिनिधि हैं तो क्या सिंधु सभ्यता के निर्माताओं से अधिक पुराने हैं ? इन निर्माताओं से उनका संपर्क कब हुआ ? यह मोहेंजोदड़ो के लोगं आर्य ही थे जो संस्कृत या उससे मिलती-जुलती कोई भाषा बोलते थे ? मार्शल को दृढ़ विश्वास था कि मोहेंजोदड़ो के लोग आर्य नहीं थे और उनकी समझ में लैंगडन का मंतव्य भी यही था। मार्शल के लिए लैंग्डन के लेख मे काल निर्णय की समस्या उलझन में डालने वाली थी, "हम यह मानें कि वैदिक जन सिंधु सभ्यता के तुरंत बाद पंजाब में आए या उनके बीच अंतराल था ?'' फिर भारतीय आर्यों की प्राचीनता के संबंध मे लैंगडन का हवाला देने के बाद : ''प्रोफ़ेसर लैंगडन का उद्देश्य यह दिखाना नहीं है कि सिंधु सभ्यता के निर्माता और भारतीय आर्य एक ही थे पर सिंधु लिपि से ब्राह्मी के उद्भव के बारे में उनका सिद्धांत उन्हें इस अनुमान की ओर ले जाता है कि दूसरी सहस्राब्दी के मध्य से बहुत पहले आर्य भारत में जम चुके होंगे और उन निर्माताओं के संपर्क में रहे होंगे, जब कि अधिकांश वैदिक विद्वानों के अनुसार उन्होंने भारत में पहली बार प्रवेश दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में किया था।'' इस विचार से असहमति प्रकट करते हुए मार्शल ने कहा कि यदि यह मान भी लें कि भारतीय आर्यों ने सिंधु लिपि से ब्राह्मी का विकास किया, ''क्या इसका कोई प्रमाण है कि उन्होंने ऐसा दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के उत्तरार्ध से पहले किया था''?[56]

यदि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के उत्तरार्ध से पहले उन्होंने यह कार्य नहीं किया तो साबित हो गया, वे यहाँ के प्राचीन निवासी नहीं हैं। मार्शल को मूलतः स्थापित यह करना है कि सिंधु सभ्यता आर्यों के भारत-प्रवेश से पहले की है। आगे कभी सिंधु लिपि से ब्राह्मी का विकास हुआ हो तो हुआ करे, इस कल्पना पर उन्हें विशेष आपत्ति न थी। पर क्या इसकी संभावना थी कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के उत्तरार्ध में या उसके बाद भी सिंधु लिपि का व्यवहार होता रहा हो ? मार्शल मानों इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं : ''हो सकता है कि मोहेंजोदड़ो के अवशेष हमें तीसरी सहस्राब्दी के प्रथम चरण से और बाद तक न ले जाएँ, पर इससे हम यह नहीं मान संकते कि उस समय इस नगर विशेष का अंत हो गया हो या कुछ शताब्दियों बाद हड़प्पा ने उसका अनुसरण किया हो, तो उस समय सिंधु सभ्यता का पूर्ण अवसान हो गया था। इसके विपरीत मोहेंजोदड़ो से कुछ बीस-एक मील की दूरी पर झूकर के अवशेष यह सूचित करते प्रतीत होते हैं कि मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा, दोनों का लोप हो जाने के बहुत दिन बाद तक यह सभ्यता साँस लेती रही थी। निस्संदेह उसके वैभव के दिन बीत गए थे, तो भी यह मानने के लिए कोई न्यायसंगत कारण नहीं है कि लेखन-कला जैसी अतिशय महत्वपूर्ण कला का व्यवहार समाप्त हो गया होगा''।[57]

मार्शल ने सिंधु सभ्यता की जिस निरंतरता पर ज़ोर दिया था, यह धारणा उसी के अनुरूप थी। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने लैंगडन के मत का समर्थन किया था कि ब्राह्मी का विकास सिंधु लिपि से हुआ। पर उनका यह कहना केवल अंशतः सही था कि लैंगडन का उद्देश्य यह दिखाना नहीं है कि सिंधु सभ्यता के निर्माता और भारतीय आर्य एक ही थे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लैंगडन के लेख में यह भावना अंतर्निहित है कि मोहेंजोदड़ो के लोग संस्कृत या उससे मिलती-जुलती कोई आर्य भाषा बोलते थे। सिंधु घाटी की लिपि "संस्कृत पूर्व सभ्यता की लिपि" है पर इसमें स्वर चिह्न अलग से भी दिखाए गए हैं। "केवल इस एक कारण से यह आवश्यक है कि आगे की जाँच-पड़ताल संस्कृत विद्वानों पर छोड़ दी जाए"।[58] सिंधु सभ्यता संस्कृत से पहले की है और उसकी लिपि की जाँच-पड़ताल का काम संस्कृत विद्वानों को करना चाहिए। सिंधु लिपि और ब्राह्मी में अंतर है पर ब्राह्मी उसी का विकास है। इसी तरह सिंधु घाटी की भाषा और संस्कृत में अंतर होगा पर संस्कृत उसका विकसित रूप हो सकती है। ब्राह्मी की जानकारी से सिंधु लिपि के विश्लेषण में सहायता मिली है, संस्कृत की जानकारी से सिंधु घाटी की भाषा के विश्लेषण में सहायता मिल सकती है। लैंगडन यह भी बताते हैं कि संस्कृत विद्वानों को इस कार्य में कैसे आगे बढ़ना चाहिए। यदि ऐसे अभिलेख मिल जाएँ जिनमें पूरे वाक्य हों तो काम आसान हो जाएगा। "अभी जो सामग्री सुलभ है, उसी के सहारे काम करते हुए, मैं संस्कृत विद्वानों को सुझाव दूँगा कि वे देवकथाओं के कुछ वीरों और देवताओं के नाम चुन लें, और यहाँ [लैंगडन के लेख में] जो थोड़े से चिह्न पहचाने गए हैं, उनकी सहायता से लगातार दोहराए जाने वाले चिह्न समूहों को अलग कर लें और उन नामों से उनकी तुलना करें। प्राचीन भारतीय नाम पद्धति से मेरा अस्पष्ट-सा ही परिचय है। बेशक यह संभव है कि यह इंडोजर्मैनिक भाषा न हो। आत्मविश्वास से यह दावा किया जाता है कि इतने प्राचीन (3200-2800 ई० पू०) काल में आर्य सभ्यता का भारत में अस्तित्व विशुद्ध दंत-कथा है और राष्ट्रीय परंपरा का स्वप्न है"।[59]

अनातोलिया (वर्तमान तुर्की) में जो प्राचीन अभिलेख मिले थे, उनमें वैदिक देवताओं के नाम थे। संभवतः उस जानकारी से प्रेरित होकर लैंगडन ने सिंधु घाटी के दोहराए जाने वाले चिह्न समूहों में देवकथाओं के वीरों और देवताओं के नाम पहचानने का सुझाव दिया था। प्राचीन भारतीय नाम पद्धति से जिनका अधिक परिचय हो, वे लैंगडन की अपेक्षा ज़्यादा सूझबूझ से काम कर सकते थे। सिंधु घाटी में आर्य भाषा बोली जाती थी, इस पूर्वकल्पना के आधार पर ही ऐसी जाँच-पड़ताल की जा सकती थी। पूर्वकल्पना ही तो थी, असंभव नहीं था कि वहाँ आर्य भाषा न बोली जाती हो ! पर जिस आत्मविश्वास से यह कहा जाता था कि उतने प्राचीन काल में आर्य सभ्यता का भारत में अस्तित्व विशुद्ध दंत-कथा है, वह लैंगडन का आत्मविश्वास न था। उनका अपना दावा यह था कि "इतिहास जितना मानता है, भारत में आर्य उससे कहीं अधिक प्राचीन हैं"।[60] जिस इतिहास को लैंगडन ने यहाँ अमान्य ठहराया है, उसी के निर्माता आत्मविश्वास से कहते थे कि उतने प्राचीन काल में आर्य सभ्यता का भारत में अस्तित्व विशुद्ध दंत-कथा है, राष्ट्रीय परंपरा का स्वप्न है। लैंगडन ने उन्नीसवीं सदी से चली आती इस धारणा को अस्वीकार किया था कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य में आर्यों ने भारत में प्रवेश किया था। सिंधु सभ्यता आर्यों से पहले की अनार्य सभ्यता है, मार्शल का यह प्रचार भी उन्होंने अस्वीकार किया था। उनका आग्रह है कि सिंधु घाटी की लिपि और भाषा की जाँच-पड़ताल ब्राह्मी और संस्कृत की जानकारी के सहारे करनी चाहिए। मार्शल से व्हीलर तक अँग्रेज़ों द्वारा प्रेरित भारतीय पुरातत्व जिस दिशा में चला था, लैंगडन के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विवेचन की दिशा उससे उल्टी थी।

1968 में **ब्रिजेट** और **रेमंड अल्चिन** की पुस्तक **भारतीय सभ्यता का जन्म** प्रकाशित हुई। इसमें भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत का समर्थन किया गया है पर सिंधु घाटी में आर्य भाषा बोली जाती हो, यह संभावना स्वीकार की गई है। हड़प्पाई जनों की भाषा "या तो इंडोयूरोपियन थी या इंडोईरानियन परिवार की भी हो सकती है, यह कितना भी असंभावित लगे" अथवा वह द्रविड़ परिवार की हो सकती है।[61] मार्शल ने सिंधु सभ्यता का समय अल्चिन आदि की तुलना में "प्रायः एक हज़ार साल पहले निर्धारित किया था," अतः उन्होंने "उसके पतन और आर्यों के बीच कोई संबंध न देखा था।" इसके विपरीत चाइल्ड और व्हीलर ने दिख़ाया है कि हड़प्पा काल में संशोधन करने पर "इसकी संभावना बखूबी रहती है कि विनाश करने वाले उपकरण के रूप में ऋग्वैदिक आर्यों का नहीं, तो आर्यों का नाम लिया जाए"।[62] व्हीलर ने तो स्पष्ट रूप में इंद्र का नाम लिया था पर अल्चिन-द्वय इसे आवश्यक नहीं मानते। आर्यों के अनेक दल आए, हो सकता है, जिसने सिंधु सभ्यता का नाश किया, अवैदिक हों। और यह भी असंभव नहीं कि आर्यों के एक दल ने सिंधु घाटी के नगरों का निर्माण किया हो। यदि हड़प्पा सभ्यता का जन्म 2150 ई० पू० के आसपास हुआ हो तो "यह मानना आवश्यक होगा कि नगरों के अवसान के ही नहीं, उनकी प्रारंभिक प्रेरणा के भी कारण इंडोयूरोपियन भाषा बोलने वाले जन थे"।[63] इस स्थापना का महत्वपूर्ण अंश इतना ही है कि आर्यों ने सिंधु सभ्यता की नींव डाली हो, यह संभावना स्वीकार करनी चाहिए। उस स्थिति में आर्य भारत के उतने ही प्राचीन निवासी हैं जितने प्राचीन सिंधु घाटी के नगर हैं। यह निष्कर्ष लैंगडन की धारणा से काफ़ी मिलता-जुलता है।

रेनूफ्रीव के लिए सिंधु घाटी के अभिलेखों की भाषा इंडोयूरोपियन का कोई प्राचीन रूप हो तो आश्चर्य की बात न होगी "क्योंकि उस क्षेत्र के प्राचीनतम अभिलेख **ऋग्वेद** के **सूक्त** हैं जिनकी अब व्याख्या की जा सकती है"।[64] अब तक (1987 तक) विद्वानों का मत इस धारणा के विपरीत रहा है। रेनूफ्रीव इसके कारण बताते हैं, "आमतौर पर यह मान लिया गया है कि इंडोयूरोपियन भाषाभाषी जन भारत में बाहर से आकर बसे थे। फिर बहुत से विद्वानों ने इससे यह भी मान लिया कि सिंधु घाटी सभ्यता की भाषा इंडोयूरोपियन से पहले की है और संभवतः द्रविड़ है। अब यदि सिंधु घाटी की सभ्यता का अंत बहुत कुछ आकस्मिक ढंग से हुआ हो, जिससे कि भारत में एक हज़ार साल तक के लिए नगर सभ्यता ठंडी पड़ गई, तो आश्चर्य नहीं कि इस सदी के आरंभिक चरण में विद्वानों ने 'विध्वंसकों' की बात सोची हो, जब वातावरण आप्रवासमय था [जब यूरोप के आप्रवासी दूसरों की ज़मीन छीनकर उनके देशों में बसते जा रहे थे]। युद्ध में कुल्हाड़ा चलाने वाले, यूरोप के प्रागैतिहासिक, लड़ाकू इंडोयूरोपियनों से लोग परिचित थे ही। इन्हें 'विध्वंसक' मानने से अधिक स्वाभाविक और क्या था ? और वे बेशक **ऋग्वेद** के लड़ाकू, रथारूढ़ इंडोआर्यनों से संबद्ध किए जा सकते थे। उदाहरण के लिए सर मॉर्टिमर व्हीलर ने यह धारणा पेश की थी। उन्होंने मान लिया था कि मोहेंजोदड़ो के उत्खनन में जो विभिन्न कंकाल समूह मिले हैं, वे उस नगर पर आई प्रलय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में मारे गए लोगों के थे''।[65]

इतिहासकारों और पुरातत्वज्ञों का दृष्टिकोण उपनिवेशवाद से प्रभावित रहा है, यह बात रेनूफ्रीव ने बहुत स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है। भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत इसी दृष्टिकोण से प्रेरित था। इस सिद्धांत के समर्थन में ऋग्वेद का बराबर हवाला दिया जाता था पर रेनूफ्रीव ने व्हीलर के मत का खंडन करते हुए लिखा : ''जब व्हीलर सप्तसिंधुओं की भूमि, पंजाब, पर आर्यों के आक्रमण की बात कहते हैं, तब जहाँ तक मेरी समझ में आता है, इसका कुछ भी आधार नहीं है। यदि ऋग्वेद में सप्तसिंधुओं के दर्जन भर प्रसंगों को जाँचें तो एक में भी ऐसा कुछ नहीं मिलता जिसे मैं आक्रमण का संकेत मान लूँ। सप्तसिंधुओं का देश ऋग्वेद का क्षेत्र है, घटना की रंगभूमि है। ऐसा कुछ नहीं है जिससे लगे कि आर्य यहाँ अजनबी हैं, न और कोई बात है जिससे लगे कि परकोटे वाले नगरों के वासी (दस्युओं समेत) स्वयं आर्यों की अपेक्षा कुछ अधिक आदिवासी थे''।[66] जहाँ तक सिंधु सभ्यता के ह्रास का प्रश्न है, ''उसका कोई एक सीधा-सादा कारण नहीं था। अवश्य ही आक्रमणकारी जनसमूहों पर उसकी समाप्ति के दोष मढ़ने का कोई आधार नहीं है''।[67]

रेनूफ्रीव ने भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत का खंडन किया, आर्यों को भारत का प्राचीन निवासी माना, और इस संभावना पर बल दिया कि सिंधु घाटी में आर्यभाषा बोली जाती थी। भारत के जो इतिहासकार व्हीलर आदि की मान्यताएँ दोहराते चले जाते हैं, उन्हें रेनूफ्रीव के तर्कसंगत विवेचन पर ध्यान देना चाहिए। लैंगडन से रेनूफ्रीव तक (1931 से 1987 तक) भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक धारा ऐसी रही है जो भारत पर आर्यों का आक्रमण सिद्धांत अस्वीकारती है, जो सिंधु घाटी की सभ्यता को आर्य भाषा बोलने वालों की सभ्यता मानती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंत में यही धारा विजयी होगी क्योंकि पुरातत्व भारत पर आर्यों के आक्रमण की साक्ष्य-रूप कोई भी सामग्री अब तक प्रस्तुत नहीं कर सका।

संदर्भ

1. टी० बरो, द संस्कृत लैंग्वेज, पृ० 6.
2. मार्क्स-एंगेल्स, द फर्स्ट इंडियन वार ऑफ इंडिपेन्डेन्स, पृ० 37.
3. जी० एल० पोसेल, एंशेंट सिटीज़ ऑफ़ द इंडस, पृ० 181.
4. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, रिलीजन ऐंड सोसाइटी, पृ० 78.
5. पोसेल,पूर्वोल्लिखित।
6. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, पूर्वोल्लिखित, पृ० 82.
7. उप०, पृ० 80.
8 उप०, पृ० 80.
9. उप०, पृ० 79.
10. उप०, पृ० 79,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

11. उप०, पृ० 75.
12. सी० रेन्फ्रीव, आर्किओलॉजी ऐंड लिंग्विस्टिक्स, पृ० 189.
13. जी० मार्शल, मोहेंजोदड़ो ऐंड द इंडस सिविलाइज़ेशन, खंड I, प्राक्कथन, पृ० 5.
14. उप०, पृ० 112.
15. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 292.
16. ई० जे० एच० मैकाय, फर्दर एक्सकवेशंस एट मोहेंजोदड़ो, खंड I, पृ० 348.
17. मैकाय, अर्ली इंडस सिविलाइज़ेशन, पृ० 50.
18. मैकाय, फर्दर एक्सकवेशंस, पृ० 94-95.
19. उप०, पृ० 117.
20. उप०, पृ० 648.
21. उप०।
22. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 291.
23. उप०।
24. एम० बी० एमेनो द्वारा कलेक्टेड पेपर्स में उद्धृत, पृ० 158.
25. उप०।
26. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 91.
27. उप०, पृ० 293-94.
28. एम० ह्वीलर, द इंडस सिविलाइज़ेशन, पृ० 17.
29. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 183.
30. मैकाय, फर्दर एक्सकवेशंस, पृ० 668.
31. उप०, पृ० 535.
32. उप०, पृ० 296-97
33. उप०, पृ० 293-94.
34. उप०, पृ० 425.
35. उप०, पृ० 430.
36. उप०, पृ० 531.
37. उप०, पृ० 367.
38. उप०, पृ० 351,355.
39. उप०, पृ० 447.
40. उप०, पृ० 278.
41. उप०, पृ० 335.
42. उप०, पृ० 478.
43. उप०, पृ० 539.
44. उप०, पृ० 167.
45. उप०, पृ० 659.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

46. वी० जी० चाइल्ड, न्यू लाइट ऑन द मोस्ट ऐन्शेंट ईस्ट, पृ० 187.
47. उप०, पृ० 188.
48. उप०।
49. उप०, पृ० 143-44
50. उप०, पृ० 187.
51. मार्शल, मोहेंजोदड़ो, खंड II. पृ० 426.
52. उप०, पृ० 424.
53. उप०, पृ० 428.
54. उप०, पृ० 431.
55. उप०, पृ० 432.
56. उप०, खंड I. पृ० 112.
57. उप०।
58. उप०, खंड II. पृ० 424.
59. उप०, पृ० 431
60. उप०, पृ० 432.
61. अल्चिन, द बर्थ ऑफ़ इंडियन सिविलाइज़ेशन, पृ० 137.
62. उप०, पृ० 134.
63. उप०, पृ० 144.
64. रेनूफ्रीव, पूर्वोल्लिखित, पृ० 185.
65. उप०, पृ० 187.
66. उप०, पृ० 188.
67. उप०, पृ० 188-89.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

2

हड़प्पा : केंद्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र

क. सुनियोजित अर्थतंत्र

स्टुअर्ट पिगॉट ने अपनी पुस्तक **प्रागैतिहासिक भारत** (Prehistoric India, 1949, किसी परिवर्तन के बिना पुनः प्रकाशित,1962) में **हड़प्पा सभ्यता** के आर्थिक पक्ष का नया मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। वह भारत के परवर्ती सामाजिक विकास पर उस सभ्यता के प्रभाव का उल्लेख करते हैं किंतु धार्मिक विश्वासों और सांप्रदायिक आचरणों से अधिक आर्थिक राजनीतिक संगठनों पर ज़ोर देते हैं। व्हीलर की तरह वह आर्यों को हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो का विध्वंसक मानते हैं पर उनके विचार से इनकी संस्कृति का संपूर्ण विनाश नहीं हुआ। वह इस संस्कृति से **ऋग्वेद** की संस्कृति के मेल-मिलाप की ओर संकेत भी करते हैं।

पिगॉट का मत है कि **हड़प्पा सभ्यता** मूलतः भारतीय सभ्यता है। उसके पश्चिम में जो देश हैं, उनसे वह अलग है। बलूचिस्तान के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में हर घाटी पड़ोसी घाटी से अलग है। पर इस क्षेत्र के पूर्व में सिंधु नदी का मैदान है जहाँ दूर-दूर तक एक ही सभ्यता का प्रसार है। बलूचिस्तान से सिंधु क्षेत्र केवल नगरों की सभ्यता के कारण अलग नहीं हैं, कुछ समानताओं के बावजूद अलगाव ग्रामीण स्तर पर भी है। सिंधु क्षेत्र के पश्चिमी गाँवों और बलूची गाँवों की "सामान्य खेतिहर पृष्ठभूमि है और कुछ सामान्य सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं, पर अधिकांश बातों में उनसे इनमें भिन्नता ज़्यादा है, समानता कम है"।[1] बलूची गाँवों के पूर्व का इलाक़ा उत्तर से दक्षिण तक नदियों द्वारा अंतः संबद्ध है। पाँच नदियाँ पंजाब में, सिंधु दक्षिण में—"वास्तव में भारत इस बड़े क्षेत्र से शुरू होता है"।[2]

बलूची समुदायों के उत्पादों में शैली और तकनीक की भिन्नता है। इससे हम छोटे-छोटे किसान राज्यों की कल्पना कर सकते हैं। वहाँ प्राकृतिक रूप से हर इलाक़ा अलग है, लगभग अपने तक सीमित है। सिंध की **अमरी संस्कृति** का भी यही हाल है। पर इनके बाद आते हैं वे लोग "जिनकी निष्ठा किसी छोटे से राज्य के प्रति नहीं है वरन् एक साम्राज्य के प्रति है। प्रागैतिहासिक भारत में अब तक जो कुछ भी हमने देखा है, उससे कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र में विभिन्नता का स्थान एकरूपता ले लेती है। यह क्षेत्र मकरान तट से काठियावाड़ तक, उत्तर की ओर हिमालय की पहाड़ी पदभूमि तक, विशाल,अव्यवस्थित त्रिकोण-सा फैला हुआ है, जिसकी भुजाएँ 950, 700 और 550 मील लंबी हैं। यहाँ की भौतिक संस्कृति के फुटकर उपकरणों में पूरी समानता है"।[3] यहाँ के मृद्भांड, आवास, मुद्राएँ, बाँट-बटखरे, सब किसी मानदंड के अनुरूप हैं। पिगॉट को लगता है कि 'हड़प्पा संस्कृति,' यह एक दुर्बल पुरातात्विक नामकरण है। इस नाम के पीछे पश्चिमी एशिया का एक बड़े से बड़ा अनाम राज्य छिपा है।[4]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह राज्य न तो ईरान-इराक के कल्पित सांस्कृतिक घटक का अंग है, न वह नवनिर्मित राज्य पाकिस्तान तक सीमित है। वह काठियावाड़ से हिमालय की पदभूमि तक फैला हुआ है। पिगॉट के लिए यह बात दिलचस्प है कि हड़प्पा के मानक अनुपात वाली ईंटें सिंध के अलावा सतलज के ऊपरी भाग में रोपड़ तक, बीकानेर के पास डेरावार तक और काठियावाड़ में रंगपुर तक मिलती हैं।[5] यहाँ के महानगरों में कला-कौशल और गृहनिर्माण के लिए आवश्यक सामग्री, कीमती पत्थरों से लेकर देवदार के लट्ठों तक, काठियावाड़ और राजस्थान के अलावा दक्षिण में नीलगिरि और उत्तर में कश्मीर तक से आती थी।[6] यह अनाम एशियाई राज्य स्पष्ट ही भारतीय राज्य है। **प्रागैतिहासिक भारत** की 'भारत' संज्ञा पुस्तक में सर्वत्र सार्थक है।

इस राज्य के अर्थतंत्र की विशेषता यह है कि उद्योग सचेत ढंग से संगठित किया गया है, योजना के अनुसार उसका संचालन होता है। सामंती समाज की विकसित अवस्था में कारीगर बाज़ार के लिए अलग-थलग माल न तैयार करके अपने संघ बना लेते हैं, कितना माल तैयार किया जाए, किस भाव बेचा जाए, इसके बारे में नीति निर्धारित करते हैं। हड़प्पाई उद्योग की विशेषता यह है कि वह कारीगर संघों की सीमा लाँघ गया है, वह नए ढंग का संगठित उद्योग है। पिगॉट की महत्वपूर्ण स्थापना यह है : "कारीगर संघ के उद्योग से भिन्न, पश्चिमी एशिया में प्रथम, वास्तव में संगठित, उद्योग का श्रेय अनुमानतः हमें हड़प्पा सभ्यता को देना चाहिए। (To the Harappa civilization we must presumably attribute the first really organised industry in Western Asia, as distinct from that of a craftsmen's guild)"।[7] पश्चिमी एशिया में प्रथम संगठित उद्योग का अर्थ है, तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के संसार में सर्वाधिक विकसित उद्योग। उस समय केवल सुमेर भारतीय उद्योग में स्पर्धा कर सकता था। प्राचीन सुमेर में उद्योग और धंधों पर काफ़ी केंद्रीय नियंत्रण था पर "यहाँ जो कुछ है, वह अधिक सचेत ढंग से संगठित है"।[8] संगठित उद्योग को चलाने के लिए श्रमिक, योजना के अनुसार निर्मित, आवासों में रखे जाते थे। इन आवासों को देखकर पिगॉट को तेल-एल-अमर्ना (मिस्र) की कामगार खोलियाँ याद आती हैं किंतु "यह हड़प्पाई निर्माण व्यवस्था मिस्र से कम से कम एक हज़ार साल पहले की थी"।[9] मिस्र और सुमेर, प्राचीन संसार के सबसे विकसित देश, संगठित उद्योग के संचालन में हड़प्पा से पीछे थे।

पिगॉट ने हड़प्पा के उद्योग को वास्तव में संगठित उद्योग कहा है। उनके 'वास्तव' की व्याख्या कारीगर संघ से उसकी भिन्नता से हो जाती है। ये कारीगर संघ जब तक उत्पादन पर हावी रहते हैं, तब तक मुनाफ़ा कमाने वाले व्यापारी की भूमिका गौण रहती है। उद्योग वास्तव में तब संगठित होता है जब शिल्पी संघ अपने-अपने शिल्प की चीज़ें, जैसे कपड़ा, जूते, बर्तन आदि, अलग-अलग बनाने और बेचने के बदले एक सुसंबद्ध बाज़ार में थोक खपत के लिए बनाने को बाध्य होते हैं। उन्हें बाध्य व्यापारी वर्ग करता है। इस वर्ग का विशेष संबंध विनिमय से होता है, उसका काम माल खरीदना और बेचना होता है। वह बाज़ार को संगठित करता है, बाज़ार की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन को संगठित करता है। इस तरह उद्योग, मुनाफ़ा कमाने के लिए बिकाऊ माल पैदा करके, वास्तव में संगठित होता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पिगॉट हड़प्पाई नगरों में देशी-विदेशी कारोबार सँभालने वाले काफ़ी बड़े व्यापारी वर्ग (a considerable merchant class) का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।[10] वह उसके द्वारा नियोजित अर्थतंत्र (planned economy) का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।[11] इस अर्थतंत्र के नियोजक एक ही मानक के अनुरूप ढेरों माल तैयार कराते हैं, वस्तुओं की विविधता और उनकी खूबसूरती की तरफ उनका ध्यान कम जाता है। वे उपयोगितावादी होते हैं, थोक माल तैयार कराके मुनाफ़ा कमाना उनका उद्देश्य होता है। कारीगर को अपनी कला का चमत्कार दिखाने का अवसर कम मिलता है। पिगॉट के अनुसार हड़प्पाई उत्पादों की तकनीक में दोष नहीं हैं, दोष है उनके रूपाकार (design) में। "पेचीदा तकनीकी प्रक्रियाएँ ज्ञात थीं, बखूबी समझ में आ चुकी थीं और उत्पादन के लिए प्रशंसनीय ढंग से संगठित की गई थीं लेकिन उत्पादित माल मानकीकरण से, और लगभग प्यूरिटन वृत्ति वाले उपयोगितावाद से ग्रस्त था"।[12] स्पष्ट ही पिगॉट को प्रारंभिक दौर का ब्रिटिश पूँजीवाद याद आ रहा है। इस दौर के पूँजीपति अपने उपयोगितावाद के लिए, अपनी प्यूरिटन वृत्ति के लिए, सौंदर्य की उपेक्षा के लिए, अभिजात वर्ग में बदनाम थे। हड़प्पाई उत्पाद पिगॉट के मन पर " कार्यकुशल नीरसता (competent dullness)" का प्रभाव डालते हैं।[13] अन्य संदर्भ में कहे अपने शब्दों को पिगॉट हड़प्पाई उत्पादों और स्थानों पर लागू करते हैं : ये "बहुत ही प्रभावशाली ढंग से शहरी व्यापारिक वर्ग के विस्तृत संगठन (the elaborate organization of an urban mercantile class) को लक्षित करा देते हैं। पूर्वकालीन और अधिक आदिम संस्कृतियों में जो बर्बर स्वतःस्फूर्तता [अनियोजित सुंदरता] होती है, इस वर्ग के उत्पादों में उसका अभाव है। यही नहीं, उनमें नए अमीरों का चटपटा फूहड़पन (the cheery nouveau riche vulgarity) भी नहीं है। जो सुमेर के प्रारंभिक राजवंशों में है...इसके बदले दृश्य-कलाओं और शिल्पों की प्रायः प्रत्येक शाखा में वे पूँजीवादी साधारणता का निर्जीव स्तर (a dead level of bourgeois mediocrity) प्रदर्शित करते हैं"।[14]

योजना के अनुसार नगर-निर्माण के लिए **हड़प्पा** और **मोहेंजोदड़ो** प्रसिद्ध हैं। छोटे नगर भी योजना के अनुसार बनाए गए थे। प्रशासन का स्थपति विभाग अन्य विभागों से अलग और सुसंगठित रहा होगा। श्रमिक आवासों के संदर्भ में पिगॉट ने लिखा है, "आवास योजना स्पष्ट ही नगर स्थपति के कार्यालय में बनाई गई है, और कुछ खास धंधों के वर्ग को नगर के सीमित क्षेत्र में पृथक कर दिया गया है"।[15]

हड़प्पाई नगरों के अर्थतंत्र की एक विशेषता यह थी कि शहर और देहात का उत्पादन एक ही योजना के अनुसार संचालित था। नगरवासियों की, और बहुत हद तक छोटे शहरों के निवासियों की, भोजन व्यवस्था के लिए "काफ़ी अच्छे ढंग से संगठित कृषितंत्र रहा होगा जो आवश्यक अतिरिक्त अन्न पैदा करे"।[16] पिगॉट के अनुसार "हड़प्पा में कृषि का उत्पादन नगर प्रशासन के नियंत्रण (municipal control) में था। विशाल अन्नागार विचित्र ढंग से रोमन सेना के अन्नागारों का पूर्वाभास देते हैं"।[17] हड़प्पा में "शासकीय कृषि नीति" के फलस्वरूप अनाज एकत्र किया जाता था और ऐसा ही मोहेंजोदड़ो में भी होता रहा होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रशासनिक अन्नागारों के निकट ही अनाज को कूट-कूटकर आटा बनाने की व्यवस्था थी। "संगठित श्रम का उपयोग करने वाली नियंत्रित अर्थव्यवस्था का वह भी अंग थी"।[18] पिगॉट का अनुमान है कि राज्य द्वारा नियंत्रित उद्योगों में ईंटें बनाने का उद्योग भी रहा होगा।[19] ईंटों और मृद्भांडों के थोक उत्पादन के लिए ईंधन आवश्यक था। इसकी आपूर्ति के लिए वनों से संबंधित दल रहा होगा।[20]

ख. तकनीकी विकास

हड़प्पाई उद्योग में धातुओं की खपत काफ़ी होती थी। पिगॉट ने इस उद्योग पर कम ध्यान दिया है। पड़ोसी क्षेत्रों से धातुएँ मँगाने के साथ इसकी संभावना है कि खानों से धातुएँ निकालने और उन्हें साफ़ करने के उद्योग को प्रशासन द्वारा संगठित या नियंत्रित किया गया हो। ताँबे को परिष्कृत रूप देने के लिए, ताँबे में टीन मिला कर कांसा बनाने के लिए, आर्सेनिक मिलाकर ताँबे को सख्त बनाने के लिए धातु उद्योग को सुनियोजित किया गया होगा। कांसा बनाने के लिए ताँबे में लगभग 10 फीसदी टीन "जानबूझकर या संयोग से" मिलाई गई थी, ताँबे में आर्सेनिक की मिलावट "लगभग निश्चय ही संयोग से हुई थी पर इससे धातु और ज़्यादा सख्त हो जाती थी"।[21] जहाँ सब कुछ सुनियोजित ढंग से हो रहा था, वहाँ कांसे में टीन संयोग से मिला दी गई हो, संभव नहीं जान पड़ता। टीन का परिमाण "लगभग 10 प्रतिशत" ही रहता है,[22] इससे तो यह मिश्रण सुनियोजित प्रतीत होता है। ताँबे में आर्सेनिक की मिलावट के बारे में पिगॉट को लगभग निश्चय है कि वह संयोग से हो गई थी। पर आर्सेनिक का परिमाण "कभी-कभी अत्यधिक" होता है।[23] इसका कारण यह हो सकता है कि ताँबे को विशेष उपकरणों के लिए सख्त बनाते हुए आर्सेनिक की मात्रा बढ़ा दी गई हो। रोचक तथ्य यह है कि सुमेरी उपकरणों में आर्सेनिक की मात्रा नगण्य है।[24] इसका अर्थ यह है कि हड़प्पा के मुक़ाबले वे कम सख्त होते थे। पिगॉट ने इस भेद का कारण यह बताया है कि हड़प्पा और सुमेर अलग-अलग स्रोतों से ताँबा प्राप्त करते थे।[25] पर उन्होंने यह स्पष्ट नहीं लिखा कि हड़प्पाई ताँबे के राजस्थानी या ईरानी स्रोतों की धातु में आर्सेनिक की मात्रा निसर्गतः अधिक होती है।

पिगॉट ने आगे ताँबे की ढलाई की जो तकनीक बताई है, उससे तो लगता है, ताँबे में टीन और आर्सेनिक दोनों जानबूझ कर मिलाए जाते थे। बंद साँचे में ताँबा ढालने का काम कठिन होता है क्योंकि गलाई हुई धातु से ऑक्सीजन के बगूले उठते हैं और वे ढलाई के पदार्थ को शिथिल (spongy) कर देते हैं। यदि उसमें थोड़ी सी टीन या आर्सेनिक मिला दें तो उससे ऑक्सीजन तिरोहित हो जाता है। मोहेंजोदड़ो में एक नर्तकी की मूर्ति मिली थी। उसका निर्माण यों हुआ : पहले मोम का साँचा बनाया, उस पर मिट्टी का पलस्तर किया, फिर उसे गरम किया जिससे मिट्टी पक गई और मोम घुलकर उसी में मिल गया। अब उसमें गलाई हुई धातु डाली और इससे ठीक वैसा ही आकार बना जैसा मोम के साँचे का था। "मोहेंजोदड़ो की नर्तकी जैसी मूर्तियाँ इसी प्रक्रिया से ढाली गई होंगी, ऊपरी सतह को तराशने और साफ़ सुथरा बनाने का काम बाद में किया गया होगा"।[26]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पिगॉट ने हड़प्पा में धातुकर्मियों की भट्टियों का उल्लेख किया है। अर्थतंत्र के नियोजित और केंद्रबद्ध स्वरूप को देखते हुए यह स्वाभाविक लगता है कि खानों से धातु निकालने वाले तथा नगर में उसे परिष्कृत करने और उससे वस्तुएँ बनाने वाले कारीगर योजना के अनुसार संगठित होकर कार्य करते रहे होंगे। अन्नागार 150 फुट चौड़ा और लगभग 200 फुट लंबा था और ईंटों के चबूतरे पर बनाया गया था। सीलन से बचाव के लिए इसके प्रकोष्ठ भी चबूतरों पर बनाए गए थे और इनमें प्रत्येक 20 फुट चौड़ा और 50 फुट लंबा था। इनके पास चबूतरों पर अनाज कूटने के फर्श थे। ये भी पक्की ईंटों के थे। इनके बीचोबीच एक बहुत बड़ी लकड़ी की ओखली फर्श में गड़ी होती थी। "पुनः अन्नागार और श्रम संबंधी चबूतरों से कुछ ही दूर धातुकर्मियों की भट्टियाँ थीं, और इनसे एक बार फिर हड़प्पा के इस भाग का अर्ध-उद्योगीकृत स्वरूप (semi-industrialized nature) उजागर होता है"।[27] कृषितंत्र नगर प्रशासन के नियंत्रण में था, नगर में अनाज इकट्ठा किया जाता था और वहाँ कूटा जाता था। इसी तरह खानों के उद्योग को, नगर में वस्तु-निर्माण उद्योग को, संगठित रूप दिया गया होगा। पिगॉट ने हड़प्पा नगर के एक भाग को अर्ध-उद्योगीकृत, कुम्हारों के धंधे के कारण नहीं, धातुकर्मियों (metal-workers) की भट्टियों के कारण, कहा है। कुम्हारों को नगर के भीतर आँवा लगाने की अनुमति नहीं थी। मोहेंजोदड़ो के अंतिम दौर में, "नगर के ह्रास के दिनों में नगर पालिका के अधिकार के शिथिल होने से" वे बस्ती के भीतर आँवा लगाने लगे थे।[28]

नियोजित अर्थव्यवस्था का एक विभाग अवश्य ही कपास की खेती और कपड़ा उद्योग से संबंधित रहा होगा। पिगॉट ने इस सिलसिले में जो कुछ कहा है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। कपास की खेती और सूती वस्त्रों के व्यापार के बारे में उन्होंने लिखा है :

"हड़प्पा सभ्यता के लोग जो फसलें उगाते थे, उनमें बहुत दिलचस्प फसल कपास की थी। सौभाग्य से मोहेंजोदड़ो की एकल प्रगति से इसका निर्णायक सबूत मिल गया। मजीठ से लाल रंग में रँगे हुए, सचमुच के सूती कपड़े की चिंधियाँ एक रजत पात्र की बगल में चिपकी हुई मिलीं। स्पष्ट है कि जिस पौधे से ये रेशे निकाले गए थे, वह **गोसीपिउस् अर्बोरिउम्** वर्ग का है—वही जो आजकल खेती द्वारा उगाया जाता है। वह जंगली कपास के वर्ग का नहीं है। इस बात की संभावना है कि हड़प्पा सभ्यता के लिए व्यापार की एक महत्वपूर्ण वस्तु सूती कपड़ा था, और यह भी संभव है कि मेसोपोटामिया से जो व्यापार होता था, उसका कम से कम कुछ अंश सूती कपड़े का था। बाद के ऐतिहासिक काल में भारतीय कपास को उस देश (अर्थात् इराक़) में सिंधु नाम से जाना जाता था और यह शब्द सिंदॉन् रूप में ग्रीक भाषा में पहुँच गया"।[29]

और भीः "यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि पुरातत्व व्यापारिक संबंधों की ग़लत तस्वीर पेश कर सकता है। कारण यह कि उसकी प्रमाण सामग्री प्रायः सब की सब उन पदार्थों तक सीमित होती है जो नष्ट नहीं हो जाते। प्रागैतिहासिक भारत से कितना कपास निर्यात होता था, इसकी जानकारी नहीं है। और यद्यपि इसकी संभावना है कि सुमेरी नगरों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में भारतीय व्यापारी उपनिवेशों में बसे हुए थे, पर आश्चर्य की बात है कि वहाँ से वापस जो कुछ लाया जाता था, उसकी प्रमाण सामग्री नहीं के बराबर है"।[30]

पुनश्चः 2300से 2000ई० पू० तक के दौर में, सुमेर में संचित, जो वस्तुएँ मिली हैं, उनमें "खास हड़प्पाई ढंग की उत्कीर्ण मुद्राएँ हैं, और एक मुहर मिली है जिसकी पीठ पर मोटे कपड़े की छाप दिखाई पड़ती है। मुद्राओं (तथा प्रमाण सामग्री की अन्य वस्तुओं...) से संकेत यह मिलता है कि हड़प्पा के व्यापारी सुमेरी नगरों में जमे हुए थे और व्यापार कर रहे थे। बहुत संभव है, इस व्यापार में सूती माल भी रहा हो। यह व्यापारिक संबंध कब तक चला, यह थोड़ा अनिश्चित है, पर संभावना यह है कि 2000ई०पू० के बाद शीघ्र ही समाप्त हो गया होगा।

"दुर्भाग्य से इस व्यापार के पूरक पक्ष की, सिंधु घाटी अथवा पंजाब में सुमेरी वस्तुओं की, प्रमाण सामग्री अल्प है"।[31] एक से अधिक बार पिगॉट ने सूती कपड़ों के व्यापार का जिक्र किया है। वह इस व्यापार को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उनके विवेचन से एक निष्कर्ष तो यह निकलता है कि कपास की खेती की शुरुआत भारत में हुई, सूती कपड़ा बनाने का कौशल भारत में आरंभ हुआ, फिर वह अन्य देशों में फैला। दूसरा निष्कर्ष यह निकला कि भारतीय सूती कपड़े के बदले सोना, चाँदी देने की प्रथा हड़प्पा काल में शुरू हो गई थी। सुमेर की स्थिति वैसी ही थी जैसी बाद को रोम की, फिर पुनर्जागरण काल के यूरोप की हुई। वे सब भारतीय कपड़ा खरीदते थे, बदले में देने लायक उनके पास कोई खास सामान न था। इसलिए वहाँ का सोना-चाँदी भारत में खिंचा चला आता था। तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० में भारत मुख्यतः निर्यातक देश था। मार्क्स ने 1853 में कहा था, "भारत अनादिकाल से विश्व के लिए सूती माल तैयार करने का विशाल कारखाना रहा है"।[32] इस अनादिकाल में अब तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० शामिल है। पिगॉट के विवेचन से तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के बाद यह व्यापार बंद नहीं हो गया। बाद के ऐतिहासिक काल में, पश्चिमी एशिया में, भारतीय कपास को सिंधु कहते थे और यह शब्द ग्रीक में सिंदॉन् रूप में पहुँचा। सूती कपड़े के व्यापार से सिंध प्रदेश का संबंध बना और बिगड़ा, पूरी तरह टूटा नहीं। नगरों का ह्रास हुआ, वे फिर उठ खड़े। केवल सिंदॉन् नहीं, ग्रीक भाषा में भारत के लिए जो इंदॉस् शब्द प्रयुक्त होने लगा, वह इसी सिंधु का रूपांतर था और भारत की पहचान सिंधु से हुई, निस्संदेह उसके व्यापारिक महत्त्व के कारण।

ग. विनिमय के उपकरण

हड़प्पा सभ्यता पर व्यापारी वर्ग की छाप है। उस सभ्यता के अनेक उपकरण इसी वर्ग की विशेष आवश्यकताएँ पूरा करने वाले हैं। इनमें मुद्राओं के विशेष स्वरूप पर पिगॉट ने ध्यान दिया है। ये मुद्राएँ "व्यक्तियों की निजी संपत्ति की पहचान के साधन रूप में" इस्तेमाल की गई थीं।[33] सुमेर में भी मुद्राओं का व्यवहार होता था पर उनके आकार-प्रकार की भिन्नता दिलचस्प है। सुमेर की मुहरें चोंगा (सिलिंडर) जैसी होती थीं। मुहर लगाने के पदार्थ पर उन्हें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लुढ़काया जाता था जिससे कोई दृश्य या रूपाकार अंकित हो जाए।[34] इसके विपरीत हड़प्पाई मुद्राएँ वर्गाकार होती थीं। यहाँ उनके उपयोग में सुविधा का ध्यान सबसे पहले रखा गया है। "इनकी मूल विशेषता यह है कि ये उस श्रेणी की हैं जिसे ठप्पा मुहर (stamp-seal) कहते हैं। मुहर लगाने के लिए जो मुलायम पदार्थ इस्तेमाल किया जाता था, उस पर सीधे इन मुद्राओं को रखकर दबा दिया जाता था जैसे कि सामान्य पद्धति के अनुसार आधुनिक मुहर या स्वचिह्नित मुद्रिका (Signet ring) से करते हैं"।[35] हड़प्पा सभ्यता अनेक बातों में आधुनिक व्यावसायिक सभ्यता का पूर्वाभास देती है, इनमें मुद्राओं का उपयोगितावादी स्वरूप और उनकी व्यवहार विधि शामिल हैं। सुमेर और हड़प्पा की मुद्राओं में भेद का कारण हड़प्पाई व्यापार का अधिक विकास है। इस भेद से एक निष्कर्ष यह भी निकला कि सुमेर को "निश्चय ही ठप्पा मुहरों के उपयोग का स्रोत नहीं माना जा सकता"।[36] भारत में इस उपकरण का विकास स्वतंत्र रूप में हुआ।

ठप्पा मुहरों की तरह भारत में नापतौल की अपनी व्यवस्था थी। बहुत से बाँट मिले हैं और वे सब "एक ही समरूप व्यवस्था के अंतर्गत" हैं।[37] हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के अलावा वे चन्हुदड़ो तथा सिंध और दक्खिनी बलूचिस्तान के छोटे स्थानों में मिले हैं। इससे घरेलू व्यापार के विस्तार का पता चलता है। ये बाँट "बहुत सावधानी से" घनाकार, बिल्लौर जैसे पत्थर (chert) से काट कर बनाए गए थे। उन्हें "परिशुद्धता का चरम ध्यान रखते हुए एक विचित्र व्यवस्था के अंतर्गत क्रमबद्ध किया गया था जो प्राचीन संसार को किसी भी ज्ञात व्यवस्था से स्वतंत्र थी, और जिसके अनुसार व्यवहार, ऐसा लगता है, अन्य स्थानों के सामान्य चलन को देखते, कहीं अधिक नैतिक दायित्वबोध से किया जाता था (graded extremely accurately in a curious system independent of any other known in the ancient world, and one which seems to have been far more scrupulously observed than was the ordinary practice elsewhere)"।[38] बाँट व्यवस्था के स्वतंत्र विकास का अर्थ है विनिमय का स्वतंत्र विकास। इस व्यवस्था के अनुसार व्यवहार में पूरे नैतिक दायित्वबोध का अर्थ है ठग विद्या का अभाव, पश्चिमी एशिया में भारतीय व्यापारियों की सचाई की धाक और इस सचाई के अनुपात में उनकी संपदा में निरंतर वृद्धि। और यह क्रम शताब्दियों तक चलता रहा। बाँट व्यवस्था में अनुपात का घटक था 16 (सोलह)। भारतीय संख्याशास्त्र में अपने पारंपरिक महत्त्व के अलावा वह अंक "आधुनिक सिक्का व्यवस्था में, रुपए के सोलह आने में, सचमुच ही जीवित बना हुआ है"।[38A]

ऐसी ही सुनिश्चित नाप व्यवस्था थी। 13.0 से 13.2 इंच तक का 'फुट' होता था। 20.3 से 20.8 इंच तक का 'क्यूबिट' होता था। मोहेंजोदड़ो के बड़े स्नानागार का निर्माण 13.1 इंच वाले फुट के हिसाब से किया गया था, हड़प्पा में अनाज कुटाई के चबूतरों का निर्माण 13.2 इंच वाले फुट के हिसाब से किया गया था। **फ्लिंडर्स पेट्री** के अनुसार "13.2 इंच वाला फुट पश्चिमी एशिया में, प्रागैतिहासिक यूरोप में, और रोमनकाल के यूरोप में, दूर-दूर तक इस्तेमाल होता था, और दरअसल इंग्लैंड की मध्यकालीन इमारतों में प्रयुक्त होने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाले मिस्री फुट के रूप में जीवित बना रहा'।[39] पिगॉट ने यह स्पष्ट नहीं लिखा कि 13.2 इंच वाले फुट की शुरुआत भारत से हुई और यहाँ से पश्चिमी एशिया होता हुआ वह यूरोप और यूरोप से इंग्लैंड पहुँचा। पर उनके विवरण से निष्कर्ष यही निकलता है। हड़प्पा में एक काँस्य दंड मिला था। इसमें 0.3676 इंच वाले घटक चिह्नित थे। ये 20.62 इंच वाले 'क्यूबिट' से संबद्ध किए जा सकते हैं, "यह घटक प्राचीन संसार में अक्सर प्रयुक्त होता था"।[40] 13.2 इंच वाले फुट की तरह "20.62 इंच वाले 'शाही क्यूबिट' का व्यवहार भी उसी प्रकार दूर-दूर तक होता रहा है।[41] नगर-निर्माण की सुनियोजित व्यवस्था से इस मापतंत्र का गहरा संबंध था। पिगॉट कहते हैं, "एकदम ठीक-ठीक बने इन मापदंडों के पीछे, और बेशक हड़प्पा की मार्ग व्यवस्थाओं और गृह योजनाओं के समस्त विस्तार के पीछे, व्यावहारिक रेखागणित और भू-सर्वेक्षण का पुष्ट ज्ञान होना चाहिए"।[42]

विनिमय के विकास के साथ उससे संलग्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं का विकास होता है। सिंधु घाटी में नियोजित नगर-निर्माण की शुरुआत हुई; मानना चाहिए, व्यावहारिक रेखागणित और भू-सर्वेक्षण की शुरुआत भी यहीं से हुई। विनिमय के विकास से लेखन कौशल का उद्भव और विकास भी जुड़ा हुआ है। बहुत अच्छा कहा है कि "व्यापारियों और व्यापार से लेखन और गणित की ओर संक्रमण काफ़ी तर्कसंगत है।[43] इस तरह हड़प्पा की लिपि का आविष्कार हुआ। निजी माल की पहचान के लिए मुद्राओं का उपयोग तो होता ही था, दूर-दूर तक फैले हुए देशी-विदेशी कारोबार का हिसाब रखने के लिए बही खाता भी ज़रूर रहा होगा। बही खाता जैसी कोई चीज़ मिली नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका अभाव था। पिगॉट ने इस संभावना का उल्लेख किया है कि अस्थायी महत्त्व के दस्तावेज़ों के लिए ऐसे पदार्थ का उपयोग किया गया हो जो टिकाऊ न रहा हो।[44] हड़प्पा क्षेत्र के बाँटों पर उनका वज़न अंकित नहीं है। इससे कुछ विद्वानों ने अनुमान किया कि इन बाँटों को इस्तेमाल करने वाले सौदागर लेखन कला से, या लिखित गणित से, अनभिज्ञ थे। पिगॉट ने उचित ही इस अनुमान को अस्वीकार किया है।[45]

इस प्रसंग में कोसंबी ने रोमन लेखक स्ट्राबो के आधार पर सिकंदर के नौसेनापति नेऑर्कॉस का जो हवाला दिया है, वह उल्लेखनीय है। नेऑर्कॉस ने लक्ष्य किया था कि भारत के लोग महीन कपड़े पर लिखते हैं।[46] कोसंबी ने इस मत का हवाला भी दिया है कि सिंधु घाटी के लोग अपने दस्तावेज़ों के लिए ताड़ पत्र इस्तेमाल करते थे।[47] व्यापार की आवश्यकता के अलावा राज्यसत्ता की आवश्यकताएँ थीं। पिगॉट ने हड़प्पा राज्य को साम्राज्य कहा है, उसकी दो राजधानियाँ मानी हैं—हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो, विस्तृत नौकरशाही-तंत्र के शताब्दियों तक गतिशील रहने पर ज़ोर दिया है। लिखा-पढ़ी के बिना यह सारी कार्यवाही संभव नहीं जान पड़ती। उन्होंने जिन साम्राज्यों से हड़प्पा राज्य की तुलना की है, वे सब राजकाज में लेखन कौशल से काम लेते थे। सिंधु घाटी के व्यापारिक और राजकीय दस्तावेज़ नष्ट हो गए—यही मानना उचित है। उनके अस्तित्व से इनकार करना अनुचित है।

पिगॉट ने अनेक साम्राज्यों से हड़प्पा की जो तुलना की है, वह दिलचस्प है। उसके

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विस्तार और नागर स्वरूप के उल्लेख के बाद उन्होंने पिछड़े हुए ब्रिटेन में आगे बढ़े हुए रोमन शासन को याद किया है: "किसी ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ के लिए अनिवार्यतः इसका समतुल्य है रोमन साम्राज्य जो उसके अपने देश की प्रागैतिहासिक लोहे युगीन बर्बर बस्तियों पर आ गया था"।[48] सामाजिक विकास के विचार से रोमन शासक स्वयं अपना बर्बर युग छोड़ कर एक लंबा फासला लेकर आए थे। उसी तरह हड़प्पा राज्य की नागर सभ्यता एक लंबे विकास का परिणाम थी। ब्रिटेन के नागरिक अपने बर्बर युग के मुक़ाबले तो रोमन लोगों को सभ्य मानते ही थे, 16 वीं – 17 वीं सदियों में भी वे जब आधुनिक युग में प्रवेश कर रहे थे, उस समय भी रोमन सभ्यता उनके लिए आदर्श सभ्यता थी। क़ानून से लेकर साहित्य तक वे रोमन आदर्शों का अनुसरण करते थे। रोमन समाज में दास प्रथा का चलन था पर अँग्रेज़ों के लिए यह उस समाज पर कलंक न था क्योंकि वे स्वयं उस समय अफ़्रीकी हब्शियों को पकड़ कर गुलामों के रूप में बेच रहे थे। रोमन शासन ब्रिटेनवासियों को युद्ध में परास्त करके उन पर लादा गया था। हड़प्पाई शासकों ने सैनिक अभियानों द्वारा दूसरों के देश जीत कर वहाँ अपनी सत्ता स्थापित की हो, इसका प्रमाण नहीं है; न इस तरह के साम्राज्य-विस्तार की बात पिगॉट या किसी अन्य पुरातत्वज्ञ ने कही है। उनके विवेचन से जो चीज़ उभर कर सामने आती है, वह व्यापार का शांतिपूर्ण प्रसार है। मार्के की बात यह है कि लौह युग में ब्रिटेन और रोम दोनों थे पर एक बर्बर था, दूसरा सभ्य। और हड़प्पा राज्य अभी काँस्य युग में था, फिर भी वह रोम के समतुल्य था! सभ्यता के विकास में लौह युग आगे, काँस्य युग पीछे, यह धारणा खंडित हो जाती है। मनुष्य किस धातु से उपकरण बनाते हैं, सभ्यता के विकास के लिए यह तथ्य निर्णायक नहीं है; निर्णायक तथ्य यह है कि वे उन उपकरणों का प्रयोग किस काम के लिए करते हैं और इस काम के दौरान आपस में किस तरह के सामाजिक संबंध क़ायम करते हैं।

घ. हड़प्पा का उत्तराधिकारी– मौर्य साम्राज्य

पिगॉट ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो को एक ही साम्राज्य की दो राजधानी माना है। इसके लिए वह भारत के ही एक साम्राज्य का उदाहरण देते हैं : "उत्तरपश्चिमी भारत के ऐतिहासिक समतुल्य याद आते हैं जब एक ही राज्य पर शक और कुषाण, उत्तर में तक्षशिला अथवा पेशावर से, और दक्षिण में मथुरा से, शासन करते थे"।[49] शकों और कुषाणों की तुलना ब्रिटेन के रोमन विजेताओं से की जा सकती है; अंतर यह है कि वहाँ रोमन विजेता ब्रिटेनवासियों को सभ्य बना रहे थे, यहाँ भारतवासी शकों और कुषाणों को सभ्य बना रहे थे। यही नहीं, रोमनों के विपरीत शक और कुषाण भारतीय समाज में घुल-मिलकर एक हो गए।

सबसे दिलचस्प है हड़प्पा राज्य से मौर्य साम्राज्य की तुलना। इस तुलना का महत्व असाधारण है। मौर्य साम्राज्य हड़प्पा राज्य से तुलनीय ही नहीं है, वह उसका उत्तराधिकारी भी है। दोनों का आपसी संबंध स्थापित हुआ है भारतीय इतिहास की अटूट परंपरा के कारण। यूनानी राजदूत **मेगस्थनेस** ने स्वयं को जिस सभ्यता में पाया, उसका "वस्तुगत वर्णन" किया।[50] उन्होंने ऐसी शासन व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया जो कम से कम उत्तर भारत के एक बड़े

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भाग पर नियंत्रण कायम किए थी। वह "पूर्णतः साक्षर, नागर और अत्यंत संगठित" थी। गंगा तट पर विशाल नगर पाटलिपुत्र के भीतर प्राचीर से घिरे सुदृढ़ दुर्ग से यह व्यवस्था संचालित थी। राज्य को एक शक्तिशाली सेना सुसंबद्ध किए थी। सामरिक कार्यालय में पैदल, घुड़सवार आदि दलों की देखभाल करने वाले छह विभाग थे। नागरिक सेवा का संगठन कम विस्तृत न था। इसमें कृषि और सार्वजनिक कार्यों का मंत्रालय था। सड़क निर्माण, नहरें, खानें, भूमिकर और हिंस्र पशुओं का आखेट—यह सब इसके ज़िम्मे था। उद्योग, बाँट और नाप, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण, राजकीय बिक्री भंडारों पर नियंत्रण, बिक्री कर संग्रह, विदेशी आगंतुकों से संबंधित मामलों का पर्यवेक्षण,यह सब नगर परिषद के छह विभागों के अधीन था। सेना का नेतृत्व सम्राट के हाथ में था।

मेगस्थनेस के खंडित विवरण में मौर्य राज्यसत्ता का यह चित्र देख कर पिगॉट को हड़प्पा राज्य का वह चित्र याद आया जो पुरातात्विक सामग्री के आधार पर स्वयं उन्होंने बनाया था: "भारत के एक विशाल भूखंड पर अपनी सत्ता क़ायम करने वाली एक अधिकारवादी शासन व्यवस्था का यह विस्मयकारी चित्र : उद्योग पर, नापतौल पर नियंत्रण; विस्तीर्ण नगर सभ्यता, उसका केंद्रबद्ध प्रशासन;—अवश्य ही इसमें कुछ बहुत ही सुपरिचित है। आखिर हड़प्पा सभ्यता की सामग्री से जो चित्र हम पुनर्निर्मित करते हैं, वह इससे बहुत भिन्न नहीं है"।[51] तब मौर्यकाल की यह सभ्यता आर्यों की आदिम संस्कृति का विकास थी या हड़प्पा सभ्यता का नया संस्करण थी ? पिगॉट कहते हैं: "मौर्य साम्राज्य उस आर्य परंपरा के देशी विकास का परिणाम हो सकता है जो पश्चिम में लट्ठों के झोंपड़ों के निम्न स्तर से आरंभ हुई और एक हज़ार साल बाद इस परिष्कृत नौकरशाही राज्यसत्ता तक पहुँची। पर क्या हम भारत की उस दूसरी, अधिक प्राचीन, नागर परंपरा की एकबारगी अनदेखी कर सकते हैं जो आर्यों को मिली थी?"[52] पिगॉट के लिए आर्य विदेशी थे, बाहर से आने पर उन्हें यह हड़प्पा सभ्यता मिली। वे उसे नष्ट नहीं कर पाए, वह मौर्य साम्राज्य में फिर जी उठी।

आगे लिखा है: "चंद्रगुप्त मौर्य विदेशी नहीं थे, हर्ष या बाबर जैसे हमलावर नहीं थे जिन्होंने उत्तर-पश्चिम से आकर भारतीय जन पर अपनी इच्छा लाद दी हो, वरन् वह भारत के ही अंदर एक लंबी परंपरा की उपज थे। उन्होंने बहुत दिनों से चली आती रीति को अपने शासन का आधार बनाया होगा। इस रीति में व्यापारिक संगठन और नौकरशाही वाली हड़प्पा की प्राचीन नागरिक परंपरा तथा अधिक बर्बर किंतु स्फूर्तिदायक आर्य योद्धा जाति (warrior caste) घुलमिल गई थीं। यह जाति राज्यसत्ता को उसके शत्रुओं के विरुद्ध सुदृढ़ बना सकती थी और जो हड़प्पा के पतन के लिए जिम्मेदार ठहराव और ह्रास की घातक प्रवृत्ति के आड़े आ सके"।[53] यह मानते हुए भी कि आर्यों ने आक्रमण किया, पिगॉट हड़प्पा सभ्यता के अवसान के लिए उसी के ठहराव को, उसी के ह्रास की घातक प्रवृत्ति को, जिम्मेदार ठहराते हैं। उनके विचार से भारत को शक्तिशाली सैन्य संगठन की क्षमता प्राप्त हो गई जो पहले के युग में नहीं थी। आर्यों के इस योगदान को स्वीकार करते हुए पिगॉट ज़ोर देते हैं मौर्य साम्राज्य की असैनिक विरासत पर।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मार्शल ने हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों और उनके कर्मकांड पर सिंधु सभ्यता के प्रभाव को अधिक महत्व दिया था। पिगॉट ने उस सभ्यता के आर्थिक-राजनीतिक प्रभाव पर बल देते हुए लिखा: "शायद यह कहना कि चंद्रगुप्त मौर्य और उनके वंशज हड़प्पा साम्राज्य के प्रेत थे जो उसके खंडहरों पर मुकुट पहने बैठे थे या टोयनबी के शब्दों में यह दावा करना कि हड़प्पा राज्य ने मौर्यों को 'पितृत्व प्रदान' ('apparented') किया था, अतिशयोक्तिपूर्ण होगा। पर भारतीय मध्यकाल के जटिल ताने-बाने में अवश्य ही पंजाब और सिंधु की प्राचीन नगर सभ्यता का योगदान थोड़ा नहीं था। और यह योगदान केवल धार्मिक परिकल्पनाओं अथवा कर्मकांड तथा संस्कार संबंधी रीतियों के क्षेत्र में ही नहीं था: मध्यकालीन हिंदू समाज का पूरा स्वरूप, उसके राज्यतंत्र और शासन की संरचना, अनिवार्यतः सिंध और पंजाब की काँस्ययुगीन सभ्यता का प्रतिबिंब (reflection) लगते हैं"।[54] (यहाँ सिंधु नदी है, सिंध प्रदेश है)। पिगॉट ने धार्मिक विश्वासों और रीतियों को हिंदू समाज के पूरे स्वरूप में अंतर्भुक्त करके उस स्वरूप को इन विश्वासों और रीतियों से बड़ा माना है। उस स्वरूप में इनके अलावा जो मुख्य तत्व हैं, वे आर्थिक और राजनीतिक हैं। चंद्रगुप्त मौर्य ने हड़प्पा सभ्यता की जिस विशेष धरोहर की रक्षा की, वह असैनिक है, आर्थिक और राजनीतिक है। मगध केंद्रित चंद्रगुप्त का शासन सिंध और पंजाब की सभ्यता का प्रतिबिंब हो तो उसे देश के एकीकरण का प्रभावशाली निमित्त मानना चाहिए। स्वभावतः पिगॉट के विवेचन में हड़प्पा सभ्यता के अवसान पर ज़ोर नहीं है। वह मानते हैं, "हड़प्पा परंपरा के अकस्मात और पूर्णतः नष्ट हो जाने की संभावना बहुत कम है"।[55] ज़ोर निरंतरता पर है।

ड. पगार, श्रम और राज्यसत्ता

पिगॉट के लिए पहली शताब्दी ई० पू० अंधकार युग है। इसके उत्तरार्ध में पश्चिम से आया हुआ प्रकाश फैल जाता है मेगस्थनेस के विवरण के रूप में। मेगस्थनेस ने मौर्यकालीन सभ्यता का निर्माण नहीं किया, केवल उसका वर्णन किया। हड़प्पा परंपरा उस 'अंधकार युग' में जीवित थी, केवल उसके विवरण लुप्त हो गए हैं। जो प्राप्त हैं, उन पर पिगॉट ने ध्यान नहीं दिया। इनमें असाधारण महत्त्व का ग्रंथ है **कौटिल्य** का **अर्थशास्त्र**। कौटिल्य ने बार-बार अपने से पहले के आचार्यों का उल्लेख किया है। उनके ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि कौटिल्य से पहले अर्थशास्त्र का अभाव था। कौटिल्य से पहले की अर्थशास्त्र-परंपरा यह सिद्ध करती है कि नगर सभ्यता की परंपरा जीवित थी। इस नगर परंपरा और अर्थशास्त्र की परंपरा के आधार पर ही कौटिल्य ने अपने ग्रंथ की रचना की थी। पिगॉट ने हड़प्पाई अर्थतंत्र का जो विवरण दिया है, उससे **अर्थशास्त्र** के ऐतिहासिक आधार को समझने में सहायता मिलती है। उस विवरण के अनेक मुद्दों की पुष्टि इस ग्रंथ से होती है, जो मुद्दे उपेक्षित रह गए हैं, उन पर ध्यान दिया जा सकता है। पिगॉट के विवेचन में जो अंतर्विरोध और पूर्वाग्रह हैं, उन्हें दूर करने में इससे सहायता मिल सकती है। हड़प्पाई उद्योग संगठित और नियोजित है। **अर्थशास्त्र** में ऐसे नियोजन और संगठन का विस्तृत ब्यौरा है। ग्राहकों की माँग का ध्यान रखने, वस्तुओं की कमी या अधिकता के अनुरूप उनका मूल्य निर्धारित कर-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लिए एक अधिकारी है **पण्याध्यक्ष** (२.१६.१-२)। विक्रेता के तराजू , बाँट-बटखरों की जाँच के लिए है **संस्थाध्यक्ष** (५.२.२)। सूत कातने, कपड़ा बुनने की व्यवस्था के लिए **सूत्राध्यक्ष** है (२.२३.१)। कताई के लिए **सूत्रशाला** है (२.२३.६)। स्त्रियाँ घर पर भी सूत कातती हैं और यहाँ दे जाती हैं (उप०)। देश-विदेश के व्यापार का नियमपूर्वक संचालन पण्याध्यक्ष का काम है; उसमें यातायात के साधनों की व्यवस्था भी शामिल है। व्यापारी स्थल मार्गों के अलावा जल मार्गों का उपयोग भी करते हैं (२.१६.६-११)। **पौतवाध्यक्ष** नाप-तौल के उपकरणों की जाँच ही नहीं करता, उन्हें बनवाता भी है (२.१८.१)। अनाज से लेकर सोना-चाँदी तौलने तक के बाँटों का विवरण विस्तार से दिया गया है। दिलचस्प बात है कि बाँटों के निर्माण के लिए लोहे के अतिरिक्त मगध और मेकल के पत्थरों का निर्देश भी है (२.१६.७)। व्यापारी के लिए माल पर मुहर लगाना ज़रूरी है; **शुल्कशाला** में राजकर्मचारी उसका नाम-पता आदि और माल का विवरण लिख लेते हैं (२.२१.२)।

नगर का उद्योग और कृषितंत्र एक ही अर्थव्यवस्था के अंतर्गत हैं। खेती की देखभाल **सीताध्यक्ष** करता है (२.२४.१)। इसी तरह पशुपालन के लिए **गोअध्यक्ष** है (२.२६.१)। मकान एक-दूसरे से कितने फासले पर हों, उनमें कोठे किस-किस काम के लिए हों, पानी की निकासी की व्यवस्था किस प्रकार की हो, खिड़की-दरवाजे किधर हों, इस सबके नियम भी बता दिए गए हैं (२.४-११)। **सन्निधाता** नगर में अनाज एकत्र करने के लिए **कोष्ठागार**, वन से प्राप्त वस्तु के लिए **कुप्यगृह** बनवाएगा (२.५.१)। कोष्ठागार में अनेक कोठे होंगे जिनमें स्पष्ट ही अलग-अलग तरह का अनाज रखा जाता होगा (२.५.२)। नगर कहाँ बसाए जाएँ (२.४), दुर्ग कहाँ और किस तरह के बनाए जाएँ (२,३), इसका विधान है। यह सब हड़प्पा सभ्यता की विशेषताओं के अनुरूप है। जिस मुद्दे पर पिगॉट का ध्यान नहीं है, वह **धातु उद्योग** है। **अर्थशास्त्र** के अनुसार सेना और कोष का आधार खानें हैं (२.१२.३१)। किस तरह की भूमि में कैसी धातु मिलती है, धातु का परिष्कार किस तरह किया जाए, यह बताने के बाद **लोहाध्यक्ष** के लिए आदेश है कि वह धातु-संबंधी कार्य अपनी देख-रेख में कराए (२.१२)। शंख, वज्र, प्रवाल आदि के उत्पादन और विक्रय के लिए **खन्याध्यक्ष** अलग है; नमक के संग्रह और विक्रय के लिए **लवणाध्यक्ष** है। इन सब के ऊपर **आकराध्यक्ष** है जिसे धातुशास्त्र, रसायन आदि का ज्ञान होना चाहिए (२.१२.१)। हड़प्पाई उद्योग में धातु निर्मित वस्तुओं का जो महत्त्व है, उसे देखते यह संभव लगता है कि खानों से संबंधित उद्यम को काफ़ी विस्तार से बहुत कुछ इसी तरह संगठित किया गया होगा।

हड़प्पाई राज्यसत्ता का प्रधान लक्ष्य **बिकाऊ माल** का उत्पादन और वितरण था। यही लक्ष्य मौर्य राज्यसत्ता का भी था। कौटिल्य ने व्यापारियों की स्वच्छंद मुनाफ़ाखोरी को प्रतिबंधित किया था, इसलिए कोसंबी उन्हें बिकाऊ माल के उत्पादन की प्रगति में बाधक मानते हैं। उनका मत है कि राज्यसत्ता के लिए और कौटिल्य के लिए व्यापारी चोर है, जनता का शत्रु है, राष्ट्र के लिए विपत्ति है।[56] "इस प्रकार **अर्थशास्त्र** के राजनीतिक सिद्धांत में, और इस कारण उसकी प्रशासनिक नीति में एक बुनियादी अंतर्विरोध था जिसने आगे की प्रगति का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रास्ता बंद कर दिया''।[57] वह मानते हैं कि जिस समाज में यह पुस्तक लिखी गई थी, वह समाज ''बड़े पैमाने के बिकाऊ माल के उत्पादन में और दूर-दूर तक के व्यापार में लगा हुआ था''।[58] जैसा कि पिगॉट ने कहा था, व्यापारियों की अपनी आचार संहिता के बिना कोई भी राज्यसत्ता केवल आदेश जारी करके इतने बड़े पैमाने पर व्यापार का संगठन नहीं कर सकती। कोसंबी ने सामाजिक विकास को इस रूप में देखा है कि राजा अब बहुत से कबीलाई सरदारों का उत्तराधिकारी था। वह खेती और उद्योग से उनकी उपज का एक भाग मालगुज़ारी के रूप में वसूल करता था, फिर ''इस प्राप्त सामग्री के काफ़ी हिस्से को उसे बिकाऊ माल में तब्दील करना पड़ता था जिससे कि वह फ़ौज़ और नौकरशाही को वेतन दे सके''।[59] इस तरह वास्तव में बिकाऊ माल का उत्पादन होता ही न था, जो अतिरिक्त उपज मालगुज़ारी के रूप में मिलती थी, राजा उसी को बिकाऊ माल में तब्दील कर लेता था। इसके लिए अलग से व्यापारी वर्ग की ज़रूरत न होगी, सारा काम वेतनभोगी राजकर्मचारी कर लेंगे।

पर कौटिल्य के समाज में अलग से व्यापारी वर्ग है। स्वयं कोसंबी के अनुसार व्यापारियों के लिए आवश्यक था कि वे नापतौल के नियम मानें; एक से दूसरे जनपद में माल ले जाने पर उन्हें चुंगी देनी होती थी, देशी माल पर 5 प्रतिशत और विदेशी माल पर 10 प्रतिशत मुनाफ़ा वे ले सकते थे।[60] यहाँ व्यापारी हैं, मुनाफ़ा है, केवल मुनाफ़ा नियंत्रित है। कौटिल्य के समाज में अनेक कुरीतियाँ व्यापारियों के धन-संग्रह से उत्पन्न हुई थीं। कोसंबी कहते हैं, ''जुआ, वेश्यागमन और मद्यपान उस नए नागरिक जीवन के कष्टदायी सखा हैं जो बिकाऊ माल के उत्पादन, व्यापार और शोषण पर आधारित था''।[61] बिकाऊ माल का उत्पादन है, शोषण है, नया नागरिक जीवन है, उसके साथ उत्पन्न होने वाली कुरीतियाँ हैं।

अन्यत्र मगध के आर्थिक विकास की व्याख्या करते हुए कोसंबी ने ऋण और ब्याज का उल्लेख किया है। फिर उनके बारे में लिखा है, ''ये दोनों मगध के नए उत्पादक रूपों—व्यापार, बिकाऊ माल का उत्पादन और व्यापारिक पूँजी (merchant capital)—के कारण और परिणाम दोनों हैं''।[62] मगध ने और बहुत से समाजों की तरह सूदखोर पूँजी से व्यापारिक पूँजी तक प्रगति की थी। व्यापारिक पूँजी थी, इसलिए मानना चाहिए कि व्यापारिक वर्ग भी था। कोसंबी अशोक की समाज-व्यवस्था को चंद्रगुप्त मौर्य की समाज- व्यवस्था से भिन्न मानते हैं। चंद्रगुप्त की समाज-व्यवस्था की विशेषता है ''राज्यसत्ता के प्राधान्य में चलने वाला बिकाऊ माल का उत्पादन (State dominated commodity production)''।[63] यह स्थापना सही है। बिकाऊ माल का उत्पादन और वितरण राज्यसत्ता की देखरेख में नियोजित ढंग से होता है। इसीलिए उस माल के उत्पादन में राज्यसत्ता की प्रधानता है। यह प्रधानता आर्थिक प्रगति में बाधक न होकर सहायक है क्योंकि व्यापारी के मुनाफ़े को मर्यादित करके वह उपभोक्ताओं को ठगे जाने से बचाती है।

कोसंबी का मत है कि अशोक का धर्म-परिवर्तन पूरी समाज-व्यवस्था का परिवर्तन था। राज्य-नियंत्रित उद्योग-व्यापार का स्थान गाँवों ने ले लिया जो ''मुख्यतः अपनी अन्न की तथा कुछ अनिवार्य औद्योगिक वस्तुओं की आंतरिक आवश्यकता स्वयं पूरी कर लेते थे''।[64]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अशोककालीन भारत स्वायत्त ग्राम-समाजों का देश है या नहीं, यह प्रश्न अलग है। महत्वपूर्ण स्थापना यह है कि चंद्रगुप्त मौर्य के समय में राज्यसत्ता जिस उत्पादन पर हावी है, वह बिकाऊ माल का उत्पादन है। वह योजनाबद्ध ढंग से इस माल के उत्पादन और वितरण की व्यवस्था करती है। धातु उद्योग इसी व्यवस्था के अधीन है और यह क्रम परंपरागत है। **अर्थशास्त्र** के "लेखक ने भारी उद्योग का मूल्य पहचाना था; वर्तमान शताब्दी से पहले भारत में कम ही लोगों ने उसका मूल्य इस तरह पहचाना था। स्पष्ट ही मगध राज्य के प्रशासक, मौर्यों से बहुत-बहुत पहले, धातुओं के इस नियंत्रण को अपने मानक व्यवहार का अंग बना चुके थे।" धातु उद्योग पर राजकीय नियंत्रण, इस नियंत्रण द्वारा औद्योगिक विकास में राज्यसत्ता की भागीदारी, यह परंपरा चंद्रगुप्त मौर्य के बहुत पहले से आ रही थी। (कोसंबी ने जिसे भारी उद्योग कहा है, वह धातु उद्योग ही है)।

इसी तरह कौटिल्य ने जिस शासन व्यवस्था का वर्णन किया है, उसकी शुरुआत चंद्रगुप्त मौर्य से नहीं होती। कोसंबी के अनुसार **अर्थशास्त्र** में जहाँ-तहाँ प्रक्षिप्त अंश हो सकते हैं पर "अधिकांश ग्रंथ का सुदृढ़ आधार पहले का प्रशासनिक व्यवहार है और राज्यसत्ता का वह सिद्धांत है जो मौर्यों से पहले का ही हो सकता है"।[65] **अर्थशास्त्र** मौर्यकाल से पहले की आर्थिक राजनीतिक परंपरा के आधार पर लिखा गया है, यह मान्यता पिगॉट की स्थापना से मिलती है कि मौर्य साम्राज्य हड़प्पा राज्य का प्रतिबिंब है। मौर्य-हड़प्पा साम्राज्यों के विवेचन में, **अर्थशास्त्र** के आधार पर, संगठित धातु उद्योग को जोड़ देना चाहिए। यह आधार परंपरागत है और हड़प्पा काल से मौर्यकाल तक चला आ रहा है।

इस आधार के बारे में जो सबसे महत्वपूर्ण जानकारी **अर्थशास्त्र** से मिलती है, वह श्रम के बारे में है। कौटिल्य के अर्थतंत्र का मूल सूत्र है: हर व्यक्ति को उसके श्रम के लिए **पगार** दी जाए। पगार के लिए पारिभाषिक शब्द है **वेतन**। जो पगार पहले से तै कर ली जाए वह **संभाषित** है, काम देखकर बाद में दी जाए, वह **असंभाषित** है (३.१३.१६)। पगार देने की रीति पहले से चली आ रही है; **इति आचार्याः** कहकर कौटिल्य पुराने आचार्यों के मत का उल्लेख करते हैं। मत यह था कि कामगार उपस्थित हो और काम न करे, तो भी उसे पगार देनी चाहिए। **नेति कौटिल्यः** कहकर कौटिल्य मतभेद व्यक्त करते हैं। उनका कहना है, पगार काम करने की ही दी जाती है, काम न करने की नहीं। यदि **भर्ता** थोड़ा ही काम कराए और आगे न कराए, तो उसे पूरा मान कर पगार देनी होगी (३.१४.४-५)। श्रमिक भर्ता के निजी कार्य अथवा व्यवसाय के लिए श्रम करते हैं और राज्य के लिए भी। वास्तव में उनका सबसे बड़ा भर्ता राज्य है। वस्त्र व्यवसाय का राजकीय संचालक सूत्राध्यक्ष, जो श्रमकाल और पगार तै हो, उसके अनुसार कारीगरों से काम कराएगा (२.२३.५)। भारत के वस्त्र व्यवसाय की उन्नति का यह मूल कारण है कि समाज का कोई वर्ग अपने विशेषाधिकार के बल पर कारीगरों से ज़बर्दस्ती काम न करा सकता था। काम के लिए उसे पहले से तै की हुई पगार देनी होती थी। हड़प्पाकाल में भारतीय वस्त्र सुमेर में बिकते थे, इससे यह अनुमान तर्कसंगत होगा कि उस समय भी सूत कातने और कपड़ा बुनने के लिए पगार दी जाती थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पगार का चलन खेती के काम में भी था। जो **दास** और **कर्मकर** खेतों में काम करें, उन्हें भोजन वस्त्र के अतिरिक्त प्रति मास सवा पण वेतन भी देना होगा। इसी तरह दूसरे कारीगरों को भोजन वस्त्र और वेतन देना होगा (२.२४.२४)। पगार तै न हुई हो तो खेत मज़दूर को फसल का दसवाँ भाग मिलेगा (३.१३.१६)। **कर्मकर** स्वतंत्र है, **दास** परतंत्र है, पर भोजन वस्त्र और पगार की व्यवस्था दोनों के लिए है। दास संपत्ति (द्रव्य) संग्रह कर सकता है। उसके बाद उसके कुटुंबी उसकी संपत्ति के अधिकारी होते हैं, कोई कुटुंबी न हो तो वह संपत्ति स्वामी की होगी (३.१३.१३)।

बिकाऊ माल का उत्पादन कुशल कारीगर निर्वाहन करते हैं। अपने पेशे या बिरादरी के आधार पर वे अपने संघों में संगठित हैं। सामंती व्यवस्था क़ी के कारीगर संघों की तरह ये संघ स्वतंत्र नहीं हैं। वे सारा काम राज्यसत्ता की निगरानी में करते हैं। नियम भंग करने पर उन्हें दंड मिल सकता है (३.१४.६)। कारीगर की पगार भर्ता के साथ मिलकर संघ ही तै करे, ऐसा कोई नियम नहीं है। कौटिल्य के विवेचन से स्पष्ट है, कि कारीगर व्यक्तिगत रूप से काम और पगार के बारे में शर्तें तै कर सकते हैं और शर्तें पूरी न करने पर दंडित भी हो सकते हैं।• संघों से अलग वे मिलकर किसी काम को पूरा करने का भार उठा सकते हैं। **संघभृताः** से पृथक इन्हें **संभूयसमुत्थातारः** कहा गया है (३.१४.७)। जैसे तै हुआ हो, वैसे अथवा बराबर-बराबर वेतन की राशि वे आपस में बाँट लेंगे। यह पगार व्यवस्था इतनी व्यापक है कि यज्ञ कराने वाले पुरोहित भी प्राप्त धन आपसी समझौते के अनुसार **(यथासंभाषितं वेतनम्)** अथवा बराबर-बराबर बाँट लेंगे (३.१४.११)। यज्ञ कराने वाला है यजमान, यज्ञ करने वाला है याजक। यजमानों के अपने कुल पुरोहित हों जो बदले न जा सकें, यह स्थिति नहीं है। उनकी दक्षिणा परंपरा द्वारा निर्धारित हो, यह स्थिति भी नहीं है। वे श्रमिकों की तरह यजमान से अनुबंध करते हैं, अनुबंध का निर्वाह न करने पर वे और यजमान दोनों दंडित हो सकते हैं (३.१४.१५.)। अर्थशास्त्र के भृत्य **भरणीयम्** अध्याय (५,३) में जिनके वेतन का परिमाण बताया गया है, उनमे ऋत्विक्, मंत्री, सेनापति, युवराज, पटरानी, सूत, मागध शिल्पी, कुशीलव (नटअभिनेता), संगतराश **(शैलखनक)** मनुष्यों और पशुओं के चिकित्सक, हिसाब-किताब रखनेवाले और लेखन से संबंधित कर्मचारी **(संख्यायकलेखकादिवर्गाः**, प्राचीन राज्यसत्ता का साक्षर नौकरशाही वर्ग) भी हैं।

च. आर्थिक विकास—बल प्रयोग से ?

अधिकांश इतिहासकारों की तरह पिगॉट भी वेतन देकर श्रम कराने की इस प्रथा से अपरिचित हैं। इसलिए वह निरंकुश राज्यसत्ता की कल्पना करते हैं जो बलपूर्वक दासों से श्रम कराती है। पूरब के देशों पर निरंकुश राजा शासन करते हैं, देश की भूमि पर, संपत्ति पर, उनका अधिकार होता है, प्रजा गुलाम होती है—पश्चिमी विद्वानों ने इस धारणा का खूब प्रचार किया है। पूर्वाग्रह के रूप में यह धारणा पिगॉट के विवेचन में विद्यमान है। उनके विचार से यहाँ के शासक पुरोहित थे। यह धारणा उन्हें व्हीलर से प्राप्त हुई थी। व्हीलर का मत था कि सुमेर में नगर की संपत्ति और वहाँ के अनुशासन पर नियंत्रण नगर देवता अर्थात पुरोहितवर्ग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किंवा पुरोहित-राजा का था। नगर के जीवन का केंद्र था मंदिर, नगर प्रशासन उसी के चारों ओर देवता के आदेश के नाम पर, संगठित किया गया था। व्हीलर के अनुसार वहाँ की नौकरशाही मशीन खूब विकसित पर जड़ थी; "अतिरिक्त संपदा के संगठन, वितरण और संरक्षण की योग्यता तो उसमें थी पर उससे व्यक्ति की राजनीतिक स्वतंत्रता न पनप सकती थी।" यह धारणा सुमेर के ही संदर्भ में कितना सही है, वह प्रश्न अलग है। पिगॉट ने उसे सही माना, फिर हड़प्पा सभ्यता पर उसे चस्पाँ कर दिया। इस सभ्यता की जो तस्वीर बनी, वह ऐसे राज्य की थी जिस पर "पुरोहित-राजा शासन करते थे" और उनके हाथ में "स्वेच्छाचारी और निरंकुश सत्ता थी"।[66]

पश्चिमी शासनतंत्र की विशेषता है व्यक्ति की स्वतंत्रता, पूर्वी शासनतंत्र की विशेषता है राजा की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता—व्हीलर और पिगॉट का यह पूर्वाग्रह साफ़ देखा जा सकता है। स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता के लिए आवश्यक है सैन्य बल। ऐसा बल हड़प्पा शासकों के पास था, यह दावा न पिगॉट का है, न और किसी पुरातत्वज्ञ का। उल्टा पिगॉट यह मानते हैं कि हड़प्पा के उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त मौर्य ने सैन्य बल संगठित करना आर्यों से सीखा ! निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता की स्थापना को शायद कमज़ोर पड़ते देखकर उन्होंने स्वेच्छाचारिता के ऊपर धार्मिक आस्था को प्रतिष्ठित किया। किंतु हड़प्पा के शासक स्वेच्छाचारी होते तो उनके द्वारा संरक्षित कला-कौशल की उपज में बड़ी विविधता होती। इसके विपरीत पिगॉट के अनुसार यहाँ तो सब-कुछ साँचे में ढला, एकरूप है। यहाँ के शासक ऐसे स्वेच्छाचारी हैं कि शताब्दियों तक उनकी इच्छाएँ बदलती ही नहीं ! इसलिए पिगॉट स्वेच्छाचारी शासक के ऊपर इच्छाविहीन धर्म को प्रतिष्ठित करते हैं। वहाँ ऐसी समाज व्यवस्था थी जिसमें "मंदिर की अपरिवर्तनशील परंपराएँ व्यक्ति शासक की महत्त्वाकांक्षाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण थीं"। अड़चन इतनी ही है कि हड़प्पाई नगरों में मंदिर जैसी चीज़ न तो व्हीलर को मिली, न पिगॉट को, न अन्य किसी को। पिगॉट सोचते हैं, मोहेंजोदड़ो में जो बौद्ध स्तूप है, संभव है, उसके नीचे मंदिर छिपा हो। हड़प्पा से ब्रिटिश इंजिनियर रेल की पटरियाँ डालने को ढेरों ईंटें उठवा ले गए थे, संभव है, वे मंदिर की हों ! फिर भी यह "विचित्र बात" है कि मंदिर जैसी इमारत का पता न इन नगरों में लगा, न और कहीं। उधर सुमेर में, वहाँ की सभ्यता के आदिम, अल उबैदी, दौर से ही "मंदिर का औपचारिक मानचित्र" स्थिर कर दिया गया था। "हड़प्पा की सी रूढ़िवादी सभ्यता" से तो और भी आशा की जाएगी कि उसके प्राचीनतम काल से मंदिर निर्माण का मूल सूत्र ज्यों का त्यों चला आया हो। पर यहाँ मंदिर का निशान तक नहीं है। बड़े मंदिर न सही, दुर्ग के बाहर साधारण लोगों की बस्तियों में मंदिर मिलने चाहिए। पर वहाँ भी नहीं हैं। "ऐसी इमारतों के अभाव से यह अवश्य लक्षित होता है कि विशिष्ट मंदिरों में केंद्रबद्ध उपासना की अपेक्षा घरेलू पूजास्थान अधिक महत्वपूर्ण थे"।[67] मंदिर दुर्ग में नहीं थे जहाँ शासक रहते थे, मंदिर शहर की बस्तियों में नहीं थे जहाँ साधारण जन रहते थे। न शहर का बड़ा मंदिर,न मोहल्ले का छोटा मंदिर—सब लोग पूजा-पाठ अपने-अपने घरों में कर लेते थे। उपासना केंद्रबद्ध नहीं थी। पर राज्यसत्ता केंद्रबद्ध थी और उसका आधार लोगों के धार्मिक विश्वास थे ! उपासना विकेंद्रित, उपासना पर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आधारित 'राज्यसत्ता' केंद्रबद्ध—पिगॉट ने स्वयं को इस अंतर्विरोध में फँसा लिया है।

पिगॉट हड़प्पा सभ्यता से आकर्षित हैं, उससे घृणा भी करते हैं। कुछ-कुछ वैसा ही भाव है जैसा रोम के प्रति है। रोम ने भव्य संस्कृति का निर्माण किया, और उसने ब्रिटेन को अपना गुलाम भी बनाया। उन्हें क्षोभ है कि "हड़प्पा सभ्यता का साँचा ऐसा था कि उसमें बड़े-बड़े स्मारक, जैसे कि मंदिर, महल या मकबरे, बहिष्कृत थे, जिनमें कलात्मक उपलब्धि के विस्फोट से देवताओं की गरिमा, अथवा शाहखर्च, आलीशान, किसी बादशाह का गरूर, उजागर हो पाता"।[68] निंदा में भी स्तुति है। मिस्र, सुमेर, बैबिलोन आदि के साम्राज्यों से यह सभ्यता भिन्न है। उसमें सम्राट नहीं हैं, बड़े-बड़े सामंत नहीं हैं, उसमें स्वर्ग-नरक की कल्पनाओं से जनता को आतंकित करने वाले पुरोहित नहीं हैं। उसमें न राजमहल हैं, न देवमंदिर हैं। इस सभ्यता के प्रधान निर्माता व्यापारी और कारीगर हैं। उसका स्थापत्य अलंकारविहीन है, नगरों की गलियाँ सब एक ही मानक ढंग से व्यवस्थित हैं। "मन मार कर हम उसके निर्मम अधिकारवादी शासनतंत्र (its ruthless authoritarian regime) के परिणाम की तारीफ़ कर सकते हैं, जैसे की प्रांतों में रोमन फ़ौज की सिविल इंजिनियरी की तारीफ़ की जा सकती है, पर वैसे ही बिना उत्साह के"।[69] फ़ौज नहीं है पर शासनतंत्र निर्मम और अधिकारवादी है—इसे अंतर्विरोध के अलावा और क्या कहा जाए ?

हड़प्पा सभ्यता में सब कहीं कौशल संबंधी योग्यता दिखाई देती है। योग्यता ऐसी है मानो फ़ौजी अनुशासन में उसका विकास हुआ हो। "हड़प्पा सभ्यता पर भयानक कार्यकुशलता की छाप है जो रोम की सबसे निकृष्ट बातों की याद दिलाती है।" इन निकृष्ट बातों में एक तो है फ़ौज और दूसरी है दास प्रथा। फ़ौज का तो अभाव था। दासों से बलपूर्वक श्रम कराने पर व्हीलर और पिगॉट ने काफ़ी ज़ोर दिया है। व्हीलर के अनुसार हड़प्पा में जहाँ मज़दूरों के घर थे, वह कुली लाइनों का सारा इलाक़ा "फ़ौजी छावनी की तरह क्रमबद्ध है और अधिकार (authority) का सूचक है।" इससे हड़प्पा सभ्यता के बारे में जो भी जानकारी हो, यह अवश्य जाहिर हो गया कि ब्रिटिश फ़ौज के अफ़सरों की निगाह में सैनिक उनके गुलामथे। ईंटों के फर्श पर जहाँ काठ की बड़ी ओखली में श्रमिक लंबे मूसलों से अनाज कूटते थे, वहाँ ईंटें घिस गई थीं। पिगॉट कहते हैं, उनसे मालूम होता था, "नंगे पैर गुलाम वहाँ खड़े होकर अनाज कूटते थे"।[70] इन गुलामों की आवास व्यवस्था से पिगॉट विषेश क्षुब्ध हैं। पर उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जो ब्रिटिश मज़दूर कारखानों में काम करते थे, वे सिंधु घाटी की मज़दूर बस्तियाँ देखते, तो वे उन्हें स्वर्ग जैसी लगतीं। मोहेंजोदड़ो की मज़दूर बस्ती में प्रत्येक घर 20 फ़ुट × 12 फ़ुट जगह घेरे था। घर में दो कमरे थे, एक छोटा, दूसरा उससे दुगुना बड़ा। हड़प्पा में भी ऐसे ही छोटे-बड़े कमरों वाले घर थे लेकिन प्रत्येक घर मोहेंजोदड़ो से दुगुनी जगह घेरे था। एंगेल्स ने ब्रिटिश मज़दूरों पर अपनी पुस्तक 1844-45 में लिखी थी। उसमें उन्होंने पादरी ऐल्स्टन का बयान उद्धृत किया था। लंदन के बेथनल ग्रीन इलाक़े में सबसे ज़्यादा मज़दूर रहते थे। "यहाँ 1400 घर हैं उनमें 2795 परिवार अथवा 12000 व्यक्ति रहते हैं। जिस भूमि पर यह बड़ी आबादी रहती है, वह 400 वर्ग गज (3600 वर्ग फ़ुट) से कम हैं"।[71] हिसाब

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लगा लें, फ़ी मज़दूर परिवार रहने की जगह कहाँ ज़्यादा थी।

पिगॉट ने हड़प्पा के जिन मज़दूर आवासों की चर्चा की है, वे अनाज कूटने वालों के हैं। धातुकर्मी और कुशल कारीगर इनसे भिन्न आवासों में रहते थे, यह स्पष्ट है। पर कुशल और अकुशल दोनों तरह के श्रमिक उनके विवेचन में एक हो गए हैं और वे सब गुलाम हैं। उनके विचार से योजनाबद्ध अर्थतंत्र गुलामों के बिना चल ही नहीं सकता। "यह अनिवार्य है कि मनहूस कतारों में बने छोटे-छोटे मानक घर, विशाल राजकीय अन्नागार, नगर प्रशासन की आटा चक्कियाँ—योजनाबद्ध अर्थतंत्र के इस अंश का वर्णन करते हुए हम दासों के श्रम का उल्लेख करें"।[72] **अर्थशास्त्र** पर थोड़ा भी ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता कि योजनाबद्ध अर्थतंत्र के लिए दास प्रथा अनिवार्य नहीं है, वह कारीगरों को पगार देकर ज़्यादा कुशलता से चलाया जा सकता है। अन्नागार मौर्यकालीन नगरों में भी थे और वहाँ निम्नतम कोटी के श्रम के लिए भी पगार दी जाती थी। **अर्थशास्त्र** के आधार पर कोसंबी ने लिखा है: "अकुशल कर्म के मेहनतियों को, राज्य और सेना दोनों के लिए, आवश्यक साधन माना जाता था, उन्हें भी 60 पण प्रतिवर्ष की अति निम्न दर से पगार दी जाती थी। यह बात और भी मार्के की इसलिए है कि जिस **विष्टि** शब्द का व्यवहार किया गया है, उसका अर्थ है ज़बरिया मेहनत। बाद को वह पारिश्रमिक दिए बिना कराई जाने वाली सामंती बेगार का सूचक बना। **अर्थशास्त्र** २.१५ में राज्य के (स्थानीय) अन्नागारों के अध्यक्ष को उन पेशेवर लोगों से मेहनत करानी होती है जिनकी जीविका अनाज को पछोरने, कूटने, पीसने से, तिलहन और गन्ना पेरने से, शक्कर बनाने से, ऊन साफ़ करने से चलती है। **अर्थशास्त्र** में **संहनिका** (अथवा **सिंहनिका**) अपरिचित शब्द है। यदि टीकाकार ने ग़लती नहीं की तो वह टैक्स के बदले की जानेवाली श्रम सेवा होगी। ऐसा हो, तो भी अन्नागारों के अध्यक्ष इन मज़दूरों को खाना खिलाते थे और इसके अतिरिक्त प्रति मास कम से कम चाँदी का सवा पण देते थे जिससे कि इसे भी सामंती बेगार नहीं कहा जा सकता"।[73]

मौर्यकालीन नगरों में अन्नागार थे, अनाज कूटने-पीसने वाले श्रमिक थे। भोजन के अलावा इन्हें भी नगद पगार देने की व्यवस्था थी। तुम शूद्र हो, हमारी सेवा करना तुम्हारा धर्म है, यह कहने का, कहे अनुसार काम कराने का विशेषाधिकार किसी को प्राप्त नहीं था। यहाँ न यूनानी-रोमन सामाजों के दासों का श्रम है, न ज़मींदारी-ताल्लुकेदारी व्यवस्था के किसानों की बेगार है। यह बिकाऊ माल का उत्पादन करने वाली व्यवस्था है जिसमें कुशल श्रम के लिए तो समुचित पगार दी ही जाती है, अकुशल श्रम भी पगार और भोजन दिए बिना नहीं कराया जाता। यह परंपरा अवश्य ही पुरानी थी। पिगॉट को हड़प्पा क्षेत्र में दास प्रथा के चलन पर पूरा विश्वास नहीं था। एक जगह उन्होंने "अर्धसेवक (semiservice)श्रमिक वर्ग के औद्योगिक आवासों" का उल्लेख किया है ।[74] दासों और अर्धसेवक श्रमिकों में काफ़ी अंतर है। मोहेंजोदड़ो कई बार बनाया गया, हर बार एक से नियमों का पालन किया गया। इससे "ज़मीन की पट्टेदारी और धंधे का वंशगत स्वरूप लक्षित होता है जैसा कि कारीगर संघों और जाति-बिरादरी (in guilds and a caste system) में पाया जा सकता है"।[75] यहाँ दास

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रथा पर आधारित श्रम की बात फिर खंडित होती है। जाति-बिरादरी और कारीगर संघों का अस्तित्व अवश्य संभव है पर उत्पादन राज्यसत्ता द्वारा नियंत्रित है, उसका उद्देश्य स्वायत्त ग्रामसमाजों की आवश्यकताएँ पूरा करना नहीं है। एक बड़े बाज़ार के लिए बिकाऊ माल का योजनाबद्ध उत्पादन—यह प्रक्रिया जाति-बिरादरी की सीमाएँ तोड़ने वाली, कारीगर संघों को कमज़ोर करने वाली थी। पिगॉट स्वयं कहते हैं कि हड़प्पा का संगठित उद्योग कारीगर संघों के उद्योग से पृथक था। कारीगर संघों की सीमाएँ लाँघने के कारण ही वह 'वास्तव में' संगठित है ।[76]

वास्तव में संगठित उद्योग को स्थायित्व प्रदान किया पगार देकर श्रम कराने की प्रथा ने। कोई भी राज्यसत्ता निरंकुशता के बल पर घरेलू बाज़ार का निर्माण नहीं कर सकती, न वह विदेश व्यापार का संगठन कर सकती है। जहाँ कौशल की ज़रूरत नहीं है, वहाँ दासों से श्रम कराया जा सकता है। हड़प्पाई कारीगर कौशल में पिछड़े हुए नहीं थे, वे जिस तरह का माल तैयार करते थे, वह दासों के श्रम की उपज न हो सकता था। इस माल के उत्पादन में धातुकर्मियों और बुनकरों की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण थी। कौटिल्य ने इस श्रेणी के कारीगरों का जो ऊँचा वेतनमान निर्धारित किया है, वह परंपरागत हो सकता है। पिगॉट ने श्रमिकों के लिए तो कहा कि उनसे बलपूर्वक काम कराया जाता था, व्यापारियों के विषय में नहीं बताया कि निरंकुश राज्यसत्ता व्यापार वैसे कराती थी। वह जानते हैं कोई भी राज्यसत्ता बलप्रयोग द्वारा व्यापार का संगठन नहीं करा सकती। इसलिए वह व्यापारियों द्वारा निर्धारित उनकी अपनी आचार संहिता की बात करते हैं। कहते हैं : "हड़प्पाई संस्कृति के उत्पादों में ज़बरदस्त एकरूपता है। उसकी पूरी व्याख्या कठोरता से पालन कराए जाने वाले कुछ क़ानूनों से नहीं हो सकती। अवश्य ही दृढ़तापूर्वक स्थापित एक व्यापारिक आचार संहिता रही होगी और उत्पादन की मानक तकनीक रही होगी। ईंटों के आकार, भांडों की क्षमता और उनके प्रकार (उनके उबाऊ उपयोगितावादी विविध रूप ज़ो चाक से उतारे जाते हैं) और नाप-तौल की व्यवस्था—यह सब उसी [संहिता और तकनीक] के द्वारा नियंत्रित हो सकता था"।[77] पिगॉट के विवेचन से बार-बार व्यापारी वर्ग की भूमिका उभर कर सामने आती है और इसी भूमिका को वह पुरोहित-राजाओं की निरंकुश सत्ता की दुहाई देकर अस्वीकारना चाहते हैं। अभी कुछ ही शताब्दियों पहले खुली होड़ में मुक़ाबला न कर पाने पर ब्रिटेन के शासकों ने भारतीय माल के आयात पर क़ानूनी पाबंदी लगाई थी। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति से पहले एशियाई-अफ्रीकी बाज़ार के गठन में भारत की अग्रणी भूमिका थी, इस ओर इतिहासकारों का ध्यान कम जाता है। इसी तरह तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में मिस्र से लेकर सिंध और पंजाब तक उस समय के अफ्रीकी-एशियाई बाज़ार के निर्माण में पिगॉट जैसे विद्वान भारत की प्रधान भूमिका नकारते हैं।

छ. महान सभ्यताएँ—ठहराव और अलगाव की हालत में ?

साम्राज्य-विस्तार के दौर में यूरोप के ज़मींदार और व्यापारी बहुत-सी सभ्यताओं को मिटा रहे थे। इनके बारे में अक्सर कहा जाता था कि वे अलग-थलग पड़ गई हैं, और ठहराव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की हालत में हैं। विश्व विकास यूरोप केंद्रित है, जो यूरोप से दूर होगा, वह अलग-थलग होगा ही, और अलग-थलग होने से ठहराव की हालत में भी होगा। वह व्यापारियों की आचार संहिता की बात करते हैं, हड़प्पा से रोम की तुलना करते हैं, पर रोम का सबसे निकृष्ट पक्ष याद करते हैं, फिर मध्य अमरीका की आदिवासी सभ्यताएँ याद करते हैं। हड़प्पाई उत्पादन, वितरण और शासनतंत्र के संगठित रूप का वर्णन करते हुए पिगॉट कहते हैं, "इस विस्तारित व्यूहतंत्र के साथ ऐसा ठहराव और अलगाव है कि पुरानी दुनिया की किसी ज्ञात प्राचीन सभ्यता में उसका समतुल्य खोज पाना कठिन है, यद्यपि शायद नई दुनिया की दक्षिण और मध्य अमरीकी प्राचीन सभ्यताओं में तुलनीय स्थितियों का अभाव न होगा"।[78] मिस्र और सुमेर से हड़प्पा को नीचे रखते हुए उन्होंने फिर उन सभ्यताओं को याद किया : "एक विशाल साम्राज्य में विस्तृत सामाजिक-आर्थिक संगठन के साथ ऐसा अलगाव जुड़ा है जिससे उसकी बहुत सी प्रौद्योगिक प्रक्रियाएँ आश्चर्यजनक रूप से आदिम अवस्था में रह गई हैं। इससे हमें समकालीन सुमेर अथवा मिस्र का ध्यान उतना नहीं आता, वरन् इनसे अधिक कोलंबस-पूर्व की मध्य अमरीकी सभ्यताओं का ध्यान आता है"।[79] फिर भी पिगॉट मानते हैं, कपास की खेती भारत में शुरू हुई, सूत कातने, सूती कपड़ा बुनने के कौशल का विकास यहाँ हुआ, भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश सुमेर में थे, भारतीय माल के बदले सुमेरियों के पास देने को कुछ नहीं था, पश्चिमी एशिया में पहला, वास्तव में संगठित उद्योग भारत में था, योजना के अनुसार नगरों का निर्माण यहाँ हुआ, इत्यादि। मिस्र ने यूनान को प्रभावित किया, यूनान की सभ्यता यूरोप की सभ्यता का आधार है। सुमेर ने बैबिलोन को प्रभावित किया; सुमेर की सभ्यता बाइबिल का आधार है। मिस्र और सुमेर ऊँचाई पर हैं, भारत इनसे नीचे है, दूर है, अलग-थलग है। अलगाव और ठहराव की ये धारणाएँ पूर्वाग्रहों की देन हैं।

ठहराव का उदाहरण देने के लिए पिगॉट ने लिपि का उल्लेख किया है। मिस्र और सुमेर की लिपियों का एक घसीट लिखाई वाला रूप बना, वैसा रूप हड़प्पाई लिपि का नहीं बना। भांडों पर खिंचाए हुए लिपि चिह्न मुद्राओं के औपचारिक रूपों की तरह हैं। किंतु औपचारिक रूपों से एक लाभ भी होता है। दूर-दूर तक वे पहचान में आ जाते हैं, लोग चिह्नित शब्दों को बोलते अलग-अलग ढंग से हैं, उनका सामान्य अर्थ वह आसानी से समझ लेते हैं। चीनी लिपि की ऐसी ही भूमिका रही है। विशाल हड़प्पा राज्य में एक ही भाषा बोली जाती थी, यह मानने का कोई कारण नहीं है। सर्वत्र एक ही लिपि का व्यवहार होता था, यह प्रत्यक्ष है। लोग विभिन्न प्रदेशों में चिह्नों का सामान्य अर्थ अपनी-अपनी भाषा के अनुसार समझ लेते होंगे। मिस्र और सुमेर की अपेक्षा हड़प्पा राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। जो लिपि चिह्न औपचारिक लगते हैं, वे उस राज्य के प्रांतों को आपस में जोड़े रहने का साधन भी हो सकते हैं। हड़प्पाई लिपि एक ही भाषा का वाहन रही हो, यह आवश्यक नहीं है। चिह्नों का औपचारिक रूप उनका गुण हो सकता है।

पर यह लिपि अपरिवर्तनशील नहीं रही। पिगॉट मानते हैं कि यह लिपि मूलतः चित्र लिपि है। "यद्यपि हम बहुत सी चित्रित वस्तुओं को पहचान नहीं पाते"।[80] चित्रों को प्रतीक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रूप देकर सरल बनाया गया है, यह विकास की एक मंजिल हुई। पिगॉट के अनुसार इस लिपि में लगभग 400 चिह्न थे। इनकी संख्या घटा कर 250 प्रतीकों तक लाई जा सकती है। "इस तथ्य से ही ज्ञात हो जाता है कि इस लिपि से हमारी भेंट उसके विकास की उत्तर-कालीन अवस्था में (at a later stage of its development) होती है"।[81] सुमेरी लिपि में लगभग 900 चिह्न थे पर शुरूआत हुई थी 2000 चिह्नों से ![82] यदि कम चिह्नों से काम चलाना विकास का प्रमाण हो तो हड़प्पाई लिपि सुमेरी लिपि से अधिक विकसित थी।

पिगॉट मानते हैं कि व्यापार और व्यापारियों से गणित और लेखन की ओर संक्रमण तर्कसंगत है।[83] सुमेर की अपेक्षा भारत का व्यापार अधिक विकसित था, मानना चाहिए कि उसका विकासकाल भी ज़्यादा लंबा था। हड़प्पा सभ्यता अपने परिपक्व रूप में ही मिलती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता, इसकी शुरूआत कब हुई। न यह कहा जा सकता है कि सुमेर में लेखन कौशल का विकास पहले हुआ। न यह कि हड़प्पाई लिपि की शुरुआत कब हुई। पर पिगॉट ने मान लिया है कि सुमेर में लेखन कौशल का विकास पहले हुआ। यही नहीं, हड़प्पा की लिपि सुमेरी लिपि का स्थानीय रूपांतरण है ! "लेखन के आविष्कार में सुमेर की स्पष्ट (apparent) प्राथमिकता से निष्कर्ष यह निकलेगा कि भारत ने, मिस्र की तरह, लिखित लिपि की मूल अवधारणा उस स्रोत से प्राप्त की थी, किंतु मिस्र की तरह, लिपि ने प्रारंभिक काल में ही अपना विशिष्ट स्थानीय रूप प्राप्त कर लिया था"।[84] इस तरह लिपि के आविष्कार का जो श्रेय भारत को मिलना चाहिए, वह पिगॉट द्वारा सुमेर के खाते में डाल दिया गया।

मज़े की बात है कि आगे वह हड़प्पा की सभ्यता को मौर्यकालीन सभ्यता का पूर्वरूप मानते हैं किंतु ब्राह्मी लिपि को वह हड़प्पा की लिपि से एकदम पृथक रखते हैं। उनके विचार से कोई लिपि उसकी "उत्तराधिकारी नहीं है"।[85] उससे ब्राह्मी लिपि के संबंध पर लैंगडन ने जो कुछ लिखा था, वह उसकी उपेक्षा करते हैं। विपरीत दशा में चलते हुए वह ब्राह्मी के लिए कहते हैं, वह "सामी उद्‌भव की प्रतीत होती है"।[86] इस प्रतीति के समर्थन में प्रमाण उन्होंने एक भी नहीं दिया। हड़प्पा लिपि से ब्राह्मी के संबंध की बात कोसंबी ने भी उठाई है। अभिलेखों के अभाव की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है, "केवल एक अभिलेख का अस्तित्व है। वह सिंधु लेखन और अशोककालीन ब्राह्मी के बीच का हो सकता है"।[87] इस विक्रमखोल अभिलेख को कोसंबी ने "अत्यंत संदिग्ध" माना है पर कोई सिंधु-ब्राह्मी के बीच की मध्यवर्ती लिपि गढ़ेगा, यह कल्पना भी संदिग्ध है।[88]

पिगॉट के अनुसार हड़प्पाई लिपि की एक विशेषता और है: "संभव है, स्वरपात या विशेषक लगाने की किसी पद्धति का व्यवहार होता रहा हो (there may have been some system accents or diacriticals used)"।[89] लैंगडन और व्हीलर ने निश्चयपूर्वक स्वर-पात के चिह्न लगाने की बात कही है। यह विशेषता किसी भी प्राचीन लिपि में नहीं है। हड़प्पाई लिपि में स्वरपात के चिह्नों का व्यवहार केवल लिपि का विकास नहीं है, वह ध्वनि विज्ञान के विकास का भी परिचायक है, जैसा कि लैंगडन ने लक्ष्य किया था। दीर्घकालीन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विकास के बाद हड़प्पाई लिपि परिपक्व अवस्था में पहुँचती है, उसके बाद उसमें परिवर्तन होता नहीं दिखाई देता। यह उसके ठहराव का प्रमाण है ! प्रश्न है: दो हज़ार साल में रोमन लिपि में कितना परिवर्तन हुआ है ? और अँग्रेज़ी शब्दों की वर्तनी में रोमन अक्षरों का व्यवहार किस वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार होता है ?

ज. हित्ती-मितन्नी राज्यों के वैदिक देवता

यूरोप-केंद्रित सभ्यता के अलावा अन्य सभ्यताएँ ठहराव तथा अलगाव की हालत में हैं, इस पूर्वाग्रह के अनुरूप है भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत। पिगॉट के अनुसार दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य में उत्तरी बलूचिस्तान असुरक्षा और लूटमार का शिकार दिखाई देता है। वहाँ कई जगह बस्तियों के जलाए जाने के प्रमाण मिले हैं। दक्खिनी बलूचिस्तान में वैसी ही आगजनी के प्रमाण नहीं हैं "पर यह याद रखना चाहिए, यहाँ बहुत कम उत्खनन हुआ है"।[90] मोहेंजोदड़ो के अंतिम दौर में दक्खिनी बलूचिस्तान के से मृदभांड और पत्थर के बर्तन मिलते हैं। आग लगी उत्तरी बलूचिस्तान में, बर्तन भांड़े मिले दक्खिनी बलूचिस्तान से ! मोहेंजोदड़ो को आग लगा कर नष्ट नहीं किया गया। लेकिन बलूचिस्तान की पहाड़ियों से हमलावरों को नीचे समृद्ध मानव समुदाय दिखाई दे रहे थे—"लूट के लिए परिपक्व"। हड़प्पा राज्य ऐसा था जो "आत्मरक्षा में अकुशल था और आक्रमण के मुक़ाबले को तैयार न था"।[91] परिणाम यह कि 1500 ई० पू० के आसपास "पश्चिम से आने वाले नए लोगों के द्वारा उत्तर पश्चिमी भारत में दीर्घकाल से स्थापित सांस्कृतिक परंपराएँ अशिष्टता और निर्ममता से भंग कर दी गईं"।[92] पर ये नए लोग आर्य थे, इसका प्रमाण नहीं है। पिगॉट कहते हैं, 2000 ई० पू० के बाद की शताब्दियों में पश्चिम से आक्रमणकारियों के आने का पुरातात्विक प्रमाण तो है पर "यह आवश्यक नहीं कि वे इंडोयूरोपियन हों (these need not be Indo-Europeans)"।[93] भारत पर आर्यों के आक्रमण का सबूत न व्हीलर के पास है, न पिगॉट के पास। अटकल यह है कि इस समय पश्चिम से जो आम अभियान हो रहे थे और जिनमें इंडोयूरोपियन भी शामिल थे, उनसे इन आक्रमणकारियों के "संबंधित होने की संभावना (likely to be connected) है"। इस संभावना को पिगॉट पुष्ट करते हैं कस्सी और मितन्नी राज्यों का हवाला देकर। वे इस बात की सूचना देते हैं कि योद्धाओं के दल ईरान के सीमांतों की ओर बढ़े आ रहे थे।

मितन्नी के राजा ने हित्तियों के राजा से संधि की थी और उसमें वैदिक देवताओं को साक्षी-रूप में याद किया गया है। संधि 1380 ई० पू० के आसपास की है। पिगॉट की टिप्पणी है: "ये देवता मित्र, वरुण और इंद्र ही हो सकते हैं जो प्राचीन भारतीय देवमंडल में हैं, जिनका उल्लेख प्राचीनतम संस्कृत धर्म-ग्रंथों (यथा ऋग्वेद) में है। इनका विवरण आगे है। अंतिम देवता संभवतः नासत्य हैं। इसी साहित्य में यह दिव्य युगल, अश्विनों, का वैकल्पिक नाम है। बेशक हित्ती संधि का यह अर्थ नहीं है कि इस समय मितन्नी राज्य में भारतीय थे। पर वह इंडोयूरोपियन जनों की देवकथाओं के उस सामान्य भांडार की ओर ही संकेत करती है जिसका सुझाव भाषायी समीकरणों से मिलता है। मितन्नियों के देवता वही थे जो महान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इंडोयूरोपियन परिवार की पूर्वी शाखा के देवता थे''।[94]

इस टिप्पणी में एक असंगति यह है कि **पिगॉट** ने, **व्हीलर** का अनुसरण करते हुए, भारत पर आर्यों का आक्रमण तो 1500 ई० पू० के आसपास कराया है, पर इससे एक शताब्दी बाद तक भी उन्हें पश्चिमी एशिया में ही अटका हुआ दिखाया है। मितन्नी के आर्यों ने इंद्र, वरुण का नाम लेकर संधि की 1380 ई० पू० में, पर इससे पहले इंद्र, वरुण के उपासक, बलूचिस्तान पार करके, मोहेंजोदड़ो पहुँचे 1500 ई० पू० में ! दूसरी असंगति यह है कि जो देवता— इंद्र—**अवेस्ता** में दैत्य है, उसे उन्होंने पूर्वी शाखा के देवमंडल में शामिल कर लिया है। जैसा कि **मैकडनल** बहुत पहले लिख गए थे: ''इंद्र का नाम **अवेस्ता** में केवल दो बार आया है। वहाँ वह देवता नहीं है, केवल दैत्य है। इस तथ्य के सिवा वहाँ उसका स्वरूप अनिश्चित है''।[95] मितन्नी राज्य में इंद्र देवता है, ईरान में दैत्य है, भारत पहुँच कर वह फिर देवता बन गया है ! यह सारा अद्भुत व्यापार केवल इसलिए है कि आर्यों को पश्चिमी एशिया से ईरान और बलूचिस्तान पार करते हुए भारत पर आक्रमण करते दिखाया जाए। बलूचिस्तान का महत्त्व मोहेंजोदड़ो के कारण है। आक्रमण का पुराना रास्ता उत्तर-पश्चिम से था। **ऋग्वेद** में अफ़गानिस्तान की कुभा तथा पंजाब की शुतुद्री आदि पाँच नदियों के उल्लेख से उस कल्पना को बल मिलता था।

पिगॉट यह मान कर चले हैं कि मितन्नी से ही आर्य भारत पहुँचे होंगे, वे भारत से निकलकर मितन्नी पहुँचे हों, उनके लिए यह कल्पनातीत है। **पार्जिटर** इस दुराग्रह से मुक्त थे। 1928 में **लैंगडन** अपने मत का प्रतिपादन कर रहे थे कि आर्य भारत के प्राचीन निवासी हैं, उससे पहले **पार्जिटर** ने इस प्रचलित धारणा का ज़ोरदार खंडन किया था कि उन्होंने उत्तर पश्चिम से भारत में प्रवेश किया था।

संदर्भ

1. एस० पिगॉट, **प्रिहिस्टौरिक इंडिया,** पृ० 134.
2. उप०।
3. उप०, पृ० 135.
4. उप०।
5. उप०, पृ० 174.
6. उप०, पृ० 177.
7. उप०, पृ० 172.
8. उप०।
9. उप०।
10. उप०, पृ० 177.
11. उप०, पृ० 172.
12. उप०, पृ० 202.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

13. उप० ।
14. उप० ।
15. उप०, पृ० 172.
16. उप०, पृ० 155.
17. उप०, पृ० 140.
18. उप०, पृ० 156.
19. उप०, पृ० 189.
20. उप० ।
21. उप० ।
22. उप० ।
23. उप० ।
24. उप०, पृ० 199-200
25. उप०, पृ० 200.
26. उप०, पृ० 172.
27. उप०, पृ० 193.
28. उप०, पृ०, 157.
29. उप०, पृ० 179.
30. उप०, पृ० 210.
31. मार्क्स-एंगेल्स, ऑन कोलोनियलिज़्म, पृ० 52.
32. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 180.
33. उप०, पृ० 183.
34. उप०, पृ० 186.
35. उप० ।
36. उप., पृ. 183.
37. उप० ।
38. उप० ।
38.A. उप.1
39. उप०, पृ० 184.
40. उप० ।
41. उप० ।
42. उप०, पृ० 184-85.
43. उप०, पृ० 180.
44. उप०, पृ० 181.
45. उप०, पृ० 184.
46. डी० डी० कोसंबी, ऐन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री, पृ० 200.
47. उप०, पृ० 54.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

48. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 135.
49. उप०, पृ० 138.
50. उप०, पृ० 289.
51. उप०, पृ० 289-90.
52. उप०, पृ० 290.
53. उप०।
54. उप०।
55. उप०, पृ० 260.
56. कोसंबी ., पूर्वोल्लिखित, पृ० 206-7.
57. उप०, पृ० 206.
58. उप०, पृ० 205.
59. उप०।
60. उप०, पृ० 207.
61. उप०।
62, उप०, पृ० 140.
63. उप०, पृ० 224.
64. उप०।
65. उप०, पृ० 202.
66. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 155.
67. उप०, पृ० 205.
68. उप०, पृ० 202-03.
69. उप०, पृ० 203.
70. उप०, पृ० 171-72.
71. मार्क्स-एंगेल्स, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 4, पृ० 334.
72. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 172.
73. कोसंबी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 210.
74. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 153.
75. उप०, पृ० 140.
76. उप०, पृ० 172.
77. उप०, पृ० 140.
78. उप०।
79. उप०, पृ० 142.
80. उप०, पृ० 181.
81. उप०।
82. उप०।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

83. उप०, पृ० 180.
84. उप०, पृ० 182.
85. उप० ।
86. उप०, पृ० 254.
87. कोसंबी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 54.
88. उप०, पृ० 72.
89. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 182.
90. उप०, पृ० 217.
91. उप०, पृ० 223.
92. उप०, पृ० 240-41
93. उप०, पृ० 257.
94. उप०, पृ० 252-53
95. ए० ए० मैकडनल, **वैदिक मिथोलॉजी**, पृ० 66.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

3

पश्चिमी एशिया में आर्यों का प्रभाव-विस्तार

क. पश्चिमी एशिया में आर्य देवता और भारतीय रथ

पार्जिटर संभवतः पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने पश्चिमी एशिया में भारतीय आर्यों के प्रसार की बात कही थी। भारत पर आर्यों के आक्रमण और उत्तर-पश्चिमी मार्गों से भारत में उनके प्रवेश का सिद्धांत वह अस्वीकार करते थे। 1922 में प्रकाशित **भारत की प्राचीन ऐतिहासिक परंपरा** ग्रंथ में उन्होंने लिखा था कि भारतीय ऋषि केवल मध्य हिमालय क्षेत्र को पवित्र मानते थे, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र को नहीं। उन्होंने ध्यान दिलाया कि **ऋग्वेद** में नदियों का क्रम पूर्व से पश्चिम को है (१०.७५)। बहुप्रचारित धारणा यह है कि जब **ऋग्वेद** के सूक्त रचे गए थे, तब आर्य उत्तर-पश्चिम से प्रवेश करके पंजाब होते हुए सरस्वती-यमुना तक पहुँचे थे। अतः "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सूक्त में नदियों का क्रम उनकी प्रगति के अनुरूप नहीं रखा गया वरन् गंगा से आरंभ करके—जहाँ अभी वे पहुँचे भी न थे—उल्टा रखा गया है"।[1]

हित्ती-मितन्नी संधि के बारे में पार्जिटर का कहना था कि इसमें मित्र, वरुण, इंद्र, और नासत्यों के नाम भारतीय आर्य देवताओं के हैं। संधि का समय 1400 ई० पू० माना गया है। इन देवों के उपासक मितन्नी जन वहाँ और पहले, "संभवतः सोलहवीं सदी के अंतिम चरण में" पहुँचे होंगे।[2] इन तथ्यों से पार्जिटर के अनुसार निष्कर्ष यह निकला कि भारत से बहिर्गामी जन-अभियान पंद्रहवीं सदी के पहले शुरू हो गया था, अतः "आर्य और उनके देवता सोलहवीं सदी से पहले भारत में विद्यमान थे"।[3]

पार्जिटर ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि भारत की साहित्य-परंपरा में जहाँ आर्यों के आक्रमण की ओर कहीं भी संकेत नहीं है, वहाँ उनके भारत से बाहर जाने का उल्लेख स्पष्ट है। उन्होंने लिखा है, "भारतीय परंपरा को अफ़गानिस्तान से भारत पर ऐल अथवा आर्य आक्रमण का कुछ भी पता नहीं है, न वहाँ से पूर्व की ओर क्रमशः प्रगति का उसे कुछ पता है ! दूसरी ओर उसकी स्पष्ट घोषणा है कि द्रुह्युजनों का ऐल बहिर्प्रवाह उत्तर-पश्चिम से होकर आगे के देशों में हुआ; वहाँ उन्होंने विभिन्न राज्यों की स्थापना की और इस तरह उन जातियों के बीच अपने ही भारतीय धर्म का प्रवेश कराया"।[4] पौराणिक वंशावलियों के आधार पर पार्जिटर ने हिसाब लगाया कि द्रुह्युजनों का बहिर्प्रवाह 1600 ई०पू० के आसपास हुआ होगा। और ये प्रवासी अपने देवताओं के नाम तो ठीक बनाए रहे पर जब राजा और उनकी भाषा भारत से अलग पड़ते गए, तब स्वभावतः उन्होंने अपने नामों में परिवर्तन किया"।[5] **द वेदिक एज** में भारतीय इतिहास-परंपरा का विवरण देते हुए **पुसाल्कर** ने पार्जिटर की बात दोहराई है। द्रुह्युजन राजस्थान से उत्तर-पश्चिमी पंजाब में खदेड़े

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गए, "कुछ समय बाद जनसंख्या के बहुत बढ़ने पर वे भारत की सीमाएँ पार कर गए और उत्तर के म्लेच्छ प्रदेशों में उन्होंने अनेक राज्य क़ायम किए और संभवतः भारत के सीमांतों से आगे वे आर्य संस्कृति ले गए"।[6]

भारतीय इतिहास-परंपरा से अलग हटकर आधुनिक इतिहास-परंपरा के अनुसार उत्तर भारत में आर्य बस्तियों का विवेचन करते हुए पुसाल्कर ने द्रुह्यु जनों के बारे में दो महत्वपूर्ण बातें कही हैं : (1) वे पूरु, यदु आदि चार गणों के साथ मिलकर भरतों से लड़े थे,[7] (2) ऋग्वेदोत्तरकाल में, अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणों, उपनिषदों के समय, अन्य चार गणों के साथ द्रुह्यु कहीं "पृष्ठभूमि में पीछे चले जाते हैं"।[8] पीछे चले जाने का कारण भरतों से युद्ध में उनकी पराजय हो सकती है। वैदिक परंपरा के विश्लेषण से जो इतिहास बनता है, उसके अनुसार ऋग्वेद के बाद द्रुह्यु जन भारतीय रंगमंच से बाहर हो जाते हैं। पौराणिक परंपरा से जो इतिहास बनता है, उसके अनुसार द्रुह्यु जन भारत के बाहर जाकर अपने राज्य क़ायम करते हैं। भरतों से और भी गणों का युद्ध हुआ था। युद्ध में वे जीते नहीं, उन्हें पीछे ही हटना पड़ा। सप्तसिंधु क्षेत्र में भरतों की दिग्विजय भारत से अनेक आर्य गणों के बाहर जाने का कारण हो सकती है। इसे हम भारतीय आर्यों का प्रथम अभियान कह सकते हैं। सुमेर और भारत की संस्कृतियों में जो प्राचीन समानताएँ हैं, उनका संबंध इस अभियान से हो सकता है। फिर महाभारत युद्ध हुआ। इसमें बहुत से उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी जन सम्मिलित थे। कौरवपक्ष की पराजय के बाद, संभव है, इनमें अनेक जनों को भारत से बाहर जाना पड़ा हो। यह आर्यों का द्वितीय अभियान होगा; हित्ती-मितन्नी आदि सभ्यताओं के प्रसार से इसका संबंध हो सकता है।

पार्जिटर ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि हित्ती-मितन्नी संधि में कई वैदिक देवों के नाम एक साथ आए हैं। उनका कहना था, "देवताओं के नाम एकल रूप में महत्वपूर्ण न हों, यह संभव है, पर चारों का एक साथ होना उनके भारतीय उद्भव का ऐसा पुंजीकृत साक्ष्य है कि उसे टीका-टिप्पणी से उड़ाया नहीं जा सकता"।[9]

अधिकांश विद्वान टीका-टिप्पणी से उसे उड़ाते रहे, परंतु सभी नहीं। एक गौरवपूर्ण अपवाद हैं गूर्ने (O.R. Gurney)। हित्तियों पर अपनी पुस्तक में उन्होंने माना है कि इंद्र, वरुण, आदि भारतीय आर्य देवता हैं और वे आर्यों के साथ ही वहाँ पहुँचे थे। संधि में उल्लिखित इन देवनामों के अतिरिक्त बोगाज़कुइ में चार पट्टिकाओं पर "एक विस्तृत रचना घोड़ों को प्रशिक्षित करने और उन्हें जलवायु के अनुकूल बनाने पर" मिली।[10] इसके लेखक मितन्नी राज्य के किक्कुलि नाम के व्यक्ति थे (जो अवश्य ही रथचालक अथवा अश्व प्रशिक्षक रहे होंगे)। गूर्ने कहते हैं : "इस रचना में कुछ पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जो ऐसी भाषा के हैं जो संस्कृत से संबंधित (akin to Sanskrit) है। संस्कृत उत्तर भारत के आर्यों की प्राचीन भाषा है। अन्य अभिलेखों से हमें अब पता है कि मितन्नी के शासक भारतीय आर्य देवताओं के यथा इंद्र, वरुण और युगल नासत्यों के, उपासक थे, और उनके व्यक्ति नामों से उसी प्रकार के स्रोत का उद्घाटन होता है। अतः हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा (we must

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

conclude) कि यह आर्य गणशाखा (clan) पश्चिम की ओर बढ़ती हुई अपने साथ अश्व प्रजनन (horse-breeding) का विशिष्ट ज्ञान लाई थी और उसी से पश्चिमी एशिया के लोगों ने यह कला सीखी थी। यह बात महत्वपूर्ण है कि बैबिलोन के कस्सी (Kassite) शासकों के नामों का एक अंश भारतीय देव नामों से निर्मित पाया जाता है यद्यपि अन्य पक्षों को देखते कस्सी भाषा नितांत भिन्न कोटि की है''।[11]

गूर्ने इस बात की चिंता नहीं करते कि उस समय भारतीय आर्य पश्चिमी एशिया में हो ही न सकते थे। उन्होंने मितन्नी साक्ष्य से वही निष्कर्ष निकाला है जो उससे अनिवार्यतः निकलता है। अश्वविद्या, रथचालन विद्या के प्रसंग में गूर्ने की कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं; ''हित्ती साम्राज्य तथा अन्य समकालीन राज्यों की शक्ति का आधार एक नए आयुध का सघन विकास था। यह था हल्का रथ जिसे घोड़े खींचते थे। 1600 ई०पू० के कुछ ही समय बाद वह समस्त पश्चिमी एशिया में दिखाई देने लगा था। वैसे, सामरिक रथ कोई नई चीज़ नहीं था। सुमेरी लोगों के पास दो पहियों वाले और चार पहियों वाले, दो तरह के रथ थे। पर ये भारी होते थे, इनके पहिए ठोस, अराविहीन थे, और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें खींचने के लिए जंगली गधों से काम लिया जाता था''।[12] सुमेर के लोग मुख्य रूप से सदा पैदल सेना का भरोसा करते थे। इसके बाद जो वहाँ अमोरी राज्य क़ायम हुआ, उसमें, लगता है, युद्ध के लिए घोड़ों से काम नहीं लिया गया। असीरिया के व्यापारी गाड़ी आदि खींचने के लिए घोड़ों से काम लेते थे पर उनका रथ वही चार पहियों वाला सुमेरी ढंग का था। घोड़ों से खींचा जाने वाला, हल्का, अरायुक्त पहियों वाला रथ अमोरी शासकों के पतन के बाद लगभग एक ही समय कस्सियों के बैबिलोन, अठारहवें राजवंश के मिस्र और मितन्नी के नए राज्य में प्रकट होता है। ''इसने युद्ध के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया; अब से युद्ध में द्रुत गति निर्णयकारी उपकरण बन गई''।[13] इस अचानक विकास के कारण का पता चल जाता है बोगाज़कुइ के अभिलेखों से। इस विकास में हित्ती साम्राज्य ने भाग लिया था। मिस्र के उभरी आकृतियों वाले शिल्प में मिस्री और हित्ती रथ अंकित हैं। दोनों के रथ चक्रों में छह-छह अरा हैं। मिस्री रथ में योद्धा और सारथी दो व्यक्ति होते हैं, हित्ती रथ में दो योद्धा और सारथी, तीन व्यक्ति होते हैं। आक्रमण और आत्मरक्षा के कौशल में भेद किया गया है। एक योद्धा आक्रमण के लिए है, दूसरा आत्मरक्षा के लिए। प्रारंभिक झड़प के बाद नज़दीकी संघर्ष में हित्ती रथ योद्धाओं की ज़्यादा बड़ी संख्या जुटा सकते थे। हित्तियों की पैदल सेना रथों पर सवार उनके योद्धाओं से संख्या में बड़ी थी पर खुली मैदानी लड़ाई में उसकी भूमिका गौण रहती थी।[14]

गूर्ने के विवरण से एक बात समझ में आने लगती है कि अधिकांश विद्वान जिसे भारत में आर्यों के प्रवेश का समय माने बैठे हैं, वह वास्तव में उनके, भारत से बाहर, प्रभाव-विस्तार का समय है। इस प्रभाव-विस्तार का एक केंद्र इंद्र-वरुण उपासकों का मितन्नी राज्य था। पिगॉट मानते हैं कि पंद्रहवीं सदी ई०पू० के अंत तक मितन्नी लोग मिस्र को ''रथों का निर्यात करने लगे थे''।[15] किंतु उनके विचार से भारतीय आर्य इस समय पश्चिमी एशिया में हो न

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सकते थे, इसलिए उनका इस रथ विद्या से कोई संबंध भी न हो सकता था। सामरिक रथ का आविष्कार, उनकी समझ के अनुसार, सुमेरियों ने किया।[16] सुमेरी रथ के पहिए ठोस थे, रथ में गधे जोते जाते थे।[17] मितन्नी लोगों का रथ इससे भिन्न था। इसकी व्याख्या करते हुए पिगॉट कहते हैं कि सुमेर-अक्कद राज्य के उत्तरी सीमांत पर, 2000 ई०पू० के शीघ्र बाद, इंडोयूरोपियनों ने वह सुमेरी रथ अपना लिया। "घोड़ों के उपयोग से तथा अरायुक्त चक्र के आविष्कार से उन्होंने उसे अतिरिक्त गति और हल्कापन दिया। पूर्व और पश्चिम की ओर अपने विस्तार के दौरान उन्होंने उसका प्रसार किया"।[18] इससे एक बात तो निश्चित हुई कि यूरोप के इंडोयूरोपियनों ने रथ विद्या एशिया के 'इंडोयूरोपियनों' से पाई।

सामरिक रथ का जन्म सुमेर में हुआ, इस धारणा पर बल देते हुए पिगॉट कहते हैं, दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के आरंभ में सुमेरियों के से रथ लघु एशिया (वर्तमान तुर्की) में इस्तेमाल किए जाते थे, महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि उनके अरायुक्त पहिए हल्के हैं और उन्हें दो घोड़े खींचते हैं। इसके कुछ ही समय बाद वे ईजियन देशों में प्रकट होते हैं और महत्वपूर्ण बात है कि इन देशों का संबंध इंडोयूरोपियन-भाषियों से है।[19] अर्थात् यूनानी भाषा समुदाय के क्षेत्र में रथ पश्चिमी एशिया से पहुँचा, उसके साथ संबद्ध शब्दावली पहुँची। पिगॉट बताते हैं कि यूनान के मूल भूखंड में रथ 1500 ई०पू० से पहले पहुँचा, क्रीट (क्रेते) द्वीप में 1450 ई०पू० के लगभग पहुँचा। बहुत दिलचस्प बात है कि होमर ने जिस यूनानी समाज पर अपना महाकाव्य रचा था, उसके राजकुमार रथ विद्या सीखने हित्तियों की राजधानी हत्तुसस् आते थे : "एक शताब्दी या थोड़ा और बाद कुछ प्रमाण सामग्री मिलती है जो इस बात की ओर संकेत करती है कि तरुण अखायी राजकुमार (Achaean princes) रथ विद्या में प्रशिक्षित होने के लिए जब-तब हित्ती राजधानी भेजे जाते थे"।[20] इस प्रकार यूनान के प्राचीनतम काव्य में रथ संबंधी शब्दों का स्रोत हित्ती राज्य ठहरता है।

इस रथयात्रा की समय-सारिणी शिक्षाप्रद है। यूनान के भूखंड में रथ पहुँचा 1500 ई०पू० से पहले; मिस्र में उसकी प्राचीनतम शिल्प-छवि 1550 ई०पू० के आसपास की है। इस पंद्रहवीं सदी के अंत तक मितन्नी से मिस्र को रथ का निर्यात होने लगता है। "मध्य और उत्तरी यूरोप में इंडोयूरोपियन केल्त जनों के बीच पाँचवीं सदी ई०पू० से पहले रथ के आविर्भाव का प्रमाण नहीं है"।[21] जब प्रमाण मिलते हैं, तब प्राचीन पूर्व के रथों से उसके सामान्य संबंध की पुष्टि होती है।[22] हित्ती-मितन्नी राज्यों से भारतीय आर्यों का रथ पहले मिस्र पहुँचा, उसके बाद यूनानी क्षेत्र में पहुँचा और मध्य तथा उत्तरी यूरोप में वह लगभग हज़ार साल बाद पहुँचा। इस विलंब का एक ही कारण हो सकता है : मिस्र और यूनान की अपेक्षा मध्य तथा उत्तरी यूरोप के देश सभ्यता में बहुत पिछड़े हुए थे।

ठोस पहियों वाली गाड़ी की अपेक्षा अरायुक्त पहियों वाले रथ का निर्माण कठिन होता है। पिगॉट ने इसके लिए कौशल का समुचित विकास आवश्यक माना है। उनका कहना है, "अरावाले पहिए के उत्पादन के लिए धातु के अच्छे मानक औजार आवश्यक होते हैं"।[23] जिस समय आर्य देवताओं के साथ भारतीय रथ पश्चिमी एशिया में पहुँचा, उस समय भारत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में धातु उद्योग का यथेष्ट विकास हो चुका था। पिगॉट मानते हैं, हड़प्पा सभ्यता पहियों वाले वाहनों से खूब परिचित थी पर शायद "उसने युद्ध में उनका उपयोग न किया था।" अब यदि आर्य अपने अरायुक्त रथों पर चढ़े हुए हड़प्पा सभ्यता का नाश करने लगे, तो सिद्ध यह होगा कि धातु उद्योग का विकास हड़प्पा से अधिक नहीं तो उसके बराबर ये आक्रमणकारी आर्य अवश्य कर चुके थे। पिगॉट बड़ी दृढ़ता से घोषित करते हैं, "स्पष्ट ही आर्य रथों ने देशी भारतीय परंपराओं से कुछ भी नहीं पाया"।[24] किंतु पिगॉट ने रथ से संबद्ध जो शब्द गिनाए हैं, वे इंद्र, वरुण जैसे देवनामों की तरह शुद्ध भारतीय हैं—भारतीय नाभि, अँग्रेज़ी का परिवर्तित रूप नेव (nave)। अरायुक्त रथ के भारतीय होने में कोई संदेह नहीं है। तय यह करना है कि वह पश्चिमी एशिया कब पहुँचा—हड़प्पा सभ्यता से पहले, उसके दौरान या उसके बाद।

ख. सूर्यबिंब का प्रतीक

गूर्ने की पुस्तक से हित्ती संस्कृति के भारतीय स्रोत का एक प्रमाण और मिलता है : शिल्प में अंकित प्रत्येक हित्ती राजा के सिर पर "पंखयुक्त सूर्यबिंब (the winged sun disc)" मँडराता है।[25] मिस्र में यह बिंब बादशाहत का प्रतीक था और उसका उपयोग मितन्नी शासक भी करते थे। इराक से तुर्की तक, तुर्की से मिस्र तक राजत्व का सूचक सूर्यबिंब ! और इसका संबंध ऋग्वेद से है। स्वयं गुर्ने कहते हैं, "मितन्नी के राजाओं ने, लगता है, यह प्रतीक पहले अपनाया और उसे स्तंभ पर टिके हुए आकाश-प्रतीक की धारणा का अंग बनाया जैसी कि वह ऋग्वेद में वर्णित है।[26] स्तंभ पर टिका हुआ आकाश—यह धारणा ऋग्वेद में है, प्रतीक रूप में यह धारणा मितन्नी राजाओं के सूर्यबिंब में है। इंद्र, वरुण, देवनाम, रथ विद्या के पारिभाषिक शब्द, इनके साथ यह आकाश संबंधी प्रतीक—ये सब तथ्य मितन्नी राजाओं के भारतीय मूल को पुष्ट करते हैं। गूर्ने के विचार से सम्राट के सिर को सूर्यबिंब से मंडित दिखाने की उद्भावना मिस्र की है। इसे पहले मितन्नी राजाओं ने अपनाया, उसके बाद हित्ती राजाओं ने। हित्तियों ने उनके अनुसार उसे मिस्र से नहीं, सीरिया से पाया। वहाँ वह सूर्य के बैबीलोनी प्रतीक से मिश्रित हो गया। "इसी कारण हित्ती प्रतीक में मिस्री बिंब के स्थान पर कांतिमान नक्षत्र जैसा सूर्य है"।[27]

गूर्ने स्तंभ पर टिके आकाश का संबंध ऋग्वेद से क़ायम कर सके, यह उनकी बहुत अच्छी सूझ है। किंतु पंखों वाला सूर्यबिंब, इसका संबंध भी ऋग्वेद से है। सूर्य पक्षी (पतंग, १०.१७७.१-२) है, वह सबल पंखों वाला (सुपर्ण, ५.४७.३) है। मितन्नी से मिस्र को रथों का निर्यात हुआ था। आगे-पीछे वहाँ से, अथवा सीधे भारत से, पंखों वाले सूर्यबिंब का निर्यात भी हुआ होगा। हित्तियों के शिल्प में श्येन पक्षी भी अंकित है। गुर्ने ऋग्वेद से इसका संबंध भी नहीं देखते। उनका विचार है, हित्तियों ने बहुत से विषय सीरिया से, अतः अप्रत्यक्ष रूप में मेसोपोटामिया से लिए। इनमें श्येन युगल (double eagle) का प्रतीक भी है।[28] ऋग्वेद में सूर्य को पक्षी ही नहीं, उसे श्येन पक्षी कहा गया है। रघुः श्येनः (५.४५.९)—वह द्रुतगामी श्येन है। हित्तियों ने श्येन का प्रतीक सीरिया से पाया हो, इसकी संभावना कम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है। सीरिया ने उसे मेसोपोटामिया से पाया हो, यह संभव है; मेसोपोटामिया ने उसे भारत से पाया हो, यह भी संभव है। एक हित्ती कथा के अनुसार कृषि का संवर्धन करने वाले देव तेलिपिन खो गए; तब सूर्य देव ने उन्हें ढूँढ़ने को श्येन पक्षी भेजा।[29] यहाँ श्येन और सूर्य का संबंध स्पष्ट है।

पंखयुक्त सूर्यबिंब मितन्नी लोगों ने पहले अपनाया, हित्तियों ने बाद को। इस बिंब को मितन्नियों ने खंभे पर टिके आकाश से मिलाया। ऋग्वेद में वरुण के लिए कहा गया है: **यः स्कम्भेन वि रोदसी...अधारयत्**—जो खंभे से आकाश और पृथ्वी को अलग किए हुए हैं ("who pillared both the worlds apart", ग्रिफिथ, ८.४१.१०)। होमर के काव्य में **अतलस्** नाम का दैत्य अपने कंधों पर उन बड़े खंभों को उठाए है "जो धरती और आकाश को अलग किए हैं।" (ऑदुस्सेइआ, १.५३)। जेब ने होमर पर अपनी पुस्तक में **अतलस्** का अर्थ बताया है उठाए रखने वाला (upholder)। लिडेल और स्कॉट के कोश में **अतलस्** का एक अर्थ है आकाश के खंभों को उठाए रखने वाला पुराना देवता; दूसरा अर्थ है आकाश का खंभा (the pillar of heaven)। यह दूसरा अर्थ ही शब्द का मूल अर्थ प्रतीत होता है। यूनान के तरुण राजकुमार जब रथ विद्या सीखने हित्तियों की राजधानी में ठहरते थे, तब संभव है, ख़ंभे (अतलस्) पर टिके आकाश की धारणा उन्होंने वहाँ से प्राप्त की हो।

सूर्यबिंब का उपयोग बैबिलोन के कस्सी शासकों ने भी किया था। इनकी भाषा इंडोयूरोपियन परिवार की नहीं है पर उसमें इस परिवार के शब्दों का प्रवेश हुआ था। जॉर्ज रू के अनुसार इसका प्रमाण कस्सी देवमंडल में शूरिअश् (सूर्य), मरुत्तश् (मरुत) जैसे "आर्य देवता" है।[30] बरो ने कस्सी वंश के एक राजा अबिरत्तश् का उल्लेख किया है। इसका संस्कृत रूप होगा "अभिरथ—(युद्ध में) रथों का सामना करने वाला"।[31] केवल सूर्य और मरुत् नहीं, भारतीय रथ भी वहाँ पहुँचते हैं, वर्ना उनके एक शासक का **अभिरथ** जैसा नाम न होता। कस्सी शासकों के ये रथ अवश्य ही सुमेरी रथों से भिन्न थे। ये शासक जब दूसरों को भूमि देते थे तब एक प्रस्तर खंड पर भूमि पाने वाले का नाम, उसके अधिकार, भूमि का क्षेत्रफल आदि अंकित करा देते थे। दान की पुष्टि के लिए वे उस पर देवता की छवि अथवा उसका प्रतीक अंकित कराते थे। इन्हीं प्रतीकों में एक था सूर्यबिंब।[32] रथ और सूर्यबिंब का प्रसार मिस्र और यूनान से लेकर बैबिलोन (इराक) तक है। यह भारतीय आर्यों के प्रभाव-विस्तार का प्रमाण है। बैबिलोन में कस्सी शासकों ने नई रथ विद्या का प्रसार किया। रू कहते हैं, "निकट पूर्व के युद्ध क्षेत्रों में तीव्रगामी अश्वकर्षित रथों के आविर्भाव ने, जैसा कि प्रत्याशित था, युद्ध-कौशल में क्रांति कर दी। साथ ही भारवाही गर्दभों के स्थान पर अश्वकर्षित शकटों के व्यवहार ने व्यापारिक परिवहन को अधिक सरल और द्रुतगामी बना दिया"।[33] परिवहन के नए साधनों का व्यवहार इसलिए हुआ कि कस्सी शासक व्यापार की प्रगति पर ध्यान देते थे।

कस्सियों ने बैबिलोन पर 1595 से लेकर 1157 ई०पू० तक—438 वर्षों तक—राज्य किया। मितन्नी राज्य इराक से लेकर भूमध्य सागर तक फैला था। उत्तरी इराक के शासक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

1500 से लेकर 1360 ई०पू० तक मितन्नी राजाओं की प्रभुसत्ता स्वीकार करते रहे थे और फ़िलिस्तीन उनके प्रभाव में था।[34] इराक, सीरिया, फ़िलिस्तीन—ये सब सामी भाषाएँ बोलने वालों के क्षेत्र थे। शताब्दियों तक यहाँ मितन्नी राजाओं की प्रभुसत्ता रही, इसलिए सामी भाषाओं में भारतीय मूल के शब्द मिलें, तो यह स्वाभाविक होगा। मितन्नी राज्य-शक्ति के ह्रास के बाद यह सारा क्षेत्र हित्तियों के नियंत्रण में आ गया। सत्रहवीं सदी ई०पू० के आरंभ में इनका राज्य स्थापित हो गया था। पंद्रहवीं सदी के मध्य से यह राज्य विस्तृत होकर विशाल साम्राज्य बन गया। यह साम्राज्य इराक से फ़िलिस्तीन तक फैला हुआ था। 1190 ई०पू० में उसका अंत हुआ परंतु छोटे-छोटे हित्ती राज्य बने रहे और हित्तियों के सांस्कृतिक प्रभाव में कमी न आई। रू कहते हैं, हित्ती सम्राट् जो प्रभाव सीरिया में लाए थे, ''वह उनके बाद लगभग पाँच सौ वर्षों तक बना रहा''।[35] और गूर्ने का मत है, ''हित्ती साम्राज्य के दक्षिण पूर्वी प्रांतों में हित्ती संस्कृति का अद्भुत सांध्य प्रकाश फैला रहा जिसकी अवधि पाँच शताब्दियों से कम न थी''।[36]

ग. देवपूजा के भारतीय रूप

हित्ती राज्य के लोग कम से कम चार आर्य भाषाएँ बोलते थे, इससे मानना चाहिए कि उनके सामाजिक जीवन में अनेक समानताओं के साथ भिन्नताएँ भी थीं। हड़प्पा राज्य में मंदिर नहीं थे, ऋग्वेद में मंदिर नहीं हैं, परंतु हित्ती साम्राज्य में अनेक मंदिर थे। इनमें पशुओं की बलि दी जाती थी और समय से 'ठाकुरजी' को नहलाया, धुलाया और भोजन भी कराया जाता था। पशुबलि की प्रथा तो व्यापक और प्राचीन है किंतु ठाकुरजी के स्नान, भोजन वाली प्रथा—यह भी कम से कम तीन हज़ार साल पुरानी जान पड़ती है। गूर्ने का दिया हुआ विवरण इस प्रकार है : 'मंदिर देवता का आवास था, पुजारी उसके आवासीय कर्मचारी थे'। जहाँ तक अभिलेखों से हम समझ पाते हैं, यह सरल धारणा हित्तियों के समूचे मंदिर संबंधी कर्मकांड का आधार थी। मंदिर के कर्मचारियों का यह कर्तव्य था कि वे प्रतिदिन एक सुनिश्चित रीति के अनुसार देवता की 'शारीरिक आवश्यकताओं' का ध्यान रखें। उसे नहलाना-धुलाना, वस्त्र पहनाना, भोजन और पेय देना तथा नृत्य और संगीत से उसका मनोरंजन करना होगा। दैनिक कार्यक्रम सभी का जाना पहचाना है, इस भावना के कारण उसकी ओर यदा-कदा ही संकेत किया जाता है। 'वे देवता के शरीर को भीतरी प्रकोष्ठ में नहलाते हैं, उसका अभिषेक करते हैं और उसे सुंदर वस्त्र पहनाते हैं।' 'हे ज़िप्पबंद के ऋतुदेव (Weather-god), देवत्व के जीवित स्वरूप, भोजन पाइए और तुष्ट होइए, पान कीजिए और संतुष्ट होइए।' इस संबंध में एक अत्यंत मूल्यवान पट्टिका वह है जिसमें पुजारियों और मंदिर कर्मचारियों के लिए अनुशासनात्मक आदेशों की सूची है, यद्यपि इसमें क्रियाओं पर उतना नहीं, उन्हें संपन्न करने की विधि पर अधिक ज़ोर दिया गया है। क्रियाएँ करने वालों को नितांत स्वच्छ और कर्मकांड की रीति के अनुसार शुद्ध होना चाहिए। यदि किसी प्रकार की अशुद्धि से उनका संपर्क हुआ हो अथवा यदि किसी स्त्री के साथ उन्होंने शयन किया हो, तो जब तक शुद्धि के लिए वे आवश्यक क्रियाएँ न कर लें, तब तक उन्हें देवता के निकट न

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आना चाहिए। जो भोजन पान देवता को समर्पित है, किसी भी कारण उसका अन्य उपयोग न होना चाहिए, सामान्य जनों के साथ उसे बाँट न लेना चाहिए। मंदिर के अनुशासन की माँग थी कि प्रत्येक कर्मचारी रात्रि में मंदिर लौट आए चाहे संध्या वह नगर में बिताए। अपनी पत्नी के साथ सारी रात बिताने का दंड था मृत्यु। रात को फेरी लगाने और अग्नि को देखते रहने (fire-watching) के बारे में भी नियमावली थी।[37] दंड की कठोरता को छोड़कर सब-कुछ ऐसा है जिससे भारत के लोग अच्छी तरह परिचित हैं। ज़िप्पबंद के ऋतुदेव का संबोधन हटा दिया जाए तो यह विश्वास करना कठिन होगा कि यह सब भारत के बाहर भी कहीं होता था, वह भी ईरान, इराक पार करके तुर्की के उत्तरी भाग में ! या तो यह सारा आचार-विचार भारत से वहाँ पहुँचा था या फिर वहाँ से भारत आया। दोनों जगह उसका स्वतंत्र विकास हुआ हो या दोनों के भिन्न स्रोत हों, इसकी संभावना कम है। गूर्ने के विवरण में अग्नि को देखते रहने से संबंधित नियमों की ओर संकेत है। इससे प्रतीत होता है कि हित्ती राज्य में अग्नि-पूजा का चलन भी था।

हित्ती राजाओं के नाम के साथ कुछ प्रशंसात्मक शब्द जोड़े जाते थे, वे भारत की याद दिलाते हैं। राजा "देव या देवी का प्रिय (beloved of the god or goddess)" है।[38] सम्राट अशोक इसी प्रकार देवानांप्रिय थे।

घ. केंद्रीय सत्ता और नगर पंचायत

पिगॉट को हड़प्पा सभ्यता से शिकायत है कि उसने शिलालेखों, उत्कीर्ण स्मारकों आदि के निर्माण-कौशल का विकास नहीं किया। हित्ती साम्राज्य में यह कौशल बहुत बड़े पैमाने पर विकसित हुआ। स्मारकों और शिलालेखों पर अक्सर चित्रलिपि का व्यवहार होता था। गूर्ने इस लिपि को हित्तियों का "स्वतंत्र आविष्कार" मानते हैं।[39] प्राचीन होने से यह लिपि विशेष गरिमा से मंडित थी। इसलिए उदात्त संदर्भों में उसका व्यवहार होता था। किंतु उसका उपयोग मुद्राओं में भी होता था। कुछ मुद्राएँ चोंगे जैसी होती थीं—सुमेरी मुद्राओं की तरह; अन्य थीं ठप्पा मुहरें—हड़प्पाई मुहरों की तरह। गूर्ने का मत है कि अनातोलिया में इन ठप्पा मुहरों का "इतिहास अत्यंत प्राचीन" है।[40] चित्रलिपि और ठप्पा मुहरें, दोनों ही हड़प्पा से हित्तियों के संबंध की ओर संकेत करती हैं।

हड़प्पा में मंदिर नहीं हैं, यहाँ हैं। केंद्रबद्ध शासन वहाँ था, यहाँ भी है। यह केंद्रबद्धता सांप्रदायिक नहीं है, निरंकुश नहीं है। अनेक नगरों को मिलाकर हित्ती राज्य क़ायम किया गया था, पर इन नगरों की शासन समितियाँ बनी रही थीं। धर्म को लेकर प्रत्येक नगर स्वतंत्र रहा होगा क्योंकि राजधानी "हत्तुसस में सत्ता का केंद्रीकरण मुख्यतः नागरिक और सैनिक मामला था"।[41] इसी तरह हड़प्पा में सत्ता का केंद्रबद्ध स्वरूप नागरिक था, मौर्य सत्ता की केंद्रबद्धता नागरिक और सैनिक दोनों थी। मौर्य सम्राट की तरह हित्तियों का राजा प्रधान सेनापति भी था। यद्यपि राजा अनेक धार्मिक कृत्यों में भाग लेता था किंतु राजधानी का कोई महंत प्रांतों में पुरोहितों को नियुक्त न करता था। जो सेनापति प्रांतों में सड़कों की मरम्मत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आदि का काम देखते थे, वही पुरोहितों को नियुक्त करते थे।[42] हड़प्पा, हित्ती, और मौर्य, इन तीनों की केंद्रबद्ध राज्यसत्ता पुरोहितों की कार्यवाही का परिणाम न थी।

राजा शासक था किंतु वह निरंकुश शासक नहीं था। 1525 ई०पू० में राजा तेलिपिनुस् ने राजवंश से संबंधित उत्तराधिकार के नियम बनाए। राजा और अभिजातों का आचरण किस तरह का हो, इसके बारे में भी नियम बनाए। "ऐसा प्रतीत होता है कि इन नियमों का पालन साम्राज्य के अंत तक किया गया"।[43] एक महत्वपूर्ण संस्था, कम से कम राज्यसत्ता के प्रारंभिक दौर में, राजा के आचरण पर अंकुश रखती थी। इसका नाम था पंकुस्। यह सभी नागरिकों की सभा थी। वह न्यायालय का काम भी करती थी। एक बार दो राजाओं की हत्या के अपराध में दो राजकर्मचारी दंडित हुए किंतु जो बड़े अभिजात वास्तव में अपराधी थे, वे छोड़ दिए गए। "अभिजातों की शक्ति को संकुचित करने की अपनी चिंता के कारण तेलिपिनुस् ने आदेश दिया कि भविष्य में पंकुस् को यह सुनिश्चित कर देना चाहिए कि अपराध के लिए उकसाने वाला व्यक्ति स्वयं अपने डील से दंड भोगे, भले ही वह प्रतिष्ठित अभिजात हो अथवा स्वयं राजा ही हो।[44] जब राजा ईश्वर न बना था, तब पंच ही परमेश्वर थे। पंच का लिथुआनियाई रूप पेन्कि है। उसी से मिलता-जुलता रूप यह पंकुस् है जो संभवतः पंच और पंचायत का द्योतक था। पंकुस् राजा के अपराधी होने पर उसे भी दंडित करे, यह स्वयं राजा ने कहा; इससे इस संस्था के परंपरागत अधिकारों का बोध होता है। साम्राज्य की अंतिम दो शताब्दियों के अभिलेखों में पंकुस् का नाम नहीं है। इससे पहले के दौर के अभिलेख प्राप्त नहीं हैं। तेलिपिनुस् के बाद पंकुस् का उल्लेख न मिलने से गूर्ने यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पूरब की निरंकुश बादशाहतों की तरह हित्ती राज्यसत्ता भी निरंकुश हो गई, राजा अधिकारियों को नियुक्त करके शासन चलाने लगा। यह वही सुपरिचित पूर्वाग्रह है कि जनतंत्र की भूमि यूरोप है, निरंकुशता की भूमि एशिया है। जितने राजाओं के सिर यूरोप में काटे गए हैं, उतने भारत में नहीं। हो सकता है, भारत के लोगों में क्रांतिकारिता का अभाव हो, पर ब्रिटेन और फ्रांस के राजाओं के सिर उनके जनतंत्र प्रेम के कारण तो न काटे गए थे। गूर्ने जानते हैं कि विस्तृत भूमि पर फैले हुए राज्य का शासन कोई नगर सभा नहीं चला सकती। उसकी स्थिति में परिवर्तन होगा ही। किंतु नगर सभा का विकल्प राजा की निरंकुशता नहीं है। उसका स्थान मंत्रिपरिषद ले सकती है और वह राजा की स्वेच्छाचारिता को नियंत्रित रख सकती है। इस संबंध में **कौटिल्य** ने एक मज़ेदार बात लिखी है : इंद्र की मंत्रिपरिषद् में एक हज़ार ऋषि थे, वही उनकी आँखें थे, इसीलिए उन दो आँखों वाले को हज़ार आँखों वाला कहा गया है (१.१४.१८)। अत्यंत आवश्यक कार्य आ पड़े तो राजा मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद् (**मंत्रिणो मंत्रिपरिषदं च**) को बुलाए। वहाँ जो बहुजन समर्थित राय हो और जिससे काम बनता हो, (**तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुः**), उसके अनुसार करे (१.१४.१६)। मंत्रिपरिषद में सदस्य अधिक होंगे, इसलिए उससे भिन्न, मंत्रियों का अलग से उल्लेख है।

हित्तियों की राज्य व्यवस्था का विश्लेषण भारतीय इतिहास के लिए अत्यंत प्रासंगिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है क्योंकि वह मौर्यों की व्यवस्था से बहुत मिलती-जुलती थी। मेगस्थनेस का हवाला देते हुए विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है कि पाटलिपुत्र का प्रशासन एक नगरपालिका समिति (a Municipal Commission) चलाती थी। उसके तीस सदस्य बराबर संख्या वाली छह उपसमितियों में बँटे हुए थे। "इन उपसमितियों को ग़ैरसरकारी पंचायत का सरकारी विकास माना जा सकता है"।[45] हित्ती राज्य की पंकुस् इसी तरह की नगर पंचायत रही होगी। पाटलिपुत्र की एक नगरपालिका-उपसमिति का काम था उद्योग धंधों से संबंधित हर चीज़ की देखभाल करना। "निस्संदेह वह पगारों की दर निश्चित करने के लिए ज़िम्मेदार थी"।[46] स्मिथ की तरह पिगॉट ने हड़प्पा के लिए नगर प्रशासन की बात कही है—कृषि का उत्पादन नगर प्रशासक के नियंत्रण में था, अन्नागार नगर प्रशासन के अन्नागार थे। मानना चाहिए कि पाटलिपुत्र का नगर प्रशासन जैसे उद्योग धंधों की देखभाल करता था, वैसे ही हड़प्पा का नगर प्रशासन भी वहाँ के उद्योग धंधों की देखभाल करता था। नियोजित उत्पादन के लिए मंदिर और पुरोहित को बीच में डालना ज़रूरी नहीं है। पिगॉट ने मान लिया है कि कारीगर दास थे या दासवत् थे, उनसे बलपूर्वक काम कराया जाता था। किंतु स्मिथ ने उनके बारे में लिखा है, "कारीगरों के लिए समझा जाता था कि वे एक विशेष प्रकार से राजा की सेवा के प्रति अनुरक्त हैं। यदि किसी कारीगर के हाथ या उसकी आँख को नष्ट करके कोई उसकी कार्यकुशलता को क्षति पहुँचाए तो उसे प्राणदंड देने का विधान था"।[47] राजा की सेवा वास्तव में राजकीय सेवा है। राज्यसत्ता उद्योग व्यापार का संचालन करती है, इसलिए कारीगरों के लिए उचित पारिश्रमिक की व्यवस्था करके उनके शरीर और कौशल की रक्षा करती है। कारीगरों के प्रति राज्य का सम्मान भाव कौटिल्य के इस आदेश से लक्षित होगा : सूत्राध्यक्ष शिल्पियों के सुगंध लगाकर, उन्हें माला पहनाकर तथा अन्य साधनों से उन्हें प्रसन्न रखेगा। (२.२३.६)।

ङ पगार व्यवस्था और विधि संहिता

स्मिथ ने मौर्य साम्राज्य में कारीगरों को पगार देने की बात लिखी है, गूर्ने के अनुसार हित्ती साम्राज्य में भी कारीगरों को पगार दी जाती थी। नियमसूची में : "150-161 विभिन्न सेवाओं के लिए पगार की दर"। अन्य सूची में : "42. अभियान के लिए भाड़े पर सेवा (दायित्व और पगार की दर)"।[48] फिर गूर्ने स्वयं : "जो धाराएँ वस्तुओं के मूल्य और पगार की दरें निर्धारित करती हैं, वे एक विशेष ही प्रकार की समस्या प्रस्तुत करती हैं"।[49] वह समस्या जो भी हो, यह असंदिग्ध है कि राज्य द्वारा पगार की दरें निर्धारित थीं। बलपूर्वक श्रम कराने की प्रथा का चलन वहाँ न था। और भीः आबादी का बड़ा भाग किसानों का होगा पर "कारीगरों का एक सुनिर्धारित वर्ग" भी था।[50] इसमें थवई, बुनकर, चर्मकार, कुंभकार, कर्म्मार (धातुकर्मी), इनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। शिल्पी वर्ग के सदस्य सामान्यतः "भूमि और अन्य संपत्ति के स्वामी होते थे"।[51] कारीगर ही नहीं, जो सेवक था, "स्पष्ट ही उसके लिए संपत्ति का स्वामी होना, सामान्य बात थी"।[52] वह स्वाधीन नागरिक वर्ग की स्त्रियों से विवाह कर सकता था, और इसके लिए नियम थे, मानों "ऐसे विवाह होते ही रहते हों"।[53] जिस व्यक्ति को ऐसे अधिकार प्राप्त हों "वह शब्द के सामान्य अर्थ में दास

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नहीं है''।[54] लेकिन गूर्ने, पिगॉट, स्मिथ, सब यह मानकर चलते हैं कि पूरब के देशों की विशेषता है निरंकुश राजा का स्वेच्छाचारी शासन! उनकी कल्पना में जो प्राचीनकाल के सभ्य देश हैं, वे रोम और यूनान हैं, वहाँ दास-प्रथा का चलन था। तब किसी एशियाई देश में यदि सभ्यता का प्रकाश फैला हो, तो वह दास-प्रथा के बिना कैसे संभव होगा ? फिर भारत में तो शूद्र अनादिकाल से हैं, उनका धर्म ही है दूसरों की सेवा करना। उन्हें पगार देने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ? रोम और यूनान ने कितनी प्रगति की—दास-प्रथा के बल पर ! यहाँ भारत तो हमेशा पिछड़ा ही बना रहा—वर्ण-व्यवस्था के कारण !

पिगॉट ने हड़प्पाई कारीगरों को दास माना, इसमें आश्चर्य नहीं। उन्हें पगार दी जा सकती थी, यह बात उनके दिमाग में आई नहीं, यह स्वाभाविक है। पर हित्ती राज्य और मौर्य साम्राज्य, दोनों में पगार देने का नियम था, यह गूर्ने और स्मिथ मानते हैं। इन दोनों राज्यों की तरह हड़प्पा राज्य बिकाऊ माल का उत्पादक है। हज़ारों साल तक एशिया के विशाल भूखंड में मिलती-जुलती आर्थिक परंपराएँ चालू रही हैं। इसलिए यह अनुमान सार्थक होगा कि हड़प्पा राज्य में भी पगार देने का चलन था। गूर्ने के विवरण से हित्ती राज्य का जो चित्र उभरता है, वह बिकाऊ माल के उत्पादक समाज का है। हित्तियों की राजधानी उस स्थान के समीप थी ''जहाँ दो प्राचीनतम व्यापारिक मार्ग आकर मिलते हैं''।[55] चाँदी के सिक्के (silver currency) विनिमय का माध्यम थे।[56] विधि संहिता (Law Code) में हित्ती सौदागरों का उल्लेख है जो ''लुबिया और पल के प्रांतों की यात्रा करते थे, और इसमें संदेह का कारण नहीं है कि वे सीमा पार पड़ोसी देशों में अपना माल बेचने पहुँचते थे''।[57] व्यापारियों के महत्व का पता इससे चलता है कि एक संधि में यह शर्त रखी गई है कि अधीन राज्य जो ख़िराज देगा, वह हित्ती सौदागरों के बाट-बटखरों से तौला जाएगा।[58] निस्संदेह व्यापारियों की प्रेरणा से ही चाँदी के सिक्कों का चलन हुआ होगा। विनिमय के विकास से व्यापारी वर्ग का जन्म होता है; इस विकास के लिए चाहिए एक विनिमय का माध्यम। यह माध्यम होता है द्रव्य। हित्ती राज्य की तरह मगध में व्यापारियों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस भूमिका से द्रव्य के चलन के संबंध पर कोसंबी ने ध्यान दिया है। पिगॉट ने यह नहीं बताया कि हड़प्पा में विनिमय का माध्यम क्या था। प्रसंगवश कोसंबी ने इसका उल्लेख किया है। मगध के व्यापारी ''कीमती धातुओं के व्यवसायी'' थे और वे साहूकार तथा महाजन भी थे। ''सिक्के अक्सर निजी उद्योग की उपज होते थे।'' शाही चिह्न अंकित कर देने पर उन्हें संचार में रहने दिया जाता था। ''इसके सिवा किसी भी धातुखंड में चाँदी की उचित मात्रा हो तो वह सिक्के जैसा ही होगा। इसकी जानकारी मोहेंजोदड़ो में प्राप्त टुकड़ों से होती है जिन पर कोई चिह्न है ही नहीं (जैसे हड़प्पाई बाट-बटखरों पर कोई चिन्ह न था) पर वे चाँदी की पत्तल से यों काटे गए हैं कि 'डी' वर्ग के वज़न (59 ग्राम) के आसपास, पर उससे जरा-सा ऊपर हों। घिसकर सही वज़न के कर दिए जाएँ, तो वे वैसे ही बढ़िया सिक्के होंगे जैसे अन्य कोई अचिह्नित सिक्के''।[59] व्यापारियों द्वारा ऐसे सिक्कों के चलन की पुष्टि कोसंबी भाषाविज्ञान से करते हैं। **पण** है सिक्का, **पणि** है व्यापारी। **पणि** का रूपांतर है **वणिक**।[60] ''चिह्नित करने की प्रथा व्यापारियों से शुरू हुई। राजा बाद में आकर उन्हें जारी करने वाला अधिकारी बना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिसके चिह्न नफ़ासत और वज़न की गारंटी हों"।[61] हड़प्पा, हित्ती राज्य और मगध में द्रव्य के चलन को लेकर व्यापारियों की एक सी भूमिका प्रतीत होती है। हित्तियों की विधि संहिता में जौ, गेहूँ, तेल, मक्खन आदि के भाव दिए हुए हैं। खेती की उपज बिकती थी। पिगॉट के अनुसार हड़प्पाई किसान आवश्यकताओं के अलावा "नगरों में बेचने के लिए" अतिरिक्त उपज उगाते थे।[62] द्रव्य के चलन द्वारा शहर और देहात के बीच विनिमय का यह विकास हुआ होगा।

हित्ती राज्य की मूल्य सूचियों में गाय, बैल, घोड़े आदि के अलावा पशुओं के मांस और उनकी खाल का मूल्य भी निर्धारित है। भेड़ की ऊन सहित खाल का मूल्य अलग, ऊन रहित खाल का मूल्य अलग। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह कि भूमि की बिक्री भी होती थी, उसमें सिंचाई वाली भूमि की दर अलग, ग़ैर सिंचाई वाली भूमि की दर अलग ![63] आमतौर से सामंती समाज के जिस रूप से लोग परिचित हैं, यह समाज उससे भिन्न है।

शताब्दियों तक नियोजित ढंग से उद्योग व्यापार को चलाते रहने के लिए निश्चित विधि व्यवस्था आवश्यक होती है। गूर्ने जिस विधि संहिता का वर्णन करते हैं, वह उद्योग व्यापार की आवश्यकताओं से उत्पन्न हुई है। उसी के अंतर्गत पगार और वस्तु मूल्यों की दर आती है। हर काम के लिए पारिश्रमिक है, गुरु कारीगर शिष्य को अपनी विद्या सिखाए, तो उसकी फीस बँधी हुई है।[64] इस समाज में वित्त का यथेष्ट चलन है। हित्ती न्याय व्यवस्था की विशेषता है, अपराधी को सुधारने का प्रयत्न किया जाए, प्रतिहिंसा के विचार से उसे दंड न दिया जाए। "इस पहलू से हित्ती क़ानून अपेक्षाकृत आगे बढ़ा हुआ है। क्षतिपूर्ति के सिद्धांत की तुलना में बदला लेने वाला दंड नगण्य है...सामान्यतः क्षतिपूर्ति द्रव्य (चाँदी) के रूप में होती थी"।[65] विनिमय, द्रव्य, विधि संहिता—तीनों परस्पर संबद्ध हैं। विधि संहिता का जो रूप व्यवहार में प्रत्यक्ष होता था, वह निरंकुश स्वेच्छाचारिता से कोसों दूर था। गूर्ने कहते हैं : "हित्ती जनों की क़ानूनी कार्य-पद्धति का एक उदात्त लक्षण यह था कि तथ्यों की सुनिश्चित जानकारी प्राप्त करने के लिए बेहद कष्ट उठाया जाता था। कर्तव्य की अवहेलना और गबन के मामलों की जाँच करने वाली अदालतों के काम का बहुत विस्तृत ब्यौरा हमें उपलब्ध है। पूरब के लोगों के साहित्य में वह अद्वितीय है और उस पर काफ़ी आधुनिकता का रंग (quite a modern ring) है।[66] आधुनिकता के रंग का कारण है व्यापारिक अर्थतंत्र; विधि संहिता का आधार यह अर्थतंत्र है और वह विधि संहिता सामंती अंधविश्वासों (आग में हाथ न जले तो वादी या प्रतिवादी सच्चा !) से और वर्णगत भेदभाव से मुक्त है। वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की तरह यह संहिता शक्तिशाली केंद्रबद्ध राज्यसत्ता द्वारा एक विशाल भूखंड पर दीर्घकाल तक लागू की गई है।

च. अर्थतंत्र का संचालन और राज्यसत्ता

इस सफलता का कारण यह था कि सामंतों की शक्ति को राज्यसत्ता द्वारा नियंत्रित किया गया था। पंकुस् के न्यायिक अधिकारों के सिलसिले में गूर्ने का वाक्य बहुत अर्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यंजक है : "अभिजातों की शक्ति को संकुचित करने की अपनी चिंता के कारण तेलिपिनुस् ने आदेश दिया..."।[67] सम्राट् अभिजातों की शक्ति को संकुचित करना चाहता है, सामंतों के दृष्टिकोण से यह उनकी निरंकुशता है पर व्यापारियों के दृष्टिकोण से उनकी यह इच्छा न्यायपूर्ण है। कारीगरों और किसानों का हित भी इसी में था कि सामंत अलग-थलग छोटे-छोटे राज्यों में स्वेच्छाचारी ढंग से शासन न करें। सामंतों की स्वेच्छाचारिता को समाप्त करके ही ऐसी व्यापक विधि संहिता का निर्माण हो सकता था जिसके अनुसार सभी नागरिक आचरण करने को बाध्य हों, और न्याय अन्याय का फ़ैसला किसी सामंत की इच्छा पर निर्भर न हो। तेलिपिनुस् ने उत्तराधिकार के बारे में जो क़ानून बनाया, वह भी सामंतों की महत्वाकांक्षाओं का दमन करने वाला था। "उससे पहले राज्य को बारबार एक के बाद दूसरे संकट का सामना करना पड़ा था। उसके बाद स्थायित्व निश्चित हो गया और हमें फिर कभी महत्वाकांक्षी अभिजात राजा के अधिकार को चुनौती देते, नहीं दिखाई देते"।[68] हित्ती साम्राज्य में सामंतों की महत्वाकांक्षाएँ कुचल दीं गईं थीं; यह उसके स्थायित्व और आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण था।

निस्संदेह पगार से लेकर वस्तुओं की ख़रीद फ़रोख्त और उनके मूल्य निर्धारण तक सारा व्यवसाय हित्ती राज्यसत्ता की देखरेख में होता था।बाट-बटखरों के नाम भले ही बैबिलोनी हों, नापतौल की मानक व्यवस्था(हड़प्पा की तरह)राज्यव्यापी थी,इसमें संदेह नहीं है। सभी बाट-बटखरों के नाम बैबीलोनी नहीं थे। **परिसु** और **जपित्तनु** कितने भार के द्योतक थे, इसका पता शायद इसीलिए नहीं है कि ये नाम बैबिलोनी नहीं हैं। नफ़ीस वस्त्र, नीले ऊनी वस्त्र, कपड़े—इनका मूल्य लिखा है, नाप नहीं लिखी पर वे नापे तो जाते ही होंगे। भूमि का फ़ी एकड़ मूल्य दिया है, एकड़ की मूल हित्ती नाप नहीं दी। नगर की सुरक्षा प्राचीरें बनाने के लिए व्यावहारिक ज्यामिति का ज्ञान दरकार था; उसके मापक घटक कितने थे, उनका परिमाण कितना था, इसकी जानकारी गूर्ने की पुस्तक से नहीं होती। नगर की मुख्य तथा गौण प्राचीरों के बीच लगभग 20 फुट का अंतर होता था, और मुख्य प्राचीर के दो भाग होते थे—एक बाहरी खोल, दूसरा भीतरी खोल। इनके बीच-बीच में आड़ी दीवालें खड़ी की जाती थीं और इस प्रकार "आयताकार खाली स्थानों की एक शृंखला बन जाती थी जिसे मलबे से भर दिया जाता था"। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि "जहाँ भी हित्तियों की सुरक्षात्मक प्राचीरें मिलती हैं, वहाँ उनकी निर्माण-पद्धति की यही विशेषता है"।[69] केंद्रबद्ध राज्यसत्ता के बिना सर्वत्र इस तरह की सुरक्षा प्राचीरों का निर्माण संभव नहीं है। यह राज्यसत्ता पगार और मूल्य निर्धारित करती है। वह धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता है। गूर्ने जब कहते हैं कि राजधानी "हत्तुसस् में सत्ता का केंद्रीकरण मुख्यतः नागरिक और सैनिक मामला था,"[70] तब वह केंद्रबद्ध राज्यसत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और उसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप भी। यह सत्ता पगार और मूल्य निर्धारित करे, यह बात गूर्ने को असंभव सी लगती है।

वस्तुओं के मूल्य और पगार की दरें निर्धारित करने वाली धाराएँ "एक विशेष ही प्रकार की समस्या प्रस्तुत करती हैं"। समस्या यह है : "माँग और आपूर्ति के अनुसार ऐसे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मूल्य अनिवार्यतः बदलते हैं। उनके नियंत्रण के लिए एक नौकरशाही संगठन आवश्यक होगा और संभवतः उस समय उसका अस्तित्व हो न सकता था"।[71] पिगॉट के लिए पश्चिमी एशिया में "उस समय" भारतीय आर्य न हो सकते थे, वैसे ही गुर्ने के लिए हित्ती राज्य में "उस समय" नौकरशाही संगठन न हो सकता था! दोनों के पूर्वाग्रह अपने-अपने ढंग के हैं। गूर्ने पश्चिमी एशिया में प्राप्त आर्य नामों की भारतीयता स्वीकार करते हैं, मानते हैं कि एक आर्य गणशाखा ने अश्व प्रजनन, अश्व प्रशिक्षण और रथ विद्या का प्रसार पश्चिमी एशिया में किया। पर वह एक विशाल साम्राज्य में विस्तृत नौकरशाही संगठन के अस्तित्व की संभावना स्वीकार नहीं करते। हड़प्पा राज्य हित्ती साम्राज्य से बड़ा था। वहाँ व्यापक नौकरशाही का अस्तित्व पिगॉट के लिए ध्रुव सत्य है। वह उन्हें पसंद नहीं है, बार-बार वह उसे कोसते हैं पर उसके अस्तित्व से इनकार नहीं करते। यदि हड़प्पा काल में नौकरशाही संगठन संभव था तो हित्ती साम्राज्य के समय में वह अवश्य संभव था। लगता है, गूर्ने राज्य व्यवस्था के आधुनिक संचालन के लिए नौकरशाही को ज़रूरी समझते हैं, वह उससे घृणा नहीं करते और इसलिए हित्ती राज्य में उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। प्रश्न केवल पगार और मूल्य निर्धारित करने का नहीं था, न्याय व्यवस्था के संचालन का भी था। जो लोग जाँच अदालतों के कार्य का विस्तृत ब्यौरा रखते थे, जो बेहद कष्ट उठाकर तथ्य संग्रह करते थे, वे भी राजकर्मचारी थे।

हित्ती राजा किसी से संधि करते थे तो संधिलेख चाँदी, सोने या लोहे के पत्रक पर लिखाते थे; फिर उस पर शाही मुहर लगाई जाती थी। "ये दस्तावेज़ नष्ट हो गए हैं। जो मृद्-पट्टिकाएँ बची हैं, वे राज-भवन के अभिलेखों के लिए की हुई नकलें हैं, और इनमें किसी पर शाही मुहर अंकित नहीं है"।[72] एक हुए धातु पत्रकों पर संधि लिखने वाले, दूसरे हुए उनके नकलनवीस! राजनयिक संबंधों से लेकर अदालत की कार्रवाई तक नौकरशाही का जाल फैला हुआ था। । व्यापार से राज्यसत्ता को लाभ था, वह उसे अपने नियंत्रण से क्यों बाहर रहने देती? प्रश्न केवल व्यापार का नहीं था, प्रश्न उद्योग-धंधों के नियंत्रण और संचालन का भी था। काँसे और ताँबे के बर्तन और हथियार बनाए जाते थे। केंद्रबद्ध सेना हथियार बनाने का काम कारीगरों पर छोड़ दे, यह संभव नहीं लगता। हित्ती राज्य का धातु उद्योग काफ़ी विकसित था। लघु एशिया लोहे की ढलाई के काम में प्रमुख था। असीरिया के राजा हित्तियों से लोहा मँगाते थे। हित्ती राजा हत्तुसिलिस् तृतीय ने असीरिया के राजा को सूचित किया था: "किज़्ज़ुघुवतन के मेरे मुद्रा गृह (seal house) में अच्छा लोहा सुलभ नहीं है"।[73] यह मुद्रागृह एक तरह का लोहागार रहा होगा। स्पष्ट ही वह राजा के नियंत्रण में था, वहाँ से घरेलू ही नहीं, लोहे की विदेशी माँग भी पूरी की जा सकती थी। केंद्रबद्ध उद्योग का यह भी एक प्रमाण है।

माँग और आपूर्ति घटती बढ़ती रहती है किंतु नियोजित अर्थतंत्र में ऐसा फेरबदल कम होता है। हित्ती राज्य की मूल्य सूचियाँ विधिसंहिता का अंग थीं और यह संहिता परिवर्तनशील थी। पहले दंड इतना था, अब इतना है, इस तरह के उल्लेख मिलते हैं। हित्ती लोग "परिवर्तित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आवश्यकताओं के अनुरूप अपने क़ानूनों को सुधारने में झिझकते न थे''।[74] क़ानून का बदला हुआ रूप किसी स्थान विशेष का क़ानून हो सकता है, यह संभावना स्वीकार करते हुए गूर्ने फिर कहते हैं, संहिता की आंतरिक व्यवस्था से ''उसकी क्रमशः वृद्धि का विश्वसनीय साक्ष्य मिलता है''।[75] विधि संहिता के अलग-अलग स्थानीय रूप नहीं थे; समयसाध्य विकास के फलस्वरूप एक व्यापक संहिता निर्मित हुई थी जो राज्य में सर्वत्र लागू होती थी। वस्तु मूल्यों की सूची इसी स्थिति के अनुरूप थी और निस्संदेह उसका एक उद्देश्य व्यापारियों की मुनाफ़ाखोरी को रोकना था। गूर्ने स्वीकार करते हैं कि संभव है सूची में अधिकतम मूल्य दिए गए हों (अर्थात् उस सीमा को लाँघने से अनुचित मुनाफ़ाखोरी शुरू हो जाएगी); ''समीपवर्ती मूल्यों के रूप में (as approximations) वे निस्संदेह आर्थिक परिस्थितियों की काफ़ी सही तस्वीर पेश करते हैं''।[76] कीमतें बराबर चढ़ती जाएँ, उतरने का नाम न लें, ऐसी परिस्थितियाँ उस समय नहीं थीं। मुनाफ़ाखोरी पर राज्यसत्ता अंकुश लगाए थी।

पिगॉट ने हड़प्पा राज्य से मौर्य साम्राज्य की तुलना करके भारतीय सामंतवाद के एक विशिष्ट रूप का परिचय दिया। केंद्रबद्ध राज्यसत्ता, नियोजित उत्पादन, खनिज उद्योग का विकास, नागरिक अर्थतंत्र के अधीन कृषितंत्र का संचालन, कारीगरों को पगार, देश-विदेश में व्यापारिक संबंधों का प्रसार, राज्यसत्ता का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, अर्थतंत्र के संगठन में उसकी सक्रिय भूमिका, सामंती पृथकता और स्वेच्छाचारिता का दमन — हड़प्पा के साथ हित्ती और मौर्य साम्राज्यों को मिला कर देखने से भारतीय सामंतवाद की ये विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। (मितन्नी राज्य, बैबिलोन के कस्सी राज्य की और अधिक जानकारी होने पर इन विशेषताओं की पुष्टि हो सकती है या ये राज्य उक्त सामंतवाद से अलग कोटि में रखे जा सकते हैं)। एक बात निश्चित है कि सामंतवाद के जिस यूरोपियन स्वरूप से विद्वान परिचित हैं, उससे यह भिन्न है। उसके गर्भ में व्यापारिक पूँजीवाद विकसित हो रहा है।

छ. फ़िलिस्तीन, सीरिया में आर्य सामंत

मिस्र, सुमेर, भारत — प्राचीन सभ्यता के ये तीन मुख्य केंद्र थे और ये तीनों परस्पर संबद्ध थे। मिस्र और सुमेर में भारत से निर्यात की हुई अनेक वस्तुएँ मिली हैं और सुमेर में तो भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश भी थे। मिस्र से भारत का संबंध अनेक प्रकार का रहा है। मितन्नी और हित्ती राजाओं से मिस्र ने कभी युद्ध किया, कभी संधि की, यह भी संपर्क का एक रूप था। सीरिया और फ़िलिस्तीन के अनेक सामंतों के नाम भारतीय उद्भव के माने गए हैं और ये सामंत मिस्र के अधीन थे। यह संपर्क का अन्य रूप था। बाइबिल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए अमरीकी विद्वान **जेम्स बी. प्रिचार्ड** ने 1950 में प्राचीन अभिलेखों का एक संकलन प्रकाशित किया। पाँच साल बाद उन्होंने इसका संशोधित और परिवर्धित संस्करण निकाला। इसमें मिस्री और सुमेरी अभिलेखों के साथ हित्ती अभिलेख भी हैं। यह संकलन इस धारणा की पुष्टि करता है कि भारत से लेकर मिस्र तक एक विशाल अफ़्रीकी-एशियाई भूखंड की संस्कृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती रही हैं और बाइबिल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझने के लिए इसकी जानकारी आवश्यक है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रिचार्ड ने फ़िलिस्तीन, सीरिया और फ़िनीशिया के सामंतों द्वारा मिस्र के राजाओं को लिखे हुए अनेक पत्र दिए हैं। इन राजाओं—अमेनूहोतेप् तृतीय और अखेन् अतोन्—का शासन काल 1413 से लेकर 1362 ई० पू० तक माना गया है।[77] इन पत्रों में जो नाम आए हैं, उनमें अनेक भारतीय आर्य भाषाओं के हैं। पत्रों के नीचे पाद-टिप्पणियों में प्रिचार्ड ने इन नामों के 'इंडोआर्यन' होने की ओर कई बार ध्यान दिलाया है। फ़िलिस्तीन के एक सामंत का नाम है इंदरुत (Indaruta)। प्रिचार्ड के अनुसार इस सामंत का "वही इंडोआर्यन नाम है जो उसके समकालीन, ऋग्वेद के, इंद्रोत अथवा इंद्रौत (Indrota or Indrauta) का है"।[78] इस टिप्पणी में "समकालीन" शब्द बहुत दिलचस्प है। आर्य लोग अपनी मूल निवास भूमि से या तो भारत पहुँचे और तुरंत पश्चिमी एशिया की यात्रा करते हुए फ़िलिस्तीन आ गए, इस तरह एक ही समय में भारत और फ़िलिस्तीन के दो व्यक्तियों का एक ही नाम हुआ। या फिर कुछ आर्य फ़िलिस्तीन में रह गए, और उन्हीं के से नामों वाले दूसरे आर्य भारत पहुँचे। किंतु इस स्थिति में फ़िलिस्तीन में प्राप्त नाम को 'इंडोआर्यन' कहना उचित न होगा। 'इंडोआर्यन' वह होगा जो भारत में आ कर बस गया हो।

मिस्र के अधीन दमिश्क के राजा बीर्यवज़ (Biryawaza) के सिलसिले में प्रिचार्ड ने लिखा है, "सभी व्यक्तिवाचक नाम (शुत को छोड़कर) इंडो-आर्यन हैं"।[79] शुत (प्रिचार्ड के अनुसार उच्चारण में सुत) मिस्री अधिकारी था। संभव है, मागधीवृत्ति के अनुसार किसी भारतीय आर्य ने सुत को शुत बना दिया हो। उसी पत्र में एक स्थान का नाम मग्दल आया है। प्रिचार्ड ने बताया है कि बाइबिल में यही नाम मिग्दोल (निर्गमन 14:2) रूप में है। संभव है मग्दल का संबंध मगों से हो। (मगध में आधारभूत गण वाचक शब्दमूल मग ही है।) एक अन्य स्थान है मेगिद्दो। यहाँ के राजा बिरिदिय (Biridiya) का नाम "इस समय के अधिकांश अन्य उत्तरी फ़िलिस्तीनी राजवंशीय नामों की तरह इंडोआर्यन है"।[80] यहाँ मेगिद्दो भी मग्दल की तरह मगों से संबद्ध हो सकता है। एक व्यक्तिवाचक नाम शुवर्दत (Shuwardata) भी (शुत की तरह) मागधीवृत्ति का परिचायक हो सकता है।[81] "बिरश्शेन नाम भी इंडोआर्यन है"।[82] यहाँ भी उसी वृत्ति का परिचय मिलता है।

भारतीय आर्य नाम धारण किए पश्चिमी एशिया के ये सामंत कब से वहाँ बसे हुए थे, इसका ब्यौरा नहीं मिलता। दूसरी सहस्राब्दी के मध्य में भारतीय आर्य सामंत फ़िलिस्तीन और सीरिया में बसे हुए थे, यह तथ्य निर्विवाद है, और मिस्री राजाओं, राजकर्मचारियों आदि से उनका घनिष्ट संपर्क था। सामंतों के पत्र सामी भाषा में लिखे गए हैं। उनके नाम भारतीय आर्य भाषाओं के हैं। मिस्र की प्राचीन भाषा में कुछ सामी विशेषताएँ हैं पर वह भिन्न (हामी) कुल की भाषा है। दूसरी सहस्त्राब्दी में हामी, सामी तथा आर्य इन तीन भाषा परिवारों को हम परस्पर संपर्क में आते देख सकते हैं। केंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री में आलब्राइट तथा लैंबडिन बोगाज़कुइ, अमर्ना आदि स्थानों में प्राप्त सामग्री के आधार पर कहते हैं कि दूसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० में दक्खिन पश्चिमी एशिया में इंडोआर्यन बोली जाती थी। इसके बोलने वाले उन देवताओं की उपासना करते थे जो "विशिष्ट रूप में वैदिक" थे। वे संख्यासूचक उन शब्दों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का व्यवहार करते थे जो "विशिष्ट भारतीय रूप" हैं। जिन शब्दों का सीधा या दूर का संबंध घोड़ों के नस्ली संवर्धन, उनके प्रशिक्षण तथा रथों की दौड़ से है, वे "अधिकतर विशिष्ट इंडोआर्यन उद्भव के हैं।" इसके सिवा सौ व्यक्तिवाचक नाम मिले हैं, ये लगभग 1700 और 1250 ई० पू० के बीच के हैं। ये "निश्चित रूप से या संभवतः इंडोइरानियन हैं। इनमें कुछ विशुद्ध वैदिक हैं यथा पुरातन "इंद्रौत के लिए इंद्रोत जो अपर्ना पट्टिकाओं में इंदरूत बनकर प्रकट हुआ है।" यह सारी सामग्री कीलाक्षरी लिपि में है। इस लिपि में अनेक खामियाँ हैं। इस कारण जहाँ अनेक व्युत्पत्तियाँ संभव हों, वहाँ किसी एक को सुनिश्चित करना सरल नहीं होता। लेकिन प्रमाण सामग्री बराबर बढ़ रही है, इसलिए यह कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है। "इनमें कुछ नाम ईरानी हो सकते हैं परंतु एक भी संदिग्ध रूप ऐसा नहीं है जहाँ उसकी भारतीय उत्पत्ति उतनी ही संभव न हो"।[83]

इस विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि दूसरी सहस्त्राब्दी के मध्य में भारतीय मूल के आर्य पश्चिमी एशिया में फैले हुए थे। ये इंडोईरानियन शाखा के घुमंतू आर्य नहीं हैं, ये भारतीय आर्य हैं और **ऋग्वेद** की रचना के बाद भारत से बाहर गए हैं। इसीलिए कुछ नामों के **मूल रूप ऋग्वेद** में हैं, उनके **परिवर्तित रूप** पश्चिमी एशिया के अभिलेखों में हैं। ये आर्य भारत से बाहर इस भूखंड में सामंती शासकों की भूमिका निबाहते हैं और सामाजिक विकास क्रम में यह भूमिका कबीलों के घुमंतू जीवन से बहुत आगे की मंज़िल है। उक्त लेखकों ने उस इतिहास ग्रंथ में आगे बताया है कि इंडोआर्यन नामों में प्राचीनतम ज़यलुति, एक मंदा सरदार (Zayaluti, a Manda Chief) का है जिन्होंने "लगभग सत्रहवीं सदी ई० पू० के मध्य में सीरिया के राजनीतिक और सैनिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निबाही थी। इसके कुछ ही समय बाद हमें 'खुर्री' सरदारों का गुट मिलता है जिनके नाम निश्चित या संभावित रूप में इंडोआर्यन हैं और लगभग सोलहवीं सदी* में मितन्नी के राजवंश के संस्थापक किर्त (Kirta) का नाम, तेरहवीं सदी" तक उसके उत्तराधिकारियों के नामों की तरह, इंडोआर्यन है"।[84] दूसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० में भारतीय आर्य पश्चिमी एशिया में सामंती व्यवस्था का प्रसार कर रहे हैं। यह व्यवस्था उनके वहाँ पहुँचने से पहले भारत में जन्म ले चुकी है और उसका विशेष संबंध अरायुक्त नए ढंग के रथों और घोड़ों के संवर्धन/प्रशिक्षण से है। जैसा कि उक्त लेखकों ने कहा है, "इनमें बहुत से नाम घोड़ों और रथों के प्रसंग में आए हैं। अरा युक्त रथचक्र का आविष्कार कुछ ही समय पहले हुआ था। पहले से कहीं अधिक तीव्र गति इस रथचक्र से संभव हुई। उसकी असाधारण लोकप्रियता से यही आशा की जा सकती थी कि भारतीय नाम रथ संचालन और अश्वसंवर्धन के प्रसंग में प्राप्त हों"।[85]

अरायुक्त रथचक्र का उल्लेख **ऋग्वेद** में अनेक स्थानों पर है। भारत में इस नए रथ का व्यवहार बड़े पैमाने पर हो चुका था, उसके बाद ही वह बाहर पहुँचा। लेकिन व्हीलर की तरह आलब्राइट और लैंबडिन मानते हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता का अंतिम रूप में विनाश "इंडोआर्यन आक्रमण" से हुआ और यह घटना लगभग "1800 ई० पू० की या शायद उससे कुछ बाद की" है। और भारत से दूर सीरिया में जो पहला भारतीय नाम मिलता

* ई.पू.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है वह सत्रहवीं सदी के मध्य का है! व्हीलर के सामने सत्रहवीं सदी के इन भारतीय आर्य नामों की समस्या नहीं थीं। उन्होंने आर्यों के आक्रमण का समय 1500 ई० पू० के आसपास निर्धारित किया। आलब्राइट और लैंबडिन के सामने यह समस्या थी। उन्होंने उस आक्रमण का समय 1800 ई० पू० के आसपास माना। अठारहवीं सदी सत्रहवीं से बहुत दूर नहीं है। यदि आक्रमण की घटना 1800 से "कुछ बाद की" है तो वह सत्रहवीं सदी के और भी नज़दीक खिसक आती है। इतनी जल्दी भारत विजय करके वही आर्य सीरिया के राजनीतिक और सैनिक मामले निपटाने कैसे पहुँच गए ?

ज. मिस्र में हिक्सोस शोसन

प्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी का मत है कि तीन हज़ार साल बाद जो काम तुर्कों ने किया था, वही दूसरी सहस्राब्दी के आरंभ में आर्यों ने किया। यूरोप-एशिया के स्तेपी मैदानों से तुर्कों के एक समुदाय ने उत्तर-पश्चिमी दर्रों से भारत में प्रवेश किया, दूसरा समुदाय ईरान होता हुआ अनातोलिया पहुँचा। इसी तरह आर्यों के एक समूह ने हिंदूकुश पार करके भारत में प्रवेश किया, उनके अन्य समूह पश्चिमी एशिया पहुँचे और सीरिया के स्वामी बने। "सत्रहवीं सदी ई० पू० के प्रारंभिक वर्षों में उन्होंने मिस्र को जीतने के लिए सीरिया का उपयोग आधार भूमि के रूप में किया"।[86] टॉयनबी जानते हैं कि मितन्नी के शासक मित्र, वरुण, इंद्र और नासत्य, इन आर्य देवों के उपासक थे। इनका विशेष संबंध भारत और ऋग्वेद से है, इस बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। अन्य विवेचक जहाँ इंडोयूरोपियनों की बात करते हैं, वहाँ टॉयनबी केवल आर्यों का नाम लेते हैं। आर्य "ईरान और इराक़ होते हुए सीरिया पहुँचे"।[87] इस तरह एक सीमा तक उनके विवेचन से इंडो-ईरानियन शाखा की धारणा निरस्त हो जाती है।

सत्रहवीं सदी ई०पू० के आरंभ में कुछ विदेशी आक्रमणकारियों ने मिस्र पर अधिकार कर लिया। उन्होंने वहाँ डेढ़ सौ साल तक शासन किया। इन्हें हिक्सोस् कहा जाता है। (प्रिचार्ड के अनुसार यह यूनानी शब्द संभवतः मिस्री हेकउ-खसुत् से बना है और मिस्री शब्दों का अर्थ है विदेशों के शासक)।[88] टॉयनबी ने इन्हें पश्चिमी एशिया से आए हुए आर्य माना है।[89] ईरान-इराक़ होते हुए वे सीरिया पहुँचे "और वहाँ से उन्होंने मिस्र पर अधिकार जमा लिया। मिस्री इन बर्बर युद्धपतियों को हिक्सोस् कहते थे। वे जिस साम्राज्य पर शासन करते थे, उसमें मिस्र और सीरिया के अलावा शायद मेसोपोटामिया भी था। यह साम्राज्य संभवतः (तुर्क सुल्तान) सलादीन के साम्राज्य के समान विस्तृत था और निश्चय ही उसके समान अस्थायी भी था"।[90] टॉयनबी ने उसे सुमेर-अक्कद साम्राज्य का आर्य उत्तराधिकारी कहा है।[91] अंतर यह है कि सुमेर-अक्कद साम्राज्य में मिस्र नहीं था, उत्तराधिकारी साम्राज्य में मिस्र भी था। वास्तव में इराक़ से मिस्र तक किसी केंद्रबद्ध साम्राज्य के अस्तित्व का प्रमाण नहीं है किंतु दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में आर्य इस विशाल भूखंड के अनेक राज्यों पर शासन करते थे, यह निश्चित है। यह भी संभव है कि जैसे सुमेर में भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश थे, वैसे ही उपनिवेश सीरिया और मिस्र में भी रहे हों और हिक्सोस् आक्रमण के पहले से

* ई.पू.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रहे हों। मिस्र में सूर्यदेव की पूजा के इतिहास से यह धारणा पुष्ट होती है कि आर्यों के उपनिवेशों ने मिस्री संस्कृति को प्रभावित किया था।

मिस्र के राजा देवता के प्रत्यक्ष रूप, उसके अवतार अथवा पुत्र माने जाते थे और धार्मिक कृत्यों में मुख्य पुरोहित होते थे। मिस्री राजवंश में सूर्य की पूजा आरंभ से ही प्रचलित न थी, उसका चलन तीसरे राजवंश से हुआ और उसे पूर्ण प्रतिष्ठा मिली पाँचवें राजवंश में।[92] पहले सूर्य की पूजा पर राजा का विशेष अधिकार था। यही एक देव ऐसे थे जिन्हें वह अपने से श्रेष्ठ मानता था। आर्यों के शासन के बाद राजा के विशेषाधिकार में परिवर्तन हुआ। मार्गरेट मरे का कहना है, ''लगता है कि अठारहवें राजवंश तक किसी निम्नस्तरीय व्यक्ति में साहस न था कि राजा के देवता को पूजे, किंतु हिक्सोस् अधिकार के दौरान मिस्र में एक परिवर्तन आया। अठारहवें वंश के योद्धा-राजाओं ने अपने सैनिकों के साथ अभियान के खतरों और कठिनाइयों का सामना किया था। वे पूर्वकाल के अलग-थलग रहने वाले देव-राजाओं की तुलना में अधिक मानवीय और उदार थे''।[93] मुख्य बात यह कि कुछ समय के लिए सूर्य के संबंध में प्रबुद्ध मिस्री जनों की मूल धारणा ही बदल गई। मार्गरेट मरे के अनुसार सूर्य ऊष्मा का स्रोत तो था किंतु प्रकाश का स्रोत न था। सघन अंधकार में सूर्य की यात्रा के विवरण से यह धारणा पुष्ट हो जाती है। ''लगता है कि पहले पहल [राजा] अखेनातोन् अथवा उनके परामर्शदाताओं ने जाना कि ऊष्मा के साथ सूर्य प्रकाश का स्रोत भी है''।[94]

अठारहवीं से सोलहवीं सदी ई० पू० के बीच कभी रचे गए एक स्तोत्र में सूर्य के लिए कहा गया है:

''जो दोनों भूखंडों को प्रकाशित करता है और शांतिपूर्वक आकाश को पार करता है''।[95]

पंद्रहवीं से चौदहवीं सदी के बीच के अन्य स्तोत्र के बारे में प्रिचार्ड ने लिखा है, ''साम्राज्य की तथा अंतरराष्ट्रीय संपर्कों की शक्तियाँ मिस्र को अमर्ना क्रांति से पहले ही विश्ववाद की ओर तथा एकेश्वरवाद के आंशिक रुझान की ओर प्रवृत्त कर रही थीं''।[96] जो अंतरराष्ट्रीय संपर्क मिस्रियों को इस दिशा में प्रेरित कर रहे थे, वे अवश्य ही भारतीय आर्यों से संपर्क रहे होंगे। अमर्ना क्रांति राजा अमेनूहोतेप् चतुर्थ ने की थी। इन्होंने थेबेस् नगर छोड़कर तेल् एल् अमर्ना में अपनी राजधानी बनाई थी। प्रिचार्ड के शब्दों में ''धर्म, राजनीति, कला और साहित्य में 'अमर्ना क्रांति' ने मिस्र की परंपरागत और जड़ जीवन पद्धतियों से स्पष्ट विच्छेद के लिए प्रयत्न किया था''।[97] इस प्रयत्न में सूर्य की नई उपासना पद्धति शामिल है। मिस्र में अनेक देवताओं की पूजा होती थी। इन्हें सूर्य से जोड़ा गया मानों वे सब उस एक देव के अंश हों। पुराने देवता अमोन् (थेबेस् के मेषरूप देव) सूर्यवाचक रे के साथ जुड़ कर अमोन् रे बने। सेबेक् (मकर देव) सेबेक्-रे कहलाए। हिक्सोस् को निकालने के बाद मिस्र में जो 'नया राज्य', क़ायम हुआ, उसमें, मार्गरेट मरे के अनुसार, ''सूर्योपासना सभी आधिकारिक कर्मकांड में फैल गई, जहाँ तक संभव था, पूजा की विशेष रीतियों में परिवर्तन हुआ, और पूजा का बहुत कुछ मानक रूप स्थिर किया गया''।[98]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राजा अमेन् होतेप् चतुर्थ ने अपना नाम बदल कर अख्-एन्-अतोन् रखा। सूर्यबिंब को अतोन् कहा जाता था, अखेन्-अतोन् का अर्थ हुआ सूर्य का सेवक।[99] बिंब को सूर्य का प्रतीक बना कर अखेन्-अतोन् ने देवता के मानवीय रूप को त्यागा, आकाश में उनके प्रत्यक्ष जीवनदायी रूप तथा प्रकाश की व्याप्ति पर बल दिया। चौदहवीं शताब्दी ई०पू० में रचे हुए सूर्य के एक स्तोत्र के अनेक अंश ऋग्वेद तथा उपनिवषदों में सूर्य के प्रत्यक्ष रूप और उसकी व्याप्ति का स्मरण कराते हैं।

तुम आकाश के क्षितिज पर भव्य रूप में प्रकट होते हो,
हे जीवंत अतोन्, तुम जीवन का प्रारंभ हो !
पूर्वी क्षितिज पर जब तुम उदय होते हो,
अपने रूप से तुम हर प्रदेश को भर देते हो।[100]

प्रिचार्ड का मत है कि अतोन् की उपासना राजा तक सीमित थी; राजा के दरबारी जन तो राजा को ही पूजते थे और अधिकांश मिस्री जनता या तो नए मत को जानती न थी या उसकी विरोधी थी।[101] मार्गरिट मरे का कहना है कि सूर्य की पूजा पर राजा का अधिकार था और यद्यपि आगे चल कर कुछ अभिजातों ने उसे अपना लिया पर "वह जनता का धर्म कभी नहीं बनी। उसका पूर्ण विकास अखेन्-अतोन् के शासन में हुआ"।[102]

आर्यों के शासन काल के दौरान और उसके बाद मिस्र के धर्म और वहाँ की संस्कृति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, यह तथ्य असंदिग्ध है। इस प्रसंग में मार्गरिट मरे ने मिस्री धर्म के विकास की जो तीन मंज़िलें गिनाई हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। पहली मंज़िल प्रागैतिहासिक काल की है। उसमें मृत्यु के बाद जी उठने वाले देवता की पूजा का चलन हुआ। विदेशी संस्कृति के प्रभाव से विदेशी विचारों को आत्मसात् करने से,ज्ञान की वृद्धि से और इसके फलस्वरूप रहन-सहन के मानदंड के उन्नत होने से सभ्यता के विकास में वृद्धि हुई। नए विचारों का यह समन्वय ओसिरिस् की पूजा में व्यक्त हुआ।[103] मिस्र के आसपास इस समय कोई ऐसा देश न था जो अपनी सभ्यता से मिस्र को प्रभावित करता। पूर्व की ओर ऐसे केवल दो देश थे सुमेर और भारत, जिनके विचारों को आत्मसात् करके मिस्र उन्नति कर सकता था। यह संभव है कि भारत ने सुमेर के साथ, सुमेर के माध्यम से अथवा सीधे मिस्र को प्रभावित किया हो।

दूसरी मंज़िल में राजवंशों का अभ्युदय हुआ। उत्तर के राजाओं का देवता होरस्-श्येन था, दक्षिण के राजाओं का सेतेख्-मकर। मिस्र के दोनों भागों के एकीकरण के साथ ये दोनों देवता ओसिरिस् के देवतंत्र में शामिल कर लिए गए।[104] तीसरी मंज़िल में "सूर्योपासना का आयात हुआ", आयात इसलिए कि मिस्र में वर्षा बहुत ही कम होती थी, और "सूर्य को शत्रुभाव से देखा जाता था"।[105] यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि जिस देश में सूर्य को शत्रुभाव से देखा जाता था उसमें शताब्दियों तक सूर्योपासना का चलन बना रहा। मार्गरिट मरे का विचार है कि सूर्योपासना का आयात "संभवतः किसी उत्तरी बादलों वाले देश से" हुआ होगा।[106] उत्तर के ऐसे किसी सभ्य देश की ओर लेखिका ने संकेत नहीं किया जहाँ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से इस उपासना का आयात हो सकता हो। सारी संभावनाएँ पूर्व में भारत की ओर संकेत करती हैं।अखेन्-अतोन् के शासन में सूर्य-पूजा का पूर्ण विकास हुआ, इसका कारण मिस्र पर हिक्सोस् कहलाने वाले आर्य शासकों का प्रभाव ही हो सकता है।

राजा के देवता अलग, प्रजा के देवता अलग; इस स्थिति में परिवर्तन हुआ, मार्गरेट मरे के अनुसार, "हिक्सोस् शासन के दौरान"।[107] सूर्योपासक राजा अखेन्-अतोन् ने जो अमर्ना क्रांति की, "उसका प्रयत्न था कि धर्म, राजनीति, कला और साहित्य में मिस्र की परंपरागत और जड़ जीवन-पद्धतियों से स्पष्ट नाता तोड़ा जाए"।[108] अतोन् संबंधी स्तोत्र इस प्रयत्न का फल था। अमर्ना क्रांति का प्रभाव मिस्र तक सीमित नहीं रहा। **बाइबिल** के एक अंश का नाम है **भजन संहिता**। प्रिचार्ड ने बताया है कि इसके एक सौ चौथे भजन तथा अतोन् स्त्रोत में "भाव साम्य और शब्द साम्य अनेक बार लक्ष्य किया गया है और यह भी तर्क किया गया है कि दोनों में प्रत्यक्ष संबंध है"।[109] और **टॉयनबी** के अनुसार उन्नीसवीं से सोलहवीं सदी ई० पू० के बीच का समय सीरिया के इतिहास में "आर्य प्रवासियों के प्रभुत्व का समय है जो हिक्सोस् नाम से जाने जाते हैं"।[110] आर्यों का प्रभाव सीरिया से फ़िलिस्तीन पहुँच सकता था और मिस्र से होकर भी। इस प्रभाव से पश्चिमी एशिया और मिस्र के लोगों का चिंतन, उनका आचरण काफ़ी परिवर्तित हुआ, यह निष्कर्ष तर्कसंगत प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. एफ० ई० पार्जिटर, एन्शेंट इंडियन हिस्टौरिकल ट्रैडीशन, पृ० 298.
2. उप०, पृ० 300.
3. उप०।
4. उप०, पृ 298.
5. उप०, पृ० 301.
6. आर० सी० मजूमदार, द वेदिक एज, पृ० 279.
7. उप०, पृ० 247.
8. उप०, पृ० 252.
9. पार्जिटर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 300.
10. ओ० आर० गूर्ने, द हिट्टाइट्स, पृ० 104-05.
11. उप०, पृ० 105,
12. उप०।
13. उप०, पृ० 104.
14. उप०, पृ० 105-06.
15. एस० पिगॉट, प्रिहिस्टौरिक इंडिया, पृ० 277.
16. उप०, पृ० 278.
17. उप०, पृ० 276.
18. उप०, पृ० 278.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

19. उप०, पृ० 276.
20. उप०।
21. उप०, पृ० 277.
22. उप०, पृ० 278.
23. उप०, पृ० 145.
24. उप०, पृ० 144.
25. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 146.
26. उप०, पृ० 212.
27. उप०।
28. उप०, पृ० 211.
29. उप०, पृ० 184-85.
30. आर० सी० जेब, इंट्रोडक्शन टु होमर, पृ० 39.
31. जी० रू, एन्शेंट इराक, पृ० 227-28.
32. टी० बरो, द संस्कृत लैंग्वेज, पृ० 27-28.
33. रू , पूर्वोल्लिखित, पृ० 231.
34. उप०, पृ० 230.
35. उप०, पृ० 235-36.
36. उप०।
37. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 39.
38. उप०, पृ० 149-50.
39. उप०, पृ० 65.
40. उप., पृ. 127.
41. उप०, पृ० 197.
42. उप०, पृ० 132.
43. उप०, पृ० 73.
44. उप०, पृ० 25.
45. उप०, पृ० 69.
46. वी० ए० स्मिथ, द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० 133.
47. उप०।
48. उप०, पृ० 134.
49. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 89.
50. उप०, पृ० 91.
51. उप०, पृ० 70.
52. उप०।
53. उप०, पृ० 72.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

54. उप० ।
55. उप० ।
56. उप०, पृ० 16.
57. उप०, पृ० 86.
58. उप० ।
59. उप०, पृ० 84.
60. डी० डी० कोसंबी, ऐन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री, पृ. 170.
61. उप० ।
62. पिगॉट, पूर्वोल्लिखित, पृ० 136.
63. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 84-85.
64. उप०, पृ० 90.
65. उप०, पृ० 95.
66. उप०, पृ० 93-94.
67. उप०, पृ० 69.
68. उप०, पृ० 64.
69. उप०, पृ० 110-11.
70. उप०, पृ० 132.
71. उप०, पृ० 91.
72. उप०, पृ० 76.
73. उप०, पृ० 83.
74. उप०, पृ० 88.
75. उप०, पृ० 89.
76. उप०, पृ० 92.
77. जे० बी० प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्टर्न टेक्ट्स, पृ० 369-73.
78. उप०, पृ० 485.
79. उप० ।
80. उप० ।
81. उप०, पृ० 486.
82. उप०, पृ० 490.
83. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री, खंड I, भाग 1. पृ० 143-44.
84. उप०, पृ० 144.
85. उप० ।
86. ए० ए० टोयन्बी, ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, खंड I, पृ० 106.
87. उप०, पृ० 105.
88. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 20.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

89. टोयन्बी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 105.
90. उप०।
91. उप०, पृ० 106.
92. एम० ए० मरे, द स्प्लेंडर दैट वाज इजिप्ट, पृ० 119.
93. उप०, पृ० 118.
94. उप०, पृ० 119.
95. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 365.
96. उप., पृ, 367.
97. उप., पृ. 369.
98. मरे, पूर्वोल्लिखित, पृ. 118.
99. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 369.
100. उप०, पृ० 370.
101. उप०, पृ० 369.
102. मरे, पूर्वोल्लिखित, पृ० 99-100.
103. उप०, पृ० 99.
104. उप०।
105. उप०।
106. उप०।
107. उप०, पृ० 118.
108. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 369.
109. उप०।
110. टोयन्बी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 106.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

4

मिस्र, सुमेर, भारत : प्राचीन सांस्कृतिक संबंध

क. जल और द्यावापृथिवी

मिस्र, सुमेर, भारत, इनके सृष्टि संबंधी चिंतन में बड़ी समानता है। इस विषय की कुछ सामग्री प्रिचार्ड के ग्रंथ में हैं, उसे ऋग्वेद से मिला कर देखना उचित होगा। सृष्टि रचना से संबंधित जिस पहले मिस्री अभिलेख का अनुवाद प्रिचार्ड ने दिया है, वह 24वीं सदी ई० पू० का है। यह अभिलेख एक शाही पिरामिड में अंकित था। पिरामिड निर्माण की रस्म पूरी करते समय वह पढ़ा जाता था। आदिम जलराशि के ऊपर एक पर्वत उठा था, उस पर बैठे हुए अतुम् देव ने सर्वप्रथम अन्य देवों की रचना की।[1] इस प्रकार समस्त देवों और प्राणियों समेत यह जगत् जल से उत्पन्न हुआ। मानी बात है कि सृष्टि संबंधी यह धारणा पिरामिड में अंकित होने से और पहले की हो गई। जल के देवता का नाम था नुन्। बीसवीं सदी ई० पू० के एक अभिलेख में अतुम् कहते हैं, "मैं अतुम् हूँ जब मैं नुन् में अकेला था।" नुन् स्वयंभू हैं। "वह कौन है? 'जो महान् देवता अपने आप अस्तित्व में आया,' वह जल है; वह नुन् है, देवों का पिता है"।[2] सूर्य देवता रे को अनेक स्थानों पर सृष्टिकर्ता माना गया है पर एक अभिलेख में वह कहते हैं, "मेरे पिता नुन् ने" देवताओं को पाल-पोस कर बड़ा किया।[3]

प्रिचार्ड ने अक्कदी भाषा के एक काव्य से सृष्टि रचना संबंधी अंश दिया है। यह सामी परिवार की भाषा है किंतु उसके काव्य में सुमेर की सृष्टि संबंधी मान्यताएँ सुरक्षित हैं। मिस्र की प्राचीन भाषा का तो कुछ संबंध सामी परिवार से है भी, सुमेर की भाषा उससे स्वतंत्र है। लगभग बीसवीं सदी ई० पू० के अभिलेख में कहा गया है:

ऊपर जब आकाश का नामकरण न हुआ था,
नीचे सुदृढ़ पृथिवी को नाम लेकर पुकारा न गया था,
उनके जनक आदिम अप्सू को छोड़कर कुछ नहीं था,
(और) मुम्मू तिआमत्, उसने उन सब को धारण किया,
उनके जल एक ही राशि में मिश्रित हो रहे थे।[4]

प्रिचार्ड के अनुसार अप्सू मीठा पानी है, तिआमत् समुद्र का खारा पानी है; संभवतः मुम्मू मातृत्वसूचक शब्द है।[5] तिआमत् नारी, अप्सू पुरुष — इनके संयोग से सृष्टि हुई। जल से धरती-आकाश उत्पन्न हुए, उसी से देवता उत्पन्न हुए।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जब कोई भी देवता अस्तित्व में न आए थे,
नाम लेकर बुलाए न जाते थे, उनके भाग्य अनिश्चित थे,
और उनका निर्माण उनके भीतर हुआ।[6]

उनके भीतर अर्थात् अप्सू और तिआमत् की मिश्रित जलराशि के भीतर। क्या देवता और क्या संसार, सभी की उत्पत्ति आदिम जलराशि से हुई है।

भारतीय कल्पना यह थीः तब सत् नहीं था, असत् नहीं था; न लोक था, न जो आकाश के परे है, वह था। तब सब को आवृत करने वाला क्या था, कहाँ किसका सहारा था, **अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्**—"अगाध और गंभीर जल क्या था?" सातवलेकर, १०.१२९.१)। तब अंधकार था, सब कुछ अंधकार से ढँका था; **अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्**—"अज्ञात दशा में और यह सब-कुछ जल ही जल था"(सातवलेकर, १०.१२९.३)। ऋग्वेद में जल को सर्वाधिक बहुवचन मातारूप में याद किया जाता है। संसार में जो कुछ स्थावर और जंगम है, **आपः** उस सबकी **जनित्रीः** माताएँ हैं (६.५०.७)। देवी देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली ये **आपः** हैं। (१०.१०९.१)। वे भुवन की जननी हैं—**जनित्री भुवनस्य**। (१०.३०.१०)। प्रवहमान जल सुनते हैं, वे पृथिवी और द्युलोक का उत्पन्न होना जानते हैं।

जल से संसार की उत्पत्ति की धारणा भारतीय, सुमेरी और मिस्री चिंतन का एक सामान्य तत्त्व है। पृथ्वी और आकाश पहले जुड़े हुए थे, फिर उन्हें वायु ने एक दूसरे से अलग किया, यह धारणा भी मिस्र, सुमेर और भारत के सृष्टि संबंधी चिंतन में सामान्य है। मिस्री देवकथाओं में वायु के देवता का नाम शु था। सूर्य के देवता रे के लिए कहा गया है, "वह उस समय थे जिस समय शु का उत्थापन कार्य संपन्न न हुआ था"।[7] इस उत्थापन कार्य पर प्रिचार्ड की टिप्पणी है, "वायु देवता शु ने आकाश को उठाकर धरती से अलग किया"।[8] आकाश को उठाकर धरती से अलग करने की ज़रूरत इसलिए पड़ी थी कि पहले दोनों संयुक्त थे। उन्हें अलग करने का काम वायुदेवता शु ने किया।

सुमेरी देवकथाओं के अनुसार धरती आकाश जुड़े हुए थे, इनके संयुक्त रूप के लिए उनका शब्द था **अनूकि**, **अनू**—आकाश, **कि**—धरती। सुमेरियों की सृष्टि कल्पना के बारे में **क्रैमर** कहते हैं, "आकाश और धरती के बीच वे मानते थे एक तत्त्व है जिसे वे **लिल** कहते थे। इस शब्द का लगभग अर्थ है, वायु, हवा, श्वास, रूह। उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ गति और प्रसार जान पड़ती हैं और इसलिए वह हमारे 'वायुमंडल (atmosphere)' का समकक्ष है"।[9] आरंभ में केवल आदिम समुद्र था। इसमें से धरती आकाश उत्पन्न हुए। चपटी धरती पर गुंबद के समान आकाश जमा हुआ था "और उससे संयुक्त था।" इनके बीच गतिशील और प्रसारधर्मी 'वायुमंडल' और "उसने आकाश को धरती से अलग किया"।[10] क्रैमर के विवेचन से मिस्री और सुमेरी सृष्टि कथाओं की सामान्य विचार भूमि स्पष्ट हो जाती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद में धरती आकाश के संयुक्त रूप के लिए शब्द है रोदसी। यह द्विवचन रूप है, अतः धरती आकाश दोनों की ओर संकेत करता है। और वह स्त्रीलिंग है। आकाश को पिता बाद में माना गया, पहले वह माता ही थे। रोदसी के समानांतर संयुक्त शब्द है द्यावापृथिवी। इन्हें एक स्थान पर समनने स्वसारः, "एक दूसरे के साथ संबद्ध बहिनें" (सातवलेकर, ११.१८५.५) कहा गया है। रोदसी ने वायु को उत्पन्न किया। (७.९०.३)। वायु का समानार्थी है वात। वात ने औरों से पहले उत्पन्न होकर सब कुछव्यवस्थित किया। वात और वायु के समानांतर हैं मरुत्। ये सदा गण रूप में ही प्रकट होते हैं। इन्होंने आकाश को धरती से अलग किया। ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतः, जो मरुत् "आकाश एवं भूलोक को विशेष ढंग से आधार दे सके" (सातवलेकर), "The Maruts...propped the heavens and earth apart" (ग्रिफिथ, ८.९४.१)। धरती आकाश के संयुक्त होने, वायु द्वारा उनके अलगाए जाने की धारणा भारतीय चिंतन में विद्यमान है।

हित्तियों की एक कथा में धरती आकाश जुड़े हुए थे और वे उपेल्लुरि नाम के देव के कंधों पर रखे थे। उपेल्लुरि ने जल के देवता से कहा, "जब मेरे ऊपर धरती आकाश बनाए गए, तब मुझे कुछ भी मालूम न पड़ा। और जब वे आए और उन्होंने ताँबे के छुरे (?) से धरती आकाश को काटकर अलग किया, मुझे इसका भी पता न चला"।[11] हित्ती राज्य में अनेक वैदिक देवताओं की उपासना होती थी। धरती आकाश के संयुक्त होने की कल्पना वहाँ भारत से पहुँची होगी।

मिस्री देवकथाओं में सूर्य के देवता रे का दावा है, जब शु ने आकाश को धरती से अलग न किया था, तब वह थे।[12] कहाँ थे, धरती आकाश के बीच में या दोनों के बाहर, यह स्पष्ट नहीं है। रचनाक्रम में वह वायु के समान ही प्राचीन थे, यह माना जा सकता है। क्रैमर का विचार है कि सुमेरी जनों के लिए "सूर्य, चंद्र, ग्रह और नक्षत्र उसी पदार्थ से बने थे जिससे वायुमंडल बना था किंतु उनमें प्रकाश का अतिरिक्त गुण भी था"।[13] वैदिक कवि के अनुसार जब केवल अंधकार था, जल था, सब कुछ शून्य से ढँका हुआ था, तब तपसस्तन्महिनाजायतै कम्—तप की शक्ति से वह उत्पन्न हुआ। (१०.१२९.३)। यहाँ तप ऊष्मा है, उसका संबंध सूर्य से है। छांदोग्य उपनिषद की कथा (३.१९) में यह भाव स्पष्ट है। पहले असत् था, वह सत् बना, फिर अंडे में परिणत हुआ। अंडे का एक भाग पृथ्वी, दूसरा आकाश बना। अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यः, फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह यह आदित्य (सूर्य) है। वायु के समानांतर सूर्य की प्राचीनता मिस्र, सुमेर और भारत तीनों देशों में है।

अंडे के रूप में संयुक्त पृथ्वी-आकाश जल से उत्पन्न हुए, इसलिए यह स्वाभाविक है कि जल आकाश के ऊपर हो और धरती के नीचे हो। सूर्यदेव दिनरात पृथ्वी-आकाश के विभाजित अंडे के चक्कर लगाते हैं। यह अंडा विभाजित है, फिर भी उसके दोनों भाग पृथक नहीं हैं। पहले आकाश धरती से चिपका हुआ था, बाद में वह ऊपर उठाया गया पर उसके सीमांत पृथ्वी से जुड़े रहे। सूर्य आकाश के ऊपर यात्रा करते हैं तो यह यात्रा जल पर करनी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

होती है, धरती के नीचे यात्रा करते हैं तो वहाँ भी यात्रा जल पर होती है। जल पर यात्रा करने के लिए नाव की आवश्यकता होगी।

ख. सूर्य की जलयात्रा

दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० मिस्री कवि सूर्य के देवता अमोन् रे की वंदना करते हुए कहता है:

> **तू संध्याकालीन पोत का और प्रातःकालीन पोत का स्वामी है। वे तेरे लिए शांतिपूर्वक नुन् को पार करते हैं।[14]**

उसी सहस्राब्दी की अन्य स्तुति में कवि सूर्य के लिए कहता है :

> **नुन् के हाथों से तू (फिर) प्रकट हो, तू जो खेप्रि के रूप में रहस्यमय है, नुत् के सिंहद्वार तक पहुँचता है, अपने शरीर में सुंदर।[15]**

खेप्रि सूर्य का ही नाम है। प्रिचार्ड की टिप्पणी है: "सूर्य जब नीचे की जल राशि से प्रातः काल उभरता है, तब वह अपने युवा रूप में खेप्रि है, और वह आकाश की देवी नुत् की ओर जाता है"। [16] सूर्यसंबंधी कल्पनाओं का विवेचन करते हुए मार्गरेट मरे ने लिखा है: "एक आधिकारिक कथा के अनुसार सूर्य आकाश की देवी नुत् का पुत्र था। उससे प्रतिदिन सबेरे उसका जन्म होता था और उसकी बाहों में प्रत्येक रात्रि को उसकी मृत्यु होती थी। किंतु उतना ही रूढ़ यह अन्य विश्वास था कि वह आकाश की नील नदी पर नाव खेते हुए आकाश पार करता था"।[17] मजेत्-पोत यह सबेरे की नाव थी और मेसेक्तेत्-पोत शाम की। आगे लिखा है, "मिस्रियों के लिए यातायात का राजमार्ग थी नील नदी। यात्रा का मतलब था नाव द्वारा यात्रा। सूर्य को इन्हीं धारणाओं के अनुरूप काम करना था। वह एक वास्तविक, यद्यपि अदृश्य नदी पर, आकाश पार करते थे। जब वह अस्त होते थे तब भी नदी पर और नाव में ही, वह रात्रि का प्रदेश पार करते थे"।[18] मिस्र के सम्राटों के समाधिभवनों में सूर्य और उनकी नाव के चित्र अंकित किए जाते थे। मार्गरेट मरे ने अपनी पुस्तक की प्लेट 26 में ऐसे कुछ चित्र दिए हैं। इनसे मिलते-जुलते चित्र सुमेर की मुद्राओं में मिले हैं। प्रिचार्ड ने पुरातन चित्रों के ग्रंथ में सुमेरियों की मुद्रा पर सूर्य और उनकी नाव को अंकित दिखाया है (चित्र संख्या 676)। यह मुद्रा तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० की है। फ्रैंक फोर्ट के मतानुसार "इस कोटि की प्रारंभिक राजवंशीय मुद्राओं में अंकित ये सूर्यदेव हैं। वह एक चप्पू से नाव खे रहे हैं और वह स्वेच्छा से आगे बढ़ती है"।[19] सुमेरी देवताओं की यात्रा के प्रसंग में क्रैमर ने लिखा है, "चंद्रदेव नाव में यात्रा करते थे, सूर्यदेव रथ में, अथवा अन्य कथा के अनुसार पैदल, और तूफान के देवता बादलों पर। नावों का प्रयोग अक्सर किया जाता था"।[20] रथ का आविष्कार बाद में हुआ, पहले चंद्रदेव के समान सूर्यदेव भी नाव से ही यात्रा करते होंगे। नाव द्वारा सूर्य की यात्रा की धारणा सुमेरियों के बाद इराक़ के अक्कदीभाषी जनों में बनी रही। तीसरी सहस्राब्दी के उत्तर भाग की एक मुद्रा में सूर्यदेव नाव पर हैं। फ्रैंक फोर्ट के अनुसार यहाँ "सूर्य रात्रि में नीचे वाला लोक पार कर रहे हैं।" (प्रिचार्ड, चित्र संख्या 686)।[21]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मिस्रियों की तरह सुमेरी जन भी विश्वास करते थे कि सूर्य दिन में आकाश वाले, रात में धरती के नीचे वाले, जलपर नाव द्वारा यात्रा करते हैं।

ऋग्वेद के रचनाकाल में रथ भारतीय जनों की यात्रा का मुख्य साधन है। स्वभावतः देवता भी रथों पर ही अधिक यात्रा करते हैं। किंतु नावों से यात्रा करना बंद नहीं हुआ। कवि की प्रार्थना है : जैसे लोग नाव से समुद्र पार करते हैं, वैसे ही अग्नि हमें पापों से पार करें (१.९९.१), जैसे लोग नाव से जलों के पार जाते हैं, वैसे ही हम पापों के पार जाएँ (६.६८.८), 'मित्र और वरुण के सन्मार्ग द्वारा हम पापों से पार हों जैसे लोग नाव द्वारा जलों के पार जाते हैं (७.६५.३)। हम सभी पापों से पार हों और भली-भाँति पार ले जाने वाली नाव पर चढ़ें (८.४३.३)। **ऋग्वेद में दुरिता तरेम** शब्दबंध बार-बार आता है और उसका भाव प्रायः वही है जो भवसागर से पार उतरने के हिंदी मुहावरे में है। देवताओं से नावों का संबंध टूटा नहीं है। कवि अश्विनों से कहता है, "अपना रथ जोतो, पार चले जाने के लिए हमारी बुद्धिपूर्वक रची हुई नौका से आओ।" (सातवलेकर, १.४६.७)। रथ है, साथ में नाव भी है। अगले मंत्र में : "नदियों की उतराई के स्थान पर तुम दोनों की बल्ली या नाव खेने का डंडा द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है, तुम दोनों का रथ भी तैयार है" (उप. १.४६.८)।

वरुण देव समुद्र में चलने वाली नावों का मार्ग जानते हैं (१.२५.७), वह स्वयं भी नाव पर चलते हैं और उनके साथ कवि भी नाव में होता है —"मैं और वरुण देव ये दोनों नौका पर आरूढ़ होते हैं और समुद्र में नौका को हम चलाते हैं, जब हम जलों के मध्य में अन्य नौकाओं के साथ विचरते हैं तब कल्याण के लिए झूले पर हम खेलते जैसे होते हैं।" (सातवलेकर, ७.८८.३)। देवता के साथ रथ पर शायद ही कभी कोई बैठा हो पर नाव में तो दोनों एक साथ हैं। रथ के व्यापक चलन के समय तक देवता अपने उपासकों से कुछ दूर चले गए हैं। उन्हें बार-बार बुलाना पड़ता है और वे रथ पर चढ़ कर आते हैं। पर कभी इंद्र भी रथ के बदले नाव पर सवार होते हैं। यज्ञ आरंभ होने पर "यजमान के साथ प्रसन्न होकर तू सब को प्रेरित करके कीर्तिप्रद नौका पर आरूढ़ होता है।" (सातवलेकर, १०.१०५.६)। पूजन देव की सुवर्णाभ नावें अंतरिक्ष में समुद्र पर चलती हैं, उनके द्वारा वह सूर्य का दूतकर्म करते हैं। (६.५८.३) पूषन् के पास नावें हैं तो जिनका वह दूतकर्म करते हैं, उनके पास भी होनी चाहिए। "सूर्य तेजस्वी जलों पर चढ़ गया" (सातवलेकर, ५.४५.१०)। रथ की अपेक्षा नाव के द्वारा ही जलों पर चढ़ना अधिक स्वाभाविक है। तेजस्वी जलों पर चढ़ने के पहले सूर्य अंधकारमय जलों को पार करते हैं। इस कार्य में कवियों के मंत्र सहायता करते हैं। "जिस प्रकार जल में डूबी हुई नाव को जल से बाहर निकालते हैं, उसी प्रकार विद्वानों ने उस सूर्य को बाहर निकाला"। (सातवलेकर, ५.४५.१०)। जिस जल से विद्वान सूर्य को बाहर निकालते हैं, वह अंतरिक्ष का जल न होगा। इस पर सूर्य दिन में यात्रा करते हैं। यह धरती के नीचे वाला जल है जिस पर वह रात्रि को यात्रा करते हैं।

हित्तियों में उनके वैदिक देवों की उपासना प्रचलित थी। इनमें सूर्यदेव भी थे। एक हित्ती कविता में सूर्य को समुद्र से निकलकर आकाश पर चढ़ते बताया गया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूर्य, आकाश के देव, मानव के पथदर्शक,
तुम समुद्र से बाहर निकलते हो, आकाश के सूर्य,
आकाश तक अपने मार्ग पर तुम बढ़ते हो।
आकाश के देव सूर्य, मेरे स्वामी ! मानव संतान को,
श्वान को, शूकर को, वन के हिंसक जीवों को,
हे दिव्य सूर्य, दिन प्रतिदिन तुम न्याय देते हो।[22]

ऋग्वेद में सूर्यदेव जल से बाहर निकलते हैं, इसके सिवा वह मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों को भी देखते हैं, (६.५१.२)।

वायु के एक सखा मुनि हैं। वह पूर्व और अपर दोनों समुद्रों को प्राप्त होते हैं। (१०.१३६.५)। ये पूर्व और पश्चिम के समुद्र हो सकते हैं, आकाश और पाताल के भी। देवों ने समस्त भुवनों को संवर्धित किया, [इसके लिए] उन्होंने समुद्र में प्रच्छन्न सूर्य को बाहर निकाला। (१०.७२.७)। जिस समुद्र में सूर्य प्रच्छन्न हो गया है, वह अंतरिक्ष से भिन्न पाताल का समुद्र ही हो सकता है। कवि सूर्य से कहता है, **उत रात्री मुभयतः परीयसे**—और तुम रात्रि के दोनों ओर से आते हो। (५.८१.४)। जब अस्त हुए, तब रात्रि के एक ओर से चले, जब उदय हुए, तब दूसरी ओर से आए। यह रात्रि पाताल की रात्रि होनी चाहिए, उस समय सूर्य मनुष्यों की आँखों से ओझल होकर अंधकार में यात्रा करते हैं। इस प्रसंग में **मैकडनल** ने **ऐतरेय ब्राह्मण** का उल्लेख किया है (३.४४.४) जिसके अनुसार रात्रि में सूर्य ऊपर की ओर प्रकाश फैलाते हैं, फिर घूमकर दिन में नीचे की ओर उसे फैलाते हैं।[23] यह क्रिया तभी संभव है जब रात्रि में सूर्य धरती के नीचे यात्रा करें और उनका मुँह ऊपर को हो, फिर घूमकर पूर्व में निकलें और आकाश पर यात्रा करते समय उनका मुँह नीचे को हो।

उक्त उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत होगा कि मिस्री और सुमेरी देवकथाओं की तरह भारतीय देवतंत्र में भी रात्रि में सूर्यदेव धरती के नीचे जल पर यात्रा करते थे। यह नीचे वाली यात्रा उनके लिए काफ़ी संकटपूर्ण हो सकती थी।

ग. सूर्य और वृत्र

मिस्री देवकथाओं में सूर्य की पाताल यात्रा के समय अपोफिस् (आ-पेप्) नाम का भयानक सर्प उन्हें मारने का प्रयास करता है, अन्य देवता उसका प्रयास विफल कर देते हैं। इस कथा के अन्य रूप में सूर्य की मृत्यु हो जाती है और फिर उन्हें नया जीवन मिलता है। मृत्यु के समय वह **रे** हैं, **खेप्रि** (जीवन) से भेंट होने पर वह जी उठते हैं और पाताल से ऊपर आकर धरती पर उदय होते हैं। उनके शत्रु की विशेषता यह है कि प्रत्येक रात्रि में देवता उसे अस्त्रों से छेद डालते हैं, उसे जंजीरों से बाँध देते हैं पर वह मरता नहीं है, भला-चंगा होकर फिर दूसरी रात सूर्य के मुक़ाबले को तैयार रहता है।[24]

अपोफिस् को मारने के लिए मिस्रियों ने मंत्र रचे थे। एक मंत्र में अन्य सहायक देवों के बारे में **रे** कहते हैं: ''माया में दक्ष वे जब बोले, तब वह माया की आत्मा ही थी। कारण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह कि अपनी वाणी की प्रभावशाली शक्ति से उन्हें मेरे शत्रुओं को मारने की आज्ञा दी गई थी...वह आग में गिरा है, अपोफिस् के सिर में छुरा लगा है। वह देख नहीं सकता और अब इस देश में उसका नाम नहीं है। मैने आज्ञा दी है कि उसे शाप लगे, मैने उसकी अस्थियों को भस्म कर दिया है, प्रतिदिन के दौरान मैंने उसकी आत्मा का नाश कर दिया है...।" देवता कहते हैं: "हे रे, तू देख ! हे रे, तू सुन ! देख, मैने तेरे शत्रुओं को खदेड़ दिया है, पैरों से उसे कुचल डाला है..."।[25] प्रिचार्ड ने अपनी टिप्पणी में बताया है कि मंत्रों से अपोफिस् को मारने की क्रिया मंदिर में कर्मकांड का महत्त्वपूर्ण अंग थी।[26] अपोफिस् के नाश का वर्णन बहुत विस्तार से किया जाता था। "अपोफिस् के नाश का विस्तृत ब्यौरा उबाऊ ढंग से जारी रहता है। रे की रक्षा के लिए विभिन्न देवों की कार्यवाही का ब्यौरा भी उसमें शामिल है"।[27]

वैसे तो अनेक देवता अपोफिस् का नाश करते हैं, किंतु कुछ कथाओं में यह कार्य **सेथ्** नाम के देव के लिए विशेष रूप से निर्धारित है। प्रिचार्ड कहते हैं, "संध्या के समय जब सूर्य की नाव पश्चिमी अंधकार में प्रवेश करती थी, तब उसे एक सर्प या दैत्य के रूप में संकट का सामना करना होता था। वह (सर्प) सूर्य का नाश कर सकता था...तब यह सेथ् देव का कार्य था कि वह इस जंतु को खदेड़े जिससे कि सूर्य रात्रि में पाताल पार कर सकें और प्रातः काल फिर जन्म लें"।[28] **सेथ्** आकाश की देवी **नुत्** के पुत्र हैं। रे उनके लिए कहते हैं: "और वह आकाश में बोलेंगे और मनुष्य उनसे भयभीत होंगे।" प्रिचार्ड अपनी टिप्पणी में **सेथ्** के प्रति रे के स्नेह भाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं: "सेथ्, वज्रघोष के देवता के रूप में (as the thunder god) सूर्यदेव के साथ आकाश के निवासी होंगे"।[29] रुद्र या इंद्र से वह काफ़ी मिलते-जुलते हैं।

इंद्र ने जो महान् वीरतापूर्ण कार्य किए, उनमें मुख्य है **वृत्र** का वध। **अहन्न्-अहिम्**— उन्होंने सर्प को मारा। (१.३२.१)। जो सर्प है, वही **वृत्र** है। दोनों का एक साथ उल्लेख इस प्रकार हुआ है "इंद्र ने बड़े घातक शस्त्र से बड़े घेरने वाले वृत्र का उसके बाहु काटने के पश्चात् वध किया। कुल्हाड़े से छेदे गए वृक्ष की शाखाओं की तरह वह अहि पृथ्वी के ऊपर पड़ा हुआ है।" (सातवलेकर, १.३२.५)। वृत्र का निवासस्थान जलमय है, अंधकारमय है। "स्थिर न रहने वाले और विश्राम न करने वाले जलप्रवाहों के बीच में वृत्र का शरीर छिपा हुआ था और उस पर से जलप्रवाह चल रहे थे। इंद्र के शत्रु वृत्र ने बड़ा ही अंधकार फैला रखा था।" (उप० १.३२.१०)। इंद्र ने वृत्र का वध किया, "पश्चात आकाश में उषा और सूर्य को प्रकट किया।" (उप० १.३२.८)। इंद्र जलप्रवाहों को मुक्त करते हैं, उनके साथ प्रकाश को भी मुक्त करते हैं। वृत्र जलप्रवाहों को रोकता है, प्रकाश को रोकता है—**अपो द्यां तस्तभवांसमहिमहन**, जल और प्रकाश को रोकने वाले अहि को इंद्र ने मारा। (२.११.५)। वृत्र का वध आवश्यक होता है जलप्रवाहों और सूर्य की मुक्ति के लिए। वृत्र का वध सूर्योदय से पहले होता है, उसके बाद नहीं। सूर्य के उदय हो जाने पर उसके वध की आवश्यकता नहीं रहती।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वृत्रवध के बाद सूर्य को मानों नया जीवन प्राप्त होता है, उनका नया जन्म होता है। **सूर्यं जनयन्** (१.३२.४) **अजनयत् सूर्यम्** (२.१९.३), **सनत् सूर्यम्** (१.१००.१८) में यही नए जन्म का भाव प्रतीत होता है। वृत्र को मारने का काम इंद्र के अतिरिक्त अन्य देवता भी करते हैं और कभी-कभी सूर्य देव स्वयं उसका नाश करते हैं। हे वृत्रहन् सूर्य तुम आज जिन-जिन पदार्थों को लक्ष्य कर के उदय हुए हो, हे इंद्र वे सब तुम्हारे वश में हैं। (८.९३.४)। यहाँ सूर्य और इंद्र में तादात्म स्थापित किया गया है। सूर्योदय तभी होगा, जब वृत्र मारा जाएगा। **हनो वृत्रं जया स्वः** , हे इंद्र वृत्र को मारो और प्रकाश को जीतो (Slay Vritra, win the light of heaven ग्रिफिथ, ८.८९.४)। वृत्र पहले मारा जा चुका है, फिर मारा जा रहा है। उसके बहुत से साथी और सहयोगी हैं। उन सब का एक ही काम है, जल और प्रकाश को रोकना, उन्हें कहीं छिपा रखना। हे इंद्र, हे अग्नि, जो गायों, जलों, प्रकाश और उषाओं को उठा ले गए हैं, उनसे लड़ो। (६.६०.२)। किसी दिन वे एक उषा को नहीं उठा ले गए, **उषसः**—बहुत सी उषा को उठा ले जाना उनका अनेक दिनों का कर्म है। वृत्र अहि है, वृत्र दास भी है। अहि से घिरे हुए जलों को इंद्र ने मुक्त किया, "घमंडी, न मरने वाले दास को भी तोड़ दिया"। (सातवलेकर, २.११.२)। संभवतः अहि **अमर्त्य** इसलिए है कि रोज़ मारा जाता है, फिर जी उठता है। वृत्र के समान, नमुचि, चुमुरि, वर्चिन् आदि दानवों को दास कहा गया है, अंधकार की शक्ति के प्रतीक रूप ये दास स्वभावतः कृष्ण वर्ण होंगे। हे इंद्र, तुमने पचास हज़ार कृष्ण वर्ण वालों को मारा। (४.१६.१३)। प्रतिदिन इंद्र ने उन काले रंग वालों को ख़देड़ा, जहाँ जल एकत्र होता है, वहाँ वर्चिन और शंबर दासों को मारा। (६,४७.२१)। **ग्रिफिथ** की टिप्पणी में "काले रंगवाले आदिवासियों— The dark aborigines— को इंद्र ने मार भगाया" ! मंत्र के आरंभ में **दिवे दिवे** का सही अनुवाद किया है Day after day, वृत्र और उसके सहयोगी जल और प्रकाश को प्रतिदिन रोकते हैं, इसलिए प्रतिदिन उनसे युद्ध करके जल और सूर्य को मुक्त करना आवश्यक होता है।

मिस्री देवकथाओं की तरह वैदिक देवतंत्र में भी अहि सूर्य का मार्ग रोकता है और उसका अथवा उसके सहयोगियों का वध करके देवता जल और प्रकाश को मुक्त करते हैं और यह कार्य प्रतिदिन होता है।

घ. नदियाँ, उनके उद्गमस्थल

जल और प्रकाश का आंतरिक संबंध मिस्र में भी देखा जाता है। नील नदी की स्तुति में कहा गया है : "अंधकार से बाहर आते हुए वह प्रकाश निर्माता है"।[30] धरती के नीचे जल है, अंधकार भी है। वहीं एक गुफा से नील का निकास होता है। "पाताल में प्रवेश करके" उसे रहस्य बनकर ऊपर आना प्रिय है। इस पर **प्रिचार्ड** की टिप्पणी है : "मिस्रियों की धारणा थी कि नील का प्रवाह पाताल की कंदराओं से उमड़ आता है"।[31] पाताल में बहने के अलावा उसका प्रवाह आकाश में भी है और वहाँ नाव पर सूर्यदेव उसे पार करते हैं।[32]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मिस्रियों के लिए नील नदी देवी नहीं देव है। धरती पर उसने थेबेस् नगर में अपनी गुफा बना ली और "पाताल में उसका नाम अज्ञात हो गया।" थेबेस् में पशुबलि और खाद्य पदार्थों से ऐसी तृप्ति हुई कि उसने स्रोत गुफाओं को नगर के पास स्थापित कर दिया। वह रहस्यमय शक्ति है। उसे देखा नहीं जा सकता, लेखन की शक्ति से उसका पता नहीं लगाया जा सकता। वह राजा है किंतु उसने कर नहीं लगाए।[33] मिस्र का अर्थतंत्र नील नदी पर निर्भर था। इसलिए उसे आदर्श राजा के रूप में कल्पित किया गया। मिस्रियों के मन में उसके प्रति शुद्धता और पवित्रता वाला भाव भी था। धर्म और संस्कृति में भारी उलटफेर होने पर भी बीसवीं सदी में यह भाव मिटा नहीं है।

1934 में मार्गरेट मरे ने अपने एक लेख में नील नदी के किनारे आँखों देखे दृश्य का वर्णन किया है। वह एक ईसाइयों के गाँव पहुँची। अनेक स्त्रियाँ नदी में बैठकर प्रार्थना कर रही थीं। बच्चों पर जल छिड़क रही थीं। नदी में ज्वार आया था और सितंबर में यह नए साल की शुरुआत थी। एक स्त्री घुटनों तक पानी में प्रार्थना कर रही थी। अन्य स्त्रियाँ डुबकी लगा रही थीं, नौ बार जल का आचमन कर रही थीं। एक माँ अपने छोटे बच्चे को लिए उसके सिर पर नौ बार पानी गिरा रही थी। एक लड़का सिर घुटाए गर्दन तक पानी में बैठा था, उसकी माँ उसके मुँह और सिर पर नौ बार पानी डाल रही थी। एक स्त्री भीगे वस्त्र पहने नदी से हाथ में जल लेकर नौ बार पी रही थी। प्राचीन मिस्र में इस अवसर पर लोग नदियों के राजा ओसिरिस् को धन्यवाद देने आते थे। अब यह प्रथा इस गाँव में ही रह गई थी और वहाँ अब लोग ओसिरिस् के बदले ईसा मसीह से दुआ करते थे। लेकिन मर्द निठल्ले नदी किनारे बैठे थे, यह उत्सव माताओं और बच्चों का था। "हज़ारों साल तक नील नदी में ज्वार आने की रात को मिस्र की माताएँ उस महान् नदी में खड़ी होकर अपने बच्चों के लिए नील नदी के देवता से वरदान माँगती रही हैं"।[34] कह सकते हैं, मिस्र की कुछ प्राचीन परंपराओं की रक्षा वहाँ की स्त्रियों ने की है।

सुमेरी जनों के महान देवता एनूकि जल में निवास करते थे। नदियों, झरनों, कुओं में सर्वत्र मीठे पानी के स्वामी एनूकि थे। जल से धरती उर्वर होती थी, जल से मनुष्य पवित्र होते थे। वह ज्ञान और बुद्धि के देवता थे, कला-कौशल के संरक्षक थे, संसार में जितने पदार्थ नाम वाले हैं, वह उन सबको जानते हैं। वह मायावियों के रक्षक भी हैं, "वे सभी देशों के कान और मन हैं"।[35] सुमेरियों ने दिलमुन् नाम के एक स्वर्गोपम देश का वर्णन किया था। उसमें मधुर जल की आपूर्ति एनूकि द्वारा की गई थी। दिलमुन् देश स्वच्छ और पवित्र था। सुमेरी सभ्यता में जल और पवित्रता के बीच इतना गहरा संबंध था कि हड़प्पा में जल का महत्त्व देखकर क्रेमर को लगा कि इस सभ्यता के विकास को मूल प्रेरणा सुमेर से मिली होगी।[36]

ऋग्वेद में जल की पवित्रता पर, मनुष्य को शुद्ध करने की उसकी शक्ति पर यथेष्ट बल है। हमें जल माताएँ शुद्ध करें। (१०.१७.१०)। जलों को माताओं के रूप में स्मरण किया गया है, वे देवियाँ हैं और अन्य देवों की तरह उनका भी आह्वान किया जाता है। हम जल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देवियों का आह्वान करते हैं। (१.२३.१८)। जलों में रहने वाली किन्हीं देवियों की ओर संकेत नहीं है, जल ही देवियाँ हैं। कवि कहता है, जो आपः देवियाँ मधु जैसा मीठा पानी देती हैं, वे हमारी रक्षा करें। (७.४९.३)। सभी नदियाँ पवित्र हैं, इनमें सरस्वती सर्वाधिक पवित्र है। वह श्रेष्ठ माता है, श्रेष्ठ देवी है। (२.४१.६)। मिस्री जनों की नील नदी धरती के अलावा आकाश में भी थी, वैसे ही सरस्वती—"विशाल अंतरिक्ष को अपने तेज़ से भरने वाली" है। (सातवलेकर: ६.६१.११)। उसे तीन स्थानों में रहने वाली कहा गया है। (६.६१.१२)। पृथ्वी, अंतरिक्ष के अलावा तीसरा स्थान धरती के नीचे पाताल हो सकता है।

नील नदी गुफा से बाहर आती है। वैदिक कवियों के जलप्रवाह गुफा में बंद रहते हैं। अपां बिलम्—जलों का जो बिल बंद था, वह वृत्र के वध के पश्चात् खोल दिया गया। (१.३२.११)। सुमेरियों के एन्कि देव जल में निवास करते थे। उनके समकक्ष यहाँ वरुण हैं। वह जलों के बीच गमन करते हैं, वह राजा हैं। (७.४९.६)। वह नदियों के स्वामी हैं (७.६४.२), उन्हीं की शक्ति से नदियाँ प्रवाहित होती हैं (२.२८.४), उनकी माया के कारण वे अपने समस्त जल से एक समुद्र को नहीं भर पातीं (५.८५.६), नदियों के उद्गम स्थान पर वरुण का निवास है (८.४१.२), उनके हज़ार आँखें हैं (७.३४.१०), वह मनुष्य के भले-बुरे आचरण देखते रहते हैं (७.४९.६)। जो किया गया है, जो किया जाएगा, उस सबको वरुण देखते हैं। (१.२५.११)। सुमेरी एन्कि वरुण के प्रतिरूप हैं। जल की यह उपासना सुमेरियों के उत्तराधिकारी बैबिलोनवासियों में प्रचलित रही। एआ नाम देव जल और ज्ञान के देवता हैं। प्रिचार्ड के ग्रंथ में सुमेरी-बैबिलोनी मुद्राओं के चित्र दिए गए हैं। इनमें तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के अंतिम चरण की एक बैबिलोनी मुद्रा का चिन्ह (संख्या ६८४) है। इसमें एआ अपने मंदिर में विराजमान हैं और उनके चारों ओर जलधारायें प्रवाहित हैं। अन्य चित्र (संख्या ६८७) में एआ सिंहासन पर बैठे हैं, उनके हाथ में पात्र है और उससे जल बह रहा है।

नदियों के उद्गमस्थान पर वरुण का निवास है। स्पष्ट ही यह स्थान विशेष पवित्र होगा। भारत में उसकी पवित्रता का यह भाव अब तक चला आता है। इराक़ में कम से कम नवीं सदी ई० पू० तक यह भाव विद्यमान था। असीरिया के राजा शालमने सर तृतीय ने अपने प्रासाद के द्वारों पर काँस्य-पट्टिकाओं के ऊपर अपने जीवन से संबंधित चित्र अंकित कराए थे। एक चित्र (प्रिचार्ड, संख्या३६४) में वह दजला नदी के उदगम पर पशुबलि कराते दिखाए गए हैं। चित्र में अंकित अभिलेख में वह कहते हैं: 'मैंने नदी के स्रोतों में प्रवेश किया, देवताओं को बलि चढ़ाई, अपनी शाही मूर्ति वहाँ स्थापित की।" चित्र पर प्रिचार्ड की टिप्पणी के अनुसार जो सैनिक पशु की बलि देते रहे हैं, वे संभवतः चट्टान की गुफा के सामने खड़े हैं। जो शिल्पी चट्टान पर शाही मूर्ति उँकेर रहा है, वह एक सुरंग के द्वार पर है, पहाड़ से निकलती नदी इसी सुरंग से बाहर आती है।[37] इस विवरण से ऋग्वेद के अपां बिलम् की व्याख्या हो जाती है। जलों का जो बिल बंद था, वह वृत्र-वध के पश्चात् खोल दिया गया। (१.३२.११)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ङ. सूर्य, नदी, पर्वत

गुफाएँ पहाड़ों में होती हैं, नदियाँ पहाड़ों से निकलती हैं, जल, गुफा, पहाड़, इनका परस्पर घनिष्ठ संबंध है। यदि जल से सूर्य का घनिष्ठ संबंध होगा तो किसी न किसी रूप में उसका संबंध पहाड़ों और गुफाओं से भी होगा। तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के पिरामिड के अभिलेख में सूर्य के लिए कहा गया है, सृष्टि के आरंभ में आदिम जल राशि से जो पर्वत निकला, "तुम उसके ऊपर थे"।[38] सृष्टि संबंधी अन्य कविता में जब शु ने अपनी बाहों पर आकाश को ऊपर उठाया न था, तब सूर्यदेव रे पर्वत पर था।[39] सूर्य का विरोध करने वाले सर्प से देवों के युद्ध पर एक कविता में आकाश पर्वत पर थमा है, पर्वत के शिखर पर सर्प है।

> **"मैं बाखू के पहाड़ को जानता हूँ, आकाश उस पर थमा है..."**
> **"पर्वत् के शिखर पर सर्प है..."**
> **"अब संध्या के समय वह अपना नेत्र रे की ओर घुमाएगा तब नाव खेने वाले थम जाएँगे और यात्रा के बीच सब स्तंभित रह जाएँगे"।[40]**

रे की यात्रा नाव पर हो रही है और वह उस पर्वत की ओर जा रहे हैं जिस पर उनका बैरी सर्प उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

सुमेर के लोग विश्वास करते थे कि पृथ्वी अप्सू पर तैर रही है और उसकी सीमाओं पर चारों ओर पर्वत हैं। इन पर आकाश टिका है। वे मानते थे, ऐसा ही लोक धरती के नीचे है।[41]

पर्वत को तोड़ना और सूर्य को आकाश में स्थापित करना अनेक देवताओं का कर्म है। इंद्र ने पर्वत को विदीर्ण किया, सूर्य को आकाश में चढ़ाया। (१.७.३)

उषा ने सुदृढ़ पर्वत का द्वार खोल दिया और जलों को बाहर निकाला। (७.७६.४)। पूर्व दिशा में पर्वत है।उषा उसका द्वार खोलती है,जल धाराएँ बाहर आएँगी,अवश्य ही सूर्य भी बाहर आएँगे।आंगिरसों ने सुदृढ़ पर्वत को तोड़ा और सूर्य को प्राप्त किया। (१.७१.२)। इंद्र ने पर्वत को तोड़ा, सूर्य को ऊपर चढ़ाया। (१.७.३)। पितरों ने पर्वत को तोड़ा और प्रकाश को प्राप्त किया। (४.१.१४)। पर्वत की गुफा में जो गायें छिपी थीं, उन्हें पितरों ने बाहर निकाला। (४.१.१३)। पूर्व दिशा में पर्वत है, वह जल और सूर्य के मार्ग में बाधक है। कभी इंद्र, कभी कोई अन्य देवता, कभी पितर, पर्वत को तोड़कर जल-धाराओं और सूर्य-किरणों को मंत्र-शक्ति से बाहर निकाल लाते हैं। वृत्र और उसके सहयोगी इस पर्वत पर रहते हैं। इंद्र ने पर्वत पर आश्रय पाने वाले अहि को मारा (१.३२.२)। इंद्र ने सूर्य को, उषा को उत्पन्न किया, जलों को प्रवाहित किया (२. १२. ७)। उन्होंने पर्वतों में शयन करते हुए शंबर का पता लगाया और उस ओजायमान अहि का वध किया (२.१२.११)।

जहाँ पर्वत है, वहाँ समुद्र भी है। देवों ने समुद्र में छिपे सूर्य को बाहर निकाला। (१०.७०.७)। अश्विनों का रथ समुद्र में चलता है (१.३०.१८) : उन्हें उषा जगाती हैं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(८.६.१७), वे अपने रथ पर उषा का अनुसरण करते हैं (८.५.२)। जहाँ उषा और अश्विन प्रकट होते हैं, वहाँ समुद्र है। यदि धरती जल पर तैर रही हो तो वह अस्थिर होगी, पर्वत भी अस्थिर होंगे। इन्हें स्थिर करना आवश्यक होगा। इंद्र ने "हिलने वाले पर्वतों को अपने बल से स्थिर किया," पृथ्वी को धारण किया और आकाश को "नीचे गिरने से रोका"। (सातवलेकर, २.१७.५)। इंद्र ने "काँपने वाली पृथ्वी को दृढ़ किया," "क्रोधित पर्वतों को स्थिर किया," और "द्यौ को थामा"। (उप० २.१२.२)।

पर्वत जल पर हैं अथवा जल के निकट हैं। वृत पर्वत पर है, वह जल पर भी है। अहि गुफा में है, जल को घेरे हुए है, उसने जलों को और द्यौ (सूर्य) को बाँध रखा है। (२.११.५)। वह जलों को घेरे हुए लेटा है। (४.१६.२)। "स्थिर न रहने वाले और विश्राम न करने वाले जलप्रवाहों के बीच में वृत्र का शरीर छिपा हुआ था और उस पर से जल प्रवाह चल रहे थे।" (सातवलेकर, १.३२.१०)।

मिस्र और सुमेर की सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे मैदानों में हुआ, पहाड़ वहाँ से दूर थे। सृष्टि के आरंभ में आदिम जल-राशि से पर्वत निकला, उस पर सूर्य के देवता अतुम् थे, यह कल्पना नीलतटवासी मिस्रियों के लिए दुष्कर थी। पृथ्वी की सीमाओं पर चारों ओर पर्वत हैं, यह कल्पना दज़लाफरात तटवासी सुमेरियों के लिए दुष्कार थी। कहा जाता है, सुमेरी लोग पर्वतों से आए थे, वहाँ से पर्वतों द्वारा पृथ्वी के घिरे होने की कल्पना साथ लाए हों, यह संभव है। किंतु पहाड़ों के पास प्रचुर जल-राशि न हो तो पृथ्वी के जल पर तैरने की कल्पना संभव न होगी। जो कल्पनाएँ मिस्रियों और सुमेरियों के लिए दुष्कर हैं, वे सप्तसिंधुतटवासियों के लिए सुकर हैं। दो नदियाँ, विपाष् और शुतुद्री, पर्वतों से निकलती हैं, जल से भरी हुई वेग से बहती हैं, समुद्र की ओर जाती हैं। (३.३३.१,२)। इंद्र ने इनके लिए मार्ग बनाया, मार्ग रोकने वाले वृत्र को मारा, सुंदर हाथों वाला सविता उन्हें आगे ले गया। (३.३३.६)। यहाँ जल, पर्वत, सविता, सब एक साथ हैं। सृष्टि कथा के मूल स्रोत को पहचानने के लिए ऋग्वेद के भौगोलिक परिवेश पर ध्यान देना आवश्यक है।

च. वायु, सूर्य, स्कंभ

मिस्री देवतंत्र के नौ आदि देवों में अतुम प्रजापति के बाद दूसरा स्थान वायु के देवता शु का है। वायु की देवरूप में उपासना का व्यापक चलन रहा होगा, तभी उन्हें आकाश को धरती से अलग करके अपने हाथों से उसका भार उठाए कल्पित किया गया। जल की उपासना और भी व्यापक रही होगी, तभी अतुम प्रजापति भी जल से प्रकट हुए। प्रिचार्ड के चित्रों वाले ग्रंथ में शु अपनी बाहों पर आकाश की देवी को साधे हैं, वह खड़े हैं और साथ में एक-एक देवता उनकी मुड़ी हुई बाहों को कुहनी के पास हाथ लगाए सहारा दे रहे हैं। (चित्र संख्या ५४२)। एक अन्य चित्र में शु दाहिना घुटना ज़मीन पर टेके, बाएँ पैर का पंजा ज़मीन पर रखे, दोनों बाहें कुहनी से मोड़ कर उन पर आकाश उठाए हैं (चित्र संख्या 546)। भारतीय चित्रों में रामभक्त हनुमान जिस आसन से बैठे दिखाए जाते हैं, वही इस चित्र में शु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का है। यूनानी देवकथाओं में ऐटलस (अतल) शु की तरह विश्व को अपनी बाहों पर उठाए कल्पित किया गया है। वह एक दैत्य है पर अतलस् शब्द का अर्थ किसी चीज़ को साधे रहने वाला खंभा भी है। जैसे आकाश को उठाए रखने में सहारा देने के लिए शु के अगल-बगल दो देवता खड़े हैं, वैसे ही इनके स्थान पर एक बड़ा खंभा सहारा दे सकता है। अतलस् का अर्थ ऐसी ही किसी धारणा का प्रतिफलन होगा।

संभवत: ऐसे भारवाही देव या दैत्य मितन्नी राज्य के देवतंत्र में भी थे। गूर्ने जहाँ उपेल्लुरि के ऊपर धरती आकाश के निर्माण की चर्चा करते हैं, वहाँ एक मितन्नी मुद्रा पर अंकित छवि के बारे में कहते हैं, "रेखांकन 13 में ऐटलस् आकृति का मितन्नी रूप दिखाई देता है। वह आकृति एक पंखयुक्त बिंब को साधे हुए है और वह बिंब आकाश का प्रतीक है"।[42] इससे पहले गूर्ने जब उपेल्लरि का परिचय देते हैं तो उसे ऐटलस-आकृति—an Atlas figure—कहते हैं।[43] मितन्नी मुद्रा और हित्ती कथा, दोनों में आकाश को उठाए रखने वाले देव की धारणा है। मितन्नी राज्य से मिस्र को रथ निर्यात किए जाते थे, हित्ती राज्य में यूनानी राजकुमार रथ विद्या सीखने आते थे। यह बहुत संभव है कि आकाश को उठाए रखने वाले देव की धारणा मितन्नी-हित्ती राज्यों से मिस्र और यूनान पहुँची हो।

मिस्र के शिल्पांकन में वायुदेव शु अपनी बाहों पर आकाश उठाए हैं। यदि उनके स्थान पर या उनके साथ-साथ किसी अन्य प्रभावशाली देव की उपासना का चलन हो जाए तो आकाश को उठाए रखने का वीर कर्म इनके साथ भी जोड़ा जा सकेगा। मिस्र के तीसरे या चौथे राजवंश ने सूर्यपूजा का आयात किया। सूर्यदेव इतने प्रभावशाली हुए कि उनका बिंब राजत्व का प्रतीक बन गया। गूर्ने का मत है कि मिस्र के प्रभाव से हित्ती राजाओं ने पंखयुक्त सूर्यबिंब का प्रतीक अपनाया और वह प्रत्येक हित्ती राजा के सिर पर मँडराता दिखाया जाता है। पर आगे वह कहते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रतीक को पहले मितन्नी राजाओं ने अपनाया, उसे खंभे पर टिके आकाश की धारणा से जोड़ा और इस धारणा के स्रोत रूप गूर्ने ऋग्वेद का हवाला भी देते हैं।[44] इसलिए यह संभावना प्रबल है कि मिस्री राजाओं ने जहाँ से सूर्यपूजा का आयात किया था वहीं से उसका प्रतीक बिंब भी प्राप्त किया था, मितन्नी, हित्ती, मिस्री राजाओं के लिए सूर्यपूजा का सामान्य स्रोत था भारत। प्रिचार्ड के ग्रंथ में सूर्य का प्रसार इराक़ से मिस्र तक दिखाई देता है। कुछ चित्रों में सूर्य के साथ वृक्ष अथवा स्तंभ भी दिखाया गया है। इराक़ में पंद्रहवीं सदी की एक मृद्-पट्टिका पर "पंखयुक्त सूर्य-बिंब खंभे पर टिका हुआ" दिखाया गया है। (चित्र संख्या ७०५)। इराक़ के अशुर नामक प्राचीन नगर में एक मृद्भांड प्राप्त हुआ जिस पर बने चित्र में एक ताड़ वृक्ष के ऊपर पंखयुक्त सूर्य-बिंब दिखाया गया है। (चित्र संख्या ६२८)। ऋग्वेद में खंभे और आकाश के साथ अनेक देवताओं का उल्लेख है। मरुतों ने धरती आकाश को अलग स्थिर किया, (तस्तभुः, यहाँ क्रिया द्वारा स्तंभ का भाव व्यंजित है।) (८.६४.११)। मरुत् आदिति के पुत्र हैं, वे खंभों के समान (अक्रा "strong like pillars"—ग्रिफिथ) हैं। (१०.७७.२) यहाँ खंभों की तरह कुछ उठाए रखने की ओर संकेत है। वरुण ने खंभे से आकाश और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धरती को अलग किया। (८.४१.१०)। **सोम** द्युलोक को धारण करने वाले स्तंभ हैं। (६.१०८.१६)। सबसे कुशल देव वह है जिसने कभी नष्ट न होने वाले खंभों से धरती और आकाश को सुदृढ़ किया। (१.१६०.४)।

आकाश और खंभे से सूर्य का विशेष संबंध है। सूर्य का प्रकाश फैला, आकाश (द्यौः) नापजोख कर बनाए खंभे के समान सुदृढ़ हो गया है। (५.४५.२)। **सविता** द्युलोक को धारण करने वाले हैं (४.५३.२) और सविता ने खंभे के बिना ही (अस्कंभते) आकाश को स्थिर किया (१०.१४९.१)। खंभे की प्रचलित धारणा को अनावश्यक मानकर कवि ने कहा, सविता ने आकाश को स्थिर किया पर यह कार्य खंभे के बिना संपन्न हुआ।

चौदहवीं सदी ई० पू० के एक मंदिर में मिस्र के सूर्योपासक राजा अखेन् अतोन्, पत्नी नेफेर्त्-इति के साथ, शिल्पायित हैं। उनके सिर पर सूर्य है, सूर्य की चौदह किरणें उन तक बढ़ी हुई हैं, और प्रत्येक किरण का अंतिम भाग हाथ बन जाता है। सूर्य अपने करों से राजदंपति को संरक्षण प्रदान कर रहे हैं। (प्रिचार्ड, चित्र संख्या 408) । वैदिक कवि की कल्पना ही मानों यहाँ मूर्त हुई है : **प्रास्ताक् बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यः**, विश्व के जीवों की रक्षा के लिए सविता ने अपने बाहु फैला दिए हैं। (४.५३.४)। अखेन् अतोन् के बाद भी अतोन् (सूर्यबिंब) के प्रति यह श्रद्धा का भाव बना रहा। प्रिचार्ड के चित्रग्रंथ में : राजा नुतंख् अमोन् (१३६१-१३५१ ई० पू०) और उनकी रानी को सूर्यबिंब किरणकरों से स्पर्श करता है (सं० ४१५)। राजा सेति (१३१८-१३०१ ई० पू०) के विजयस्तंभ में पंखयुक्त सूर्यबिंब अंकित है। (सं० ३२०)। राजा रमसेस् द्वितीय (१३०१-१२३४ ई० पू०) अमोन् रे के सामने हैं, ऊपर पंखयुक्त सूर्यबिंब है। (सं० ३२१)। मिस्र के बाहर पंद्रहवीं सदी ई० पू० की एक सीरियाई मुद्रा में मिस्री देवी हथोर् के सिर पर सूर्यबिंब है। (सं० ६५०)। पंद्रहवीं सदी की एक बैबिलोनी मुद्रा में दो सिंहों और दो पक्षियों के विच एक स्तंभ है और उस पर सूर्यबिंब टिका हुआ है। (सं० ७०५)। बारहवीं सदी के एक बैबिलोनी राजा नना देवी के सामने हैं, ऊपर अर्धचंद्र तथा अष्टकोण नक्षत्र के देव प्रतीकों के साथ सूर्यबिंब है। (सं० ५१८)। दसवीं सदी के एक प्रस्तर खंड पर असीरिया के कोई राजा अपने चार शत्रुओं की नाक से बँधी नकेल पकड़े हैं, ऊपर सूर्यबिंब से निकला एक हाथ उन्हें धनुष, दूसरा आशीर्वाद दे रहा है। (सं० ४४०)। यह क्रम लगभग एक हज़ार साल तक चलता रहा है। मिस्र के छब्बीसवें राजवंश (६६३-५२५ ई० पू०) की एक काले पत्थर की बनी शवपेटिका पर आकाश की देवी नुत् के शरीर पर तीन सूर्यबिंब अंकित हैं, मुँह के नीचे जहाँ से सूर्य उनके शरीर में प्रवेश करेगा, योनि पर जहाँ से वह सबेरे निकलेगा और घुटनों के नीचे पैरों के बीच, जहाँ वह यात्रा के दौरान है। (सं० ५४३)। सूर्यबिंब की यह छवि समाधिभवनों, विजयस्तंभों, मुद्राओं आदि पर अंकित है।

सूर्यबिंब का एक विशेष उपयोग बैबिलोन के क़स्सी राजा करते थे। रू ने उनके बारे में लिखा है कि ये राजा किसी को ज़मीन देते समय उसका उल्लेख पत्थर के छोटे से खंभे पर करते थे। ये खंभे दानपत्र का काम करते थे। ऊपर देवताओं के चित्र अथवा उनके

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रतीक आँके जाते थे, नीचे दान पाने वाले का नाम, भूमि का विवरण आदि होता था। प्रतीकों में सूर्यबिंब भी होता था। ये छोटे खंभे मंदिरों में रखे जाते थे, मृत्तिका खंडों पर उनकी प्रतिलिपि भूमि पाने वालों को दे दी जाती थी। अक्कदी भाषा में इन्हें कुदुर्रू (सीमा) कहते थे, इसलिए लोग दान संबंधी इन अभिलेखों को सीमा के पत्थर कहने लगे।[45] प्रिचार्ड का मत है कि संभवतः ये पत्थर खेतों की सीमाओं को चिह्नित करने के काम आते थे, आगे चलकर उनका उपयोग भूसंपत्ति के क़ानूनी दस्तावेज़ों के रूप में हुआ।[46] जो भी हो, प्रिचार्ड के ग्रंथ में इन पत्थरों के अनेक चित्र हैं जिन पर सूर्यबिंब (सं० ५१८,५२०,५२६) अथवा पंखयुक्त सूर्यबिंब (सं० ५३२,५३५) अंकित है। इराक़ पर कस्सी राजाओं ने चार सौ अड़तीस साल (१५९५-११५७ ई० पू०) राज्य किया।[47] उनके बाद भी उस तरह के खंभे का चलन बना रहा। प्रिचार्ड ने जो चित्र दिए हैं, वे बारहवीं से आठवीं सदी तक के हैं। यद्यपि इस तरह के सभी प्रस्तरखंडों पर सूर्यबिंब नहीं हैं, अन्य देवता या उनके प्रतीक हैं, और सूर्यबिंब के साथ भी हैं। पर इन पत्थरों को छोटे खंभों का रूप दिया गया था, शायद इसलिए कि सूर्य खंभे पर टिका है, यह माना जाता था और खंभा स्वयं देवत्व का सूचक वन गया था। संभव है, पत्थरों को खंभे का रूप सूर्य की पूजा के ही कारण दिया गया हो, फिर चाहे उन पर सूर्यबिंब अंकित हो, चाहे न हो।

मिस्र से इराक़ तक अनेक परिवारों की भाषाएँ बोली जाती थीं, अनेक नस्लों के लोग रहते थे और नस्लों का घालमेल भी होता रहा था। हज़ारों साल तक पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के इन मानव समुदायों के एक-दूसरे से और भारत से अनेक सांस्कृतिक संबंध दृढ़तापूर्वक बँधे हुए थे। इनमें सूर्योपासना की भूमिका निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण थी। यह उपासना सुदूर ब्रिटेन के केल्त जनों तक पहुँची अथवा वे उसे एशिया से यूरोप होते हुए अपने साथ ले गए। वेल्स में इनकी उपासना के स्मारक खंभों जैसे प्रस्तरखंड हैं। वेल्स जनों के पुरोहित द्रुइद कहलाते थे। देवतंत्र पर अपने ग्रंथ में **बुलफिंच** ने इनके लिए लिखा है कि वे सूर्य को समस्त जीवन का स्रोत मानते थे और उनकी तरह सामी परिवार के फ़िनीशियन लोग भी सूर्य को अपना प्रधान देवता मानते थे।[48]

रोमन साम्राज्य मिस्र और सीरिया से लेकर ब्रिटेन तक फैला था। रोमन लोगों के धार्मिक विश्वासों पर पूरब के धर्मों के प्रभाव का विवेचन करते हुए **फ्रान्स क्यूमों** ने लिखा है कि सिकंदरी अभियान के बाद सूर्यकेंद्रित सर्वात्मवाद सीरिया में पनपा और "साम्राज्य के अंतर्गत समस्त रोमन संसार पर हावी हो गया"।[49] रोमन साम्राज्य के समानांतर इधर ईरानी साम्राज्य का विस्तार हुआ और बहुत दिनों तक ये दोनों साम्राज्य एक-दूसरे के पड़ोसी रहे। **मित्र** की उपासना ईरान से रोम तक पहुँची। मित्र कहने से सूर्य का बोध होता है, उसके साथ 'आदित्य' भी जोड़ देते थे। **मित्रादित्य**—अनेक रोमन शासक मिथ्रादतेस् नाम धारण करते थे। अनेक स्थानों पर मित्र की पूजा के लिए मंदिर बनाए गए थे।[50] क्यूमों के अनुसार रोम में पहली सदी ई० पू० से लेकर चौथी सदी ईसवी तक मित्र की **पूजा** सबसे महत्त्वपूर्ण उपासना पद्धति थी।[51] रोमन सैनिक दैन्यूब और हाइन नदियों के तटवर्ती प्रदेशों से लेकर ब्रिटेन तक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मित्र-पूजा के चिह्न छोड़ते चले गए।[52]

ईसाई धर्म के प्रसार के साथ यह पुरानी दुनिया धीरे-धीरे बदली किंतु बदलने के साथ-साथ वह नए धर्म को प्रभावित भी करती गई। सूर्योपासना से संबंधित उसके विश्वास जहाँ-तहाँ ईसाई धर्म से जुड़ गए।

छ. वायु, रुद्र, वृषभ्

पश्चिमी एशिया में, खास तौर से बैबिलोनी राज्य में, वायु और वर्षा से संबद्ध एक देवता की उपासना होती थी, वह भारतीय रुद्र अथवा इंद्र से बहुत मिलते-जुलते हैं। इराक़ के अक्कदी काल (२३६०-२१८०*) की एक मुद्रा पर 'मौसम के देवता' रथ पर सवार हैं। जो पंखयुक्त सिंह रथ खींच रहा है, उस पर वर्षा के पूले थामे एक देवी खड़ी हैं (प्रिचार्ड, सं० ६८६)। कभी यह मौसम के देवता देवी के साथ होते हैं, कभी अकेले। इस मुद्रा में वर्षा से उनका संबंध स्पष्ट है। एक अन्य कलाकृति (सं० ७०३) में मौसम के देवता अदद और साथ की स्त्री शल के नाम अंकित हैं। स्त्री एक बैल पर खड़ी है और उसके पास बिजली का द्विशूल है। शूल भाले की तरह सीधे नहीं हैं, वरन् लहरियादार हैं। चौदहवीं सदी* के एक कुदुर्रु पत्थर पर (सं० ५२१) अन्य देव प्रतीकों के साथ बैल पर लहरियादार द्विशूल रखा है। द्विशूल उन्हीं मौसम के देवता का प्रतीक है। बारहवीं सदी* की एक कृति (सं० ५१६) में बैल पर द्विशूल है। ऐसे ही बारहवीं सदी* के एक कुदुर्रु पत्थर पर (सं० ५२०) बैल के ऊपर द्विशूल है। बारहवीं या ग्यारहवीं सदी* के स्तंभखंड (सं० ५३१) में मौसम के देवता बैल की पीठ पर खड़े हैं। उनके हाथ में त्रिशूल है। सिर के ऊपर सूर्यबिंब है। इस समय के अन्य स्तंभ खंड (सं० ५३२) में मौसम के देवता पंखयुक्त सूर्यबिंब और अर्धचंद्र के नीचे खड़े हैं। यहाँ बैल नहीं है। त्रिशूल के शूल लगभग सीधे हैं। त्रिशूल बाएँ हाथ में है, दाएँ हाथ में कुठार है। नवीं सदी* की एक मूर्ति में (सं० ६५१) देवता दोनों हाथों में त्रिशूल लिए हैं। यह अस्त्र ऐसा है कि तीन शूल नीचे की ओर तीन ऊपर को हैं, देवता उसे बीच से पकड़े हैं। उनके पास तलवारें भी हैं और वह पंखयुक्त हैं। आठवीं सदी* की एक मूर्ति में (सं० ५०१) इसी तरह 'तूफान के देवता' दोनों हाथों में एक-एक त्रिशूल थामे हैं और ये दोहरे त्रिशूल हैं, तीन ऊपर को, तीन नीचे को। प्रिचार्ड के अनुसार ये त्रिशूल बिजली के प्रतीक हैं। देवता चलने की मुद्रा में बैल पर खड़े हैं, एक पैर बैल के सिर पर है, दूसरा पीठ के पिछले भाग पर। आठवीं या सातवीं सदी* के एक स्तंभ पर (सं० ५००) देवता बैल पर खड़े हैं, उनके हाथ में लंबे डंडे वाला इकहरा त्रिशूल है और वह बैल की पगाही भी थामे हैं।

बैबिलोनी राज्य के यह मौसम या तूफान के देवता भारतीय **शिव** के प्रतिरूप जैसे हैं। वैदिक **रुद्र** से **शिव** का तादात्म्य माना जाए तो वह वायु और वर्षा के देवता हैं और उनका त्रिशूल बिजली का प्रतीक होगा। ऊपर चित्र संख्या ५०० के विवरण में प्रिचार्ड ने लंबे त्रिशूल को 'तीन शूलों वाला वज्र (a three pronged thunderbolt)' कहा है। संभव है,

* ई.पू.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्र 1. तूफानों के देवता, भारतीय रुद्र के प्रतिरूप इनकी उपासना हित्तियों में प्रचलित थी।
(गूर्ने की पुस्तक 'द हिट्टाइट्स' में प्रकाशित, चित्र संख्या 28)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्रिशूल वज्र का ही एक रूप हो। आठवीं सदी* के आस-पास के एक अन्य चित्र (सं० ५३३) के विवरण में प्रिचार्ड ने अदद के लिए लिखा है, उनका बायाँ हाथ 'विद्युत वज्र [the lightning bolts]' थामे है, दाएँ में 'वज्र और कड़ा (bolts and a ring)' हैं यह वज्र त्रिशूल से भिन्न है, जीवशास्त्र में जिसे कुंडलिनी (helix) कहते हैं, उससे मिलता-जुलता है। चित्र में अंकित अभिलेख से स्पष्ट है कि वज्रधारी देवता अदद हैं। ऋग्वेद में रुद्र को पृथ्वी पर बिजली छोड़ने वाला कहा गया है। (७.४६.३), और अन्यत्र उन्हें वज्र धारण करने वाला भी माना गया है (२.३३.३। ऋग्वेद में वृषभ शक्ति का प्रतीक है, वह अनेक देवों का उपमान है। एक ही सूक्त में वृषभ, वृषभाय, वृषभ (२.३३.७,८,१५) द्वारा रुद्र की शक्ति व्यंजित की गई है। मिस्र से इराक़ तक वृषभ दैवी और मानवीय शक्ति का प्रतीक बना रहा है।

मिस्र में अनेक वृषभ देवों की पूजा होती थी, इन में मेमृफिस नगर के वृषभ अपिस् को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता था। मार्गरेट मरे के अनुसार इसकी पूजा बहुत पुरानी थी और वह नील नदी का एक रूप था।[53] तीसरी सहस्राब्दी* के एक बैबिलोनी देवी-मंदिर में पाँच वृषभ अंकित हैं (प्रिचार्ड, सं० ६८) और उसी सहस्राब्दी की एक मुद्रा पर (सं० ६६६) वृषभ पुरुष सिंह से युद्ध करता दिखाया गया है। नवीं सदी* में सीरिया की एक प्रस्तर मूर्ति पर (सं० ६५३) दो वृषभपुरुष एक पंखयुक्त सूर्य को मंचिका पर साधे खड़े हैं।

'रुद्र' पूजा का एक महत्त्वपूर्ण प्रसार केंद्र हित्ती राज्य था जहाँ भारतीय मूल के आर्य शासन करते थे। हित्ती राज्य में मौसम के देवता वास्तव में वर्षा और तूफान के देवता थे। गूर्ने का मत है कि उनका उद्भव मेसोपोटामिया के गरम खुश्क मैदानों (torrid plains) में न हो सकता था, वह हित्तियों की अनातोलिया के विशिष्ट देव हैं क्योंकि यह 'बादलों और तूफानों का देश' है।[54] (और यह भी संभव है कि मित्र, वरुण आदि के साथ वहाँ वह भारत से पहुँचे हों।) इनका संबंध हित्ती राज्य के अनेक नगरों से था और उनका शिल्पांकन अनेक रूपों में किया गया था। सीरिया के शिल्प में वह अक्सर अकेले खड़े दिखाए जाते हैं, उनके हाथ में कुठार होता है "और प्रतीक रूप चमकती बिजली।" अनातोलिया के शिल्प में वह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले पुराने ढंग के रथ पर पहाडों के ऊपर जाते दिखाई देते हैं। "उनका पवित्र पशु बैल है" और प्रतीक रूप वह अकेला भी अंकित होता है। अपने बैल के साथ 'रुद्र' रोमन साम्राज्य में भी दिखाई देते हैं। गूर्ने ने लिखा है, "बैल पर खड़े हुए मौसम के देवता जुपिटर दोलिकेनुस् के नाम से पूरे रोमन साम्राज्य में विख्यात हुए, वह बाद के विकास जान पड़ते हैं"।[55]

यदि हम स्मरण करें, सूर्यपूजा का चलन पश्चिम एशिया में था और रोमन साम्राज्य में भी था, तो रोमन काल के 'रुद्र' को बाद का विकास न मानकर उन्हें प्राचीन परंपरा का ही अटूट प्रसार मानना उचित होगा। गूर्ने के अनुसार तौरस के पहाड़ी क्षेत्र और उत्तरी सीरिया के मैदान में 'रुद्र' के सबसे प्रसिद्ध मंदिर थे और यहाँ के निवासियों में मुख्य अंश हुर्री लोग थे। इनके 'रुद्र' का नाम तेशुब् था। इनकी पत्नी हेबत् का "महत्त्व लगभग उतना ही था जितना उनके पति तेशुब् का"।[56] हठात् यहाँ भारतीय देवकथाओं के शिव-पार्वती का स्मरण

* ई.पू.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हो आता है। इसी प्रकार हित्तियों के लिए सूर्य के साथ सूर्या का महत्त्व है। यह द्यावा-पृथिवी, आकाश के साथ धरती की उपासना की वैदिक परंपरा है। हित्तियों के 'रुद्र' नागदैत्य इल्लुयंकस् का वध करते हैं । यह नाम दैत्य वैदिक वृत्र का प्रतिरूप है।

ज. शब्द और सृष्टि

मिस्र, सुमेर और भारत के सृष्टि संबंधी चिंतन में सबसे आश्चर्यजनक समानता वाणी की भूमिका को लेकर है। मार्गरिट मरे ने मिस्र के बारे में लिखा है, "बीसवें राजवंश के देवशास्त्र में सप्ताह को विशुद्ध बुद्धि माना गया है। समस्त सृष्टि का वही अंतिम स्रोत है। पोपु जिह्वा, शब्द है। उसके द्वारा सारी सृष्टि अस्तित्व में आई। लोगोंस्, शब्द के द्वारा 'सभी पदार्थों का निर्माण हुआ', 'ईसाई देवशास्त्र पर जिस सिद्धांत का ऐसा गहरा असर हुआ, उसका यह प्राचीन उदाहरण है"।[57] क्रैमर के विवेचन में सुमेरी चिंतक शुद्ध बुद्धि की कल्पना नहीं करते। वे मानते थे कि आकाश और पृथ्वी, समुद्र और वायुमंडल ब्रह्मांड के मूल रचनातत्व हैं। अन्य सभी विश्व प्रपंच इन्हीं में किसी न किसी के अंतर्गत हैं। "इसलिए यह निष्कर्ष तर्कसंगत होगा कि जो देव आकाश, पृथ्वी, समुद्र और पृथ्वी पर अधिकार किए थे, वे सर्जक देव थे। इन चार देवों में किसी एक ने जो योजनाएँ बनाईं, उनके अनुसार विश्व प्रपंच के अन्य सभी घटक रचे गए।" शब्द की भूमिका आगे यों प्रकट होती है : "इन देवों को विश्वरचना के लिए जिस तकनीक का श्रेय दिया गया, उसके संबंध में हमारे सुमेरी दार्शनिकों नें जिस सिद्धांत का विकास किया, वह समूचे निकट पूर्व में रूढ़ हो गया— यह दैवी शब्द की सर्जक क्षमता का सिद्धांत था। इस सिद्धांत के अनुसार सर्जक देव को इतना हीं करना था कि योजना बनाएँ, शब्द बोलें और नाम का उच्चारण करें"।[58] और विश्व, अपनी समस्त विविधता के साथ, प्रत्यक्ष हो जाएगा।

शब्द संबंधी सुमेरी धारणा के लिए क्रैमर ने एक कैफ़ियत और दी है : "दैवी शब्द की सर्जक क्षमता के बारे में यह धारणा संभवतः मानव समाज के पर्यवेक्षण पर निर्भर एक अन्य तुलनीय अनुमान का फल थी : यदि कोई मानुष राजा लगभग जो भी चाहे, उसे आदेश द्वारा, जो उसके मुँह से निकले शब्द जान पड़ते थे, उन्हीं के द्वारा, प्राप्त कर सकता था, तो विश्व के चार परिमंडलों के अधिष्ठाता, अमर तथा अतिमानव देवों के लिए कितना कुछ अधिक संभव न होगा।" फिर इस कैफ़ियत पर क्रैमर की दार्शनिक टिप्पणी है : "किंतु शायद जहाँ विचार और शब्द ही सब कुछ हैं, ऐसा यह 'सरल' समाधान आशावादी इच्छा पूर्ति की ओर भागने की प्रेरणा का फल है, कष्ट और दुर्भाग्य के समय यह इच्छापूर्ति प्रायः सभी मनुष्यों की विशेषता है"।[59]

क्रैमर ने यह नहीं बताया कि चार देवों में किसी एक ने विश्व रचा तो वह कौन था, और यदि आज्ञा देने भर से किसी राजा को सब-कुछ मिल जाता था, तो उसकी आज्ञा का पालन करने वाले बहुत से अनुचर भी तो होते थे, देवों के ये अनुचर कौन थे ? वास्तव में जहाँ आज्ञा देने से सब-कुछ मिलता है, वहाँ प्रधानता आज्ञा देनेवाले की है, आज्ञा की नहीं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद में वाणी का दावा है, मैं मित्र और वरुण को, इंद्र और अग्नि को, दोनों अश्विनों को धारण करती हूँ, मैं द्यावा पृथिवी में व्याप्त हूँ, मेरा आवास समुद्र में, जलों के भीतर है : "मैं ही सब भुवनों को निर्माण करती हुई वायु के समान सर्वत्र व्यापती हूँ—बहती हूँ" (सातवलेकर, १०.१२५.१,६,७,८)। द्यावापृथिवी समेत सारे देवता वाणी के भीतर हैं, वह किसी देवता की आज्ञा में नहीं है। सब आज्ञा देने वाले उसके भीतर हैं, उनकी आज्ञा में वह कैसे हो सकती है ? वह वायु के समान गतिशील है, उसकी व्याप्ति से ही समस्त भुवनों का अस्तित्व है।

आदिम जल-राशि, द्यावापृथिवी का संयुक्त रूप, उन्हें अलगाने में वायु की भूमिका, खंभे पर टिका हुआ सूर्य, खंभे से उसका संबंध, इस सब के साथ वाणी की सर्जक क्षमता—भारत, सुमेर और मिस्र के सृष्टि संबंधी चिंतन की ये विशेषताएँ ऐसी नहीं हैं जो समान परिस्थितियों में स्वतः उत्पन्न हो गई हों। मिस्र में सूर्योपासना का आयात हुआ था, मार्गरिट मरे स्वीकारती हैं। सुमेरी दार्शनिकों ने दैवी शब्द की सर्जक क्षमता का सिद्धांत रचा, वह समूचे निकट पूर्व में रूढ़ हो गया—यह क्रैमर का मत है। प्रसार केंद्र एक ही है। मिस्र, सुमेर, भारत के सृष्टि चिंतन में सामान्य विशेषताएँ हों तो प्रश्न है : इनमें आदि स्रोत कौन है ?

झ. प्राचीनता के समाजशास्त्रीय आधार

ऋग्वेद के देवतंत्र में सामाजिक विकास की अनेक मंज़िलें देखी जा सकती हैं। पहली मंज़िल वह है जिसमें महत्त्व माताओं का है, ये माताएँ सामूहिक रूप से एक साथ रहती हैं। दूसरी मंज़िल में इनकी संख्या कम हो जाती है और दो तीन माताएँ प्रधान होती हैं। तीसरी मंज़िल में महत्त्व पुरुषों का होता है और वे भी सामूहिक रूप में एक साथ रहते हैं। चौथी मंज़िल में दो तीन पुरुष प्रधान होते हैं और पाँचवीं मंज़िल में एक पुरुष, एक स्त्री, पिता-माता के रूप में प्रधान होते हैं। **आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु**, हमें जल माताएँ पवित्र करें। (१०.१७.१०) अपोदेवीरुपह्वये, हम जल माताओं का आह्वान करते हैं। (१.२३.१८)। **अपः** और **आपः**, दोनों शब्द स्त्रीलिंग हैं, बहुवचन हैं, वे अनेक माताओं, अनेक देवियों के समूह के व्यंजक हैं। सामाजिक विकास की यह पहली मंज़िल है। जल की पूजा मिस्र, सुमेर, भारत तीनों देशों में होती थी, तीनों देशों में जल पवित्र माना जाता था। सामाजिक विकास की आदिम अवस्था में जल की पूजा आरंभ हुई, इस पूजा पर मातृसत्ताक व्यवस्था की अमिट छाप केवल भारत में है। विपाष् और शुतुद्री बछड़े को चाटती हुई दो माताएँ हैं। (३.३३.३)। यहाँ दो माताओं का महत्त्व है। द्यावापृथिवी—ये पिता और माता है किंतु उन्हें दो माताएँ भी कहा गया है। द्यावापृथिवी **जनित्री** हैं, सब को जन्म देने वाली माताएँ हैं। (३.३१.१२)। वे **विश्वजन्ये** संसार को उत्पन्न करने वाली हैं। (३.२५.३)। **वे समन्ते स्वासरः**, "एक दूसरे के साथ संबद्ध बहिनें" हैं। (सातवलेकर, १.१८५.५)। यह दूसरी मंज़िल हुई। इसी के अंतर्गत एक ही माता या देवी की प्रधानता को गिन लें। अदिति आदित्यों की जननी हैं, जनित्रीरूप में वह अकेली हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मार्गरिट मरे ने शब्द और सृष्टि के संबंध को मिस्र के बीसवें राजवंश के देवशास्त्र की विशेषता माना है। हिक्सोस् के बिदा होने के बाद मिस्र में सत्रहवें राजवंश का शासन आरंभ हुआ। उसके काफ़ी दिन बाद शब्द-सृष्टि की यह कल्पना मिस्री देवशास्त्र का अंग बनी। वह हिक्सोस् कहलाने वाले आर्य शासकों की देन हो—इसकी प्रबल संभावना है। ऋग्वेद में मन की रचनात्मक क्षमता का वर्णन अनेक देवों के प्रसंग में किया गया है। इंद्र का मन सभी स्थानों में पहुँचने वाला है। (८.१.७)। इंद्र का वह महान् नाम गुप्त है जिसके द्वारा उन्होंने अस्तित्व में आए हुए और आगे आनेवाले पदार्थों का निर्माण किया है। इंद्र का नाम **पुरुस्पृक्** है, उसका दूर तक विस्तार है। (१०.५५.२)। कोई शब्द ही नाम हो सकता है, वह शब्द गुप्त है, व्यापक है, सब कुछ रचने की क्षमता वाला है। जो शब्द का स्वामी है, वाचस्पति है, वह विश्वकर्मा है, संसार को बनाने वाला है। वह द्यावापृथ्वी को अपने में धारण करता है : वह वाचस्पति, विश्वकर्मा, मन के समान शीघ्रगामी है। (१०.८२.६.७)। मिस्र में शब्द की जिस विश्वसर्जक क्षमता को बीसवें राजवंश में मान्यता प्राप्त हुई, उसकी पूरी पृष्ठभूमि ऋग्वेद में है।

ऋग्वेद में **मरुत्** ऐसे देव हैं जो सदा सामूहिक रूप में याद किए जाते हैं। उनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है (५.५९.६.)उन सब का आवास एक है(१ १६५.१) रथ चक्र की नाभि से जैसे अरा जुड़े होते हैं, वैसे ही वे परस्पर संबद्ध हैं (१०.७८.४)। पितृसत्ताक गण व्यवस्था का यह आदर्श रूप है। यह तीसरी मंज़िल है। दो देवताओं का आदर्श जोड़ा **अश्विनों** का है। उनका जन्म एक साथ हुआ है।(१०.१७.२)। मित्र-वरुण, इंद्र-वृहस्पति, सोम-पूषन आदि जोड़े तो बहुत हैं। यह चौथी मंजिल है। इसी के देव की कल्पना है यथा **सविता भुवनस्य प्रजापतिः** हैं। (४,५३.२)। एक देव के स्थान पर देव देवी दोनों है तब देव और देवी भिन्न होते हुए भी अभिन्न, परस्पर निर्भर, गतिशील, सृजनशील हों तो इसे पितृसत्ताक व्यवस्था का विकास मानना चाहिए। **तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः**- —माता पृथ्वी, पिता द्यौ उसे (औषधि को) हमें दें। (१.८९.४)। **कालिदास** के शिव पार्वती—**जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ,** और **तुलसीदास** के रामसीता—**सीयराममय सब जगजानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी,** उसी परंपरा के अनुरूप हैं। मिस्र और सुमेर में जल, पृथ्वी-आकाश पितृसत्ताक समाज की देन हैं, उनके प्राचीन मातृसत्ताक रूप भारत में हैं। इसी तरह वहाँ वायु पितृसत्ताक व्यवस्था की देन है किंतु उसी व्यवस्था के प्राचीन रूप हैं **मरुत्** गण। इस प्रकार तीनों देशों के सृष्टि संबंधी चिंतन की सामान्य विशेषताओं का आदि स्रोत समाजशास्त्रीय आधार पर भारत ही सिद्ध होता है।

ञ. देवकथाएँ और कृषितंत्र

सृष्टि संबंधी कल्पनाओं के साथ अनेक कथाएँ भारत से पश्चिमी एशिया पहुँची हों, यह संभव है। हित्तियों में प्रचलित 'रुद्र' और नागदैत्य के युद्ध आख्यान के बारे में **गूर्ने** का मत है कि यह उन कथाओं के अनुरूप हैं जिनमें "एक देवनायक तथा पाप के प्रतीक किसी विरोधी" का संघर्ष होता है।[60] वृत्र का मारा जाना खेती के लिए आवश्यक होता है। वह जल को रोकता है, जल चाहे नदियों का हो, चाहे बादलों का। वृत्र के समान शुष्ण नागदैत्य है। उसके दुर्ग गतिशील हैं (८.१.२८)। इसका अर्थ है, वह बादलों के जल को रोकता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इंद्र उसके दुर्गों को ध्वस्त करके जल को मुक्त करते हैं। (१.१५१.६१) मैक्डनल ने ध्यान दिलाया है कि शुष्ण कोकुयवु कहा गया है। वह फसल को खराब करता है, वह सूखे का प्रतीक (a demon of drought) है।[61] हित्ती कथाओं में कभी खेती के देवता तेलिपिनु खो जाते हैं, कभी सूर्यदेव खो जाते हैं, और कभी 'रुद्र' खो जाते हैं। इनके खो जाने के फलस्वरूप "पेड़ मुरझा गए, झरने और चरागाह सूख गए। इस तरह अकाल पड़ा, देवता और मनुष्य दोनों भूखों मरने लगे"।[62]

देवता का खो! जाना, फिर उसका मिलना, देवता का मरना, फिर जी उठना, यह कार्य प्रतिदिन हो सकता है, वर्ष में एक बार भी। हर स्थिति में उसका महत्त्व मनुष्य के लिए प्रकाश और जल की प्राप्ति में है। वृत्र के वध का उद्देश्य भी यही है। हित्ती कथाओं से मिस्र-बैबिलोनी कथाओं की तुलना करते हुए गुर्ने ने लिखा है—"देवता की अनुपस्थिति के सत्यानाशी परिणाम, पर्वत और घाटी में उसकी खोज, उसके लौटने पर धरती का पुनर्जीवन—इस सबके वर्णन से मिलती-जुलती चीज़ें उस देवकथा-साहित्य में हैं जिसका संबंध अदोनिस्, अत्तिस्, ओसिरिस् और तम्मुज़ से है, वसंत के वार्षिक त्यौहारों के वे उसी तरह विशिष्ट तत्व हैं जिस तरह कर्मकांडी युद्ध है, जिसका उदाहरण नागदैत्य का वध है"।[63]

प्रिचार्ड ने अपने ग्रंथ में जैसे त्रिशूलधारी 'रुद्र' के चित्र दिए हैं, वैसा ही चित्र हित्तियों पर अपनी पुस्तक में गूर्ने ने दिया है। (प्लेट संख्या 28)। बैबिलोन से सीरिया तक 'रुद्र' की व्यापक उपासना के ये प्रमाण हैं।

ऋग्वेद के एक सूक्त में अग्निदेव वरुण से कहते हैं : "मैं हविवहन कार्य से भय करता हुआ आ गया हूँ, मुझे इस प्रकार इस कार्य में देवता लोग नियुक्त न करें, यह मैं चाहता हूँ; उस कारण मैंने मेरा शरीर अनेक प्रकार से जल में छिपाया है, इस हविवहन कार्य को अग्नि मैं करना नहीं चाहता।" (सातवलेकर; १०.५१.४)। देवताओं से अलग अग्नि कहीं दूर जाकर छिप गए , फिर उन्हें देवता अथवा ऋषि जाकर मना लाए, इस कथा की ओर अनेक सूक्तों में संकेत है। (५.११.६: १०.५१.६)। देवताओं की स्तुति में इस कथा की ओर संकेत भर है; बहुत संभव है, स्तुतियों से अलग गद्य या पद्य में ऐसी कथाएँ अधिक विस्तार से कही गई हों। हित्तियों और मिस्रियों में ऐसी कथाओं का चलन था और उनके अवशेष अभी प्राप्त हैं। उनके यहाँ देवों की स्तुति भी की जाती थी। हित्तियों में किसी देवता के खो जाने की कथा प्रचलित थी। कथा के अनेक रूप थेः इनमें कभी, तेलिपिनु (कृषि के देवता), कभी 'रुद्र, कभी सूर्य खो जाते हैं। सूर्य ने बहुत से देवताओं को बुलाया, उन्हें खिलाया-पिलाया पर उन्हें तृप्ति न हुई। तब 'रुद्र' ने कहा—"तेलिपिनु यहाँ नहीं है। वह क्रुद्ध होकर चले गए हैं और अपने साथ सभी अच्छी चीजें ले गए हैं।" तब सूर्य ने द्रुतगामी श्येन से कहा—"जाओ, ऊँचे पहाड़ों में ढूँढ़ो, गहरी घाटियों में ढूँढ़ो, कृष्णनील जलराशि में ढूँढ़ो"।[64] ये संवाद एक स्वतंत्र कथा में हैं। ऋग्वेद में इस तरह के संवाद उस समय प्रचलित कथाओं की ओर तो संकेत करते ही हैं, यह भी संभव है कि उन कथाओं से सीधे उठाकर उन्हें सूक्त में रख दिया गया हो।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेलिपिनु के लोप और अग्नि के लोप में काफ़ी समानता है। अग्नि के बिना यज्ञ न होगा, यज्ञ के बिना देवताओं को भोजन न मिलेगा। अग्नि या तेलिपिनु के बिना दोनों कथाओं में देवों का अतृप्त रहना सामान्य तत्व है। इसीलिए वे उन्हें खोजने निकलते हैं। यह बहुत संभव है, इस कथा का मूल स्रोत भारत हो; हित्ती कथा में अग्नि का स्थान तेलिपिनु या किसी अन्य देव ने ले लिया हो।

एक सूक्त में वरुण और इंद्र अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करते हैं। **क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः**, सभी देवता वरुण का आदेश मानते हैं। **अहं राजा वरुणः**, मैं राजा वरुण हूँ; मैंने जलों को प्रवाहित किया, आकाश को स्थिर किया। (४.४२. १, २, ४)। इंद्र कहते हैं, युद्ध में घिर जाने पर वीर गण मुझे बुलाते हैं। **मघवा अहं इन्द्रः** मैं मघवा इंद्र हूँ। सोम पीकर आनंदित होता हूँ तो दोनों लोक भयभीत हो उठते हैं। (४.४२.५,६)। कुछ विद्वानों का मत है कि वरुण पुरानी पीढ़ी के देवता थे, उनका वर्चस्व इंद्र ने स्थानांतरित किया होगा। **मैकडनल** मानते हैं, 'इंडोईरानियन' काल में वरुण का स्थान इंद्र से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।[65] इसका अर्थ यह है कि **ऋग्वेद** में ही वरुण का वर्चस्व कम होने लगा है, इंद्र का बढ़ा है। **ब्राह्मण** ग्रंथों और महाकाव्यों में इंद्र स्वर्ग के स्वामी हैं। नई पीढ़ी के देवों ने पुरानी पीढ़ी के देवों को अपदस्थ किया, यह कथा यूनानी देवशास्त्र में भी है। **ऋग्वेद** में वह बीजरूप में है, विकसित हुई है **ऋग्वेद** के बाद, भारत में, और भारत के बाहर भी।

हित्ती कथा में आकाश के राजा अलनु को अनु ने पराजित किया, अनु को कुमार्बि ने।[66] हुर्री कथा में तेशुब् (रुद्र) ने कुमार्बि को हराया। सुमेरी कथा में एआ (जल देवता) ने अप्सू को बंदी बनाया। बैबिलोनी कथा में मर्दुक् ने तिआमत् (दानवी) का नाश किया और सीरियाई कथा में एलु् को हटाकर बाल् शासक बने। यूनानी कथाओं में क्रोनोस् ने उरानोस् का अंगभंग किया और ज़ेउस ने क्रोनोस को अपदस्थ किया। मूल कथा एक ही है, समय-समय पर अनेक देशों में वह बदलती गई और उसमें नई-नई बातें जोड़ी जाती गईं। **वेब्स्टर** ने कथा के अनेक रूपों का उल्लेख करते हुए कहा है—"शताब्दियाँ पार करते हुए कथा भिन्न-भिन्न स्थानों में पहुँची। इस क्रम में उसका विस्तार तो हुआ ही, घटनाओं का स्थानांतरण भी हुआ, जैसे कि (सुमेरी महाकाव्य) गिल्गमेश् कथा में हुआ"।[67]

वेब्स्टर के विवेचन की विशेषता यह है कि वह **होमर** के और **होमर** से पहले के यूनान को पूर्वी भूमध्यसागर की सभ्यता का अंग मानते हैं।[68] वास्तव में इस सभ्यता के पूर्वी छोर पर सुमेर है, पश्चिमी छोर पर यूनान है। वेब्स्टर के लिए अनेक कथाओं का उद्गम है सुमेरा। वहाँ की कथाएँ बैबिलोन में रूपांतरित होकर हुर्री-हित्ती क्षेत्रों में पहुँचती हैं, वहाँ से यूनान। कथाओं की यात्रा के अनेक मार्ग हैं, उनमें एक हित्ती राज्य भी है। मिस्र से बहुत कम कथा तत्वों का निर्यात होता है; थोक व्यापार पूरब से होता है। वेब्स्टर के इस 'पूरब' में भारत नहीं है, हड़प्पा सभ्यता और **ऋग्वेद** नहीं हैं। किंतु हड़प्पा तथा सुमेर-बैबिलोन की सभ्यताएँ समकालीन हैं, कथाओं के प्रसार में हड़प्पा की भूमिका भी होनी चाहिए भले ही उसके अभिलेख प्राप्त न हों और जो प्राप्त हों वे पढ़े न जा सके हों। यूनान तथा वैदिक भारत के देवतंत्रों में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बहुत सी समानताएँ हैं, यह तो सुविदित तथ्य है। इनका स्रोत कोई अज्ञात आदिम इंडोयूरोपियन भाषा का क्षेत्र होगा या सुमेर ? वैदिक भारत से मितन्नी-हित्ती राज्यों का सीधा संबंध है, यह संबंध सुमेर के माध्यम से नहीं क़ायम हुआ। अतः शताब्दियों को पार करती हुई दूर-दूर प्रदेशों में पहुँचने वाली कथाओं का स्रोत भारत भी हो सकता है, यह संभावना ध्यान में रखनी चाहिए।

सुमेर और भारत की कुछ कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करें तो यह धारणा पुष्ट होती है कि सुमेर से पश्चिम की ओर जाने वाली कथाओं का मूल स्रोत भारत है।

ट. अमरत्व की खोजः सुमेरी कथाएँ

सुमेर की अनेक कथाएँ ऐसी हैं जिनमें एक ही सामान्य विषय की चर्चा है—मनुष्य अमरत्व कैसे प्राप्त करे। यह चर्चा कभी मनुष्य को लेकर होती है, कभी देव या देवी को लेकर। अक्सर अमरत्व की खोज के लिए यात्रा करनी होती है, यात्री कभी लौट आता है; कभी दूर देश में बस जाता है। इन कथाओं में उस दूर देश का वर्णन होता है। वहाँ देवता अथवा देवोपम मनुष्य रहते हैं और प्रकृति उनके दिव्य जीवन के अनुरूप स्वच्छ और सुंदर होती है। अमरत्व इस जीवन में प्राप्त हो सकता है, इस जीवन के बाद भी। और नहीं भी प्राप्त हो सकता है।

ऋग्वेद में कवि सोम से प्रार्थना करता है : जहाँ अजस्र ज्योति है, जहाँ सूर्य प्रतिष्ठित है, उस अक्षय, अमृत लोक में, हे सोम, मुझे रखो। जहाँ के राजा वैवस्वत् (यम) हैं, जहाँ स्वर्ग का द्वार है, जहाँ शक्तिशाली जल प्रवाहित हैं, वहाँ मुझे अमर करो। जहाँ स्वेच्छित गति है. जहाँ लोक ज्योतिष्मंत हैं, वहाँ आकाश के तृतीय मंडल में मुझे अमर करो।(९.११३.७.-९)। कठोपनिषद् में नचिकेता ने यम से कहा, मरने के बाद आत्मा रहती है—ऐसा कुछ लोगों का मत है, नहीं रहती, ऐसा दूसरों का मत है; आपके उपदेश से इस विषय में मैं सत्य को जानना चाहता हूँ। (कठ., १.२०)। थोड़ी आनाकानी के बाद यम ने नचिकेता को आत्मा के अमर होने का उपदेश दिया और वह यमलोक से लौट आए।

सुमेरी काव्य **इनन्ना की पाताल यात्रा** में आकाश की देवी इन्ना पाताल की यात्रा करती हैं। वहाँ उनकी बहन एश्किंगल उनके वस्त्राभूषण छीनकर उनके प्राण ले लेती है। तीन दिन और तीन रात उनकी राह देखने के बाद पूर्व योजना के अनुसार इनन्ना का सेवक अन्य देवों से सहायता की प्रार्थना करता है। केवल एन्कि (वरुण देव) सहायता करने को तैयार होते हैं। वह दो जीवों के हाथ संजीवन अन्न और जल भेजते हैं। शव पर इन्हें छिड़का जाता है और इनन्ना नया जीवन पाकर लौट आती हैं। पर उनके साथ पाताल की डाकिनी-पिशाचिनी हो लेती हैं और इनन्ना सुमेर के एक नगर से दूसरे नगर तक भटकती रहती हैं।[69]

देवी भी यमलोक जाकर मर सकती है। कोई संजीवन रस या अन्न ऐसा है जिसके स्पर्श से मृत व्यक्ति फिर जी सकता है। किंतु यमपुर से लौटने के बाद जीवन सुखी नहीं होता, डाकिनी-पिशाचनी साथ लिए इनन्ना को नगर-नगर भटकते रहना पड़ता है। मृत्यु के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बाद आत्मा रहती है या मर जाती है, इस रहस्य को न जानने का प्रयत्न करना ही अच्छा है। नचिकेता को यम ने सावधान किया था: प्राचीनकाल में देवताओं को भी इस विषय में संदेह हुआ था; यह धर्म अत्यंत सूक्ष्म है, अतः यह प्रश्न छोड़कर और कोई वर माँगो (कठ., १. २१)। पर नचिकेता अड़े रहे और आत्मज्ञान पाकर ही लौटे।

गिल्गमेश् की मृत्यु नाम के आख्यान में नायक गिल्गमेश् अमर होना चाहते हैं। सब देवों के पिता **एन्लिल्** (वायु देव) से उन्हें सूचना मिलती है कि अमरत्व उनके भाग्य में नहीं है, उसके लिए प्रयत्न न करें। उन्हें राजत्व, यश और शौर्य प्रदान किए गए हैं, इनसे संतोष करें। गिल्गमेश् की मृत्यु हो जाती है और वह ऐसे सोए कि उठे ही नहीं। कथा के अन्य अंश में वह पाताल के देवों को बहुत से पदार्थ भेंट करते हैं। **क्रैमर** का अनुमान है कि कथाकार के मत से वह मरणोपरांत पाताल गए और वहाँ के राजा हो गए।[70] कथा के प्राप्त अंश में ऐसा कोई संकेत नहीं है। गिल्गमेश् की मृत्यु पर जो लोग शोक में विलाप करते हैं, उन्हें उनके पाताल के राजा होने पर विश्वास होगा, ऐसा नहीं लगता।

भाग्य की शैया पर वह लेटे हैं, वह उठते नहीं हैं
बहुरंगी पलंग पर लेटे हैं, वह उठते नहीं हैं।
जो खड़े हैं, वे चुप नहीं हैं, जो बैठे हैं, वे चुप नहीं हैं, वे विलाप कर रहे हैं।
जो अन्न ग्रहण करते हैं, वे चुप नहीं हैं, जो जल ग्रहण करते हैं, वे चुप नहीं हैं, वे विलाप कर रहे हैं।[71]

आशय यह कि मनुष्य को संसार में जो मिले, उससे संतोष करना चाहिए। अमरत्व की आकांक्षा व्यर्थ है।

किंतु सुमेरियों में एक अन्य विश्वास भी प्रचारित था। वह यह कि अमर मनुष्यों का देश इसी पृथ्वी पर है, वहाँ देवता रहते हैं, देवोपम पुरुष रहते हैं। अमरत्व के लिए पाताल की यात्रा आवश्यक नहीं है। **गिल्गमेश् और प्राणवंतों का देश** नामक आख्यान के बारे में क्रैमर ने लिखा है कि इसका प्रेरक विषय मृत्यु के बारे में मनुष्य की चिंता और इस चिंता का अमरत्व की धारणा में उदात्तीकरण है। गिल्गमेश् को मृत्यु के विचार से बड़ा कष्ट होता है। वह नगर के मनुष्यों को मरते, नदी के जल पर शवों को उतराते देखते हैं। वह भी मनुष्य हैं, एक दिन उन्हें भी मरना होगा, यह सोचकर वह तै करते हैं कि अंतकाल से पहले वह ऐसा कुछ कर जाएँगे जिससे उनका यश बना रहे। प्राणवंतों का देश बहुत दूर है। वहाँ के देवदारु प्रसिद्ध हैं। वहाँ की यात्रा की जाए, देवदारु काटकर अपने नगर ले आए जाएँ। इस तरह यश प्राप्त होगा। उनका एक आज्ञाकारी सेवक है एन्किदु। यात्रा की बात सुनकर वह गिल्गमेश् से कहता है, अपनी योजना की बात सूर्य देव उतु को बता दीजिए क्योंकि प्राणवंतों के देश का प्रबंध उनके हाथ में है।[72]

गिल्गमेश् ने उतु को भेंट चढ़ाई और यात्रा में सहायता देने के लिए प्रार्थ ग को। पहले तो उतु ने गिल्गमेश् की योग्यता के बारे में संदेह किया किंतु बहुत बार विनती पुनने पर वह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पसीजे। उन्होंने कहा कि मार्ग में मौसम के सात दैत्य हैं (सात्त रुद्र अथवा मरुत्)। वे बाधक हो सकते हैं। उन्हें मैं कह दूँगा कि बाधक न बनें। गिल्गमेश् ने घरबार की चिंता से मुक्त पचास वीरों की टोली बनाई और उतु के वचन से प्रसन्न होकर इस टोली के साथ यात्रा पर निकल पड़े। उन्होंने सात पर्वत पार किए। सातवाँ पार करने के बाद उन्हें मनचाहा देवदारु दिखाई दिया। इसे उन्होंने काटकर गिरा दिया, उसकी शाखाएँ छाँटकर उनके साथियों ने उनका ढेर लगा दिया। इस पर उस देवदारु का रक्षक हुवावा नाम का दानव बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने गिल्गमेश् को प्रगाढ़ निद्रा से अभिभूत कर दिया। जागने पर गिल्गमेश् ने दानव के बध की प्रतिज्ञा की, उसके घर की राह रोकने वाले सात वृक्षों को काट डाला और उनके साथियों मे इनके भी गट्ठे बना लिए। गिल्गमेश् ने हुवावा को रस्से से बाँध लिया; इस पर उसने उतु से प्रार्थना की और गिल्गमेश् से भी चिरौरी की कि मुझे मुक्त कर दो। गिल्गमेश् ने तो उसकी बात मान ली पर एनूकिदु ने उसका सिर काट लिया। कटा सिर लेकर दोनों देवराज एनूलिल् के पास आए। हुवावा का सिर देखकर एनूलिल् बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप दिया, तुम धूप से झुलसे पहाड़ों और मैदानों में सदा भटकते रहो।

उतु और एनूलिल् दोनों ही प्राणवंतों के देश को पवित्र मानते हैं। वहाँ के देवदारु वृक्षों का नष्ट होना उन्हें अच्छा नहीं लगता। हुवावा इन वृक्षों का रखवाला है। उसे मारना पाप है।

एनूलिल् ने हुवावा का सिर देखा,
गिल्गमेश् के शब्द सुनकर वह कुपित हुए :
"क्यों तुमने ऐसा किया।
तुमने उस पर हाथ उठाया,
उसका नाम मिटाया,
इसलिए तुम्हारे मुँह झुलस जाएँ,
जो अन्न खाओ उसे अग्नि खा जाए
जो जल पियो उसे अग्नि पी जाए"।[73]

पाताल यात्रा के बाद इनन्ना के भटकते रहने से गिल्गमेश् का अभिशाप तुलनीय है।

जल प्रलय कथा में गिल्गनेश् को तो नहीं, ज़िउसुद्र को अमरत्व लाभ होता है। मनुष्यों के व्यवहार से देवता कुपित हुए। उन्होंने कहा, जल प्रलय से सबका नाश कर दो। केवल जिउसुद्र को एक देवता से प्रलय की पूर्व-सूचना मिल गई। उन्होंने नाव बनाई और बच निकले। सात दिन सात रात प्रलय की लीला होती रही। अंत में सूर्यदेव उतु ने दर्शन दिए। चारों ओर प्रकाश फैल गया। ज़िउसुद्र ने दंडवत् की, भेंट चढ़ाई। फिर वह अनु (आकाश) और एनूलिल् के समक्ष आए, उन्हें दंडवत् की। अब उन्हें अमरत्व लाभ हुआ। वह वनस्पतियों और मानव-जाति के रक्षक बने और उन्हें दिल्मुन् नाम के देश में रहने का आदेश हुआ। दिल्मुन् वह देश है जहाँ से सूर्य उदय होता है। एक अन्य कविता **एनूकि और निनूहुर्साग** में कुछ विस्तार से दिलमुन् का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश में रोग,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शोक, मृत्यु जैसा कुछ नहीं है। स्वच्छ, पवित्र, प्रकाश से भरा यह देश है। एन्कि ने यहाँ सर्वत्र सुस्वादुजल की व्यवस्था कर दी है। खेतों में अनाज की पैदावार खूब होती है। यह देवों का देश है या देवों जैसे मनुष्यों का देश है।

ये सभी आख्यान खंडित मृद्पट्टिकाओं से उतारे गए हैं। पट्टिकाओं पर कथाएँ दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० पूर्वार्ध में लिखी गई थीं। उनका चलन इससे पहले तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में रहा होगा। सुमेरी कथाओं में दो तरह के नायक हैं : (1) गिल्गमेश् अमरतत्व चाहते हैं पर वह उन्हें मिलता नहीं है : (2) ज़िउसुद्र अमरत्व के लिए विशेष लालायित नहीं जान पड़ते पर वह उन्हें मिलता है। **जलप्रलय** कथा के परिचय में क्रैमर ने लिखा है : "उन्हें धर्मात्मा, देवों से डरने वाले राजा के रूप में चित्रित किया गया है; देवता स्वप्न या मंत्रों में उनसे कुछ कहेंगे, इसके लिए वह सदा सतर्क रहते हैं।"[74] स्वभावतः प्रलय में और सब नष्ट हो जाते हैं, ज़िउसुद्र और उनके बंधु-बांधव ही बचते हैं। इनसे भिन्न स्वभाव है गिल्गमेश् का। अमरत्व न मिले, न सही; कुछ ऐसा काम करें जिससे लोग याद करते रहें। वह देवदारू काटते हैं, उनका सेवक देवदारु वन के रक्षक का सिर काटता है। इससे देवता क्रुद्ध होते हैं और वरदान के बदले उन्हें शाप देते हैं। नचिकेता से यम ने कहा, जितना चाहो धन ले सकते हो, राज्य करने के लिए विशाल भूमि दे सकता हूँ, भोगने के लिए सुंदर स्त्रियाँ मिल सकती हैं; आत्मा के बारे में प्रश्न न करो। लेकिन नचिकेता ने कहा, ये सब चीज़ें कल तक टिकी रहेंगी, इसमें संदेह है; वे इंद्रियों के तेज को नष्ट कर देती हैं। इसलिए मेरे प्रश्न का ही उत्तर दें। (कठ. १.२४.२६)। संसार के माया-मोह में फँसे रहने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता और ज्ञान से ही अमरत्व लाभ होता है। नचिकेता-कथा की आधारभूत मान्यता यही है। गिल्गमेश् अन्य देश में जाकर वहाँ के पवित्र वृक्षों को काटकर नाम कमाना चाहते हैं। अन्य कथा **गिल्गमेश् और अग्गा** में किश् के राजा अग्गा का संदेश लेकर उनके दूत गिल्गमेश् के पास आते हैं। संदेश क्या है, कथा में नहीं बताया गया; क्रैमर का अनुमान है कि गिल्गमेश् से कहा गया होगा, हमारे अधीन हो जाओ, वर्ना युद्ध करो। प्रवर सभा ने गिल्गमेश् को युद्ध करने से रोकना चाहा पर वह न माने। सैनिक परिषद् ने युद्ध का समर्थन किया, युद्ध में गिल्गमेश् जीते नहीं और अग्गा ने उनके साथ सद्व्यवहार किया। गिल्गमेश् ने उनकी प्रशंसा की। अग्गा ने उनका राज्य हड़प लिया हो, कथा में यह नहीं दिखाया गया।

ञ. अमरत्व की खोजः बैबिलोनी कथा

सुमेरी कथाओं के जो अंश मिलते हैं, उनमें गिल्गमेश् और ज़िउसुद्र एक साथ नहीं हैं, पर उनमें किसी एक के चरित्र की विशेषताएँ दूसरे के साथ रहने से ही उजागर होती हैं। कथा के अक्कदी रूप में दोनों पात्र एक साथ मिल जाते हैं। गिल्गमेश् बड़े उत्पाती युवा हैं। उनके मारे कन्या अपनी माँ के पास नहीं रहने पाती, पुत्र पिता के पास नहीं रह पाता। उनके उत्पातों के शमन के लिए लोग देवताओं से प्रार्थना करते हैं और तब एन्किदु का जन्म होता है। दोनों में थोड़े से शारीरिक बल-प्रदर्शन के बाद मैत्री हो जाती है। दोनों देवदारुवन में हुवावा को मारने चलते हैं। कथा में स्पष्ट कहा गया है कि एन्लिल् देव ने देवदारुवन की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रक्षा के लिए हुवावा को नियुक्त किया है।[75] जब गिल्गमेश ने एक वृक्ष काटा तब हुवावा ने कहा,

कौन आया है,
मेरे पर्वतों पर जो वृक्ष उगे हैं, उनका अपमान किसने किया है ?
और देवदारु को काट गिराया है ?[76]

इश्तर देवी गिल्गमेश् को अपना प्रेमी बनाना चाहती है। इस योजना में सफल न होने पर वह पिता अनु से कहती हैं, एक दिव्य वृषभ रचिए जो गिल्गमेश् को मार डाले। अनु ने वैसा ही किया। उस वृषभ ने बहुत से मनुष्यों को मारा पर इन दोनों ने उस वृषभ को मार डाला। इस पर इश्तर ने इन्हें शाप दिया। एन्किदु ने स्वप्न देखा कि देवों ने सभा की और निश्चय किया कि वृषभ तथा हुवावा के वध के कारण, देवदारु गिराकर पर्वत को वृक्षहीन बना देने के कारण, इनमें एक को मरना होगा।

एन्किदु की मृत्यु हो जाती है। गिल्गमेश् उसके लिए विलाप करते हुए जंगलों, पहाड़ों में घूमते रहते हैं। अंत में उनकी भेंट उत्नपिश्तिम् से होती है। सुमेरी कथा में ये ज़िउसुद्र हैं। वह गिल्गमेश् से जल-प्रलय की कथा कहते हैं।

धन संपत्ति छोड़ो, जीवन की खोज करो।
संसार की संपदा से मुँह मोड़ो और अपनी आत्मा को जीवित रखो।[77]

देवताओं ने यह संदेश दिया और प्रलय से बचने के लिए नाव बनाकर उसमें समस्त जीवनों के बीज एकत्र करने को कहा। पशुओं और बंधु-बांधवों को उत्नपिश्तिम् ने नाव में एकत्र किया। भीषण प्रलय हुई।

और समस्त मानव जाति फिर मिट्टी बन गई।[78]

उत्नपिश्तिम् की नाव एक पहाड़ से जा लगी। उत्नपिश्तिम् और उनकी पत्नी को एन्लिल् ने आशीर्वाद दिया और कहा :

अभी तक उत्नपिश्तिम् मानव थे।
अब से उत्नपिश्तिम् और उनकी पत्नी हम जैसे देवता हो जाएँगे।
उत्नपिश्तिम् दूर जाकर नदियों के उद्गम स्थान पर रहेंगे"।[79]

और वे उन्हें दूर ले जाकर नदियों के उद्गम स्थल पर छोड़ आए।

गिल्गमेश् और उनके मित्र को नाव में बिठाकर उत्नपिश्तिम् दूर ले जाते हैं और उन्हें ऐसे पौधे के बारे में बताते हैं जो जल के भीतर है और जिससे नया जीवन प्राप्त हो जाता है। गिल्गमेश् गोता लगाकर पौधा ले आते हैं, स्वदेश लौटते समय एक कुँए में नहाने को उतरते हैं। इतने में पौधे की गंध से आकर्षित होकर एक नाग जल से बाहर आता है और पौधा उठा ले जाता है। गिल्गमेश् रोते बिलखते अपने देश लौट आते हैं।

ऋग्वेद में सोम वनस्पतियों का स्वामी है (६.११४.२), सारी औषधियाँ उसने उत्पन्न

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की हैं (१.६१.२२), और वह जल में उत्पन्न हुआ है (६.६७.४६). उसे सिन्धुमातरं कहा गया है (६.६१.७) अमर होने के लिए देव उसका रस पीते हैं (६.१०६.८), कवि कहते हैं **अपां सोमम्**—हमने सोम पी लिया है, **अमृता अभूम**, हम अमर हो गए हैं। (८.४८.३)। अन्य देवों की तरह सर्प वृत्र से सोम का भी वैर है। इसलिए सोम को वृत्र ही कहा गया है। (१.६१.५)। यह वृत्र उस सर्प का पूर्वरूप है जो सुमेरी कथा में संजीवन पौधे को उठा ले गया। इस पौधे का पूर्वरूप है सोम। ज़िउसुद्र और उत्नपिश्तिम् के पूर्वरूप हैं मनु जो प्रलय से बच गए थे। गिल्गमेश् के पूर्वरूप हैं नचिकेता जो मृत्यु के देवता से, आत्मज्ञान (अमरता का रहस्य) प्राप्त करने गए थे। गिल्गमेश् के मित्र एन्किदु स्वप्न में यमलोक की यात्रा करते हैं।

एक छाया आकृति
मेरी ओर देखते हुए मुझे अंधकारमय आवास में ले गई,
इर्कल्ला का आवास,
वह आवास जिसमें प्रवेश करने पर कोई फिर बाहर नहीं आता,
उस मार्ग पर जहाँ से लौटने की राह नहीं है,
वह आवास जिसके निवासी प्रकाश से वंचित रहते हैं।[80]

इसका पूर्वरूप वह अंधकारमय लोक है जहाँ इंद्र का शत्रु वृत्र पड़ा रहता है- **दीर्घंतम आशयदिन्द्र शत्रुः**। (१.३२.१०)। इसी का विस्तारित रूप **ईशोपनिषद्** के वे प्रकाशहीन लोक हैं जो सघन अंधकार से ढँके हैं; आत्मा का नाश करने वाले जन मृत्यु के उपरांत यहीं पहुँचते हैं।'' (ईश० ३)। उत्नपिश्तिम् को देवता जिस स्वर्गोपम लोक में ले जाते हैं, उसका पूर्वरूप अजस्र ज्योति वाला **ऋग्वेद** का अक्षय अमृत लोक है। (६.११३.७)।

एन्कि और निन्हुर्साग कथा में दिलमुन् देश स्वच्छ, पवित्र और प्रकाशमय है। वहाँ एन्कि ने अपनी पत्नी के साथ रहकर संतानोत्पत्ति की और मधुर जल की व्यवस्था की। इस व्यवस्था की एक विशेषता जल संग्रह में सूर्य की भूमिका है।

पिता एन्कि ने अपनी पुत्री निन्स्किल्ला को उत्तर दिया :
स्वर्ग में खड़े होकर उतु...
'जिस स्रोत से धरती का जल निकलते हैं,' तुम्हारे लिए धरती से मधुर जल ले आएँ...
विशद जलराशि से वह तुम्हारे नगर को जल पीने दें।[81]

मधुर जल के लिए आग्रह **ऋग्वेद** की याद दिलाता है : मधुमय जलराशि से पूरित **आपः** देवियाँ निरंतर प्रवाहित हैं। (४.३.१२)। **मित्र** और **वरुण** के प्रभाव से नदियाँ मधुमय हैं। (५.६६.२)। जल और सूर्य का संबंध इस प्रकार है। **सविता** देव आकाश में पहुँचकर विस्तृत बाहें फैलाते हैं, पवित्र जल उन्हीं के नियम से प्रवाहित होते हैं। (२.३८.२)। जल के सुमेरी देवता एन्कि हैं, इनके बैबिलोनी प्रतिरूप एआ हैं। गिल्गमेश् काव्य में इनके लिए कहा गया है :

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

केवल एआ ऐसे हैं जो सब कुछ जानते हैं।[८२] इनके पूर्वरूप हैं वरुण। जो किया गया है, जो किया जाएगा, उस सबको वरुण देखते हैं। (१.२५.११)। **अमरत्व की खोज से लेकर देवों की विशेषताओं और स्वर्गोपम देश के वर्णन तक सारी बातें भारत की ओर संकेत करती हैं।**

इन कथाओं के अनेक तत्व बाइबिल में समाहित हैं। **एनूकि और निनूहुर्साग्** काव्य पर अपनी टिप्पणी में **क्रैमर** ने लिखा है कि यहाँ शायद **बाइबिल** की उद्यान कथा से कुछ मिलते-जुलते मुद्दे भी हैं।[83] सुमेरियों पर अपनी पुस्तक में उन्होंने इसी विषय पर कुछ विस्तार से और अधिक आत्मविश्वास से लिखा है: "यद्यपि हमारी देवकथा का उद्यान मानवीय न होकर दैवी है, फिर भी **बाइबिल** की उद्यान कथा से मिलती-जुलती उसमें बहुत सी बातें हैं। वास्तव में यह मानने का कारण है कि स्वर्गोपम उद्यान, देवों के उद्यान, की धारणा का जन्म ही सुमेरियों में हुआ था। हमारी कविता के अनुसार यह उद्यान दिल्मुन् नाम के देश में है और यह देश कहीं सुमेर के पूर्व में है। बैबिलोन के जिन सामीजनों ने सुमेरियों को जीता, वे आगे चल कर अपने 'प्राणवंतों के देश' की स्थिति इसी दिल्मुन् में मानते थे। वहाँ उनके अमर प्राणी निवास करते हैं। **बाइबिल** के उद्यान के लिए कहा गया है कि वह अदन में **पूरब की ओर** लगाया हुआ बाग है, वहाँ से दजला और फ़रात सहित चार विश्व नदियाँ प्रवाहित होती हैं। इसके यथेष्ट संकेत हैं कि यह बाग मूलतः सुमेरियों का नंदनवन, दिल्मुन् ही रहा हो।"[84]

क्रैमर ने और कई समानताओं की ओर ध्यान दिलाया है। इनमें बहुत महत्वपूर्ण है सूर्य द्वारा धरती से जल का खींचा जाना।[85] सुमेरी कथा में उतु धरती से मधुर जल खींच लाते हैं, वैसे ही **बाइबिल** में : "कुहरा पृथ्वी से उठता था जिससे सारी भूमि सिंच जाती थी" (उत्पत्ति, २.६)। **ऋग्वेद** के कवि सूर्य द्वारा जल-संग्रह और उसके फलस्वरूप वर्षा की प्रक्रिया से अच्छी तरह परिचित थे। सुमेरी, सामी, आर्य—तीन अलग भाषा परिवार; विद्वान इनका संबंध तीन अलग नस्लों से जोड़ते हैं पर दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में, उससे पहले और बाद में भी, हम इनकी संस्कृतियों को परस्पर संपर्क में आते और प्रभावित होते देखते हैं। क्रैमर के सामने **ऋग्वेद** नहीं है। हो भी तो वे उसे हड़प्पा सभ्यता के बाद की रचना मानेंगे और हड़प्पा सभ्यता को वह सुमेरियों से प्रेरित मानते हैं। फिर भी वह स्पष्ट देखते हैं कि सुमेरियों का स्वर्गोपम देश सुमेर से दूर कहीं पूरब में है। पहले वह उसे दक्खिनी ईरान में खोजते हैं, फिर क्रमशः और आगे बढ़ते हुए भारत में आ पहुँचते हैं। सुमेरियों का स्वर्गोपम देश, दिल्मुन् भारत है।

ङ. दिल्मुन् और भारत

क्रैमर का लेख 'प्राणवंतों का देश दिल्मुन्' में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने इस पूर्व प्रचलित धारणा का खंडन किया कि दिल्मुन् ईरान की खाड़ी में स्थित बहरीन द्वीप है। उन्होंने अपना मत प्रकट किया कि संभवतः उसे दक्खिन-पश्चिमी ईरान में खोजना उचित होगा। 1946 में क्रैमर का खंडन करते हुए **कार्नवाल** ने कहा कि सुमेर की साहित्यिक कृतियों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में दिलमुन् एक कल्पनालोक है जहाँ से हम मृत आत्माओं के संसार में पहुँच जाते हैं। इससे भिन्न व्यापारिक, ऐतिहासिक आदि दस्तावेज़ों का दिलमुन् एक निश्चित भौगोलिक इकाई है। अतः यह तो बहुत संभव है कि दोनों दिलमुन् एक ही माने जाते रहे हों पर उन्हें मिलाकर एक कर देना ठीक नहीं है। कार्नवाल ने क्रैमर पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने निश्चित ऐतिहासिक दस्तावेजों पर ध्यान नहीं दिया और कवियों की कल्पना पर विश्वास कर लिया।[86]

सुमेरियों पर क्रैमर की पुस्तक 1963 में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने उन विद्वानों के मत पर संदेह प्रकट किया जो कहते थे कि बहरीन द्वीप ही दिलमुन् है। उन्होंने लिखा—"वास्तव में इस बात की भी कुछ संभावना है कि दिलमुन् में भारत और पाकिस्तान का वह भाग शामिल हो जहाँ तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० के अंतिम चरण में एक उल्लेखनीय साक्षर नगर संस्कृति, तथाकथित हड़प्पाई अथवा सिंधु घाटी की संस्कृति फल-फूल रही थी।"[87] उन्होंने ध्यान दिलाया कि सुमेरी कथा के अंत में अन् और एन्लिल् ज़िउसुद्र को उस देश में ले जाते हैं जहाँ से सूर्य उदय होता है। यह वर्णन बहरीन के अनुकूल नहीं है, अधिक संभव है कि "संकेत सिंधु नदी के प्रदेश अथवा बलूचिस्तान की ओर हो।" उन्होंने एक अभिलेख का हवाला दिया जिसमें आठ देशों के नाम एक क्रम से आते हैं। इनमें एक देवदारु प्रदेश है। यह पश्चिम का लबनान नहीं हो सकता, उसे (ईरानी क्षेत्र) एलम के पूर्व में होना चाहिए। क्रैमर कहते हैं कि सुमेरी साहित्य में सूर्यदेव उतु को 'सुगंधित वनस्पति और देवदारु की भूमि से उगते' बताया गया है।[88] असंभव नहीं कि यह भूमि वही हो जिसे अभिलेख में 'देवदारु प्रदेश' कहा गया है। दिलमुन् से सूरज निकलता है, 'देवदारु प्रदेश' से सूरज निकलता है। दोनों को एक होना चाहिए। क्रैमर ने **दुमुज़ि विलाप** की एक अस्पष्ट पंक्ति का हवाला भी दिया जिसमें देवदारु को दिलमुन् का अपना देशज वृक्ष कहा गया है।[89] गिल्गमेश् और एन्किदु जिस देश की यात्रा करते हैं, उसमें भी देवदारु हैं और सूर्यदेव उतु ही उसके प्रबंधक हैं। 'प्राणवंतों का देश' दिलमुन् ही होगा क्यों **एन्कि और निन्हुर्साग्** कथा में दिलमुन् रोग शोक से मुक्त देश है, अर्थात् वह अमरों का देश है।[90]

क्रैमर ने दिलमुन् से सुमेरियों की धार्मिक आस्थाओं के विशेष संबंध पर ज़ोर देते हुए कहा है कि दिलमुन् जहाँ भी हो, सुमेरी उसे भव्य स्वर्गोपम देश मानते थे, धार्मिक और आध्यात्मिक स्तर पर वह सुमेर से घनिष्ठ रूप में संबद्ध है। **एन्कि और निन्हुर्साग्** कथा के अनुसार वह एन्कि देव की अपनी विशेष भूमि प्रतीत होता है। वहाँ उन्होंने अनेक देवता उत्पन्न किए। महान देवी निन्हुर्साग् का मन भी वहाँ खूब लगता है। "लगता है, यह स्थान ऐसा था जहाँ सभी देवता एकत्र होते थे"।[91] वह मात्र कल्पना लोक है, इस धारणा का खंडन करते हुए क्रैमर ने दिलमुन् से सुमेर के व्यापार का ज़िक्र किया है। चौबीसवीं सदी ई०पू० के दस्तावेजों में 'दिलमुन् के प्याज़' का उल्लेख है। सुमेरियों के बाद दूसरी और पहली सहस्राब्दियों ई०पू० में दिलमुन् का नाम अक्कदी दस्तावेजों में बराबर आता है। दिलमुन् में काँसे और ताँबे की चीज़ों के लूटे जाने और वहाँ से सैनिकों के भेजे जाने के उल्लेख भी हैं।[92] कार्नवाल ने ऐतिहासिक-व्यापारिक दिलमुन् को देवों के देश दिलमुन् से अलग माना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

था। दोनों का सामंजस्य बिठाने में कठिनाई क्रैमर को भी होती है। कहते हैं—"आर्थिक और ऐतिहासिक दस्तावेजों के 'एकदम यथार्थपरक' दिलमुन् को देखते हुए सुमेरी साहित्य की उस प्रमाण सामग्री की व्याख्या कैसे की जाए जिसमें दिलमुन् सुमेरी स्वर्ग बना हुआ है, यह बहुत कुछ तब तक रहस्य बना रहेगा जब तक बोधगम्य लिखित दस्तावेज स्वयं दिलमुन् में न मिलें, फिर चाहे वह बहरीन निकले, चाहे दक्खिनी ईरान और सिंधु घाटी का क्षेत्र निकले।"[93] बोधगम्य लिखित दस्तावेज के रूप में ऋग्वेद का उपयोग करें तो यथार्थपरक देश और कल्पना सुखद देवभूमि का आंतरिक संबंध पहचानने में कठिनाई न होगी।

1964 में क्रैमर का लेख 'सिंधु सभ्यता और दिलमुनः सुमेरी नंदन वन (Paradise Land)' प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने सिंधु सभ्यता की उन मुद्राओं का उल्लेख किया जो सुमेर में प्राप्त हुई थीं—"जिस देश में वे बनाई गई थीं, वहाँ से किसी न किसी प्रकार वे सुमेर लाई गई थीं"।[94] दोनों देशों में व्यापारिक संपर्क अवश्य था और सुमेरी लोग सिंधु देश का नाम तथा उसकी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ अवश्य जानते रहे होंगे। जल-प्रलय कथा में देवता ज़िउसुद्र को उस देश ले जाते हैं जहाँ सूर्योदय होता है। "एक अन्य सुमेरी अभिलेख में दिलमुन् को सुखी, समृद्ध देश कहा गया है, जहाँ 'बड़े-बड़े भवन' हैं। समस्त सभ्य संसार के जितने देशों से सुमेरी परिचित थे, वे सब अपना माल सामान लेकर वहाँ पहुँचते थे"।[95] सुमेर का सबसे महत्त्वपूर्ण नगर था उर। वहाँ प्राप्त दस्तावेज़ों में दिलमुन् से हाथी दाँत और हाथी दाँत से बना सामान मँगाने का उल्लेख है। "सुमेर के पूर्व में जो एकमात्र धनी और महत्वपूर्ण देश हाथी दाँत की प्राप्ति का स्रोत हो सकता था, वह प्राचीन सिंधु सभ्यता का देश था। इसलिए यह अनुमान असंगत न होगा कि वही दिलमुन् है"।[96] क्रैमर ने भारत, पाकिस्तान की यात्रा की, बहुत सी पुरातात्विक सामग्री देखी, पुरातत्वज्ञों से विचार विनिमय किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "दिलमुन् की पहचान के लिए सिंधु सभ्यता के दो पक्ष खासतौर से महत्वपूर्ण हैं: जल-देवता की उपासना और सागर-यात्री पोत"।[97] सिंधु सभ्यता की विशेषता उसके जलाशय, कुँए और स्नानागार थे। स्पष्ट ही स्वच्छता का बड़ा ध्यान रखा जाता था। एनूकि समुद्र और नदियों के प्रबंधक थे और दिलमुन् से उनका विशेष संबंध था। उन्हीं की कृपा से मीठे जल की इफ़रात थी, देश धन-धान्य से पूर्ण था। यह दिलमुन् का दिव्य पक्ष हुआ।

दिलमुन् का संसारी पक्ष यह है कि सुमेर के एक शासक ने 2400 ई०पू० के आसपास दिलमुन् से लकड़ी ढोने वाली नावों के लगाश् नगर पहुँचने की बात कही है।[98] इसके लगभग डेढ़ सौ साल बाद राजा सर्गान् ने गर्वोक्ति की कि उनकी राजधानी अगदे की गोदियों में दिलमुन् की नौकाएँ लंगर डाले पड़ी रहती थीं। **एनूकि और विश्वव्यवस्था** कविता में एनूकि दिलमुन् की नावों के लंगर डाले रहने पर गर्वोक्ति करते हैं। हाथी दाँत के अलावा दिलमुन् से नावें लकड़ी, सोना, ताँबा और लाजवर्द भी लाती थीं।[99] यह दिलमुन् का यथार्थपरक संसारी पक्ष हुआ। कोई आश्चर्य नहीं कि 'नंदन वन' की कथा में, जो पहले उद्धृत की गई है, दिलमुन् को "(आवासित) भूमि का गोदी घर (dockyard-house)" कहा गया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है।[100] इस तरह दोनों पक्षों में सामंजस्य स्थापित हुआ। जिस कथा में दिलुमुन् स्वर्गोपम उद्यान है, उसी में वह सभ्य संसार का विनिमय केंद्र, गोदी घर भी है। मज़े की बात है कि खंभात की खाड़ी से थोड़ी दूर पर लोथल में ऐसे गोदी घर का पता भी चला है। पाँच साल तक भारतीय पुरातत्वज्ञ जहाँ खुदाई करते रहे थे, वहाँ क्रैमर ने पक्की ईंटों से बने उस सुनियोजित आयताकार गोदी को देखा था।[101] सुमेरी कथाओं में दिलुमुन् को सभ्य संसार का गोदी घर क्यों कहा गया था, स्पष्ट हो गया।

1969 में बिबी ने **दिलुमुन् की खोज** पुस्तक में लिखा कि भारत दिलुमुन् नहीं है, पर बहरीन ही दिलुमुन् है, यह अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसीलिए उन्होंने अपनी पुस्तक का नाम **दिलुमुन् की खोज** रखा था। लेकिन उन्होंने जो तथ्य दिए हैं, उनसे सुमेरियों का घनिष्ठ संबंध भारत से सिद्ध होता है, बहरीन से नहीं। जल-प्रलय की सुमेरी कथा की जानकारी से दिलुमुन् का महत्व बढ़ गया। "वह समस्त मानवजाति के अमर पूर्वजों का अनंतकालीन निवास था। अमरता की खोज करते हुए गिल्गमेश् दिलुमुन् ही आए होंगे। किंतु जिस व्यक्ति को देवों ने प्रलय से बचाया था, उसके निवास के लिए उन्होंने दिलुमुन् को ही क्यों चुना था ? ऐसा कोई संकेत् नहीं था कि नाव दिलुमुन् में जाकर रुकी थी। इसके विपरीत कहा यह गया था कि मेसोपोटामिया की सारी लंबाई पार करके वह पहाड़ों में जाकर ठहरी थी"।[102] बहुत महत्वपूर्ण सूत्र यह है कि जल-प्रलय जहाँ हुई, वहाँ से पर्वत बहुत दूर न होने चाहिए। ज़िउसुद्र के लिए देवों ने दिलुमुन् को ही क्यों चुना, इस प्रश्न का उत्तर बिबी ने आगे स्वयं दे दिया है।

एनूकि और निनूहुर्साग कथा के लिए बिबी कहते हैं, "उसका सबसे रोचक पक्ष यह है कि उसमें वर्णित घटनाएँ दिलुमुन् में घटित होती हैं। इस बात पर ध्यान दें कि सुमेरी देवों का स्वभाव अपने ही स्थानों से चिपके रहने का है, तो यह बड़े मार्के की घटना होगी कि जिस देश को सुमेर और बैबीलोन के लोग समस्त लिखित इतिहास के दौरान विदेश ही मानते रहे, उसकी भूमिका उनकी देवकथाओं में इतनी महत्त्वपूर्ण रही हो। संभव है, सत्य यह हो कि धरती के नीचे जो मधुर जल है, उसके स्वामी एनूकि मूलतः दिलुमुन् के देवता रहे हों और हमने जो कथा कही है, वह मूलतः वहीं से मेसोपोटामिया आई हो"।[103]

सुमेरियों के लिए दिलुमुन् विदेश था, फिर भी उनकी देवकथाओं में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। दिलुमुन् को देवलोक मानकर जनस्मृति उससे अपने अति प्राचीन संबंध को सुरक्षित किए थी। बिबी ने उचित संभावना की ओर संकेत किया है कि एनूकि मूलतः दिलुमुन् के देवता थे, वहाँ से अनेक देवकथाओं के साथ वह सुमेर पधारे थे। देव और उनकी कथाएँ मनुष्यों के बिना यात्रा नहीं करतीं। वास्तविक संभावना यह होगी कि सुमेरियों के पूर्वज दिलुमुन् से आकर सुमेर में बसे थे। केवल सुमेरी नहीं, उनके उत्तराधिकारी बैबिलोनी जन भी मानते थे कि उनके देवता दिलुमुन् में काफ़ी समय बिताकर वहाँ आए हैं। देवताओं की जगह पूर्वज कहने से ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। यह दिलुमुन् हरा भरा देश है, ठोस भौगोलिक यथार्थ है, बहरीन की बंजर धरती से ठीक उल्टा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बिबी ने आगे लिखा है: "निश्चित रूप में अब यह स्पष्ट है कि दक्खिनी मेसोपोटामियां के सुमेरी और बैबीलोनी निवासी यह विश्वास करते थे कि सृष्टि के आरंभ से देवताओं ने अपना बहुत सा समय दिलमुन् में बिताया था, उस देश को मधुर जल और वनस्पतियों, स्वास्थ्य और अजर यौवन का वर दिया था। और जब एन्‌कि ने ज़िउसुद्र को जल-प्रलय से बचा लिया और एन्‌लिल् ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया, अतः तब यह स्वाभाविक था कि वह उस आनंदमय देश में निवास करें जहाँ मृत्यु अनजानी चीज़ थी। और वहाँ, ऐसा प्रतीत होता है, इतिहास की प्रभातवेला में, गिल्गमेश् ज़िउसुद्र से मिले, अमरता की खोज करते हुए उस देश में आए जहाँ वह रहस्य पहले से सुविदित था। यहाँ अवश्य हम अटकल से काम ले रहे हैं; गिल्गमेश संबंधी बैबिलोनी काव्य में दिलमुन् का उल्लेख कहीं भी नाम लेकर नहीं है"।[104] न हो नाम लेकर उल्लेख, दो बातें बहुत स्पष्ट हैं: (1) यह देश मधुर जल और वनस्पतियों से समृद्ध है; (2) वहाँ के लोग अमरत्व अर्थात आत्मज्ञान के लिए विख्यात हैं। ऐसा एक ही देश था—भारत।

ढ. दिलमुन् के दो छोर : लोथल और हिमालय

भारत और सुमेर के व्यापारिक जलमार्ग पर एक अड्डा बहरीन का टापू था। वहाँ की भूमि न तो उपजाऊ है, न वहाँ देवदारु हैं। फिर भी बहरीन को देव लोक बताते हुए बिबी ने लिखा है, "सुमेरियों की निगाह में दिलमुन् एक पवित्र देश है, यह अटकल की बात नहीं है। शब्दशः इस बात की आवृत्ति एन्‌कि और निनहुर्साग् की कथा में है। और इसलिए यह बहुत उचित है कि सुमेर की समकालीन जो पहली बड़ी इमारत बहरीन में मिली है, वह मंदिर है"।[105] बिबी मानते हैं कि बहरीन के प्राकृतिक साधन अत्यंत क्षीण थे।[106] वहाँ जो भी संपदा एकत्र हुई, वह बाहर से लाई गई थी।[107] कार्नवाल भी मानते हैं, बहरीन में खेती लायक ज़मीन बहुत कम है और उसे अधिकांश खाद्य सामग्री बाहर से मँगानी पड़ती होगी।[108] बड़े आश्चर्य की बात है कि अनु और एन्‌लिल् ने "मानव जाति केबीज और वनस्पतियों के नामों के रक्षक, ज़िउसुद्र, राजा को"[109] ऐसे द्वीप में रखा जहाँ की भूमि बंजर थी, जो न वनस्पतियों को जिलाए रख सकती थी, न मनुष्यों को !

एन्‌कि ने आठ देवताओं को जन्म दिया। इनमें आठवें एन्शाश् दिलमुन् के देवता हुए। इनके बैबिलोनी प्रतिरूप हैं इंज़ाक। बहरीन में एक पत्थर मिला जिस पर यह नाम अंकित था।[110] बिबी ने इस तथ्य से साबित करना चाहा है कि सुमेरी लोग बहरीन में रहते थे और उनका देवदेश यही है। पर इस एक पत्थर के मुक़ाबले बहुत-सी हड़प्पाई मुद्राएँ सुमेर के नगरों में मिली हैं। क्या इससे यह मानें कि हड़प्पाई जन सुमेर के निवासी थे ? हड़प्पाई मुद्राएँ व्यापार के सिलसिले में वहाँ पहुँची हैं, वैसे ही इंज़ाक के नाम वाला पत्थर वहाँ व्यापार के सिलसिले में पहुँचा होगा। देवदेश की बातें छोड़कर बिबी जब व्यापारिक वस्तुओं की चर्चा करते हैं तब उनकी दृष्टि अधिक यथार्थपरक होती है। लकड़ी, हाथीदाँत, लाजवर्द, कार्नेलिअम और "शायद" कपास (या सूती कपड़े) सिंधु घाटी से बहरीन होते हुए सुमेर पहुँचते थे। तत्व की बात यह है कि बहरीन में नापजोख के बाँट सुमेरी बाँटों से अलग थे।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह बाँटों वाला सूत्र बिबी को सिंधु घाटी ले आता है। कहते हैं, "हमने सिंधु तटवासियों के चमकते पत्थर के बाँट देखे। हमने याद किया, कि उर (सुमेर के भव्य नगर) से दिलुमुन् की नापजोख-पद्धति अलग थी—क्या वह सिंधु घाटी की सभ्यता की पद्धति थी" ?[111] सुमेरी नापजोख की पद्धति का चलन बहरीन में नहीं था। उस व्यापारिक अड्डे का उपयोग अधिकतर भारतीय व्यापारी करते थे। इसलिए यह संभव है, वहाँ हड़प्पाई नापजोख की पद्धति का चलन रहा हो। सुमेरी-बैबिलोनी क्षेत्र का एक नगर था सूसा। वहाँ सिंधु घाटी के बाँट मिले हैं। भारतीय बाँटों की विशेषता थी उनकी घनाकृति। ऐसे बाँट केवल सिंधु घाटी के लोग इस्तेमाल करते थे।[112] बिबी ने बहरीन के जिन बाँटों को देखकर सिंधु घाटी को याद किया, वे अवश्य ही घनाकृति के रहे होंगे। केवल उनकी पालिश देखकर उन्हें सिंधु घाटी याद न आती। **एस. आर. राव** ने लिखा है, "स्पष्ट ही सिंधु घाटी की मुद्रा और बाँट, व्यापार के सिलसिले में, लोथल या सिंधु घाटी से सूसा पहुँचे होंगे।[113] इसी तरह व्यापार के सिलसिले में भारतीय बाँट बहरीन पहुँचे होंगे।

सुमेरी-बैबिलोनी लोग जिस भारत से परिचित हैं, उसके एक छोर पर लोथल है। इसकी छवि से दिलुमुन् सारी आवासित भूमि का गोदीघर बन जाता है। दूसरे छोर पर हिमालय है, देवदारु के वन हैं, नदियों के उद्गमस्थल हैं और यहीं पर्वत के भीतर से सूर्य पाताल की यात्रा करके बाहर आते हैं।

गिल्गमेश् कथा के बैबिलोनी रूप में सारा भौगोलिक परिदृश्य विद्यमान है। गिल्गमेश् और एन्किदु ने देवदारु वन देखा :

वे स्तब्ध खड़े रहे और वन देखते रहे।
उन्होंने देवदारुओं की ऊँचाई देखी,
उन्होंने वन का प्रवेश द्वार देखा,
जहाँ हुम्बाबा (हुवावा) चलता था, रास्ता बन गया था।
रास्ते सीधे थे, चलना सुगम था।
उन्होंने देवदारु पर्वत देखा, देवों का निवास,
इर्नीनी (देवी इश्तर) के सिंहासन का स्थल।
पर्वत के मुख से
देवदारु अपनी समृद्धि ऊपर उठाए हैं।[114]

ये हैं देवदारु जो सुमेर के नगरों से और बहरीन द्वीप से बहुत दूर हैं। जब देवों ने उत्नपिश्तम् को अमरत्व प्रदान किया, तब उन्होंने यह भी निर्णय किया—

उत्नपिश्तिम् को बहुत दूर रहना होगा, नदियों के उद्गम पर।[115]

गिल्गमेश् जब उत्नपिश्तिम् से मिलने जाते हैं, तब उन्हें एक विशाल पर्वत मिलता है। इसका संबंध सूर्य से है। पर्वत का नाम है मशु ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जब वह मशु की पर्वतमाला के पास आए।
जो प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त पर निगाह रखती है,
जिसके शिखर आकाश का गुंबद छूते हैं,
और जिसका वक्ष नीचे पाताल तक पहुँचता है—
वृश्चिक-नर उसके द्वार के रक्षक हैं,
जिनका आतंक भयावह है, जिनकी दृष्टि में मृत्यु है।
उनका प्रभामंडल उन पर्वतों पर फैला है
जो सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य पर निगाह रखते हैं।[116]

एक वृश्चिक नारी अपने पति को बताती है, गिल्गमेश् दो तिहाई देव हैं, एक तिहाई मानुष। पति गिल्गमेश् से पूछता है,

समुद्र पार करके, जिन्हें पार करना कठिन है,
तुम मेरे सामने क्यों आए हो ?[117]

अर्थात सुमेर से भारत की यात्रा कठिन है। आने का कारण बहुत महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। गिल्गमेश् कहते हैं, मैं उत्नपिश्तिम् से मिलने आया हूँ। जीवन खोजते हुए वह देवसभा में मिल गए।

मैं जीवन और मृत्यु के बारे में उनसे पूछना चाहता हूँ।[118]

यहाँ गिल्गमेश् नचिकेता की भूमिका निबाहते हैं। वह जीवन और मृत्यु का रहस्य जानना चाहते हैं। किंतु वृश्चिक नर सावधान करता है :

गिल्गमेश्, अभी तक ऐसा मर्त्य नहीं हुआ जो यह पा सका हो।[119]

मनुष्य मरणशील है, केवल देव अमर हैं। जीवन और मृत्यु का रहस्य वही जानते हैं। गिल्गमेश् पीछे लौटने को तैयार नहीं हैं। वह यमपुर के द्वार पर हैं। और यही सूर्य का मार्ग है। वृश्चिक नर ने कहा,

पर्वत का द्वार तुम्हारे लिए खुला है।[120]

यह सुनकर गिल्गमेश्—

सूर्य के मार्ग पर वह चल पड़े।
कोस भर चले, तब
अंधकार सघन है और प्रकाश बिल्कुल नहीं है।
वह न कुछ आगे देख पाते हैं न पीछे।

शमश्, सूर्यदेव, स्वयं गिल्गमेश् से कहते हैं :

जिस जीवन को तुम खोजते हो, वह तुम्हें न मिलेगा।[121]

गिल्गमेश् उत्तर देते हैं :

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मैदानों में चलते रहने और भटकने के बाद
क्या मुझे धरती के गर्भ में सिर रखना होगा
कि मैं वर्षों तक सोता ही रहूँ ?
मेरी आँखें सूर्य को देखें
जिससे मेरा मन प्रकाश से छक जाए !
काफ़ी उजेला हो तो अंधेरा हट जाता है।
जो सचमुच मर चुका है, वह फिर भी सूर्य की ज्योति देखे।[122]

मनवः मृत्युबंधवः, किसी समय भारत में यह कहावत रही होगी। कवि आदित्यों से कहता है, हम मनुष्य मृत्यु के भाईबंद हैं, फिर भी हमारी आयु को दीर्घ करो। (८.१८.२२)। और मैकडनल के शब्दों में "जीने का अर्थ है उगते सूरज को देखना"।[123] पश्येम नु सूर्य मुच्चरनाम्, हम उगते सूर्य को देखें (६.५२.५), यह भी आम मुहावरा रहा होगा। "मेरी आँखें सूर्य को देखें"—बैबिलोनी काव्य में। बिबी ने ज़िउसुद्र और दिल्मुन् के बारे में एक प्रश्न किया है : देवों ने ज़िउसुद्र को जहाँ रखा, वह सूर्योदय का देश है और वह पार उतरने का देश (the land of crossing) है। "इस 'पार उतरने के देश' की व्याख्या करना आसान नहीं है। और यह दोष अनुवादक का नहीं है। मूल सुमेरी में कुर् बल कुछ अधिक स्पष्ट नहीं है। कुर का अर्थ है भूमि। बल क्रियामूल संज्ञा है। जिस क्रिया से बनी है, उसका अर्थ है पार करना। उसका प्रयोग नदियाँ आदि पार करने के लिए होता है"।[124] बिबी ने अपनी ओर से कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया। समाधान कथा के बैबिलोनी रूप में विद्यमान है। गिल्गमेश् एक कलारिन से पूछते हैं, उत्नपिश्तिम् तक पहुँचने का रास्ता कौन सा है ? वह उत्तर देती है :

ऐ गिल्गमेश्, कभी यहाँ कोई पार नहीं उतरा;
और जब से सृष्टि है, जो भी आया, समुद्र पार नहीं कर सका।
केवल वीर शमश् समुद्र पार करते हैं।[125]

पर्वत में द्वार है, द्वार के भीतर सूर्य का मार्ग है, फिर अंधकार है और समुद्र है। इसी समुद्र को पार करके सूर्यदेव बाहर आते हैं। इसलिए जो सूर्योदय का देश है, वह पार उतरने का देश (तीर्थ) भी है। मनुष्य की वहाँ गति नहीं है। वही कलारिन कहती है :

पार उतरने का स्थान दुष्कर है,
वहाँ तक का मार्ग अति दुष्कर है;
और बीच में राह रोकने को है मृत्यु की जलराशि ![126]

प्रतिदिन सूर्य का पुनर्जन्म होता है इसी मृत्यु की जलराशि को पार कर लेने के कारण !

कलारिन की सलाह से गिल्गमेश् को उर्शनबी नाम से एक केवट मिल जाता है। उसके साथ वह डेढ़ महीने का सफ़र तीन दिन में पूरा करके मृत्यु-जल तक पहुँच जाते हैं। केवट ने सावधान कर दिया था, जल को छूना नहीं। और गिल्गमेश् उत्नपिश्तिम् के पास पहुँच गए जहाँ वह नदियों के उद्गम स्थल पर रहते थे। नदियों के उद्गम स्थल से सूर्योदय के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्थान का कोई विशेष संबंध है ? ऋग्वेद में नदियों को प्रवाहित करना देवों का महान कृत्य है। नदियों के प्रवाह और सूर्य के प्रकाश, दोनों को वृत्र रोकता है। उसका वध करके इंद्र दोनों को मुक्त करते हैं।

ण. सुमेर, हड़प्पा और ऋग्वेद

बिबी ने एक पते की बात कही है : "सुमेरियों को विश्वास था कि समुद्र नीचे के एक और समुद्र पर टिका है। उसका नाम है **अब्ज़ू**। साधारण समुद्र तो खारा होता है। **अब्ज़ू** का पानी मीठा होता है। विश्वास के अनुसार, और यथार्थ के अनुसार भी, दोनों को एकदम अलग रखा जाता है। खारे सागर का जलतल दोनों को मिश्रित होने से रोके रहता था। सुमेरी लोग मानते थे कि अबज़ू समस्त मीठे पानी का स्रोत था। नदियों को अपने स्रोत धरती के नीचे वाले समुद्र में मिलते थे। सोते और कुँए, प्राकृतिक या कृत्रिम, बिल होने के कारण वहाँ तक पहुँच जाते थे। और इस मीठे पानी के शासक और रक्षक एन्कि थे।"।[127] यह अब्ज़ू वही **आप्सू** है। इसी पर पृथिवी-आकाश टिके हैं। पृथिवी के चारों ओर पर्वतमाला है। सूर्यदेव समुद्र से निकलते हैं और पर्वत से भी। मधुर जल का समुद्र पर्वत के उस पार है। उस तक जाने के लिए पर्वत लाँघना ज़रूरी नहीं है। मार्ग पर्वत के भीतर से है।

"हे इंद्र ! तूने जलों के द्वारों को खोलकर चारों ओर जल प्रवाहों को बहा दिया, पर्वत के दृढ़ भाग को तोड़ दिया, संसार की प्रजाओं को, सूर्य को, द्युलोक को और उषा को एक साथ प्रकाशित किया, और उसका राजा हुआ।" **सातवलेकर**: ६.३०.५)। द्वार खुलने पर जल बाहर आते हैं। पर्वत का दृढ़ भाग टूटने पर जल के समानांतर सूर्य भी बाहर आते हैं। वरुण ने सिंधु नदी के लिए मार्ग बनाया; **अरदत्** काटा, अवश्य ही पहाड़ काटा होगा। (१०.७५.२)। वरुण ने सूर्य के लिए भी मार्ग बनाया, क्रिया है **रदत्**, यहाँ भी पहाड़ काटा गया है। (७.८७.६)। एन्कि के पूर्वरूप वरुण नदियों के उद्गम स्थल पर रहते हैं। (८.४१.२)। वह मधुर स्वच्छ जलों के राजा हैं, उनके मध्य में विचरण करते हैं। (७.४६.३)। **वरुण** और **एन्कि** में जैसी गहरी समानता है, वैसी भारतीय **द्यौस्** और यूनानी **ज़ेउस्** में नहीं है। **ऋग्वेद** को अलग रखकर सुमेरी-बैबिलोनी देवतंत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता। सुमेरी-बैबिलोनी आख्यान काव्यों की अनेक मूल प्रेरणाएँ उनके बहुत से रहस्यमय मुद्दे **ऋग्वेद** तथा परवर्ती भारतीय साहित्य के आलोक में ही स्पष्ट होते हैं। सृष्टि संबंधी कल्पनाएँ, प्रमुख देवों से संबंधित धारणाएँ, देवों और मनुष्यों की कथाएँ, कहीं-कहीं काव्यों के विशेष शब्दबंध, अनेक खेपों में, भारत से सुमेर, वहाँ से मिस्र तथा अन्य देशों में पहुँचते रहे हैं। निस्संदेह सुमेर और मिस्र की संस्कृतियों के अध्ययन से **ऋग्वेद** को समझने में सहायता मिलती है, किंतु यह स्मरणीय है कि देवतंत्र का जैसा विकास **ऋग्वेद** में सुरक्षित है, वैसा न सुमेर में है, न मिस्र में। और देवतंत्र का उपयोग केवल देवकथाओं के लिए नहीं हुआ, वह काव्य-रचना और दार्शनिक चिंतन के लिए भी हुआ है।

ऋग्वेद ने चाहे सुमेर को प्रभावित किया हो, चाहे उससे स्वयं प्रभावित हुआ हो, दोनों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में सांस्कृतिक तत्वों की समानता आकस्मिक नहीं है। वैदिक भारत और सुमेर में परस्पर संपर्क अवश्य रहा होगा। हड़प्पा राज्य से सुमेर का संपर्क निर्विवाद है। या तो सांस्कृतिक तत्वों का आयात-निर्यात हड़प्पा राज्य की स्थापना से पहले हुआ, या उसके दौरान हुआ, या फिर उसके बाद हुआ। वैदिक भारत और सुमेर के सांस्कृतिक संबंधों को जाँचते हुए हड़प्पा राज्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। **तीनों ही स्थितियों में भारत पर आर्यों के आक्रमण की धारणा खंडित होती है।** यदि सांस्कृतिक तत्वों का आयात-निर्यात हड़प्पा राज्य की स्थापना से पहले हुआ, तो ऋग्वेद की रचना तब तक हो चुकी थी। उस राज्य के संस्थापकों ने भले वैदिक भारत पर आक्रमण किया हो, आर्यों ने उस राज्य पर आक्रमण न किया था। यदि आयात-निर्यात का वह काम हड़प्पा राज्य के दौरान हुआ तो यह राज्य स्वयं ही आर्य संस्कृति का क्षेत्र माना जाएगा क्योंकि दक्षिणी अफ़गानिस्तान से लेकर गुजरात तक और कुरुक्षेत्र से लेकर पश्चिमी ईरान तक जो क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता का है, लगभग वही वैदिक सभ्यता का है। यदि सांस्कृतिक तत्वों का वह आयात-निर्यात हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के बाद घटित हुआ, यानी 1500 ई०पू० के आसपास, तो मानना चाहिए कि इस आयात-निर्यात में सुमेर और बैबिलोन की भूमिका थी ही नहीं। सुमेरी राज्यसत्ता 2000 ई०पू० तक समाप्त हो गई थी और 1500 ई०पू० से एक शताब्दी पहले बैबिलोन की राज्य-सत्ता समाप्त हुई, वहाँ बाहर से आए शासकों ने अधिकार जमाया।

ऋग्वेद, हड़प्पा और सुमेर के आपसी संबंधों को पहचानने का एक सूत्र क्रैमर ने दिया है। सूत्र यह है : "सिंधु नगरों और कस्बों की एक तुरत ध्यान खींचने वाली और प्रभावशाली विशेषता जल और स्वच्छता की भूमिका है। ऐसा लगता है, जनजीवन में यह भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। सार्वजनिक और निजी, दोनों तरह के भवनों में कूपों तथा स्नानागारों की आश्चर्यजनक संख्या से, और भट्टों में पकाई हुई ईंटों से ढँकी नालियों के सुनियोजित जाल से वह भूमिका स्पष्ट हो जाती है। इसलिए यह मानना असंगत न होगा—जैसा कि दरअसल अनेक विद्वानों ने माना भी है—कि सिंधुजनों ने जल संबंधित उपासना का विकास किया था। इसमें गहरी धार्मिक भावना निहित थी, उसके केंद्र में एक जल का देवता था और उसके साथ स्नानादि द्वारा पापनिवारण और शुद्धीकरण जैसी कुछ रीतियों का चलन था।" सुमेर और हड़प्पा का जलधर्मी संबंध असंदिग्ध है। इसके साथ ऋग्वेद से इतना ही जोड़ दें—**आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु**, आपः माताएँ हमें पवित्र करें (१०.१७.१०) तो हड़प्पा-सुमेर के साथ ऋग्वेद का संबंध स्पष्ट हो जाएगा।

जल से संबंधित एक घटना है जल-प्रलय की। यह ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। उसका उल्लेख सुमेरी-बैबिलोनी काव्यों में है, बाइबिल में है, यूरोप की अनेक भाषाओं के साहित्य में है और उसका उल्लेख भारतीय साहित्य में भी है। अवश्य ही इस घटना की चर्चा दूर-दूर तक हुई होगी। इसके देशकाल निर्णय के लिए हमें प्राचीन नदी **सरस्वती** पर ध्यान केंद्रित करना होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संदर्भ

1. जे० बी० प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्टर्न टेक्सट्स, पृ० 3.
2. उप०, पृ० 3-4.
3. उप०, पृ० 6.
4. उप०, पृ० 60-61.
5. उप०, पृ० 61.
6. उप०।
7. उप०, पृ० 4.
8. उप०।
9. एस० एन० क्रैमर, द सुमेरियंस, पृ० 113.
10. उप०।
11. ओ० आ० गुर्ने, द हिट्टाइट्स, पृ० 103.
12. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ०
13. क्रैमर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 113.
14. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 367.
15. उप०, पृ० 372.
16. उप०।
17. उप०, पृ० 118.
18. उप०, पृ० 128.
19. उप०, पृ० 330.
20. उप०, पृ० 117.
21. उप०, पृ० 332.
22. केरम, द सीक्रेट ऑफ द हिट्टाइट्स, पृ० 92.
23. ए० ए० मैकडनल, वैदिक मिथौलैजी, पृ० 10.
24. एम० ए० मरे, द स्पलेंडर दैट वाज इजिप्ट, पृ० 128-29.
25. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 7.
26. उप०, पृ० 6.
27. उप०, पृ० 7.
28. उप०, पृ० 11.
29. उप०, पृ० 17.
30. उप०, पृ० 373.
31. उप०।
32. उप०, पृ० 118.
33 उप०, पृ० 373-74.
34. मरे, पूर्वोल्लिखित, पृ०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

35. जी० रू, एन्शेंट इराक, पृ० 95-96.
36. जी० एल० पोसेल, एन्शेंट सिवेज ऑफ द इंडस, पृ० 169.
37. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 292.
38. उप०, पृ० 3.
39. उप०, पृ० 4.
40. उप०, पृ० 12.
41. रू पूर्वोल्लिखित, पृ० 96.
42. ओ० आर० गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 193.
43. उप०, पृ० 192.
44. उप०, पृ० 211.
45. उप०, पृ० 230.
46. प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्ट इन पिक्चर्स, पृ० 310.
47. प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्टर्न टेक्स्ट्स, (पूर्वो.), पृ० 4.
48. बुलफिंच, मिथौलौजी, पृ० 280.
49. फ्रांत्स क्यूमों, ओरिएंटल रिलीजंस इन रोमन पैगनिज्म, पृ० 134.
50. उप०, पृ० 142.
51. उप०, पृ० 140.
52. उप०, पृ० 144.
53. मार्गरेट मरे, पूर्वोल्लिखित, पृ० 98.
54. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित पृ० 134.
55. उप० ।
56. उप०, पृ० 134-35.
57. मरे, पूर्वोल्लिखित, पृ० 115,
58. क्रैमर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 115.
59. उप० ।
60 गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 181.
61. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 161.
62. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 184.
63. उप०, पृ० 188.
64. उप०, पृ० 184-85.
65. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 65.
66. गूर्ने, पूर्वोल्लिखित, पृ० 190-91.
67. वेब्स्टर, फ्रॉम मिकिनी टु होमर, पृ० 84-85.
68. उप०, पृ० 89.
69. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 52.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

70. उप०, पृ० 50.
71. उप०, पृ० 51.
72. उप०, पृ० 48.
73. क्रैमर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 197.
74. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 42.
75. उप०, पृ० 79.
76. उप०, पृ० 83.
77. उप०।
78. उप०, पृ० 94.
79. उप०, पृ० 95.
80. उप०, पृ० 87.
81. उप०, पृ० 38.
82. उप०, पृ० 95.
83. उप०, पृ० 37.
84. क्रैमर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 148-49.
85. उप०, पृ० 149.
86. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 164.
87. क्रैमर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 281.
88. उप० ।
89. उप०, पृ० 282.
90. उप०, पृ० 281.
91. उप०, पृ० 282.
92. उप०, पृ० 283-84.
93. उप०।
94. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 168.
95. उप०, पृ० 168-69.
96. उप०, पृ० 169.
97. उप०।
98. उप०, पृ० 171.
99. उप०, पृ० 169.
100. उप०, पृ० 171.
101. उप०, पृ० 170.
102. बिबो, लुकिंग फॉर दिलमुन, पृ० 78.
103. उप०, पृ० 82.
104. उप०।
105. उप०।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

106. उप०, पृ० 193.
107. उप०, पृ० 194.
108. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 165.
109. उप०, पृ० 77.
110. बिबी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 81.
111. उप०, पृ० 192-93.
112. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 175.
113. उप० ।
114. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 82.
115. उप०, पृ० 95.
116. उप०, पृ० 88.
117. उप० ।
118. उप० ।
119. उप०
120. उप०, पृ० 101.
121. उप०, पृ० 88.
122. उप०, पृ० 101.
123. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 31.
124. बिबी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 78.
125. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 91.
126. उप०
127. बिबी, पूर्वोल्लखित, पृ० 79.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

5

सरस्वती, भरत और जलप्रलय

क. सरस्वती और राजस्थान

सिंधु सभ्यता एक बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हुई थी। उत्तर में अफ़गानिस्तान की सरहदों से शुरू होकर दक्षिण में वह पूरे गुजरात को समेटे हुए थी। पश्चिम में ईरान की सरहदों से शुरू होकर वह पूर्व में दिल्ली और सहारनपुर तक चली आई थी। **रफ़ीक मुग़ल** ने बहुत सही कहा है कि प्राचीन संसार की ज्ञात सभ्यताओं में किसी से भी इसका विस्तार अधिक है।[1] इसका विकास काल **फ़ेयरसर्विस** के अनुसार 2300 ई०पू० से लेकर 1700 ई०पू० तक है।[2] इसकी आदिम अवस्था बहुत प्राचीन है "और वह मज़े में पाँचवीं सहस्राब्दी ई०पू० तक पहुँच सकती है"।[3] इस सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र थ **कालीबंगाँ** और वह राजस्थान में **सरस्वती** नदी के किनारे बसा हुआ था। इसके उजड़ने का कारण सरस्वती के जलमार्ग में बहुत बड़ा परिवर्तन था। राजस्थान से होकर सिंध की ओर बहने के बदले वह पूरब की ओर घूमकर यमुना के जल मार्ग से प्रयाग की ओर बहने लगी। राजस्थान में उसका लोप हो गया। कालीबंगाँ के ह्रास का मुख्य कारण सरस्वती का यह मार्ग-परिवर्तन था।

इस प्रसंग में **बी.के. थापर** ने लिखा है: "बस्ती का अंत किस कारण हुआ, इसे ठीक-ठीक निर्धारित करना शेष है। पर तब तक इतना कह देना पर्याप्त होगा कि जिन कारणों से बाध्य होकर लोगों को वह स्थान त्यागना पड़ा, उनमें घग्घर नदी का सूख जाना था, और इसके फलस्वरूप जल-विभाजक क्षेत्र के अति परे जाने और वनों के उजड़ने से उस क्षेत्र का नंगाबूचा हो जाना था। पीने के लिए और खेती के लिए जल की निरंतर आपूर्ति में कमी होने से बस्ती अवश्य गंभीर रूप में प्रभावित हुई होगी। कालीबंगाँ में प्राकृतिक परिवेश से संबंधित जो अध्ययन (**राइक्स**, 1968) किए गए हैं उनसे तस्वीर यों बनती है कि क्रमशः सिंधु और गंगा के नदीतंत्र बारी-बारी से यमुना पर अधिकार करते रहे हैं। बारी-बारी से अधिकार करने की इस शृंखला में 1750 ई०पू० के आसपास पूर्व दिशा में गंगा नदीतंत्र की ओर अपसरण हुआ। संयोग से यही उस स्थान को त्यागने का समय भी है"।[4]

कालीबंगाँ का विकास काल 2300 ई०पू० से 1750 ई०पू० तक माना गया है। तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० में सरस्वती राजस्थान की भूमि को सींचती हुई बहती थी, भारत के सांस्कृतिक इतिहास के विवेचन के लिए यह तथ्य असाधारण महत्व का है। दिलचस्प बात है कि उन्नीसवीं सदी में अँग्रेज़ अनुसंधानकर्ता सरस्वती के प्राचीन जलमार्ग का पता लगा रहे थे। **ओल्डन** के अनुसार वह नदीतल अंबाला के पास से आरंभ होकर भटिंडा, बीकानेर और बहावलपुर होता हुआ सिंध तक पहुँचता है।[5] **ऐटकिन्सन** ने लिखा था कि जो मरुस्थल भटिआन, बीकानेर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और बहावलपुर से होता हुआ सिंध तक पहुँचता है, वह जनश्रुति के अनुसार हरा-भरा और उपजाऊ था, "उसमें ढेरों शहर और कस्बे थे, उनमें सभ्य और समृद्ध गण-समाज निवास करते थे"।[6] रफ़ीक मुग़ल द्वारा प्रस्तुत किए हुए मानचित्र के अनुसार "सतलज, सरस्वती-द्रषद्वती घाटियों में 20 या अधिक स्थान बीकानेर (भारत) में" हैं।[7] ये सब प्राचीन सिंधु सभ्यता के स्थान हैं। जनश्रुति बिल्कुल सही थी, पुरातात्विक अनुसंधान से यह सिद्ध हो गया।

सरस्वती के मार्ग परिवर्तन के बारे में **डी.ऐन. वाडिया** ने लिखा था: "यमुना नदी, हिंदू शास्त्रों की पवित्र सरस्वती, वैदिक काल में पूर्वी पंजाब और राजस्थान से होकर समुद्र तक बहती थी। जहाँ इसकी धारा थी, वहाँ अब एक क्षुद्र नदी है जो बीकानेर के मरुस्थल की रेत में खो जाती है। समय बीतने पर सरस्वती अधिकाधिक पूर्व की ओर के मार्ग से बहने लगी और अंततः वह प्रयाग में गंगा से मिल गई। तब उसे यमुना नाम प्राप्त हुआ"।[8] भारतीय पुरातत्वज्ञ **ए. घोष** ने 1952 में "सरस्वती की घाटी में हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ के बीच" 25 हड़प्पाई स्थानों का पता लगाया था।[9] इस जानकारी से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि पुरातात्विक सामाग्री से **ऋग्वेद** की व्याख्या करने में सहायता मिलती है और इस व्याख्या से पुरातात्विक सामग्री के विश्लेषण में सहायता मिलती है। 1961-69 की अवधि में कालीबंगाँ नामक स्थान पर जो व्यवस्थित उत्खनन हुआ, उससे सरस्वती का महत्व और उजागर हुआ। सरस्वती **ऋग्वेद** की सबसे पवित्र नदी है। पुरातत्व के लिए उसका महत्व यह है कि **ऋग्वेद** में उसे पहाड़ों से निकलकर समुद्र तक बहते बताया गया है।।

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरे घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय।।

वह पवित्र है, चेतनायुक्त है, पर्वतों से लेकर समुद्र तक बहती है। धरती पर जो बुहत सा धन है, उसका ज्ञान कराती है, वह नहुषों को घी और दूध देती रही है। (७.९५.२)।

पुसाल्कर ने ध्यान दिलाया है कि नदी स्तुति (१०.७५.५) में सरस्वती का नाम यमुना और सतलज के बीच में आता है। "और आमतौर से माना जाता है कि वह वर्तमान काल की सरसुती है जो भटनेर के पास रेगिस्तान में खो जाती है"।[10] उन्होंने **रोठ** आदि विद्वानों का हवाला दिया है जो मानते हैं कि सिंधु को ही सरस्वती कहा गया है।[11] वास्तव में वैदिक कवियों के लिए जैसे यमुना और सरस्वती दो अलग नदियाँ हैं, वैसे ही सिंधु और सरस्वती दो अलग नदियों के नाम हैं। नदी स्तुति में पहले सिंधु संबोधित है (१०.७५.२,३,४), फिर गंगा, यमुना के साथ सरस्वती (१०.७५.५)। ऐसा अन्यत्र भी हुआ है यथा (१०.६४.६) में सिंधु और सरयु का आह्वान किया गया है। पुसाल्कर का अनुमान बहुत सही है कि "संभव है, वैदिक काल में सरस्वती उतनी बड़ी रही हो जितनी सतलज थी और वह वास्तव में समुद्र तक पहुँची हो क्योंकि **ऋग्वेद** (६.६१.२,८;७.९५.२) में उसे समुद्र को जाते बताया गया है"।[12] **ऋग्वेद** में सरस्वती तीव्र प्रवाह की शक्तिशाली नदी है जो अपनी लहरों से पर्वतों के शिखर तोड़ देती है (६.६१.२०)। वर्तमान काल की छोटी-सी, रेगिस्तान में खो जाने वाली

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नदी देखकर विद्वानों के लिए सरस्वती को उससे अलग करना स्वाभाविक था। पर उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में अनुसंधानकर्ताओं ने सरस्वती के पुराने जलमार्ग का पता बहुत कुछ लगा लिया था। आधुनिक शोधकर्ताओं ने उस कार्य को आगे बढ़ाया है और अक्सर पुरानी स्थापनाओं की पुष्टि की है।

1984 में **बी.बी. लाल** और **एस.पी. गुप्त** ने **व्हीलर** के सम्मान में **सिंधु सभ्यता की सरहदें** (Frontiers of the Indus Civilization) ग्रंथ संपादित किया। (1976 में व्हीलर का निधन हो गया था।) इसमें सरस्वती से संबंधित दो लेख हैं। यशपाल, **बलदेव सहाय**, **आर.के. सूद** और **डी.पी. अग्रवाल** ने मिलकर 'लुप्त सरस्वती की दूरागत पहचान' (Remote Sensing of the 'Lost' Sarasvati River') शीर्षक से एक लेख लिखा है। दूरागत पहचान का कारण 'लैंडसैट इमेजरी' की तकनीक का प्रयोग है। इससे प्राचीन नदीतलों की छवि अंकित करने में सुविधा होती है। लेख के आरंभ में ही बताया गया है कि **औरेल स्टाइन** ने **ऋग्वेद** का हवाला देते हुए कहा था कि कम से कम तीन जगह एक नदीमार्ग का उल्लेख है जो वर्तमान सरसुती और घग्घर के अनुरूप है।[13] इन लेखकों के अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि घग्घर की मुख्य सहायक नदी सतलज थी। पटियाला के दक्खिन में घग्घर का पाट इसीलिए अचानक चौड़ा हो जाता है। यह चौड़ाई 6 से 8 किलोमीटर तक है। घग्घर को जिस दूसरे बड़े नदीतंत्र से जल मिला होगा, वह "यमुना का कोई पूर्व जलमार्ग हो सकता है"।[14] सतलज के बारे में उन्हें दृढ़ विश्वास है कि वह घग्घर में आ मिली थी, यमुना के बारे में संभावना मात्र है (2500 ई०पू० से लेकर 1700 ई०पू० के बीच घग्घर जीवंत नदी थी और इसकी यथेष्ट संभावना है कि वह सिंधु नदी में मिले बिना कच्छ के रन में पहुँचती थी। धरती की भीतरी पर्तों में हलचल के कारण सतलज की दिशा पश्चिम की ओर हो गई और यमुना का भी प्राचीन मार्ग बदल गया। स्वभावतः राजस्थान उस समय हरा-भरा था।[15]

ख. काल विभाजक रेखा —सरस्वती

सरस्वती से संबंधित दूसरा लेख **वी.एन. मिश्र** का है जो कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'सिंधु सभ्यता के अभ्युदय और ह्रास मे एक उपकरण—जलवायु, राजस्थान और उसके परे की प्रमाण सामग्री', लेख के इस शीर्षक का कारण यह है कि मिश्र एक अन्य विशेषज्ञ की धारणाओं का खंडन कर रहे हैं। 1931 में **औरेल स्टाइन** और **मार्शल** ने यह मत प्रकट किया था कि सिंधु सभ्यता के विकासकाल में सिंध और बलूचिस्तान की जलवायु ज्यादा नम थी। **व्हीलर** ने भी इस धारणा का समर्थन किया था। 1961 में **राइक्स** और **डाइसन**, इन दो अमरीकी अनुसंधानकर्ताओं ने उस धारणा को चुनौती दी और यह स्थापना प्रस्तुत की कि हड़प्पाकाल से अब तक उस क्षेत्र में जलवायुसंबंधी कोई बड़ा परिवर्तन न हुआ था। 1971 में **गुरदीपसिंह** ने अपने अनुसंधान के बल पर उस पुरानी धारणा को सही ठहराया। जब तक जलवायुसंबंधी परिवर्तनों पर ज़ोर था, तब तक नदियों का, विशेष रूप से सरस्वती का, महत्त्व लोगों की आँखों से ओझल रहा। मिश्र ने गुरदीपसिंह के मत का खंडन किया और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सरस्वती का महत्त्व अपने आप उजागर होता गया।

हाकड़ा, घग्घर आदि अनेक नाम सरस्वती को विभिन्न क्षेत्रों में दिए गए।[16] सतलज और यमुना अपने आधुनिक जलमार्गों से एकदम भिन्न मार्गों से बहती थीं और दोनों सरस्वती की सहायक नदियाँ थीं। हाकड़ा नदी तल का पाट 3 से 10 किलोमीटर तक, कहीं कम, कहीं ज़्यादा चौड़ा है। अपने ऊपर वाले भाग में वह पूर्व से पश्चिम को बहती है, मध्य भाग में दक्षिण-पश्चिम की ओर, निम्नभाग में दक्षिण की ओर बहती हुई सिंध प्रदेश को पार करके कच्छ के रन में पहुँचती है। "ऋग्वेद में सरस्वती को एक बड़ी और तीव्र गति वाली नदी कहा गया है जो पर्वतों से समुद्र तक बहती है। उसे 'नदियों की माता' कहा गया है, उसे ऐसी नदी बताया गया है जो 'गरिमा में सभी नदियों से बढ़कर' है" (ओल्ढम, 1893, 49)।[17] ओल्ढम ने हाकड़ा को वैदिक सरस्वती माना था, सतलज को उसकी सहायक नदी कहा था, यमुना के बारे में उन्हें संदेह था। लगभग यही स्थिति यशपाल और उनके सहयोगियों की है। ओल्ढम को यमुना के बारे में संशय इसलिए था कि परंपरा और वेद उसके सरस्वती से मिलने के बारे में मौन हैं। मिश्र की टिप्पणी है : "हिंदू परंपरा यमुना को सरस्वती से दृढ़तापूर्वक संबद्ध करती है, सतलज से कभी नहीं।"[18]

परंपरा के अलावा नदी-तलों की मिट्टी के परीक्षण से सिद्ध हो गया है कि यमुना सरस्वती के जलमार्ग को अपनाए हुए थी। "राइक्स (1968) ने भूआकृति और तलछट से संबंधित प्रमाण सामग्री जुटाकर बताया है कि यमुना घग्घर के जलमार्ग में सचमुच ही हड़प्पा काल में बह रही थी"।[19] इस हड़प्पा काल का अवसान सतलज और यमुना के मार्ग परिवर्तन से जुड़ा हुआ है। "यमुना और सतलज के मार्ग क्रमशः पूर्व और पश्चिम की ओर बदल गए। इससे भूस्तर पर और उसके नीचे के जल की प्राप्ति में काफ़ी कमी आई होगी। यथासमय प्राकृतिक वनस्पतियों और कृषि पर इसका हानिकारक प्रभाव पड़ा होगा। इससे आबादी को बाध्य होकर उत्तरी पंजाब (सतलज जलमार्ग) और उत्तरी यमुना-गंगा दोआब जैसे क्षेत्रों में जाना पड़ा जहाँ नदियों से उन्हें वे प्राकृतिक परिवेश की परिस्थितियाँ सुलभ हुईं जिनका दीर्घकाल से हड़प्पाई जन उपयोग करने के आदी थे"।[20] इस विश्लेषण के अनुसार कालीबंगाँ ही नहीं, सिंधु सभ्यता का काफ़ी बड़ा क्षेत्र सरस्वती की जलक्षीणता से प्रभावित हुआ था।

कालीबंगाँ का ह्रास यदि 1750 ई०पू० में हुआ, तो यह निश्चित है कि ऋग्वेद में सरस्वती का, विशाल तीव्रगामी नदी के रूप में, वर्णन 1750 ई० पू० के पहले का है।

यदि कोई कहे कि इस रूप में सरस्वती का वर्णन प्रारंभिक वैदिक काल का है, तो भी इतना तो सिद्ध हो ही जाएगा कि वैदिक आर्य अपने जनपदों में पहले बस गए थे, हड़प्पा सभ्यता का ह्रास, उसके बाद हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि उस सभ्यता का ह्रास कम से कम पंजाब और राजस्थान के सरस्वती घाटी वाले क्षेत्र में, यमुना-सतलज के मार्ग परिवर्तन से, फलतः सरस्वती की जलक्षीणता से, हुआ, न कि आर्यों के आक्रमण से। वास्तव में सरस्वती के जलहीन होने की ओर पूरे ऋग्वेद में कहीं भी कोई संकेत नहीं है। सरस्वती का स्मरण ऋग्वेद के हर मंडल में है। दसवाँ मंडल बाद का माना जाता है, प्रसिद्ध नदी सूक्त इसी मंडल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में है उसमें अन्य नदियों के साथ सरस्वती भी वंदनीय है। इस सूक्त के अलावा भी दसवें मंडल में अन्यत्र सरस्वती की गरिमा विद्यमान है (१०.१७.७.८.६)। मानना होगा, संपूर्ण ऋग्वेद 1750। ई०पू० से पहले की रचना है।

सरस्वती के तटवर्ती नगरों में हड़प्पा सभ्यता का विकास, सरस्वती के जलहीन होने पर इन नगरों का ह्रास, ऋग्वेद में सरस्वती का प्रखर वेग वाली विशद नदी के रूप में वर्णन—ये तीन तथ्य सिंधु सभ्यता पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत को पूरी तरह ध्वस्त कर देते हैं। ऋग्वेद की रचना दीर्घकाल में संपन्न हुई, यह मत इतिहास विवेचकों में सर्वमान्य है। 1750 ई०पू० में तो यह रचना प्रक्रिया शुरू न हुई होगी, उससे हज़ार पाँच सौ साल पहले—हड़प्पा सभ्यता के समृद्धि काल में अथवा उससे भी पहले—वह संपन्न हुई होगी। सरस्वती के जिस रूप का वर्णन ऋग्वेद में है, वह हड़प्पा सभ्यता के अवसानकाल का तो हो नहीं सकता; उसके बाद का हो, इसका प्रश्न ही नहीं है। पर निरंतर प्रचार के फलस्वरूप हड़प्पा सभ्यता पहले, ऋग्वेद उसके बाद—यह धारणा अनेक विद्वानों के उपचेतन में बसी हुई है।

वी.एन. मिश्र। को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने सरस्वती की जलहीनता, हड़प्पा सभ्यता का ह्रास और ऋग्वेद की रचना, इस तीनों मुद्दों को एक-दूसरे से जोड़ा है। उनका कहना है, ऋग्वेद में सरस्वती विशद नदी है पर **महाभारत** में उसके लुप्त होने का उल्लेख है। ईसा पूर्व 19 वीं 18 वीं शताब्दियों में हड़प्पाई नगर ह्रास की दशा में थे और कुछ को लोग छोड़कर भी चले गए थे। ऋग्वेद, सरस्वती, हड़प्पाई नगरों का ह्रास—ये तीनों मुद्दे यहाँ एक साथ हैं। पर हड़प्पा सभ्यता पहले, ऋग्वेद बाद को, यह कालक्रम भी वह निर्धारित करते चलते हैं। "अधिकांश विद्वान वैदिक काल की शुरूआत दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के मध्य के आसपास मानते हैं"।[21] दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के मध्य के आसपास तो सरस्वती सूख गई है; उस समय वैदिक काल की शुरुआत कैसे होगी ? यदि "इस बारे में संदेह की गुंजाइश नहीं है कि ईसापूर्व 18 वीं 19 वीं शताब्दियों में हड़प्पाई नगर ह्रास की दशा में थे," तो सरस्वती 1500 ई०पू० से पहले, 1900-1800 ई०पू० में सूखी। तब वैदिक काल की शुरुआत और भी बिलंब से हुई, नगरों के ह्रास के चार पाँच सौ साल बाद।

और भीः जब ओल्ढम अपना सरस्वती संबंधी विवेचन लिख रहे थे, तब "महाकाव्यों और वेदों के समय से पहले भारत के इतिहास का प्रसार ज्ञात नहीं था"।[22] इतिहास का जो प्रसार ज्ञात नहीं था, वह हड़प्पाई सभ्यता के इतिहास का प्रसार है; और यह प्रसार "वेदों के समय से पहले" का है ! मिश्र के अनुसार वर्तमान जानकारी के आधार पर इन दो बातों में कोई अंतर्विरोध नहीं है कि "यमुना महाकाव्यों के समय में और संभवतः प्रारंभिक वैदिक काल में भी, अपने वर्तमान मार्ग में बहती रही हो और प्राग्वैदिक अथवा हड़प्पाई समय में अन्य मार्ग से बही हो।" ("during pre-Vedic or Harappan times.") जो ऋग्वेद से पहले का समय है, वही हड़प्पाई समय है। हड़प्पाई सभ्यता पहले, ऋग्वेद बाद को, अंतर्मन में पैठी हुई यह धारणा यहाँ प्रकट हो गई है।

प्रसंग यमुना से संबंधित ओल्ढम की धारणाओं का है। मिश्र कहते हैं, जब ओल्ढम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लिख रहे थे, तब "महाकाव्यों और वेदों से परे भारतीय इतिहास के प्रसार का ज्ञान नहीं था"।[23] वेदों से परे, ऋग्वेद से पहले, जो इतिहास था, उसके प्रसार का ज्ञान नहीं था। यह इतिहास हड़प्पा सभ्यता का है जिसका उद्घाटन मार्शल ने किया था। 1926 में मार्शल ने कहा था, "एक ही छलांग में हम भारतीय सभ्यता के अपने ज्ञान को करीब तीन हज़ार साल पीछे खींच ले गए हैं"।[24] मार्शल को दृढ़ विश्वास था, यह एक छलांग में प्राप्त सभ्यता ऋग्वेद से पहले की है। 1931 में प्रकाशित उनके प्रसिद्ध ग्रंथ का प्राक्कथन यों शुरु होता है: "अब तक आमतौर से यह माना जाता रहा है कि भारत में आर्यों से पहले के लोग अपने आर्य विजेताओं की तुलना में सभ्यता के एकदम निचले स्तर पर थे..."।[25] सिंधु घाटी की सभ्यता ने साबित कर दिया कि भारत में आर्यों से पहले के लोग सभ्यता के ऊँचे स्तर पर थे। मार्शल की प्रतिध्वनियाँ मिश्र के लेख में हैं।

मार्शल जब लिख रहे थे, उससे बहुत पहले ओल्डम इस बात का पता लगा चुके थे कि सरस्वती प्राचीन काल में अंबाला के पास से निकलकर भटिंडा, बहावलपुर, बीकानेर होती हुई सिंध पहुँचती थी। मार्शल के मोहेंजोदड़ो संबंधी विवेचन में इस नदी का पता नहीं है। किंतु गॉर्डन चाइल्ड ने उन्हीं दिनों लिखा था कि प्राचीनकाल में सिंध प्रदेश दोआब था, उसे पूर्व में सिंधु और पश्चिम में सरस्वती सींचती थीं।[26] मार्शल आश्वस्त थे कि आर्य सिंधु सभ्यता के ह्रास के बाद आए, इसलिए उन्हें यह जानकारी होनी चाहिए थी कि ऋग्वेद में सरस्वती भरी है, उत्तर वैदिक काल में वह खाली है। ओल्डम के समय की अपेक्षा मार्शल के समय में भूविज्ञान अधिक विकसित था। सिंधु सभ्यता से सरस्वती का संबंध पहचानने के लिए वह थोड़ा बहुत प्रयत्न अवश्य कर सकते थे।

मार्शल के अनुसार 3250—2750 ई०पू० सिंधु सभ्यता का विकासकाल था। व्हीलर ने इसे बदल कर 2500—1500 ई०पू० किया। मिश्र ने जिन अधिकांश विद्वानों के लिए कहा है कि वे वैदिककाल की शुरुआत दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के मध्य के आसपास मानते हैं, उनमें व्हीलर मुख्य हैं। व्हीलर के लिए जो सिंधु सभ्यता का अवसानकाल है, वही वैदिक काल की शुरूआत है। किंतु मिश्र ने जो तथ्य दिए हैं, उनसे वस्तुगत परिणाम इसके विपरीत निकलता है; सिंधु सभ्यता के अवसानकाल में सरस्वती खाली है, वैदिककाल में वह भरी है, इसलिए वैदिककाल उससे पहले का है।

ग. हड़प्पा सभ्यता—मूलतः सारस्वत् सभ्यता

मिश्र के लेख में कालसंबंधी असंगति का दोष गौण है; उन्होंने सरस्वती से ऋग्वेद और हड़प्पा सभ्यता को एकसाथ जोड़ा, यह कार्य मुख्य है और महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद की रचना हड़प्पा सभ्यता के अवसान से पहले हुई, इस वस्तुगत परिणाम से कई और निष्कर्ष निकलते हैं। उनमें एक यह है: ऋग्वेद में जिन गण समाजों (अथवा जनों) का उल्लेख है, वे सब हड़प्पाकाल में विद्यमान थे; पुसाल्कर के विवरण के अनुसार:

ऋग्वैदिक गणों में सबसे महत्वपूर्ण भरत थे। ऋग्वैदिक काल में वे सरस्वती और यमुना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के बीच के क्षेत्र में बसे हुए थे। उनके राजा सरस्वती, दृषद्वती और आपया के तटों पर यज्ञ करते थे। इसी प्रदेश को बाद में कुरुक्षेत्र कहा गया। पुरुजन सरस्वती के दोनों तटों पर रहते थे। त्रित्सु जन भरतों के संबंधी थे, वे मध्यप्रदेश में रहते थे। यदु और तुर्वश दक्खिनी पंजाब अथवा कुछ और दक्खिन में बसे थे। क्रिवि जन संभवतः सिंधु और असिक्नी (चिनाब) के तटों पर रहते थे। **हिलेब्रांट** के मत से शृञ्जया सिंधु के पश्चिम में **त्सिमर** के अनुसार सिंधु के ऊपरी भाग में रहते थे। सिंधु और वितस्ता के बीच में शिवों का निवास था। क्रुमुनदी के उद्‌गमस्थल की पहाड़ियों में पक्थ रहते थे जिनसे पठानों को परव्तून नाम मिला है। इनके दक्खिन में भलानस, क्रुमु और गोमती के बीच में विषाणिन् जन रहते थे। **लुडविग** और **वेबर** के अनुसार पृथु और पर्शु गणों के नाम हैं और वे पार्थ और पारसी जनों के पूर्व रूप थे। (पुसाल्कर पृथु और पर्शु को गणनाम नहीं मानते)।[27]

यदि पृथु और पर्शु गणनाम हों तो संभव है, वे ईरान की सरहदों पर रहते आए हों। उस स्थिति में ईरान की सरहदों से लेकर कुरुक्षेत्र तक और कुरुक्षेत्र से दक्खिनी अफ़गानिस्तान तक एक विशाल त्रिकोण बनता है जिसमें **ऋग्वेद** में उल्लिखित गण निवास करते हैं। गुजरात की ओर परिव्रजन से पहले यही त्रिकोण हड़प्पाई जनों की निवासभूमि भी है। **वैदिक एज** 1951 में वैदिक जनपदों का मानचित्र, **एन्शेंट सिटीज ऑफ़ दि इंडस** में रफ़ीक मुग़ल (1973) के आधार पर हड़प्पाई स्थानों का मानचित्र—दोनों में काफ़ी समानता है। इस समानता का विशेष महत्व तब तक नहीं है जब तक वैदिक काल की शुरूआत हड़प्पा सभ्यता के बाद होती है और जहाँ वैदिक काल और हड़प्पा काल, दोनों ही कालों में सरस्वती जल से भरी हुई दिखाई दी, वहीं कालगत समानता के साथ देशगत समानता इतिहास के प्रति एक नए दृष्टिकोण की सूचक बन जाती है।

1750 ई०पू० (अथवा 1500 ई०पू०) के पहले जिस भूखंड में हड़प्पा सभ्यता विकसित हुई, उसी क्षेत्र में ऋग्वैदिक जनों की सभ्यता का विकास हुआ। इस विकास में एक सहस्राब्दी का समय हड़प्पा सभ्यता के लिए प्रमाणित है, और ऋग्वैदिक जनों की सभ्यता के लिए अनुमानित हो सकता है। इस स्थिति में या तो ये दोनों सभ्यताएँ एक हैं या ऋग्वैदिक जनों की सभ्यता अधिक प्राचीन है और हड़प्पा सभ्यता उसके बाद की है। सतलज-यमुना का मार्ग-परिवर्तन और सरस्वती की जलहीनता हड़प्पा सभ्यता के ह्रास की सूचक घटनाएँ हैं। ऐसी कोई ह्राससूचक सीमा रेखा **ऋग्वेद** में नहीं है। सरस्वती वहाँ जल से भरपूर है और वह अनेक सहस्राब्दियों से भरपूर बनी हुई थी, यह माना जा सकता है। तब यह भी मानना होगा कि **ऋग्वेद** में जिन गण समाजों और जनों का उल्लेख है, उन्होंने स्वयं या उनके वंशजों ने हड़प्पा सभ्यता का निर्माण किया। एक विशाल भूखंड की प्रमुख नदियों के किनारे समानांतर दो पृथक सभ्यताएँ विकसित हुई हों, इसकी संभावना बहुत कम है; एक ने दूसरी को उच्छिन्न करके वहाँ अपना विकास किया हो, इसकी संभावना और भी कम है।

अब **वी.ऐन. मिश्र** के विवेचन में सिंधु सभ्यता के प्रमुख विकास केंद्रों और उस सभ्यता के प्रसार की दिशा पर ध्यान दीजिए। परिपक्व हड़प्पा सभ्यता से पहले उसका एक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रारंभिक रूप है। सिंधु नदी के किनारे, सिंध और पंजाब दोनों प्रदेशों में, उस प्रारंभिक दौर के स्थान बहुत थोड़े हैं। "इसके विपरीत हाकड़ा-घग्घर के सूखे नदीतल के किनारे इस दौर के स्थानों की बड़ी सघनता है"।[28] प्रारंभिक दौर के स्थान जहाँ अत्यंत सघन थे, वहीं से इस सभ्यता का प्रसार उत्तर और पश्चिम की ओर होता है। "परिपक्व हड़प्पाई संस्कृति का भौगोलिक क्षेत्र बहुत कुछ वही बनता है जो प्रारंभिक हड़प्पाई सभ्यता का है; अपवाद यह है कि दक्षिण में कच्छ के भीतर और उत्तर में पंजाब और हरियाणा के भीतर उसका यथेष्ट प्रसार होता है। किंतु बस्तियों की सघनता सभी क्षेत्रों में देखी जाती है—उत्तरी पंजाब में मार्के की वृद्धि दिखाई देती है। वहाँ, मुख्यतः सतलज के किनारे 34 हड़प्पाई स्थान हैं जबकि प्रारंभिक दौर के हड़प्पाई स्थान 8 या 10 ही हैं"।[29]

हड़प्पाई सभ्यता के विकास में सिंधु और सरस्वती की सापेक्ष भूमिका की पहचान इन तथ्यों से होती है: "हड़प्पाई स्थानों का सर्वाधिक सघन वितरण सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियों के किनारे नहीं है वरन् मृत हाकड़ा-घग्घर और उसकी तथैव मृत सहायक नदियों के किनारे है।" ज्ञात 800 स्थानों में 530 से अधिक हाकड़ा-घग्घर नदीतंत्र पर स्थित हैं। निष्कर्ष "इसलिए हड़प्पाई संस्कृति मुख्यतः (essentially) हाकड़ा-घग्घर घाटी की संस्कृति है। और इस संस्कृति के अभ्युदय और ह्रास के कारण अथवा कारणों की किसी भी जाँच-पड़ताल में इस नदी के भाग्य में उलटफेर की छानबीन शामिल होगी, जैसा कि गुप्त (1978) ने सही निर्देश किया था"।[30]

यद्यपि सिंधु और उसकी सहायक नदियों के किनारे प्रारंभिक दौर के हड़प्पाई स्थानों का अभाव नहीं था। पर इनकी सघनता सरस्वती घाटी में थी। सिंध और पंजाब, ये दो प्रदेश सिंधु नदी के द्वारा आपस में जुड़े हुए थे। "घग्घर नदी हिमालय से निकलती है और उसका जलमार्ग पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, बहावलपुर और सिंध से होकर कच्छ के रण में उसके मुहाने तक पहुँचता है"।[31] प्रदेश के रूप में बहावलपुर का अलग अस्तित्व नहीं है। उसे निकाल दें तो सरस्वती हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, सिंध और कच्छ, इन पाँच प्रदेशों को एक दूसरे से जोड़ती दिखाई देगी। स्वभावतः सिंधु सभ्यता के विकास में सरस्वती का योगदान अन्यतम है।

और भी : "हड़प्पाई स्थानों के भौगोलिक विवरण से यह साँचा बनता है : अधिकांश प्रारंभिक हड़प्पाई स्थान घग्घर-हाकड़ा घाटी के मध्य भाग में है और थोड़े से सिंधु घाटी के निचले और ऊपरी भागों में हैं। परिपक्व हड़प्पाई स्थान सिंधु के किनारे हैं, पर उनका सर्वाधिक केंद्रीकरण फिर घग्घर-हाकड़ा घाटी के मध्यभाग में है। उत्तर-हड़प्पाकाल में मध्य हाकड़ा घाटी के (समाधिस्थान 'ऐच़' से संबंधित) स्थानों और सिंधु घाटी (झूकर संस्कृति) के स्थानों की संख्या घट जाती है पर सौराष्ट्र में तथा घग्घर-सतलज घाटियों में बस्तियों का उल्लेखनीय प्रसार होता है"।[32]

हड़प्पाई सभ्यता के ज्ञात 800 स्थानों में 530 से अधिक हाकड़ा-घग्घर नदीतंत्र पर स्थित हैं; जब यह नदीतंत्र जलविहीन हुआ, तब ये 530 बस्तियाँ उजड़ गईं। इसका अर्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह है कि आधी से अधिक हड़प्पाई सभ्यता सरस्वती के जलविहीन होने से तबाह हुई थी। इन बस्तियों में कुछ तो कालीबंगाँ जैसी बड़ी मंडियाँ थीं, शेष छोटे-बड़े कस्बों और गाँवों के रूप में बड़े नगरों से जुड़ी रही होंगी। सरस्वती और उसकी सहायक नदियों के सूखने से व्यापार की क्षति हुई ही, इसके साथ कच्चा माल पैदा करने वाले इलाक़े वीरान हो गए होंगे। विशेष रूप से अन्न की पैदावार में भारी कमी से एक बहुत बड़े क्षेत्र में वह सभ्यता निर्जीव हुई होगी। कुरुक्षेत्र, राजस्थान और पंजाब के अलावा सरस्वती के सूखने का गहरा असर सिंध पर भी पडा होगा। उस प्रदेश की समृद्धि केवल सिंधु पर नहीं वरन् सरस्वती पर भी निर्भर थी। चाइल्ड ने बैबिलोन के मैदान से सिंधु घाटी के निचले भाग की तुलना करते हुए लिखा था : "प्रागैतिहासिक काल में बैबिलोन से सादृश्य और भी घनिष्ठ होता क्योंकि सिंध तब वास्तविक 'भेसोपोटामिया' (दोआब) था जिसे पश्चिम में सिंधु के अलावा पूर्व में बड़ी मिहरान (सरस्वती) सींचती थी"।[33]

सिंध प्रदेश की समृद्धि दोआब की समृद्धि थी। दो नदियों में एक के सूखने से खेती चौपट हुई होगी और घरेलू व्यापार को भारी धक्का लगा होगा। विदेश-व्यापार का केंद्र **लोथल** था, मोहेंजोदड़ो नहीं। **ऐस.आर. राव** के अनुसार लोथल तथा अन्य हड़प्पाई नगर कपास और सूती कपड़े निर्यात करते थे।[34] अकबर,औरंगज़ेब के जमाने में गुजरात उत्तर भारत को कपास भेजता था और उधर से अन्न मँगाता था। यदि इससे मिलती-जुलती स्थिति दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० में रही हो तो सरस्वती के सूखने पर लोथल के व्यापारियों को अन्न संकट का सामना करना पड़ा होगा; कपास की खेती और सूती कपड़ों के उत्पादन और व्यापार में भारी कटौती की गई होगी। उत्तर भारत में घरेलू बाज़ार के अस्तव्यस्त होने से गुजरात का व्यापार अवश्य प्रभावित हुआ होगा। सिंधु सभ्यता के ह्रास का एक बहुत बड़ा कारण सरस्वती का सूखना था, इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है। इसी तरह यह भी निश्चित है कि इस सभ्यता के उत्थान और प्रसार में सरस्वती की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी।

हड़प्पा सभ्यता का ह्रास हुआ, उसका नाश नहीं हुआ। इसके विपरीत सुमेरी सभ्यता का नाश हुआ। उस सभ्यता की बहुत से बातें उसके सामी उत्तराधिकारियों ने अपना लीं पर जन के रूप में सुमेरियों की पहचान 1750 ई० पू० तक लुप्त हो गई।[35] सुमेर की जगह बैबिलोन से भारत के संबंध बने रहे और बैबिलोन के पतन के बाद असीरिया से भी संबंध क़ायम रहे। असीरिया के प्रसिद्ध राजा हम्मुरबी के पुत्र सम्सुइलुना के भवन के फर्श के नीचे सिंधु घाटी की चौकोर मुद्रा मिली थी। इस पर सिंधु घाटी का एक सींग वाला पशु अंकित है और सिंधु लिपि में अभिलेख भी है।[36] सम्सुइलुना का राजत्वकाल 1749 से 1712 ई०पू० तक है। यह हड़प्पा सभ्यता का ह्रासकाल है; वह मुद्रा इस ह्रासकाल में असीरिया से भारत के संबंध का प्रमाण है। **क्रेमर** मानते हैं, अक्कदी दस्तावेजों का दिलमुन् भारत है। "दूसरी सहस्राब्दी के समूचे उत्तरार्ध में और पहली सहस्राब्दी ई०पू० के पूर्वार्ध में हम कीलाक्षरी दस्तावेज़ों में दिलमुन् का उल्लेख पाते है"।[37] दूसरे शब्दों में 1500 से लेकर 500 ई०पू० तक, प्रायः एक हज़ार साल की लंबी अवधि में, प्राचीन इराक़ से भारत के संबंध क़ायम रहे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

थे।

जो विद्वान यह नहीं मानते कि दिलमुन् भारत है, वे यह अवश्य मानते हैं कि जो चीज़ें दिलमुन् से इराक़ भेजी जाती थीं वे बहरीन द्वीप में उत्पन्न न होती थीं वरन् बाहर से लाकर वहाँ एकत्र की जाती थीं। **ओपेनहाइम** के विचार से दिलमुन् (बहरीन) में अधिकांश कच्चा माल उत्तर पूर्वी अरब देश से आता था। आगे उन्होंने यह भी बता दिया है, इसमें "सबसे महत्त्वपूर्ण था हाथीदाँत"।[38] उत्तर पूर्वी अरब से हाथीदाँत तो अवश्य प्राप्त हो सकता था। **बिबी** दिलमुन् बहरीन समीकरण के समर्थक हैं पर वह मानते हैं: दिलमुन् माल एकत्र करने और आगे भेजने का अड्डा था, और जो वैभव विलास की सामग्री वहाँ एकत्र की जाती थी, उसमें अधिकांश प्रदेश असंदिग्ध रूप में भारतीय उपमहाद्वीप की ओर संकेत करती प्रतीत होती है"।[39] व्यापारिक अड्डे के रूप में बहरीन टापू का महत्व भारतीय व्यापारियों के कारण था। वहाँ सिंधु घाटी के बाँट-बटखरे मिले हैं; यह न भूलना चाहिए। यदि बहरीन को ही दिलमुन् कहा गया हो, तो भी इराक़ी दस्तावेज़ों में उसके उल्लेख से भारतीय व्यापार का महत्त्व ही प्रकट होता है।

यहूदी राजा सुलेमान को जो हबिम् (हाथी दाँत) भेजे गए थे, वे हड़प्पा सभ्यता के ह्रास काल में भेजे गए थे। मूल रूप **इभ** निर्यातक देश भारत की सूचना देता है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। 1750 ई० पू० के बाद भी पश्चिमी एशिया से भारत के व्यापारिक संबंध क़ायम रहे। यदि आर्य आक्रमणकारियों ने हड़प्पा सभ्यता का नाश किया होता तो ये संबंध क़ायम न रह सकते थे। उत्तरी आक्रमणकारियों ने जब मिकिनीअन सभ्यता का नाश किया, तब वहाँ तीन शताब्दियों तक अंधकार युग रहा। ऐसा युग 1750 ई० पू० के बाद भारत में नहीं आया। सिंध प्रदेश कपास और सूती वस्त्र उद्योग के लिए विख्यात था। इसी सिंध के प्रतिरूप **सिंदॉन** का प्रयोग कपास के लिए ग्रीक भाषा में होने लगा—हड़प्पा सभ्यता के बाद वाले 'अंधकार युग' में ! वैसे संस्कृत **कपसि** का प्रतिरूप **कर्पसॉस्** भी ग्रीक में है। **लीविस** और **शॉर्ट** ने लैटिन कोश में लैटिन रूप **कर्बसुस्** के साथ संस्कृत और ग्रीक प्रतिरूप भी दे दिए हैं। **कर्पसॉस्** और **कर्बसुस्** शब्दों का प्रयोग महीन रेशोवाले स्पेन के सन के लिए किया जाता था। कपास की खेती करने वाले एक सभ्य समाज का शब्द लैटिन और ग्रीक भाषाओं में पहुँचा था।

हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के बाद हज़ार साल तक पश्चिमी एशिया से भारत के व्यापारिक संबंध क़ायम रहे थे। ये विच्छिन्न हुए हैं पहली बार जब ईरान ने भारत पर आक्रमण किया और दूसरी बार जब सिकंदर ने ईरान और भारत, दोनों पर आक्रमण किया।

घ. सरस्वती और भरत

जल से भरी नदियाँ मेरी रक्षा करें (**अवनुमा सिन्धवः पिन्वमानाः** ६. ५२. ४)। सामान्य रूप में नदियों के इस स्मरण के बाद कवि सरस्वती के लिए कहता है, वह नदियों के द्वारा जल से भर दी गई है (**सरस्वती सिन्धु भिः पिन्वमाना;** ६. ५२. ६)। सरस्वती के संदर्भ में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सिन्धु भिः का वही अर्थ है जो उसी सूक्त में पहले सिन्धवः का है। ग्रिफ़िथ के अनुवाद में, "Sarasvati, who swells with rivers," सहायक नदियों के जल से समृद्ध होने वाली सरस्वती की विशेषता पुष्टि हुई है। प्रभूत जल-राशि वाली सरस्वती (महो अर्णः सरस्वती; "Sarasvati, the mighty flood"—ग्रिफ़िथ; १. ३. १२); यहाँ भी सरस्वती की विशद धारा की ओर कवि का ध्यान है। वह अपनी शक्तिशाली लहरों से पर्वतशिखरों को ऐसे तोड़ती है जैसे कोई कमलनाल तोड़े। (६. ६१.२)। ऐसी नदी तटवर्ती जनों के लिए रक्षा का प्राकृतिक साधन बन जाती है। सरस्वती धातुनिर्मित दुर्ग के समान रक्षा करती है (सरस्वती धरुण मायसी पूः ; ७. ९५. १)। यही नदी पर्वतों से लेकर समुद्र तक बहती है (७. ९५. २), और तटवर्ती प्रदेशों को समृद्ध करती है। उसकी जलराशि असीम (अनन्तः) है, अप्रतिहत वेग से उसका प्रवाह गर्जन करता हुआ चलता है। (६. ६१.८)। घग्घर-हाकड़ा का सूखा नदीतल खोजकर अनुसंधानकर्ताओं ने सरस्वती की जो रूपरेखा निर्धारित की है, उसका जीवंत ऋग्वेद-कालीन स्वरूप इस तरह का था।

सरस्वती शक्तिशाली नदी है; इसके साथ ही वह मनुष्यों के लिए जीवन यापन के आवश्यक साधन जुटाने में सहायता करती है। उसने मनुष्यों के लिए भूमि प्राप्त की है, उनके लिए जल प्रवाहित किया है, वह वाजिनीवती (अन्नवती) है। (६. ६१. ३)। अन्न से उसके संबंध पर बल देने के लिए कवि अगली ऋचा में उसे अन्नों से अन्नवती (वाजेभिः वाजिनीवती; ६. ६१. ४) कहता है। पुनः वाजेषु वाजिनी कहकर कवि ने सरस्वती से धरती की उर्वरता के संबंध की ओर संकेत किया है। वाजेषु का संबंध युद्ध से नहीं है, इसका प्रमाण यह है कि सरस्वती से पूषा के समान धन देने को कहा गया है। (६. ६१. ६)। पूषा अन्नों के स्वामी (वाजानां पतिः, सर्वेषामन्नानां पतिः—सायण) हैं, पोषण के संवर्धक हैं (पुष्टीनां सखा, (१०. २६. ७); मैकडनल के शब्दों में "increase. of nourishment" हैं)।[40] कवि की प्रार्थना है, "तुझे छोड़कर दूसरे खेतों में हमें ज़ाना न पड़े ऐसा कर।" सातवलेकर ६. ६१. १४; क्षेत्राणि का सीधा अर्थ खेत ठीक जान पड़ता है। सरस्वती की तटवर्ती भूमि उपजाऊ है, कवि उसे छोड़कर नहीं जाना चाहता)।

सरस्वती हमें पवित्र करने वाली है, वह अन्नों से अन्नवती है (पावका नः सरस्वती वाजे भिर्वा जिनीवती १.३. १०)। पावक शब्द आगे चलकर अग्नि का पर्याय बन गया, यहाँ वह सरस्वती का विशेषण है। सरस्वती के अन्नपूर्ण रूप, उसकी भौतिक समृद्धि,सर्जक भूमिका और उसके पावक रूप में कोई प्रमाणिक विरोध नहीं है। देवोपासक सरस्वती का आह्वान करते हैं, यज्ञ के समय वे उसका स्मरण करते हैं, सुकृती जन उसे पुकारते हैं। वह पितरों के साथ आए, कुशासन पर बैठ कर प्रसन्न हो।(१०. १७. ७-८)। मनुष्य तो मनुष्य, इंद्र भी सरस्वती के निकट आ कर श्रांति दूर करते हैं। (१०. १३१. ५)। सभी नदियाँ मनुष्य को पवित्र करती हैं, केवल सरस्वती बुद्धि को निखारती है। (१. ३. ११)। जो कवि यशस्वी नहीं है, उसे वह यशस्वी बना सकती है। (२. ४१. १६)। कवियों का जैसा आत्मीय संबंध सरस्वती से है, वैसा अन्य किसी नदी से नहीं है। "हे सरस्वती ! जो स्तन तेरे शरीर में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्तमान है, जो सुखकारक है, जिससे सभी वरणीय धनों को तू पुष्ट करती है, जो रत्नों को धारण करने वाला तथा धनों को प्राप्त कराने वाला है, जो कल्याणकारी दान करने वाला है, तू उस स्तन को हमारे पीने के लिए इधर कर।'' (सातवलेकर १. १६४. ४६)।

इस नदी के किनारे भरत जन रहते थे। मैकडनल के अनुसार सरस्वती और द्वषद्वती की तटभूमि पर अग्नि के प्रज्वलित होने का उल्लेख है (३. २३. ४); ''अतः संभव है, सरस्वती के किनारे भरतों के उपासना स्थल रहे हों''।[41] इन्हीं भरतों ने नदियों को पार किया था (अतारिषुर्भरताः, ३.३३. १२)। कांतिमान अग्नि भरतों के लिए (भरतेभ्यः) प्रकाशित है। (५.११.१)। देवश्रवा और देववात, इन दो भारत ऋषियों (भारता) ने मंथन द्वारा अग्नि को उत्पन्न किया था। (३. २३. २)। विश्वामित्र का स्तोत्र भारतजन की रक्षा करता है (विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्, ३. ५३. १२)।

भरतों के बारे में पुसाल्कर कहते हैं, ''भरतों, ने पूरे देश को अपना नाम दिया; ऋग्वैदिक गणों में वे सबसे महत्वपूर्ण थे''।[42] किंतु ऋग्वेदोत्तर काल में ''भरतों का एक गण के रूप में लोप हो जाता है''।[43] गणरूप में भरतों का लोप प्राचीन भारतीय इतिहास की अतिशय महत्त्वपूर्ण घटना है। अनेक विद्वान यह स्वीकर करते हैं कि ऋग्वेद के बाद वैदिक संस्कृति का केंद्र अपने स्थान से हट कर और पूर्व की ओर आ गया। भरतों का गणरूप में लोप और वैदिक संस्कृति के केंद्र का स्थान-परिवर्तन स्पष्ट ही परस्पर संबद्ध घटनाएँ हैं। संस्कृत पर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में बरो ने लिखा है कि वैदिक भाषा का व्यवहार भौगोलिक दृष्टि से एक सुनिश्चित स्थान में होता था; ''अत्यंत प्राचीन काल में यह पंजाब में था किंतु शीघ्र ही केंद्र पूर्व की ओर हटकर कुरू और पंचाल देशों में पहुँच गया और समूचे उत्तर काल में वहीं बना रहा''।[44] पुसाल्कर के अनुसार ''ऋग्वेद में 'कुरु' नाम का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है'',[45] ब्राह्मणकाल में कुरू-पंचाल सर्वश्रेष्ठ जन हैं'',[46] ''पंचालों, वशों और उशीनरों के साथ कुरू मध्यदेश में बसे हुए थे''।[47] सारस्वत क्षेत्र से हटकर वैदिक संस्कृति का केंद्र मध्यदेश में आ पहुँचा। मध्यदेश के बारे में बरो कहते हैं, ''मध्यदेश के उच्चवर्गों की बोलचाल की भाषा संस्कृत का आधार बनी। ऋग्वेद की प्राचीन पवित्र भाषा का जन्म और अधिक पश्चिम की ओर हुआ था। उससे वह (संस्कृत) प्रभावित हुई''।[48]

ऋग्वेद के मूल रचना क्षेत्र के बारे में पुसाल्कर ने लिखा है, ''विद्वानों में इस बात को लेकर मतभेद है कि भारत के किस भाग में अधिकांश ऋग्वेद रचा गया था। मैक्समुलर, वेबर, म्यूर आदिक के मत से ऋग्वेद की कार्यवाही की मुख्य रंगभूमि पंजाब था किंतु हौपकिंस और कीथ द्वारा प्रतिपादित अधुनातन मत यह है कि वर्तमान अंबाला के दक्खिन में सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रदेश में उसकी रचना हुई थी''।[49] मैकडनल ने सरस्वती और भरतों के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे इसी मत की पुष्टि होती है। यथा ऋग्वेद में ''अन्य किसी भी नदी की अपेक्षा सरस्वती की महिमा का वर्णन अधिक है'', ''सरस्वती और द्वषद्वती के तटों पर यज्ञ के लिए अग्नि को प्रज्वलित करने की ओर संकेत किया गया है'', ''अतः संभव है, सरस्वती के तटों पर भरतों के उपासना स्थान रहे हो''।[50] अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(२. ४१. १६), श्रेष्ठ माता, श्रेष्ठ नदी, श्रेष्ठ देवी—पराकाष्ठा सूचक तीन विशेषण एक साथ केवल सरस्वती के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि काव्य और कवियों से घनिष्ठ संबंध होने के कारण ही ऋग्वेद की समस्त नदियों में केवल सरस्वती वाणी की देवी बनी। अपनी इच्छा से तो वैदिक कवियों ने सरस्वती की तटभूमि छोड़ी न होगी। कोई ऐसी बाध्यता थी जिस पर भरत जनों का वश न था, जिस कारण वैदिक संस्कृति का केंद्र मध्यदेश पहुँचा।

ङ. भरतों का विस्थापन और जलप्रलय

जो लोग मानते हैं कि आर्यों ने भारत में उत्तर-पश्चिम से प्रवेश किया, उनके लिए कोई विशेष समस्या नहीं है। आर्य पहले पंजाब में आकर बसे, फिर पूर्व की ओर थोड़ा और बढ़ गए। किंतु व्याख्या इस बात की करनी है कि गणरूप में भरतों का लोप हो गया। किंतु "इस काल के ग्रंथों में उनके राजाओं की ख्याति का लोप नहीं हुआ"।[51] यह ख्याति परंपरा से चली आ रही थी। भरतों के सम्मान में कोई कमी न हुई। यदि गणरूप में उनका अस्तित्व बना रहता तो मध्यदेश में वैदिक संस्कृति का नया केंद्र स्थापित ही न होता। संस्कृत का विकास मध्यदेश में हुआ, मध्यदेश के उच्चवर्गों की बोलचाल की भाषा उसका आधार बनी और ऋग्वेद की पवित्र भाषा से वह प्रभावित हुई। केवल प्रभावित हुई; पवित्र भाषा ज्यों की त्यों मध्यदेश में स्थापित न हो गई। गणरूप में भरतों का अस्तित्व, गणभाषा के रूप में ऋग्वेद की भाषा का अस्तित्व—दोनों बातें परस्पर संबद्ध हैं। भरतों के लोप के बाद भी उनके राजाओं की ख्याति बनी रही, उसी तरह ऋग्वेद की भाषा मध्यदेश की भाषा को प्रभावित करती रही।

भरतों के सामूहिक विनाश से ही ऋग्वैदिक भाषा के जनाधार का नाश हो सकता था। गणरूप में भरतों के लुप्त हो जाने से ही उनकी भाषा का यथावत अस्तित्व न रहा और वह केवल मध्यदेश की भाषा को प्रभावित करने की स्थिति में रह गई। भरतों के सामूहिक विनाश के संकेत भारत की साहित्य परंपरा में विद्यमान हैं। जल-प्रलय में सारी मनुष्य जाति नष्ट हो गई, केवल मनु बच रहे; प्रलय की जलराशि में वेद डूब गए, फिर विष्णु ने उनका उद्धार किया—उक्त साहित्य परंपरा में विद्यमान ये दो मुख्य संकेत हैं। ऋग्वेद में जलप्रलय का उल्लेख नहीं है, मानवजाति के नष्ट होने का प्रश्न नहीं है। जलप्रलय का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में है। इस दिशा में अनुसंधान का सूत्र वैदिक देवकथाओं पर मैकडनल की पुस्तक में है: "शतपथ ब्राह्मण (१. ८. १, १-१०) में कथा है कि जल-प्रलय अन्य सभी प्राणियों को बहा ले गई, केवल मनु एक नाव में मत्स्य (वैदिकोत्तर देवकथाओं में विष्णु के अवतार) द्वारा बचा लिए गए। कहा गया है कि उसके बाद बलि से उत्पन्न अपनी पुत्री इडा के द्वारा उन्होंने मनुष्य जाति को उत्पन्न किया। लोगों को जलप्रलय की कथा की जानकारी उतने प्राचीन समय में थी जितना कि अथर्ववेद है, यह उस संहिता के एक पद समूह (१६. ३६. ८) से लक्षित होता है। जलप्रलय की कथा अवेस्ता में भी है और वह इंडोयूरोपियन हो सकती है। आमतौर से माना जाता है कि वह सामी स्रोत से उधार ली गई है पर यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एक अनावश्यक पूर्व-कल्पना जान पड़ती है"।[52] **मैकडनल** आर्यों के बाहर से आकर भारत में बसने का सिद्धांत मानते हैं , इसलिए **अवेस्ता** मे जलप्रलय के उल्लेख को **अथर्ववेद** से प्राचीन मानते हैं। आर्य अभी ईरान में थे, तब यह घटना घट चुकी थी; इसलिए मैकडनल के विचार से वह इंडोयूरोपियन दौर की घटना हो सकती है। उन्होंने इस बात की कैफ़ियत नहीं दी कि उस घटना की ओर कोई संकेत **ऋग्वेद** में क्यों नहीं है। जल की गतिविधि के प्रति **ऋग्वेद** के कवि असाधारण रूप से सचेत हैं। उसकी रचना से पहले वह घटना घट चुकी हो और वे उसकी ओर कहीं संकेत भी न करें, यह स्थिति अत्यंत आश्चर्यजनक होगी।

यदि जलप्रलय की घटना इंडोयूरोपियन दौर की थी, तो वह कहाँ घटित हुई थी, यदि उसके बाद इंडोईरानियन दौर की थी, तो ईरान में कहाँ घटित हुई थी, यह मैकडनल ने नहीं बताया। किंतु उनके विवेचन में दो धारणाएँ निहित हैं, और वे महत्वपूर्ण हैं : (1) अथर्ववेद की रचना **बाइबिल** से पहले हुई थी; (2) **ऋग्वेद** में जलप्रलय की ओर कहीं संकेत नहीं है, अतः वह घटना **ऋग्वेद** के बाद की है। सामीजनों ने प्रलय-कथा सुमेरियों से प्राप्त की थी। मैकडनल को सुमेरी अभिलेखों की जानकारी न थी, अतः उन्होंने इस संभावना पर विचार न किया था कि भारतीय आर्यों ने यह कथा सुमेरियों से प्राप्त की होगी। किंतु सुमेरी अभिलेखों की वर्तमान जानकारी के साथ यदि इस बात पर ध्यान दें कि प्रलय कथा की ओर संकेत **ऋग्वेद** में नहीं है, **अथर्ववेद** में है, तो यह संभावना विचारणीय होगी कि सुमेरियों ने, **ऋग्वेद** की रचना के बाद, किसी समय यह कथा भारतीय आर्यों से प्राप्त की हो। **अथर्ववेद** में प्रलयकथा की ओर संकेत कुष्ठ वनस्पति का प्राप्तिस्थान बताने के लिए इस प्रकार है: जहाँ से नाव नीचे उतरी, जहाँ हिमालय का शिखर है (**यत्र नाव प्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः**, "On the spot where the ship glided down, on the peak of Himavant..."— **ब्लूमफ़ील्ड**)। प्रलयजल में नाव से हिमालय के शिखर तक मनु के पहुँचने की कथा से और हिमालय के उस स्थान विशेष से लोग अच्छी तरह परिचित रहे होंगे, इसीलिए कुष्ठ वनस्पति का प्राप्तिस्थान ठीक-ठीक बताने के लिए जहाँ से नाव उतरी, जहाँ हिमालय का शिखर है, इतना कह देना पर्याप्त माना गया। **शतपथ ब्राह्मण** में उस स्थान को मनु का उतार (**मनोरवसर्पणम्**) कहा गया है। वह इसी नाम से विख्यात रहा होगा।

!**शतपथ ब्राह्मण** में कथा को पौराणिक ढंग से विस्तार दिया गया है। मनु सबेरे हाथ धो रहे थे तो उनके हाथ में मछली आ गई। उसने मनु से कहा, मुझे पालो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु ने पूछा, कैसे रक्षा करोगी। उसने कहा, तूफ़ान में सारी प्रजा बह जाएगी, मैं उससे तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु ने पूछा, मैं तुम्हें कैसे पालूँ ? उसने कहा, छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है; मुझे घड़े में पालो। जब मैं बढ़ जाऊँ तब मुझे समुद्र में ले जाना। अमुक वर्ष में तूफ़ान आएगा, तब तुम मेरे कहे अनुसार नाव बनाना। जब तूफ़ान आए तब नाव में बैठ जाना। मैं उससे तुम्हारी रक्षा करूँगी। मछली के कहे अनुसार मनु ने उसे पाला, फिर उसे समुद्र में डाल दिया। जिस वर्ष के लिए उसने कहा था, उसी वर्ष मनु ने नाव बनाई और तूफ़ान आने पर उसमें बैठ गए। वह मछली अब बड़ा मत्स्य बन गई थी। मत्स्य नाव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के पास तैर कर आया, मनु ने उसके सींग से नाव की रस्सी बाँध दी। इस तरह वह शीघ्र उत्तरी पहाड़ तक पहुँच गए, मत्स्य ने कहा, वृक्ष में नाव बाँध दो, जल कम हो जाए, तब नीचे उतर आना। मनु धीरे-धीरे पहाड़ से नीचे उतर आए। पहाड़ के उस भाग को मनु का उतार कहते हैं। तूफान में सारी प्रजा बह गई, एक मनु ही बच रहे (**औघा ह ताः सर्वाः प्रजाः निरूवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे**), (शतपथ, १. ८. १, १-६)।

महाभारत की कथा के अनुसार एक बार सारी पृथ्वी समुद्र के जल में डूब गई। तब विष्णु ने योग निद्रा की सहायता से जल पर शयन किया। ब्रह्मा ने चार वेद रचे, उन्हें मधु और कैटभ, दो असुर उठा ले गए। वे समुद्र में घुसे और रसातल जा पहुँचे। ब्रह्मा के कहने से विष्णु ने हयग्रीव रूप धरकर रसातल से वेदों को पुनः प्राप्त किया। फिर महादेव के बताए मार्ग पर चल कर पंचाल ने हयग्रीव की आराधना द्वारा वेदक्रम प्राप्त किया।

पंचालेन क्रमः प्राप्तो देवेन पथि देशिते। (शांति पर्व, ३४७-७७), भागवत के अनुसार वराह रूप धारण करके विष्णु ने हिरण्याक्ष का वध किया और जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया। (२. ७. १)। फिर उन्होंने हयग्रीव रूप धारण किया और उनकी साँस से वेद उत्पन्न हुए। (२. ७. ११)। पुनः युगांत के समय वह मत्स्य रूप में मनु को उपलब्ध हुए, भयंकर जल में उन्होंने ब्रह्मा के मुख से गिरे वेद प्राप्त किए। (२. ७. १२)।

प्रलय पयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्र चरित्र मखेदम्
केशव धृतमीन शरीर जय जगदीश हरे।

गीतगोविंद में विष्णु ने मीन शरीर धारण कर प्रलय समुद्र के जल से वेदों की रक्षा की। नाव (वहित्र) जैसे सधी गति से आगे बढ़े, वैसे ही विष्णु द्वारा वेद सुरक्षित रहे। जयदेव को संभवतः शतपथ ब्राह्मण की कथा याद थी; मत्स्य के साथ नाव का बिंब भी काव्य में उभर आया है।

शतपथ ब्राह्मण की कथा में समस्त प्रजा डूबी, कथा के उत्तरकालीन संस्करणों में वेद डूबे। प्रजा का स्थान वेदों ने लिया; इसका अर्थ हुआ, वैदिक जन डूबे। शतपथ में मनु की रक्षा मत्स्य ने की; वह चमत्कारी मत्स्य था, पर विष्णु का अवतार नहीं था। जब प्रजा के स्थान पर वेद डूबे, तब विष्णु ने, कभी हयग्रीव बन कर, कभी मत्स्य बन कर, उनकी रक्षा की। महाभारत में पंचाल द्वारा वेदक्रम प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह ऐतिहासिक मान्यता पुष्ट होती है कि वैदिक संस्कृति का केंद्र सारस्वत जनपद से हट कर कुरू-पंचाल देश पहुँचा। इसी देश के पड़ोस में था मत्स्य जनपद। वैदिक संस्कृति की रक्षा और उसके विकास में इस जनपद का योगदान भी था। मनुस्मृति के अनुसार सरस्वती और दृषद्वती, इन देवनदियों के बीच जो देवनिर्मित देश था, उसे ब्रह्मावर्त कहते थे। (२.१७)। वैदिक जनों का यही मूल जनपद था (२. १७)। इसके बाद पवित्रता में दूसरे स्थान पर है ब्रह्मर्षिदेश।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ।। (२. १६)।

कुरू, मत्स्य, पंचाल, शूरसेन,,—इन चार जन समाजों की निवास भूमि है ब्रह्मर्षि देश। ब्रह्मावर्त के बाद वैदिक संस्कृति का केंद्र यहीं स्थापित हुआ, इसलिए उस भूमि का पवित्र होना स्वाभाविक था। उक्त ऐतिहासिक मान्यता यहाँ पुनः पुष्ट होती है; कुरू-पंचालों में मत्स्य और शूरसेन जुड़ जाते हैं। कुरू-पंचालों के पड़ोस में मत्स्य जनपद के अस्तित्व को याद करने पर विष्णु के मत्स्य रूप में वेदों के उद्धार करने का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। सुमेरियों, उनके अनुवर्ती सामीजनों के यहाँ जलप्रलय की कथा का जिस रूप में प्रसार हुआ, उसमें किसी प्राचीन पूर्वज का रक्षक मत्स्य अपनी भूमिका निबाहता रहा, पर सुमेर और बैबिलोन के आसपास कहीं कोई मत्स्य जनपद नहीं है। वहाँ मत्स्य केवल मत्स्य है, चमत्कारी मत्स्य; किसी ऐतिहासिक सत्य से उसका कोई संबंध नहीं है। वह ऐतिहासिक सत्य की ओर संकेत करता है, अपनी भूमिका का रहस्य प्रकट करता है केवल भारतीय संदर्भ में।

कच्छप अवतार के लिए दामोदर धर्मानंद कोसंबी ने लिखा है कि कच्छप गणचिह्न (टोटेम) है, वह कबीले का प्रतीक है। ब्राह्मणों के कश्यप गोत्र से वह संबद्ध है। किंतु मत्स्य अवतार के संदर्भ में वह गणचिह्न की बात भूल जाते हैं। उसका स्रोत वह सुमेर में खोजते हैं : "मत्स्य अवतार की शुरूआत, संभवतः सिंधु संस्कृति पार करते हुए, सुमेरिया से होती है। एक 'बकरमच्छ' एआ का प्रतीक है। एआ एन्कि भी है। जैसे विष्णुनारायण जल पर शयन करते हैं, वैसे ही वह जल के भीतर एक कक्ष में सोता है"।[53] जल देवता एआ अथवा एन्कि का बकरमच्छ, भारतीय मत्स्य की तरह, किसी जन से संबद्ध नहीं है ; सुमेरी कथानायक ज़िउसुद्र को बचाने में उसकी कोई भूमिका नहीं है। मत्स्य अवतार की कथा में एक ऐतिहासिक सत्य निहित है ; वैसा कोई ऐतिहासिक संकेत बकरमच्छ से प्राप्त नहीं होता।

च. जलप्रलय और ऋग्वेद का रचनाकाल

प्रलय से जो मनु बच पाए, वह मनु वैवस्वत थे। पुसाल्कर ने बताया है कि भारतीय परंपरा के अनुसार उनके पूर्वज मनु स्वायंभुव थे और उनकी राजधानी सरस्वती के किनारे थी। इनके वंश में पृथु हुए जिन्होंने गाँव और नगर बसाए, कृषि और वाणिज्य का विकास किया।[54] सभ्यता का यह विकास सरस्वती के किनारे होता है। सुमेरी जलप्रलय का समय 3100 ई० पू० माना जाता है और कलियुग का आरंभ 3102 से होता है।[55] कलियुग की विशेषता है, पुराने दादापंथी सामाजिक संबंधों का टूटना, वित्त का चलन, नगर सभ्यता का विकास। पुराने संबंधों को देखते यह सभ्यता बहुत बड़ा पाप जान पड़ती है। सुमेरी कथा में देवताओं ने जलप्रलय द्वारा पापी मानव जाति का नाश करने की ठानी। एआ ने शुरूप्पक नगर के राजकुमार उत्-नपिशितम् पर दया करके उसे पहले से सावधान कर दिया और नाव बनाकर बचने की युक्ति भी बता दी।[56] सामी परंपरा के अनुसार पहले लोग शूरवीर होते थे "जिनकी कीर्ति प्राचीनकाल से प्रचलित है।" इसके बाद "मनुष्यों की बुराई पृथ्वी पर बढ़ गई है, और उसके मन के विचार में जो उत्पन्न होता है, सो निरंतर बुरा ही होता है।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तब ईश्वर ने तै किया, "मैं मनुष्य को जिसकी मैंने सृष्टि की है पृथ्वी के ऊपर से मिटा दूँगा।" केवल नूह ईश्वर पर विश्वास करते थे और धर्मात्मा थे, इसलिए जलप्रलय में बच गए।[57] कथा के सुमेरी-सामी संस्करणों में पाप-पुण्य की भावनाएँ प्रधान हो गई हैं; प्रलय द्वारा देवताओं अथवा ईश्वर ने मानवजाति को दंड दिया। भारतीय कथा में राजा वेन बड़ा अत्याचारी था, प्रजा ने विद्रोह किया और उसे मार डाला। पृथु इसी के पुत्र थे। उन्होंने गाँव, नगर बसाए। इसके लिए ईश्वर ने उन्हें या उनके वंशजों को दंड नहीं दिया। जलप्रलय एक प्राकृतिक घटना है जिसमें चमत्कारी मत्स्य ने मनु की रक्षा की। सभ्यता का यथेष्ट विकास हो जाने पर जलप्रलय होती है, पाप-पुण्य से उसका कोई संबंध नहीं है। जलप्रलय से सभ्यता का विकास क्रम टूट नहीं जाता, वह अन्य क्षेत्र में चालू रहता है। यही 'कलियुग' का आविर्भाव है। सुमेरी-सामी कथा में सभ्यता का विकास नहीं है, कलियुग नहीं है, प्रलय एक प्राकृतिक घटना मात्र नहीं हैं, वहाँ सभी मनुष्य पापी हैं, केवल एक व्यक्ति धर्मात्मा है और देवताओं अथवा ईश्वर की इच्छा से प्रलय होती है। भारतीय कथा में जलप्रलय की घटना धार्मिक-सांप्रदायिक आग्रहों से मुक्त है और वह सरस्वती के किनारे घटित होती है। मनुष्य अचानक क्यों पापी हो गए, इसकी व्याख्या मनुवंशीय राजा पृथु द्वारा कृषि-वाणिज्य विकास और ग्राम-नगर निर्माण से होती है। इसी का पौराणिक रूप है कलियुग का आविर्भाव। इस आविर्भाव का समय और जलप्रलय का समय, दोनों को एक-दूसरे के काफ़ी पास होना चाहिए।

पुसाल्कर ने इस प्रसंग में लिखा है, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि 3102 ई० पू० का वर्ष भारत के परंपरागत इतिहास में किसी महत्त्वपूर्ण और युगांतरकारी घटना का सूचक है। यदि वह मनु वैवस्वत के शासनकाल के आरंभ की सूचना देता है तो इसका अर्थ यह है कि वह उस महाजल-प्रलय का वर्ष है जिसका वृत्तांत शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य अभिलेखों में अंकित है"।[58] सुमेरी परंपरा और भारतीय परंपरा, दोनों जलप्रलय की घटना के एक ही समय की ओर संकेत करती प्रतीत होती हैं। इस घटना के ऐतिहासिक संदर्भ कथा के भारतीय संस्करण में खुलते हैं। मूल घटना, उससे संबंधित जनश्रुति भारतीय है, उसके सुमेरी-सामी रूपांतरण बाद के हैं। इस घटना के कारण जन रूप में भरतों का लोप हुआ, वैदिक संस्कृति के केंद्र का स्थानांतरण हुआ। जलप्रलय की घटना 3100 ई० पू० के आसपास की है। स्पष्ट ही ऋग्वेद की रचना इससे पहले हुई।

भारत में आर्यों का प्रवेश 1500 ई० पू० के आसपास माना गया है। 3100 ई० पू० उससे डेढ़ हज़ार साल पहले है। वह वैदिक काल की शुरुआत नहीं है, वह ऋग्वेद के रचनाकाल की अंतिम सीमा है। हड़प्पा सभ्यता का यह प्रारंभिक दौर हो सकता है। भगवान सिंह मानते हैं कि जलप्रलय की घटना भारत में, सारस्वत क्षेत्र में घटित हुई थी और उसका समय 3000ई० पू० के आसपास है। उनकी महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ इस प्रकार हैं :

1. (क) "मेसोपोटामियाई और बैबीलोनी व इतर कहानियों के कुछ अन्य पहलुओं पर यदि कुछ बारीकी से विचार करें तो इनकी मिथकीय निर्मिति के भीतर जो सूत्र छिपे हैं वे भारत की ओर संकेत करते हैं"।[59]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ख) सुमेरी काव्य "गिल्गमेश् की कथा से भी घटना-स्थल भारत ही सिद्ध होता है।"

2. "यहाँ हम जिस तथ्य पर बल देना चाहते हैं वह यह कि इस घटना से सरस्वती क्षेत्र का संबंध था"।[60]

3. विभिन्न जातियों में प्रचलित कथा के "इन सभी विवरणों से हम इस घटना का काल 3000 ई०पू० के आसपास पाते हैं"।[61]

4. इस घटना के फलस्वरूप सरस्वती क्षेत्र के बहुत से निवासी "इस क्षेत्र को सदा के लिए छोड़कर अधिक सुरक्षित क्षेत्रों की ओर पलायन करने को बाध्य हुए होंगे"।[62]

5. "वैदिक सभ्यता का आविर्भाव सारस्वत् क्षेत्र में होता है, वहीं यह अपने विकास को प्राप्त करती है"।[63]

इन स्थापनाओं से निष्कर्ष यह निकलेगा कि अधिकांश ऋग्वेद की रचना सारस्वत क्षेत्र में हुई और 3000 ई०पू० से पहले हुई। इसके बाद सरस्वती घाटी के सांस्कृतिक केंद्र उत्तर या पश्चिम की ओर नहीं, पूर्व की ओर गए। जलप्रलय से जो भरत बचे, वे कुरू जन में घुल-मिल गए। पुसाल्कर ने ठीक लिखा है : "सभ्यता का वृत्त क्रमशः पूर्व की ओर खिसकता जाता है...पंजाब और पश्चिम का महत्व क्षीण होता है; यही नहीं, शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों में पश्चिम के गणों को हेय माना जाने लगा है। ऋग्वैदिक काल के गणों में परिवर्तन और नए गठबंधन होते हैं...भरत अब प्रमुख स्थान पर नहीं हैं वरन कुरूओं में विलीन हो गए हैं"।[64]

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की मूल धारणा यह रही है कि ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि भाषाओं में बहुत बड़ी समानता है, इसलिए वे एक आदि मातामही भाषा की पुत्रियाँ हैं। पुरातत्वज्ञों ने यह धारणा विरासत में पाई। इसलिए जब हड़प्पा सभ्यता का पता लगा तो रामप्रसाद चंद ने तुरंत उसके ह्रास को विध्वंस मान कर आर्य आक्रमणकारियों को इसके लिए ज़िम्मेदार ठहरा दिया और मार्शल से लेकर अब तक के प्रायः सभी देशी-विदेशी पुरातत्वज्ञों ने मान लिया कि हड़प्पा सभ्यता ऋग्वेद से पहले की है। इस पूर्वाग्रह के कारण वे प्राचीन इतिहास के विवेचन में सरस्वती का महत्व पहचानने में असमर्थ रहे। सरस्वती के पुराने जल मार्ग का पता उन्नीसवीं सदी में ही लग चुका था। किंतु मार्शल व्हीलर, पिगॉट आदि ने बार-बार ऋग्वेद का हवाला देने के बावजूद इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि कुरुक्षेत्र, पंजाब, राजस्थान और सिंध की समृद्धि इस विशद जलराशि वाली नदी पर निर्भर थी। सिंधु की भूमिका गौण है, सरस्वती की भूमिका प्रधान है, यह सत्य वे नहीं देख पाए। सरस्वती का जलमार्ग बदला, पुराना मार्ग प्रायः जलशून्य हो गया, इस उलट-फेर से हड़प्पा सभ्यता के ह्रास का सीधा संबंध था, यह सत्य उनकी आँखों से ओझल रहा।

ऋग्वेद से पहले हड़प्पा, हडप्पा से पहले सुमेर—इस पूर्वाग्रह के कारण वे इस तथ्य का महत्व न पहचान पाए कि जलप्रलय की ओर अथर्ववेद में तो संकेत है, ऋग्वेद में नहीं है। उनकी समझ में जलप्रलय की घटना सुमेर में हुई और वहाँ से वह अन्य देशों में फैली। ऋग्वेद

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में भरत अत्यंत शक्तिशाली जन हैं, फिर वे इतिहास के रंगमंच से गायब हो गए। वैदिक संस्कृति का केंद्र सारस्वत प्रदेश से खिसक कर कुरु-पंचाल देश पहुँचा, उसके बाद उसने आगे खिसकना बंद कर दिया ! यह सब क्यों हुआ ? उन्होंने अपनी विवेचना में इस प्रश्न को उभरने ही नहीं दिया ! इस सब का संबंध कहीं जलप्रलय से हो सकता है, यह बात उनकी कल्पना में आ ही न सकती थी। ऋग्वेद में जिन गणसमाजों का उल्लेख है, उन्हीं के वंशजों ने हड़प्पा सभ्यता का निर्माण किया, यह बात उनके लिए और भी कल्पनातीत थी ! किंतु ऋग्वेद में सरस्वती के भरी होने और हड़प्पाई ह्रासकाल में उसके खाली होने से और कौन सा निष्कर्ष निकलेगा ?

एक बार यह बात समझ में आ जाए कि ऋग्वेद की रचना हड़प्पा सभ्यता के विकास से पहले हुई है, तो प्राचीन भारत, सुमेर और मिस्र के संबंधों को, ऋग्वैदिक संस्कृति और हड़प्पा सभ्यता के संबंधों को, हड़प्पा और मिनोअन सभ्यता के संबंधों को पहचानने में कठिनाई न होगी। मितन्नी ओर हित्ती सभ्यताएँ हड़प्पा सभ्यता के उत्तरकाल अथवा उसके ह्रासकाल की हैं । जिस क्षेत्र को पार करके अप्सु सुमेर पहुँचे थे उसी को पार करते हुए इंद्र, मरुत, मित्र आदि वैदिक देवगण पश्चिमी एशिया पहुँचे । अरायुक्त अश्वकर्षित रथ सुमेर से मिस्र और यूनान नहीं पहुँचा, वह सप्तसिंधु की भूमि से मितन्नी राज्य होता हुआ एक ओर मिस्र, दूसरी ओर लघु एशिया और यूनान पहुँचा है। दूसरी सहस्राब्दी में आर्य पश्चिमी एशिया से भारत में आ नहीं रहे हैं, भारत से उधर जा रहे हैं। आर्य जनों के इस प्रसार को ध्यान में रखें तो भारतीय नदियों के नाम जो भारत के बाहर मिलते हैं, उस पर आश्चर्य न होगा।

बी.के. घोष का विचार है कि रक्षा और सरस्वती, ये दो नाम "आर्य भारत में ईरान से लाए होंगे और यहाँ की दो नदियों को दिए होंगे"।[65] कोसंबी कहते हैं, सरस्वती अब पूर्वी पंजाब की एक छोटी-सी नदी है, "हो सकता है, इसका नाम ईरान की हरह्वैति, जो तिग्लथ् पिलेसर तृतीय के एक अभिलेख में अर्कत्तु है, से स्थानांतरित किया गया हो"।[66] कोई आश्चर्य नहीं, कुछ विद्वानों ने यह कल्पना भी कर ली कि ऋग्वेद के मूल अंश अफ़गानिस्तान और ईरान में रचे गए थे ! ऐतिहासिक तथ्यों की अनदेखी करके अंध पूर्वाग्रहों के बल पर ऐसे ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

संदर्भ

1. पोसेल, एन्शेंट सिटीज़ ऑफ़ द इंडस, पृ० 91.
2. उप०, पृ.० 66.
3. उप०, पृ० 68.
4. उप०, पृ० 262.
5. वाडिया, जिऑलॉजी ऑफ़ इंडिया, पृ० 368.
6. ऐटकिंसन, जिऑलॉजी ऑफ़ द हिमालयाज़, पृ० 78.
7. पोसेल, पूर्वोल्लिखित पृ० viii.
8. वाडिया, पूर्वोल्लिखित, पृ० 368.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

9. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 196.
10. आर० सी० मजूमदार, द वैदिक एज, पृ० 242.
11. उप०
12. उप०।
13. लाल और गुप्त, फ्रंटियर्स ऑफ़ द इंडस् सिविलाइज़ेशन, पृ० 491.
14. उप०, पृ० 496.
15. उप०, पृ० 497.
16. उप०, पृ० 475.
17. उप०।
18. उप०, पृ० 479.
19. उप०, पृ० 480.
20. उप०, पृ० 475.
21. उप०।
22. उप०, पृ० 480.
23. उप०।
24. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 181.
25. मार्शल, मोहेंजोदड़ो ऐंड द इंडस सिविलाइज़ेशन, खंड I, प्राक्कथन।
26. चाइल्ड, न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्शेंट ईस्ट, पृ० 172.
27. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 472.
28. लाल और गुप्त, पूर्वोल्लिखित, पृ० 472
29. उप०, पृ० 482.
30. उप०, पृ० 483.
31. उप०, पृ० 482.
32. उप०, पृ० 483.
33. चाइल्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 172.
34. राव, लोथल ऐंड द इंडस सिविलाइज़ेशन, पृ० 115.
35. क्रैमर, द सुमेरियंस, पृ० 39.
36. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 132.
37. उप०, पृ० 72.
38. उप०, पृ० 156.
39. बिबी, लुकिंग फॉर दिलमुन, पृ० 190.
40. मैकडनल, वैदिक मिथौलौजी, पृ० 86.
41. उप०, पृ० 87.
42. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 247.
43. उप०, पृ० 252.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

44. बरो, द संस्कृत लैंग्वेज, पृ० 44.
45. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 246.
46. उप०, पृ० 253.
47. उप०, पृ० 252.
48. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 46.
49. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 244.
50. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 86-87.
51. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 252.
52. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 139.
53. कोसंबी, ऐन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री, पृ० 111.
54. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ.० 270-71.
55. उप०, पृ० 270.
56. रू, एन्शेंट इराक़, पृ० 110-11.
57. बाइबिल, उत्पत्ति, 6:4-7.
58. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 269-70.
59. भगवान सिंह, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, खंड 2, पृ० 230.
60. उप०, पृ० 232.
61. उप.० ।
62. उप० ।
63. उप०, पृ० 20.
64. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 261-62.
65. उप०, पृ० 219.
66. कोसंबी, पूर्वोल्लिखित, पृ० 84.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

6

देवतंत्र का विकास

क. आपः, मातरः और वरुण

जल स्त्रीरूप हैं, देवियाँ हैं, माताएँ हैं। वे पवित्र हैं, कहीं ठहरे बिना वे निरंतर बहती हैं, मनुष्यों को पवित्र करती हैं (**पुनाना**)। वे आकाश में हैं (**दिव्या**), वे धरती पर प्रवाहित हैं (स्रवनिद), वे मनुष्यों के खोदे हुए कूपों में हैं (खनित्रिमा), निर्भर आदि के रूप में स्वयंभू हैं (**स्वयंजाः**)। वे शुचि हैं, पावक हैं, वे मधु जैसा मीठा पानी देती हैं, ऐसी **आपः देवियाँ** हमारी रक्षा करें (७.४६)। **ऋग्वेद** के सातवें मंडल का यह छोटा सूक्त जल के महत्व की जानकारी देने के लिए काफ़ी है। **अपः** और **आपः** बहुवचन रूप हैं और स्त्रीलिंग हैं। **अपो देवी रुपह्वये**, हम **अपः** देवियों का आह्वान करते हैं (१.२३.१८)। **आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तुः** में आपः माताएँ पवित्र करें। (१०.१७.१०)। **ऋग्वेद** पर पितृसत्ताक समाज व्यवस्था की गहरी छाप है; इंद्र, अग्नि आदि देव सब पुरुष हैं। उपासक उनसे पुत्र माँगते हैं, पुत्रियाँ नहीं। **अपो देवीः** और **आपो मातरः** मातृसत्ताक समाज की देन हैं और इस समाज में अनेक माताएँ एक ही कुटुंब के अंतर्गत हैं। इसी कारण उन्हें बार-बार बहुवचन रूप में याद किया जाता है। यह तथ्य जल संबंधी आस्था की प्राचीनता का द्योतक है ; सामाजिक विकास के आदिम काल में यहाँ जल की उपासना आरंभ हो चुकी है। स्वभावत : संसार में जो कुछ स्थिर है, जो कुछ गतिशील है, उसे जन्म देने वाली यही **आपः** माताएँ हैं: **विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः**। (६.५०.७)।

ऋग्वेद के बड़े प्रभावशाली देवता हैं अग्नि। इन्हें भी **आपः** माताओं ने जन्म दिया है: **तमापो अग्निं जनयन्त मातरः**।(१०. ९१.६)। सविता **ऋग्वेद** के अन्य प्रभावशाली देवता हैं। **अपां नपातम्** कह कर इनकी स्तुति की गई है। (१.२२.६)। वह **अपः** माताओं की संतान हैं। अग्नि को भी इसी शब्दबंध द्वारा याद किया गया है (२.३५)। **अपां नपात** को एक स्वतंत्र देवता भी माना गया है पर जैसा कि मैकडनल ने कहा है, सूक्त (२.३५) के अंत में "जिस देवता का आह्वान किया गया है, वह अग्नि है और उससे (अपां नपात का) तादात्म्य स्वीकार करना चाहिए"।[1] तीसरे मंडल के नवें सूक्त के देवता अग्नि हैं और उसके पहले ही मंत्र में **अपां नपातं** कह कर उनका आह्वान किया गया है। इसके सिवा उन्हें **अपां गर्भः** (१.७०.३) भी कहा गया है; आशय वही **अपां नपात** का है। पितृसत्ताक व्यवस्था क़ायम होने पर अग्नि को द्यावा पृथिवी की, त्वष्टा की, संतान बताया गया और **आपः** की भी। (१०.२.७) अन्य देवताओं में कुछ अदिति से, कुछ पृथिवी से, कुछ **अपः (अदभ्यः)** से उत्पन्न हुए। (१०. ६३. २)। इस शृंखला में पिता नहीं हैं, माताओं की संख्या बढ़ी है। **देव** शब्द

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से प्रकाश का बोध होता है। देवों की उत्पत्ति जल से हुई; इस धारणा में यह भाव निहित है कि सूर्य, चंद्र,ग्रहों, नक्षत्रों की उत्पत्ति जल से हुई है। आपः स्वयं देवियाँ हैं, केवल पूजनीय होने के कारण नहीं, प्रकाशमय होने के कारण भी। उनके लिए शुचि विशेषण का प्रयोग हुआ है, उसमें भी पवित्रता के साथ प्रकाश का भाव है।

चंद्रमा अप्स्वन्तरा, चंद्रमा अपः के भीतर चलता है, सूर्य आकाश (दिवि) में चलता है (१.१०५.१)। संभवतः चंद्रमा का जन्म भी, सविता की तरह, जल में हुआ था। अनेक दिव्य वस्तुएँ देवों और मनुष्यों को जल से प्राप्त होती हैं। अश्विन् देवों को अपने रथ के लिए जल से उत्पन्न घोड़े (ककुहा अप्सुजाताः, १.१८४.३) प्राप्त हुए। अप्सराओं का निवास अपः में होना ही चाहिए। समुद्रिया अप्सरसः सोम के पास पहुँचती हैं (९.७८.३)और स्वयं राजा सोम अपः वसानः, जल से वेष्टित हैं (९.७८.१)। वैदिक कवियों में एक प्रसिद्ध कुल वसिष्ठों का है। इनका जन्म अप्सराओं में हुआ; अप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः ("यह वसिष्ठ अप्सरा से उत्पन्न हुआ"—(सातवलेकर ७.३३.१२)।

अपः से अंतरिक्ष का बोध भी होता है; जो देवियाँ धरती पर हैं, वे आकाश में भी हैं। पर कवियों ने अनेक बार बहुत स्पष्ट कर दिया है कि जिन नदियों, जलों की वे स्तुति करते हैं, वे धरती पर भी हैं अथवा केवल धरती पर हैं। अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः, जहाँ हमारी गायें पानी पीती हैं, उन अपः देवियों का हम आह्वान करते हैं। (१.२३.१८)। गाय को पानी चाहिए और घास भी, ऊँची भूमि पर घास है, नीची भूमि पर पानी है। कवि मनुष्यों से कहता है, "ऊँचे, प्रदेशों में इस गाय आदि पशु के लिए घास आदि पैदा करो, तथा (निवत्सु अपः) निचले प्रदेशों में पानी को सुरक्षित रखो" (सातवलेकर; १.१६१.११)। देवीरूप अपः की पार्थिव सत्ता असंदिग्ध है। अपने जनपद की नदी में स्नान करता हुआ कवि कहता है, आज मैं जलों (आपः) में प्रविष्ट हुआ हूँ, उनके रस से संपृक्त हूँ। १.२३.२३। जलों की विशेषता यह है कि उनसे तन का ही नहीं, मन का मैल भी दूर होता है। कवि प्रार्थना करता है, मुझमें जो भी दुरित, द्रोह भाव, शाप देने का दोष और अनृत हों, उन्हें आपः बहा ले जाएँ।

> इदमापः प्र वहत यत् किंच दुरितं मयि।
> यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्। (१.२३.२२)

इस मंत्र की शब्दशः आवृत्ति दसवें मंडल के नवें सूक्त (१०.९.८) में है। संभव है, इस मंत्र का बहुत चलन रहा हो और स्नान करते समय लोग इसका पाठ करते हों। पहले मंडल के तेईसवें सूक्त के कुछ अन्य मंत्रों की भी पूर्ण अथवा आंशिक आवृत्ति दसवें मंडल के उसी नवें सूक्त में हुई है।

जनसमूह को व्यवस्थित समाज का रूप देने के लिए विधि-निषेध, उचित अनुचित कर्मों, से संबंधित जो धारणाएँ प्रचारित हुईं; उन्हें एक नाम दिया गया ऋत। जो आचरण इन धारणाओं के विपरीत हो, वह अनृत है। ऋत और अनृत की धारणाएँ मूलतः नैतिक हैं,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उनका संबंध मानव समाज से है, उनका उद्भव उस मातृसत्ताक व्यवस्था में होता है जिसमें मातरः आपः की उपासना का चलन है। ऋत का व्यवहार जल के अर्थ में भी होता था। नदियाँ ऋतावरीः, उदकवत्यः (सायण), "जलों से युक्त" (सातवलेकर) हैं। (३.५६.५)। इन जलों को निरंतर प्रवाहित होने की प्रेरणा नदियाँ ही देती हैं: ऋतमर्षन्ति सिन्धवः नदियाँ आलस्यरहित होकर जलों को निरंतर प्रेरित करती हैं (ऋत मुदकमर्षन्ति। आलस्यराहित्येन सर्वदा प्रेरयंति –सायण)।(१.१०५.१२)। फिर यह ऋत नदियों से अलग होकर उन्हें प्रवाहित करने वाली शक्ति बन जाता है: ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने। देवों और मनुष्यों में अंतर यह है कि देव अमर हैं; मनुष्य मर्त्य हैं। देवों से पहले देवियों के अमरत्व की कल्पना की गई है, देवीः आपः अमृताः हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अमरत्व की यह धारणा मानव जीवन की तुलना में नदियों के निरंतर प्रवाहित होने से उत्पन्न हुई है। जो अमृताः, "अविनाशिनी" हैं, वे अमृक्ताः हैं, "अखंडरूप से बहने वाली" हैं और वे बहती हैं ऋत से प्रेरित होकर। (सातवलेकर, ४.३.१२)। उनका जल मीठा है, मधुमय है, अतः वे अमृत स्वरूप हैं। स्वभावतः मनुष्य को स्वस्थ रखने वाली समस्त औषधियाँ जल में हैं। (१.२३.२०)। इन औषधियों के सेवन से कवि अमर नहीं हो सकता, पर वह आपः से प्रार्थना करता है कि ज्योक् च सूर्यं दृशे, बहुत दिनों तक सूर्य को देखने के लिए (ज्योक् चिरं सूर्यं दृशे द्रष्टुं—सायण) स्वस्थ शरीर से जीवित रहे।(१.२३.२१)। सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक मनुष्यों के लिए उनकी माताएँ होती हैं, आपः, इनमें भिषजो मातृतमाः, सर्वोपरि माता चिकित्सक हैं। (६.५०.७)।

ऋत से जो संबंध आपः का है, लगभग वही संबंध(वरुण का (या मित्र)और वरुण का) है। यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि ऋत से आपः का संबंध पहले क़ायम हुआ, वरुण का बाद को। आपः और ऋत का संबंध मातृसत्ताक व्यवस्था की देन है, वरुण और ऋत का संबंध पितृसत्ताक व्यवस्था की देन है। आमतौर से बच्चे माँ से डरते नहीं हैं; जानते हैं, अपराध करने पर भी छोड़ दिए जाएँगे। उशतीरिव मातरः, पुत्र की समृद्धि की कामना करती हुई माँ जैसे उसे दूध पिलाती है, वैसे ही आपः शिवतमो रसः अपना परम सुखदायी रस, कवि चाहता है, हमें इह, इस संसार में, पिलाएँ। (व्याख्या सायण के अनुसार है।) उनसे इतना कहना काफ़ी है, आपः हमारे दुरित और अनृत बहा ले जाएँ।(१०.९.२,८)। वरुण की स्थिति भिन्न है। कवि विद्वानों से अपने पाप के बारे में पूछता है, और उन सब का एक ही उत्तर है अयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते, यह वरुण तुम पर क्रुद्ध हैं। (७.८६.३)। वह मनुष्यों के भले-बुरे कर्मों पर निगाह रखते हैं, पाप के कारण मनुष्य जिस बंधन से बँध जाता है, उससे वह शीघ्र मुक्त नहीं हो पाता। अन्य देवता भी इस बंधन से मुक्ति दिला सकते हैं पर वरुण से ही प्रार्थना करना अधिक लाभदायी होगा। अन्य देवता भी ऋत की रक्षा करने वाले हैं पर उसके विशेष रक्षक और नियामक हैं वरुण। अन्य देवताओं के प्रति अपराध करके मनुष्य पाप के बंधन में बँध सकता है पर यह बंधनमुक्ति का सारा व्यापार वरुण के हाथ में है। इसलिए पाप के बंधनों का नाम है वरुण पाश। और वरुण मूलतः जल के देवता हैं, ऋत और अनृत की जो धारणाएँ आपः पर केंद्रित थीं, वे अब वरुण पर केंद्रित हो गईं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आपः से प्रार्थना करते हुए कवि वरुण को याद करता है:

यासां राजा वरुणो यातिमध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।

जिनके मध्य राजा वरुण गमन करते हैं, मनुष्यों के सत्य और अनृत को देखते हुए, वे आपः हमारी रक्षा करें। (७.४६.६)। वरुण (और मित्र) अनेक सूक्तों में आकाश और सूर्य से संबद्ध दिखाई देते हैं, इसलिए आपः से वरुण के मूल संबंध पर ध्यान देना आवश्यक है। उत्तरकालीन साहित्य में वह समुद्र के देवता हैं: यह ऋग्वेद की मूल वरुण परंपरा का निर्वाह है। वरुण के ऋत से ही नदियाँ प्रवाहित होती हैं (२.२८.४); वे अपने सारे जल से एक समुद्र को नहीं भर पातीं वरुण की माया के कारण (५.८५.६); मित्र और वरुण ऋत के रक्षक हैं और नदियों के स्वामी (सिंधुपती) हैं (७.६४.२); (संभवतः वरुण के समान मित्र का भी मूल संबंध जल से था)। मरुत् आकाश में चलते हैं, वायु अंतरिक्ष में चलता है, विशद जलराशि वाले प्रवाहों में वरुण चलते हैं (**अधियाति वरुणः समुद्रैः**) (१.१६१.१४), सातों नदियाँ वरुण के मुख (अर्थात् समुद्र) की ओर बहती हैं (८.६९.१२)। ऐसा है जल से वरुण का संबंध। आपः प्रत्यक्ष जल हैं, वरुण उसी तरह प्रत्यक्ष जल नहीं हैं,पर वरुण में प्रत्यक्ष जलसत्ता का नितांत अभाव नहीं है। नदियाँ वरुण के मुख की ओर बहती हैं, यह समुद्र से वरुण का तादात्म्य है। आपः प्रत्यक्ष ऋत थीं, वरुण उसी तरह ऋत नहीं हैं, वह ऋत के नियंत्रक हैं, ऋत उनकी शक्ति है। यह ऋत मानव संबंधों के अलावा, सूर्य, चंद्र, ग्रहों, नक्षत्रों, द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी आदि की गति और उनके संबंधों का नियामक भी है। पर जिन बंधनों के प्रसंग में कवि बार-बार वरुण का स्मरण करते हैं, वे मानवीय हैं।

ये बंधन मनुष्य के अंतःकरण की उपज हैं। कवि इंद्र और वरुण से कहता है, तुम मनुष्यों को बिन रस्सी के बंधनों से (**सेतृभिरज्जुभिः**) बाँधते हो। (७.८४.२)। एक सूक्त में कवि सोम और रुद्र से विनती करता है, हमारे शरीरों में ओषधियाँ लगाओ, हमने जो पाप किया है, वह "हमारे शरीरों में बँधा है" (सातवलेकर); उससे हमें मुक्त करो। (६.७४.३)। यहाँ बंधन का अर्थ स्पष्ट है। मनुष्य का पाप ही उसका बंधन है, उसके मन का शुद्ध होना ही शरीर पर ओषधियाँ लगाना है, वरुणपाश से मुक्त होना है। उस सूक्त के अगले ही मंत्र में कवि सोम-रुद्र से कहता है: **प्र वो मुञ्चतं वरुणस्य पाशात्**, हमें वरुणपाश से मुक्त करो। (६.७४.४)। पहले पाप (**एनः**) से शरीर के बँधने की बात कही, फिर वरुण पाश से मुक्त होने की प्रार्थना की; इस तरह वरुणपाश की व्याख्या कर दी। कवि जहाँ वरुण से कहता है, हमारे किए हुए पापों को शिथिल करो (**एनांसि शिश्रथः कृतानि**), वहाँ पाप ही बंधन है, यह आशय स्पष्ट है। (१.२४.१४)। वरुण के पास सैकड़ों हज़ारों ओषधियाँ हैं, वह निर्ऋति को दूर ही रोक दें; यहाँ ओषधियाँ पाप को रोकने के उपाय हैं और इन पापों के समवाय का नाम है निर्ऋति।(१.२४.९)।

वरुण उग्र हैं, सहस्राक्ष हैं, वह नदियों के जलमार्गों पर उनका प्रवाह देखते रहते हैं (७.३४.१०)। आकाश में उड़ते पक्षी, समुद्र (या नदियों) में चलती नावें, सब पर उनकी निगाह रहती हैं। (१.२५.७)। विशीष यह कि वह कर्मरत मनुष्यों को भी बराबर देखते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(१.५०.६)। वह क्रोध में आकर मनुष्य के जीवन का अंत कर सकते हैं। (१.२५.२)। ऐसे में कवि देवता की स्तुति करने के अलावा क्या करें ? "तेरे मन को स्तोत्रों द्वारा विशेष प्रसन्न करते हैं।" (सातवलेकर; १.२५.३)। यहाँ मंत्र की शक्ति से देवता को वश में करने की बात नहीं है, स्तुति से उसे प्रसन्न करने की बात है। अधिकांश ऋग्वेद ऐसी स्तुतियों का संग्रह है। स्तुति के साथ भक्तिभाव से की हुई पाप से मुक्त करने की प्रार्थना है: बछड़े की रस्सी खोलने की तरह मेरे पापों से, मेरे पितरों के पाप से, इस वसिष्ठ को मुक्त करो। ७.८६.५। दास के समान (दासो न) मैं देवता की सेवा करूँगा। (७.८६.७)। स्वामी और सेवक के भेद के बिना इस तरह का भक्तिभाव उत्पन्न नहीं होता, वरुण की उपासना के समय इस तरह का भेद वैदिक समाज में उत्पन्न हो चुका है। मातृसत्ताक व्यवस्था की आपः मातरः का पितृसत्ताक संस्करण हैं वरुण। वह जल से संबद्ध हैं और ऋत के रक्षक हैं, वह मनुष्य को उसके पापों का दंड देते हैं, उसे पापों के बंधन से मुक्त भी करते हैं। फिर वह आकाश और सूर्य से संबद्ध हो जाते हैं। सूर्य उदय होता है, वह मित्र और वरुण का चक्षु है (७.६३.१)। सूर्य के उदय होने पर मित्र और वरुण अपने सुवर्णरथ पर चढ़ते हैं और वहाँ से "पृथ्वी और पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों को" देखते हैं। (सातवलेकर, ५.६२.८)।

ख. वरुण और मित्र

वरुण की तरह मित्र का संबंध भी जल से है। मित्र और वरुण दोनों को सिंधुपती कहा गया है। (७.६४.२)। दोनों का रूप जल का अनुकरण करता है (अथवा जल का रूप उनका अनुकरण करता है) और उन्हीं के कारण प्राचीन काल से नदियाँ प्रवाहित हैं। (५.६२.४)। आकाश से जल बरसाने का श्रेय भी उन्हें है। (५.६२.३)। दोनों ही ऋत के संरक्षक हैं और अनृत का नाश करने वाले हैं।(१.१५२.१)। मित्र का सेवक अर्थात भक्त महापापी हो, तो भी वह, उसके सुख से रहने का उपाय कर देते हैं। (५.६५.४)। मित्र और वरुण मनुष्य के पापों को दूर करते हैं; नदियों को प्रवाहित करते हैं; पापों को दूर करने का एक उपाय नदियों में स्नान है। नदियों के जल से खेती की भूमि सींची जाती है, उनके जल से मनुष्य के तन-मन स्वच्छ होते हैं। इसीलिए मित्र और वरुण एक ओर ऋत के संरक्षक हैं, मनुष्य की नैतिक भावनाओं के प्रतीक हैं, दूसरी ओर वे नदियों के निरंतर बहते रहने के प्रेरक भी हैं।

नदियों के अतिरिक्त वर्षा के जल का भी महत्व है। मित्र और वरुण जिसकी रक्षा करते हैं, "उसे वर्षा द्युलोक से जल बरसाकर पुष्ट करती है।" (५.६३.१)। मित्र और वरुण, "तुम सुंदर मेघों के साथ गर्जना करते हुए रहते हो, तथा अपने बल के सामर्थ्य से जल बरसाते हो।" (५.६३.३)। "वर्षा के जल को आकाश से बरसाने वाले, जल प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त करने वाले, अन्न के स्वामी, ये दोनों मित्र और वरुण देव उदारमन से युक्त होकर विशाल रथ पर चढ़ते हैं।" (५.६८.५)। "वरुण देव ने द्यु, पृथ्वी और अंतरिक्ष के हित के लिए मेघ को नीचे की ओर उसका मुख करके मुक्त कर दिया। उस वृष्टि से सभी भुवनों का स्वामी वह वरुण, बरसात जिस तरह धान्य को पुष्ट करती है, उसी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तरह भूमि को उपजाऊ बनाता है।" (५.८५.३)। (उद्धृत अंश सातवलेकर की टीका से हैं।) यहाँ मनुष्य के भौतिक जीवन से मित्र और वरुण की दैवी कार्यवाही का संबंध स्पष्ट हो जाता है। वैदिक कवि जहाँ रहते हैं, वहाँ नदियों के अतिरिक्त वर्षा भी अत्यंत आवश्यक है। यदि नदियों में पानी कम हो जाए, आकाश से मेघ जल न गिराएँ, तो मानना चाहिए, किसी ने उन्हें अपनी शक्ति से बाधित किया है। देवता जल को प्रवाहित कर सकते हैं तो उनके प्रवाह को रोक भी सकते हैं। कवि के अनुसार एक बार उन्होंने यही किया था।

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन्।। (१०.९८.६)। एक समुद्र (जलों का समवाय) धरती पर है, दूसरा आकाश में है। **आपो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन्**—जलों को "देवों ने प्रतिबंधित कर रखा है" (सातवलेकर), (**निवृताः** अर्थात् **निरुद्धाः** –सायण)। धरती पर हो या आकाश में, देवता जलों के प्रवाह को रोक सकते थे, रोकते थे, इसमें संदेह नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि कोई मध्यस्थ उन तक मनुष्यों की अनुनय-विनय, स्तुति, हवि आदि पहुँचा दे, तो शायद वे अपना प्रतिबंध हटा लें। उद्धृत सूक्त में यह काम **देवापि** ने किया है। "हे देवापि ! तू इस यज्ञकार्य में आकर बैठ। समय-समय पर देवों का पूजन कर और हवि देकर उनको संतुष्ट कर।" (सातवलेकर, १०.९८.४)। परिणाम यह कि ऋष्टिषेण के पुत्र द्वारा प्रवाहित किए जाने पर (सृष्टाः, set free — ग्रिफ़िथ), देवापि द्वारा प्रेरित होकर (**प्रेषिताः**), वे आपः धरती पर बह चलीं (**अद्रवन्**)।(१०.९८.६)।

आपि का अर्थ है मित्र; देवापि हुए देवताओं के मित्र। **ह्ये देवा यूयमिदापयः स्थ**, हे देवों, तुम्हीं हमारे (**आपयः**) मित्र हो। (२.२९.४)। **आपित्वे नः प्रपित्वे**, हमारे साथ (**आपित्व**) मैत्री स्थापित होने पर (८,४.३) **आपित्वमस्ति निध्रुवि**, "तुम्हारी मित्रता न टलने वाली है" (सातवलेकर, ८.२०.२२)। आपि शब्द का मित्र अर्थ करते हुए **मोनियर विलियम्स** ने **ऋग्वेद** के उक्त संदर्भों का उल्लेख किया है। जब देवों ने जलप्रवाहों को प्रतिबंधित किया, तब देवापि ने उनके पास जाकर, उन प्रवाहों को मुक्त कराके, अपना नाम सार्थक किया। मित्र नाम के देव की भूमिका भी कुछ इसी तरह की थी, **मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत्**, मित्र मैत्री भाव से हमारी रक्षा करें। (४.५५.५)। यहाँ सायण ने **मित्रियात्** का अर्थ किया है **मित्र भावे** नःअपादान को उन्होंने करण कारक की तरह प्रयुक्त माना है। अपादान कारक का भाव बदले बिना **मित्रियात्** का अन्य अर्थ संभव है जो **ग्रिफ़िथ** ने किया है: उनके बंधु ने जो क्लेश भेजा है, उससे मित्र हमारी रक्षा करें—"from woe sent by his friend let Mitra save us." मित्र देवता के सबसे बड़े बंधु वरुण हैं। वह पापों का फंदा कस दें, जलप्रवाहों को रोक दें, तो उनके किसी मित्र की मध्यस्थता के बिना जल-प्रवाह मुक्त न होंगे, मनुष्य को बाँधने वाले वरुणपाश ढीले न होंगे। मनुष्यों के लिए ही नहीं, देवों के लिए भी वरुण के पास जाकर **अग्नि** मध्यस्थता करते हैं। कवि अग्नि से कहता है, वरुण तुम्हारे बड़े भाई हैं, उन्हें देवों की ओर प्रेरित करो। (४.१.२)। अग्नि से अपना भी मित्रवाला संबंध मानकर कवि उन्हें **सखे** कहकर संबोधित करता है, उनके मित्र **सखायं** वरुण को अपनी (मनुष्यों की) ओर प्रेरित करने को कहता है। (४.१.३)। और भीः "हमारे ऊपर वरुण देव का जो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रोध है, उसे हमारे ऊपर से दूर कर"। "हमारे ऊपर वरुण के क्रोध को नष्ट कर"। (सातवलेकर, ४.१.४,५)। वरुण (धीता मानुषाणां) वैसे ही मनुष्यों के विचारों की रक्षा करते हैं जैसे (बाड़े में) गायों की रक्षा की जाती है। (८.४१.१)। इस रक्षा कार्य में निगरानी का भाव भी है; मनुष्य के विचार कहाँ उचित हैं, कहाँ अनुचित, वरुण यह सब देखते हैं। कवि अपने और पितरों के बनाए स्तोत्रों से उन वरुण देव को प्रसन्न करना चाहता है जो नदियों के उद्गम स्थान पर जमे हुए हैं; यः सिन्धूनामुपोदये, जो नदियों के पास (उप समीप व उदये उद्गच्छाति—सायण) उनके उद्गम पर स्थित हैं (Him dwelling at the rivers' source—ग्रिफ़िथ)। (८.४१.२)।

वर् अथवा वृ क्रियामूल का अर्थ है घेरना, ढाँकना, रोकना। न यो वराय मरुतामिव स्वनः, मरुतों के गर्जन के समान (न वराय) जो रोका नहीं जा सकता। (१.१४३.५)। वरुण बाड़े में गायों की तरह मनुष्य के विचारों को घेरते हैं, उन्हें अनुचित दिशाओं में जाने से रोकते हैं, वह जलप्रवाहों के स्रोत पर विद्यमान हैं, वहाँ भी वह अपना वरुण नाम सार्थक करते हुए उनकी रक्षा करते हैं। रक्षा करते हुए मनुष्यों के पापकर्मों से क्रुद्ध होकर जलवृष्टि न होने दें,नदियों का प्रवाह रोक दें, तो मनुष्य त्राहि-त्राहि करने लगें। तब वे अग्नि से कहेंगे, जाओ, बड़े भाई को मनाओ, हमारे सखा हो, हमारा काम करो। यदि अग्नि को बार-बार सखा कहा जाए, बार-बार एक ही काम के लिए वरुण के पास भेजा जाए, तो एक ओर वरुण से उनका विशेष मैत्री संबंध मान्य हो जाएगा, दूसरी ओर बार-बार अग्नि नाम लेकर बुलाने के बदले लोग उन्हें सखा ही कहने लगेंगे, जैसे ४.१.३ में अग्नि को सखे कहकर बुलाया गया है, वैसे ही किसी देवता को कविगण मित्र कहकर बुलाते थे। वह मित्र नाम से विख्यात हुए, उनका वास्तविक नाम क्या था, लोग भूल गए। उन्हें विशेष रूप से वरुण के पास ही जाना होता था, इसलिए दोनों का जोड़ा बन गया, एक को याद करने पर दूसरा याद आ ही जाता था। ऋष्टिषेण के पुत्र को देवापि इसलिए कहा गया है कि वह वरुण के पास जाकर उन्हीं पुरातन मित्रदेव की भूमिका निबाहते हैं। यह पुरातन मित्रदेव वरुण की तरह पहले जल से संबद्ध थे, फिर वे वरुण के साथ आकाश और सूर्य से संबद्ध हो गए।

ग. अहिबुध्न्य और वृत्र

जल से संबद्ध अनेक देवता हैं, उनमें एक अहिबुध्न्य हैं। कवि की प्रार्थना है: अहिबुध्न्य हमारा मंगल करें, बच्चे को दूध पिलाने वाली माँ के समान सिंधु (नदी विशेष या कोई नदी) हमारे पास आए। (१.१८६.५)। नदी के बहने से अहिबुध्न्य का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं जान पड़ता। पर उनके नाम पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि ऐसा संबंध है। वह नदियों के बुध्न पर विराजमान हैं, बुध्ने नदीनां रजः सु षीदन्, वह अंतरिक्ष में नदियों के बुध्न पर बैठे हैं। (७.३४.१६)। इसलिए बुध्न्य हैं। बुध्न का अर्थ है आधार, तल, गहराई। अहिबुध्न्य नदी की गहराई में सतह के नीचे पडे हैं, चाहें तो नदी को बहने से रोक सकते हैं। वह कवि का मंगल करना चाहेंगे तो नदी बहती हुई पास आ जाएगी। कवि उनसे डरता भी है: मानोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात्, वह "हमारा नाश न करे।" (सातवलेकर, ७.३४.१७)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ठीक इसी शब्दावली की आवृत्ति ५.४१.१६ में है। वह मनुष्यों का नाश कर सकते हैं, यह धारणा व्यापक रही होगी। भय होने पर कवि अन्य देवों की तरह उनका भी आह्वान करते हैं (१०.६४.४; १०.६६.१)।

इनके साथ अक्सर **अपांनपात** का नाम लिया जाता है। **अहिबुध्न्य** मंगल करें, बच्चे को दूध पिलाने वाली माँ की तरह नदी पास आए और हम वेगवान् अश्वों द्वारा वहन किए जाने वाले **अपांनपात** का स्तवन करें। (१.१८६.५)। **अहिबुध्न्य** नदियों के बुध्न पर बैठे हैं, कवि की प्रार्थना है, वह उसका नाश न करें। (७.३४.१६,१७)। इससे पहले कवि की सलाह है: **अपांनपात सखायं कृध्वं,** अपांनपात को अपना सखा बनाओ। (७.३४.१५) उन्हें सखा क्यों बनाएँ, इसका कारण नही बताया गया पर यह अनुमान तर्कसंगत होगा कि **अहिबुध्न्य** से भय है, इसलिए कोई शक्तिशाली देवता सखा बन जाए, उन तक कवि की प्रार्थना पहुँचा दे, तो सफलता की संभावना अधिक होगी। जो भूमिका वरुण के प्रसंग में मित्र नाम के देवता की है, वही अहिबुध्न्य के प्रसंग में **अपांनपात** की है। और यह अहिबुध्न्य देव इंद्र के प्रसिद्ध शत्रु **वृत्र** से बहुत मिलते-जुलते हैं। **बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्,** वह अंतरिक्ष में नदियों के बुध्न पर बैठे हैं (७.३४.१६), यह स्थिति **अहिबुध्न्य** की है। **अपोवृत्वी रजसो बुध्नमाशयत,** जलों को घेरकर वह अंतरिक्ष की तलहटी में लेटा था (१.५२.६), यह स्थिति वृत्र की है।

अहिबुध्न्य और **वरुण** में समानता यह है कि वैदिक जन उनसे डरते हैं, साथ ही उनकी उपासना भी करते हैं। **अहिबुध्न्य** और **वृत्र** में समानता यह है कि दोनों **अहि** हैं, वृत्र के प्रति कोई आदर या पूजा का भाव नहीं है पर उसकी शक्ति का आतंक बना हुआ है। वृष शक्ति का प्रतीक बना; संभवतः उससे पहले शक्ति का प्रतीक **अहि** था। विस्तृत अंतरिक्ष में हिरण्यकेश अग्नि, **अहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्** गरजते हुए अहि के समान, तीव्र गति वाले वायु के समान हैं। (१.७९.१)। **वायु** देवता हैं, उनसे **अग्नि** की तुलना उचित है, पर तुलना **अहि** से भी की गई है। बड़ी नदियों या समुद्र के निरंतर शब्द करने से यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि इनके भीतर कोई बहुत बड़ा जीव है जो गरजता रहता है। लहरों का उतार-चढ़ाव देखकर विराट सर्प की कल्पना स्वाभाविक थी। **रवीन्द्रनाथ** की **उर्वशी** में इसी तरह समुद्र को लाखों फन वाले भुजंग रूप में कल्पित किया गया है। **अग्नि** और **अहि** में ऊर्जा की समानता है, कवि के मन में कहीं अहि के प्रति भयमिश्रित आदर भाव भी है जिससे वायु के साथ **अहि** को प्रस्तुत करने में उसे संकोच नहीं हुआ। **अग्नि** तो हिरण्यकेश हैं, **अहि** भी प्रकाशवान है; मरुत् **अहिभानवः**, अहि के समान दीप्त हैं। (१.१७२.१)। (इंद्र को अहिशुक्त, अहि के समान तेजस्वी कहा गया है। (५.३३.५)। **मैकडनल** ने तर्कसंगत कल्पना की है कि "मूलरूप में **अहिबुध्न्य अहिवृत्र** से भिन्न नहीं थे यद्यपि उनका आह्वान देवरूप में किया जाता था। वह **अपांनपात** से मिलते-जुलते हैं; उनके दुष्ट पक्ष की ओर संकेत मात्र है"।[2] **अहिबुध्न्य** को जल से उत्पन्न (**अब्जां**) कहा गया है। (७.३४.१६)। **वृत्र** भी नदी पुत्र है। **दानु** शब्द नदी वाचक है, माता के नाम के अनुसार वृत्र **दानु** है, **दानव** है। इंद्र ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

औजायमानं अहि को मारा, अहि दानुशयानं, लेटा हुआ दानव था। (२.१२.११)। ऋग्वेद के अनेक देवों को असुर कहा गया है, दोनों में विरोध नहीं है। पर ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में इस विरोध की स्पष्ट चर्चा भी है। पहले देवअसुर एक थे,फिर वे अलग, एक-दूसरे के परम शत्रु बन गए। इसी तरह संभव है, अहिर्बुध्न्य को अहिवृत्र से अलग किया गया हो; एक देवता बना रहा, दूसरा दानव, असुर, राक्षस कोटि में आ गया।

एक बात निश्चित है, उत्तरकालीन देवकथाओं में देवता जल में निवास नहीं करते, वे निरंतर ऊपर उठते हुए आकाश तक या उससे भी और कहीं ऊँचे पहुँच जाते हैं। जल में असुर, दैत्य, दानव रहते हैं, 'देव' नहीं रहते। महाभारत में वरुण :अपांपतिः: हैं, जलेश्वर हैं (शल्य पर्व, ४७.४.१०)। देवता उनका अभिषेक करते हैं, उन्हें समस्त जलों का स्वामित्व प्रदान करते हैं, फिर वहाँ से चले आते हैं। यद्यपि उन्होंने देव कहकर उन्हें संबोधित किया था (उप०, ४७.७), पर वरुण की भोगवती पुरी में नाग रहते हैं, हज़ार फन वाले शेषनाग भी वहाँ रहते हैं, और वासुकि उस नगरी की रक्षा करते हैं। उसकी तुलना देवराज इंद्र की पुरी अमरावती से की गई है पर वहाँ रहते हैं नाग। (उद्योग पर्व,१०३.१-४)। यहाँ रहने वाले न सर्दी से परेशान होते हैं, न गर्मी से; फल-फूल देने वाले वृक्ष रत्नमय हैं। वरुण की सभा में नाग तो हैं ही, नदियाँ हैं, दैत्य और दानव हैं, और ये अमर हैं (विगतमृत्यवः ; सभापर्व, ९.१६)। यहाँ आदित्य हैं जो वरुण की पूजा करते हैं, गंधर्व और अप्सराएँ हैं जो गाने-बजाने के अलावा वंदना की स्तुति करती हैं। (उप; ९.७.२६)। वरुण यहाँ इंद्र के समकक्ष भोगवती अमरावती के, नाग देवों के समकक्ष हैं। जल में निवास करने वाले नागों क़ी.प्राचीन गरिमा यहाँ सुरक्षित है। अहिर्बुध्न्य इन नागों के पूर्वज हैं, वरुण ने मानों इन्हीं का स्थान लिया है। बहुत संभव है, पहले वरुण नागरूप में ही कल्पित किए गए हों। और वृत्र समान रूप से जल के निवासी हैं; दोनों का नामकरण एक ही वृ् या वृ क्रिया के आधार पर हुआ है। वरुण जब ऋत के सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतिनिधि बने, तब उनके मारक अंश का, अनृत का, उनसे अलग होना अनिवार्य था। इस तरह वृत्र और वरुण पृथक हुए।

महाभारत में वृत्र असुर है, दैत्य है, देवराज इंद्र उसका वध करते हैं, पर उसका विराट आकार और उत्तम रूप देखकर इंद्र की जाँघों को मानो लकवा मार जाता है। (शांति पर्व २८१.१०)। आश्चर्य की बात यह है कि वृत्र को महात्मा, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ कहा गया है। (उप० २८१.१८ वह अंतरिक्ष को आवृत कर लेता है, ठीक वैदिक ढंग से अपना वृत्र नाम सार्थक करता है: ततोऽन्तरिक्ष मावृत्य वृत्रो धर्मभृतांवरः (उप०,)। कृष्ण ने जैसे अर्जुन का मोह दूर किया, लगभग वैसे ही, पर बहुत संक्षेप में, वसिष्ठ ने इंद्र का मोह दूर किया। शिव का तेज ज्वर बनकर वृत्र में प्रवेश कर गया, विष्णु का तेज इंद्र के वज्र में आ गया, तब कहीं इंद्र उसे मार सके। स्वयं शिव ने उसे विश्वात्मा कहा, सर्वत्र गमनशील (सर्वगः) बताया (उप०, २८१.३४), मानों वह वायु अथवा जल के समान महाशक्ति संपन्न कोई आदि तत्व हो। वृत्र अपने में मौलिक रूप में बहुत कुछ ऐसा ही रहा होगा वह महात्मा, विश्वात्मा आदि है, अतः वह भी वरुण के समान ऋत का प्रतिनिधि रहा होगा। आश्चर्य नहीं, उसे मारने के बाद इंद्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को ब्रह्महत्या का पाप लगा !

घ. वरुण और इंद्र

ऋग्वेद में वरुण अत्यंत प्रभावशाली देवता हैं किंतु सर्वाधिक स्तुति इंद्र की होती है। एक तरह से वह वरुण के प्रतिद्वंद्वी हैं, अपनी शक्ति से उन्हें विस्थापित कर देते हैं। एक सूक्त में वरुण और इंद्र अपने-अपने महत्व की घोषणा करते हैं। वरुण का दावा है, वह दो राष्ट्रों के स्वामी हैं; एक राष्ट्र देवों का है, दूसरा मनुष्यों का। उन्हीं की शक्ति से द्यावा पृथिवी क़ायम हैं। (५.४२.१-३)। कहते हैं, मैंने सींचने वाले जलों को प्रवाहित किया, ऋत के स्थान में सूर्य को प्रतिष्ठित किया; ऋत के अनुसार मैंने, अदिति-पुत्र ने, तीन लोकों की भूमि को प्रशस्त किया, ऋत के अनुसार विश्व को संचालित किया। (४.४२.४)। सूर्य जहाँ वर्षा के लिए जल एकत्र करते हैं, वह स्थान ऋत का है। (यहाँ ऋत का अर्थ जल है।) ऋत के अनुसार वरुण आदिति-पुत्र हैं, ऋत के अनुसार वह संसार का संचालन करते हैं। यहाँ ऋत प्रकृति और मानव समाज के नियमों का समवाय है। वरुण ऋत के सबसे बड़े अधिष्ठान हैं। इंद्र का दावा है, संग्राम में वीर मेरा आह्वान करते हैं,देवों की शक्ति मुझे रोक नहीं सकती। मैं सोम पीकर आनंदित होता हूँ तब द्यावा पृथिवी दोनों भयभीत होते हैं। (४.४२.५-६)। कवि इनके द्वंद्व में न फँसकर दोनों की स्तुति करने लगता है। वरुण को ऋत का भरोसा है, इंद्र को अपनी शक्ति पर विश्वास है। दोनों में यह अंतर है। वास्तव में वरुण के सामने स्पर्धा भाव से इंद्र का अपने महत्व की घोषणा करना ऋत की अवहेलना है।

इंद्र वरुण से कहते हैं :

निर्माया उत्ये असुरा अभूवन् त्वं च मा वरुण कामयासे।
ऋतेन राजन्नृतं विविञ्चन् मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि।

ये असुर मायाहीन (शक्तिहीन) हो गए हैं। हे वरुण, तुम मुझे चाहते हो। ऋत के द्वारा अनृत को अलगाते हुए मेरे राष्ट्र के आधिपत्य में आओ। (१०.१२४.५)। यहाँ पुराने देवों को असुर कहकर उन्हें नए देवों से अलग किया गया है, साथ ही ऋत से वरुण का विशेष संबंध स्वीकार किया गया है। वरुण वह संबंध बनाए रहें, ऋत से अनृत को अलग करते रहें किंतु सार्वभौम प्रभुत्व इंद्र का स्वीकार करें। अपनी शक्ति पर दृढ़ विश्वास करने वाले इंद्र ने वरुण से यह न कहा होगा, मैं अपने राष्ट्र का अधिपत्य तुम्हें सौंपता हूँ। आशय इंद्र द्वारा अपनी प्रभुसत्ता की घोषणा होगा। इसके साथ ही अग्नि वरुण से नाता तोड़कर इंद्र की ओर आते प्रतीत होते हैं: अयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि, "अयज्ञीय प्रदेश से मैं यज्ञीय स्थान में आता हूँ" (सातवलेकर, १०.१२४.३)। अयज्ञीय प्रदेश या तो वरुण का है या वृत्र का है, इनके अलावा और किसका हो सकता है ? यज्ञीय स्थान के बारे में संदेह नहीं, वह स्थान इंद्र का है।

कहते हैं, देवों के लिए हवि ढोते-ढोते अग्नि ऊब गए और भागकर जल में छिप गए। वहाँ उन्होंने वरुण से कहा, "हे वरुण देव ! मैं हविवहन कार्य से भय करता हुआ आ गया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हूँ; मुझे इस प्रकार इस कार्य में देवता लोग नियुक्त न करें, यह मैं चाहता हूँ; उस कारण मैंने मेरा शरीर अनेक प्रकार से जल में छिपाया है; इस हविवहन: कार्य को अग्नि मैं करना नहीं चाहता।" (सातवलेकर, १०.५१.४)। अग्नि को हविवहन कार्य पसंद नहीं था, इसका अर्थ यह है कि समाज में कुछ लोगों को यह कार्य पसंद नहीं था। अग्नि को इस कार्य से भय था, अर्थात् इंद्र और उनके देवों से भय था। वरुण के यहाँ उन्हें शरण मिली। वरुण और अग्नि में वैर भाव न था। प्राचीन ऋत के उपासक अग्नि को पवित्र मानते थे, वरुण का प्रभुत्व स्वीकार करते थे। वे इंद्र के उपासकों से अलग हो गए हों तो आश्चर्य नहीं।

संभव है, उपास्य देवों में जब तक वरुण की प्रधानता थी तब तक यज्ञ का विशेष महत्व न रहा हो। **अयज्ञीय** को छोड़कर अग्नि **यज्ञीय** के पास आए, इससे ज्ञात होता है कि यज्ञ का महत्व बढ़ा, देवों में प्रधानता इंद्र की हुई। अग्नि कहते हैं, **इंद्रं वृणानः पितरंजहामि**, इंद्र को वरण करता हुआ अपने पिता को त्याग देता हूँ (१०.१२४.४)। पितारूप में यहाँ वरुण ही सार्थक हैं। इंद्र का वरण करते हुए अग्नि ने किसी शक्तिशाली देव को छोड़ा। वह वरुण ही हो सकते हैं। वरण करना अर्थात चुनना; जनता अपने राजा को चुनती है। **विशो न राजानं वृणानाः** (१०.१२४.८)। जन यथा राजा का वरण करते हैं। अग्नि की उक्ति—**इंद्रं वृणानः**, इंद्र का वरण करता हूँ। दोनों जगह एक ही क्रिया है, उसका एक ही अर्थ है। **अग्नि ने वरुण को छोड़ा, इंद्र को** अपना राजा माना।

खेती के लिए सबसे आवश्यक वस्तु जल है। वह बादलों से प्राप्त होता है, नदियों से भी। मुख्य साधन नदियाँ हैं। इनके जल पर्वतों में बंद हैं। पर्वत तोड़कर, पत्थर हटाकर, देवता नदियों को प्रवाहित करते हैं। इंद्र ने **पर्वतं महानुरुं**, महाकाय पर्वत को वज्र से छिन्न-भिन्न कर दिया, **निकृताः**, अवरुद्ध जलों को प्रवाहित किया। (१.५७.६)। **वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार**, इंद्र ने वृत्र को मारकर बंद द्वार खोल दिया। (१.३२.११)। वृत्र अवरोध है, **अपववार** द्वारा उस अवरोध को हटाने की बात कही गई है। **इन्द्रो यद् वृत्रमव धीनदीवृतम्**, वृत्र नदीवृत है, नदी के प्रवाह को रोकने वाला है। इंद्र ने **उब्जन्नर्णांसि** जलों को बहाते हुए उसका वध किया। (१.५२.२)। वृत्र **अपःवृत्वी**, जलों को रोककर उनके उद्गम पर लेटा हुआ था, उन्हें **प्रवणे**, बहाने के लिए, इंद्र ने उसे मारा। (१.५२.६)। जैसे बिजली वृक्ष का नाश करती है, वैसे ही इंद्र ने **अपोवव्रिवांसं वृत्रं जघान** जल को रोकने वाले वृत्र का नाश किया। (२.१४.२)। इन उदाहरणों में **निवृताः, ववार, वृतम, वृत्वी, वव्रिवांस** में एक ही क्रिया वृ का प्रयोग किया गया है। इस क्रिया का अर्थ है रोकना। **वृत्र** में यही क्रिया है। जलों के प्रवाह को जो रोके वह वृत्र है।

जलमार्ग में अवरोध एक हो सकता है, अनेक हो सकते हैं। इंद्र ने निन्यानबे **वृत्राणि**, वृत्रों को, मारा। (१.८४.१३)। अन्य देवता भी वृत्र अथवा वृत्रों को मार सकते हैं। बृहस्पति ने **घ्नन् वृत्राणि**, वृत्रों को मारा। (६.७३.२)। इंद्र इस कार्य के लिए अधिक विख्यात हुए। अवरोधों के लिए वृत्र के अलावा शंबर, वल आदि शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। बृहस्पति ने अपने ओज द्वारा **शम्बराणि**, शंबरों का नाश किया। (२. ४.२)। जल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पर्वतों में बंद हैं, पर्वत और उनकी शिलाएँ ही अवरोध हैं। पर्वत दुर्ग के समान हैं। इंद्र इन दुर्गों को ध्वस्त करके जलों को मुक्त करते हैं। ये जल ही दुर्गों में छिपाकर रखी हुई गायें हैं, संपदा हैं।

इंद्र ने सोम पीकर **अन्तरश्मनः** पहाड़ों मं बंद गायों को मुक्त किया। (६.४३.३)। यहाँ गायें जल हैं: जलप्रवाह की मुक्ति **अवासृजः** क्रिया से व्यंजित है। कवि की मंगलकामना है: **प्रधेनव उद प्रतोनवनन्त**, जल से भरी नदियाँ सदा बहती रहें। (७.४२.१), यहाँ धेनु शब्द का स्पष्ट प्रयोग नदी के लिए किया गया है। बृहस्पति ने वृत्रों को मारा, **पुरोदर्दरीति** दुर्गों को ध्वस्त किया। (६.७३.२)। उसके बाद **समजयद्व वसूनि**, बहुत सी संपत्ति पर अधिकार किया, **महोव्रजान् गोमतः** गायों से भरे बाड़े पर अधिकार किया, **अपः सिषासन्नुत्स्वः** आकाश से जल ले आए। (६.७.३.३)। **अपः** शब्द से दुर्ग, संपदा, गायों आदि का अर्थ समझ में आ जाता है।

जो पत्थर जलों को ढँके हुए हैं, वे दुर्ग हैं, कारागार हैं। बृहस्पति अपने मित्रों के साथ कारागार के चट्टानी अवरोधों को तोड़ देते हैं ("bursting the stony barriers of the prison"—Griffith, १०.६७.३)। इंद्र ने वृत्र को मारा, **रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्**, दुर्गों को ध्वस्त किया, नदियों को प्रवाहित किया। (१०.८९.७)। दुर्गों को ध्वस्त इसलिए किया जाता है कि नदियाँ प्रवाहित हों। दुर्ग और पर्वत अभिन्न हैं। **रुवदरुग्णं वि वलस्य सानुं**; वल का जो अटूट शिखर था, उसे इंद्र ने तोड़ दिया।'१.३९.२। यहाँ सानु पर्वत का अभिन्न अंग है, वैसे ही दुर्ग हैं। इंद्र नदियों के लिए पर्वतों को तोड़कर मार्ग बनाते हैं: प्रवक्षणा **अभिनत् पर्वतानाम्**। (१.३२.१)। जिस अहि को इंद्र मारते हैं, वह पर्वत पर लेटा है, उसके मारे जाने के बाद जल वेग से समुद्र की ओर बह चलते हैं। (१.३३.२)। इंद्र जिस शंबर का वध करते हैं, वह पर्वतों में रहता है। (२.१२.११)।

वल के पास बहुत सी गायें थीं; इंद्र ने उसके बिलम्, गुफाद्वार को खोल दिया। **निधिं पराठिनां परमं गुहाहितम्**, पणियों की श्रेष्ठ निधि गुफा में छिपाकर रखी हुई है। (२.२४.६)। उनका जो बिल, गुहाद्वार, बंद था, उसे इंद्र ने खोल दिया।(१.३२.१६)। इंद्र ने **दुरः पणीनां**, पणियों के द्वार खोल दिए। (७.९.२)। गुफा, बिल, द्वार आदि प्रकृति के एक वास्तविक प्रपंच की ओर संकेत करते हैं। उसे हम **ग्लेशियर** कहते हैं।

ब्रिटिश फौजी अफसर(**स्ट्रैची**)को विंदार नदी का ग्लैशियर इस रूप में दिखाई दिया था। एक भारी गोलाकार पिंड, "उसके निकटवर्ती पद प्रांत से नदी की पंकिल धारा एक तरह की गुफा से तेजी से बाहर निकलती है। गुफा का शिरोभाग पानी की सतह से कुछ ही फुट ऊपर हैं। नदी को यहाँ भी चलकर पार नहीं किया जा सकता। नदी के उद्‌गम के ठीक ऊपर का सिरा एकदम खड़ी चढ़ाई का है और मटमैले काले रंग का है। उसमें काफी दरारें हैं। ये नीचे वाले भागों से शुरु होती हैं और लगता है, अपने ही बोझ के कारण ऊपर वालों से उन्होंने स्वयं को विभक्त कर लिया है। नजदीक से देखने पर पता चलता है, यह खड़ा सिर रेत और रोड़ी से ढकी बरफ की सतह है। उसके पिघलने से जो पानी बहता है,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उसकी धारा से उस पर विचित्र प्रकार की धारियाँ बन जाती हैं। इसके पीछे कम खड़ी चढ़ाई वाली ग्लेशियर की भरपूर उठान है। नदी जहाँ गुफा से बाहर होती है, वहाँ पानी की सतह से ऊपर उसकी उठान संभवतः 500 फुट के लगभग है। वह रोड़ी की नंगी पहाड़ी जैसा लगता है। किंतु कुछ स्थानों पर खड़ी और पड़ी, दोनों तरह की भारी दरारें दिखाई देती हैं, इनमें पड़ी दरारें स्पष्ट ही उन परतों के अलगाव से बनी हैं जिनका नियमित स्तरीकरण हुआ था''।[3]

बीसवीं सदी में प्रसिद्ध भूविज्ञानी **डी०ऐन० वाडिया** ने हिमालय के ग्लेशियरों के बारे में लिखा था : ''गर्मी के दिनों में सतह पर काफ़ी बरफ रहती है। दरारों से उतरता हुआ पानी काफ़ी मात्रा में बरफीले और नीम बर्फ़ीले प्रवाह को जन्म देता है। संचित प्रवाह से एक हिमसरिता निर्मित होती है। वह एक बड़ी सुरंग से होकर बहती है, नदीमुख (snout) पर उस (सुरंग) का द्वार (opening) हिम-गुफा जैसा लगता है''।[4] नदी का उद्गमस्थल गुफा जैसा लगता है, यहाँ भी इस प्रतीति की पुष्टि हुई है। **हिमेनाविध्यदर्बुदम्**, हिम से अर्बुद को बेध दिया। (८.३२.२६); यहाँ वृत्र के स्थान पर अर्बुद है, वज्र के स्थान पर हिम है। इंद्र ने हिम से अर्बुद को बेधा। यह कार्य ग्लेशियर के अतिरिक्त और कहाँ संपन्न होगा ? **ऋग्वेद** में **पणि** आदि गायों को छिपाकर इसी गुफा के भीतर रखते थे। इंद्र ने सोम की सहायता से मनुष्य के लिए जलों को प्रवाहित किया, अहि को मारा, सातों नदियों को मुक्त किया, मुँदे हुए द्वारों को खोल दिया। (८.२८.१)। गायों और घोड़ों को बंद रखने वाला बाड़ा टूटा; पत्थर से मुँदे हुए स्थान से इन्हें इंद्र और सोम ने मुक्त किया (८.२८. ५)। यहाँ पत्थर पूरा पहाड़ नहीं है, उसका एक भाग है जो भीतर गुफा में जलों को रोके हुए है। इंद्र वृत्र का सिर काटते हैं (१.५२.१०), अर्बुद का सिर काटते हैं (८.६७.१२), ऐसे स्थलों पर दानव का सिर गुहाद्वार पर रखा पत्थर हो सकता है।

कवि इंद्र से कहता है, वृत्र की दाढों को तोड़ दो (१०.१५२.३)। यहाँ हनू सायण के अनुसार कपाल प्रांत हैं। पूरा सिर नहीं, सिर का एक भाग तोड़ना है जिसका निकटतम संबंध गुहाद्वार से है। अन्यत्र इंद्र वज्र से वृत्र की ठोड़ी को तोड़ते हैं और जलों को प्रवाहित करते हैं। (१.८०.५)। यहाँ **सानु सायण** के अनुसार हनुप्रदेश है। उस पर प्रहार करके गुहाद्वार को खोल देना इंद्र का लक्ष्य है। वृत्र पर्वत का एक भाग है। वह गिरता है तो सायण के अनुसार नदियों के किनारे, वहाँ के पाषाण आदि चूर-चूर हो जाते हैं। (१.३२.६)। पर्वत से भिन्न वह गुफा में पड़ा हुआ अहि है, वहाँ वह जलों को रोके रहता है। (२.११.५)। इसी सूक्त में उसे **सिन्धुमाशयानं**, जलों में लेटा हुआ कहा गया है। (२.११.६)। शयान, आशयान, ये शब्द अहि के साथ अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। इंद्र ने ओजायमान अहि को, लेटे हुए दानव (**दानुं शयानं**)को मारा। (२.१२..११)। जल को घेरे हुए **बराहु** को, लेटे हुए वृत्र (**वृत्रम् आशयानम्**) को इंद्र ने मारा। (१.१२१.११)। इंद्र ने जलों पर लेटे हुए (**परिशयानम्**)। अहि को मारा और जलों (**अपः**) को समुद्र की ओर बहने दिया। (६.३०.४)। नदियों की मुक्ति का अर्थ उनका समुद्र की ओर बहना है। विचारणीय है कि कल्पित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आदिवासियों का यह नेता हमेशा लेटा रहता है। लड़ता है, तब भी **शयानम्** है (१.१२१)। मार खाता है तब **अशयत्** (१.३२.७), मर गया तब **शयते** (१.३२.५)। एक बार मारे जाने से कार्य समाप्त नहीं होता, उसे बार-बार मारना जरूरी होता है। रात्रि में अंधकार, फिर सूर्योदय और प्रकाश, इसी तरह के चक्र की कल्पना कवि जलों के बारे में करते हैं। उन्हें प्रतिदिन अवरोधों का सामना करना होता है, इनके हटाए जाने पर ही वे मुक्त भाव से प्रवाहित होते हैं। इस संदर्भ में **मैकडनल** की टिप्पणी ध्यान में रखने योग्य है : "अनेक बार इंद्र का वर्णन यों किया जाता है कि वह वर्तमानकाल में वृत्र को मारते हैं या उनका आह्वान किया जाता है कि वह ऐसा करें। इस तरह उन्हें युद्ध का निरंतर नवीकरण करते देखा गया है। कथारूप में यह प्राकृतिक प्रपंचों के निरंतर नवीकरण को प्रतिबिंबित करता है। अनेक प्रभातों और शरदों तक वृत्र को मारने के बाद इंद्र ने धाराओं को मुक्त बहने दिया है (४.१६.८) अथवा उनका आह्वान किया जाता है कि भविष्य में वह ऐसा करें।" **आपः मातरः** वेग से बहें, इसलिए हे इंद्र, वृत्र को मारो।(८.८६.४)। इंद्र का महत्व आपः की मुक्ति के कारण है इस महत्व का नित्य नवीकरण होता है।

इंद्र अंतरिक्ष में रहते हैं, वहाँ से वह बिजली गिराते हैं, यही वज्रपात है। वज्र सुनहला हो, यह स्वाभाविक है। (१.५७.२)। इंद्र से प्रार्थना है, आकाश से पत्थर गिराओ, पर्वत से (**पर्वतेन**) राक्षसों को मारो। (१.१०४.१६)। जो ओले गिरते हैं, वे पत्थर हैं, पर्वतखंड हैं। लेकिन यह वज्र समुद्र के भीतर पड़ा है, **शयते** वृत्र के ही समान; और वह जल से घिरा है। आगे बढ़ने वाले जलप्रवाह (**पुरः प्रस्त्रावणाः**) उसे बलि अर्पित करते हैं।(८.१००.६; सायण ने शत्रुओं को बलि अर्पित करते बताया है जो संदर्भ के अनुरूप नहीं है)। अनेक नदियाँ हैं, उनके प्रवाह को रोकने वाले अनेक वृत्र हैं, इन वृत्रों को मारने वाले अनेक वज्र हैं। हे इंद्र, तुम्हारे वज्र (**वज्रासः**) नब्बे नदियों में स्थित हैं। (१.८०.८)। नाव से जिन्हें पार किया जाए, वे **नाव्याः** अर्थात् नदियाँ हैं। उनमें या उन्हीं के पास वज्र पड़े हैं। इसी सूक्त में इंद्र को **वज्रिन्** के साथ **अद्रिवः** भी कहा गया है। (१.८०.७)। अद्रि पर्वत हैं, प्रस्तरखंड हैं। वही नदियों में पड़े हैं। वरुण भी **अद्रिवः** हैं। (७.८६.२)। बृहस्पति **अद्रिभित्** हैं, पर्वत या पर्वतरूप दुर्ग को तोड़ते हैं। (६.७३.१)। अद्रि को, वृत्र को भले ही आकाश में टिका दिया जाए, धरती से उसका संबंध टूट नहीं सकता। वज्रधारी इंद्र ने अहि को **पृथिव्याः निः शशाः**, पृथिवी से दूरकर दिया। (१.८०.१), वृत्र को मारा और "उसे जल से बाहर निकाल दिया।" (सातवलेकर, १.८०.२)। ये जल उसी पृथिवी से संबद्ध हैं जिससे वृत्र को दूर किया गया है। यदि वज्र जल में हैं, तो वज्रधारी इंद्र इस जल से दूर कैसे रहेंगे ? वरुण के समान वह भी पहले जल में रहे होंगे, फिर वरुण के समान वह भी आकाश में पहुँचे होंगे। आकाश में पहुँचने से पहले वृत्र से उनका युद्ध जल के भीतर ही होता रहा होगा। **मैकडनल** के अनुसार केवल इंद्र को **अप्सुजित्** ("conquering in the waters" जलों के भीतर विजय प्राप्त करने वाला) कहा गया है। इंद्र का वज्र जल में था, वह भी जल में थे।

खेती के लिए नदी-जल के अतिरिक्त वर्षाजल भी आवश्यक होता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वृष्टि से जैसे धान्य पुष्ट होता है, वैसे ही आकाश से जल बरसाकर वरुण भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। (५.८५.३)। ऐसा ही काम इंद्र का है। **शुष्मन्तं वृत्रं**, "शोषण करने वाले वृत्र को" इंद्र ने मारा और "भूमि को मुक्त किया" (१.६१.१०; सातवलेकर ने **अवनीः** का अर्थ भूमि किया है जो ठीक लगता है, सायण ने जल किया है।) वृत्र ने सूखा बनकर धरती को घेर लिया, उससे इंद्र ने धरती को मुक्त किया। वृत्र को **शुष्मन्त** कहने से जिस क्रिया का बोध होता है, उसें शुष्ण नाम देकर, वृत्र से अलग करके भी, कवि ने स्पष्ट किया है। शुष्ण को **कुयव** कहा गया है। (७.१९.२)। वह फसल को खराब करता है, वह सूखे का राक्षस है। **ऋग्वेद** में वर्षा की तुलना में नदियों के जल का महत्त्व अधिक है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि नदियों से नहरें निकालकर सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है। इंद्र ने जलों के बहने के लिए खोदकर मार्ग बनाया (७.४७.४), वरुण ने सिंधु के लिए खोदकर मार्ग बनाया और यह नदी शस्यशाली प्रदेश की ओर चली। (१०.७५.२)। पहले मनुष्यों ने जल-मार्ग बनाए, फिर अपना यह काम उन्होंने देवों पर आरोपित कर दिया। खोदकर बनाए मार्ग से नदीजल जिस प्रदेश की ओर बहता है, वह शस्यशाली है, यह बात ध्यान देने योग्य है।

कोसंबी का मत है कि आर्यों से पहले सिंधु सभ्यता के लोग खेती के लिए नदियों की बाढ़ पर निर्भर थे। बाढ़ के पानी के साथ उपजाऊ मिट्टी फैल जाती थी और वहाँ वे फसल उगाते थे। छोटी नदियों में वे मौसमी कच्चे बाँध बनाते थे, फिर उनका पानी नदी तट भूमि पर फैल जाने देते थे। "आर्यों ने इस बाँध व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया, इस तरह प्रदेश की खेती को तबाह कर दिया, और अधिक समय तक शहरी जीवन के चालू रहने अथवा शहरी आबादी को जिलाए रखने की संभावना खत्म कर दी।" विडंबना यह कि बाँध तोड़ने वाले यही आर्य अपने देवों से खेती के लिए जल की निरंतर माँग करते थे ! जहाँ **रोधांसि कृत्रिमाणि** को तोड़ने की बात कही गई है, वहाँ खेती का इलाका है ही नहीं, पहाड़ है, वल और उसके दुर्ग हैं। अंगिरा ऋषियों से प्रशंसित इंद्र ने **भिनद्व वलं**, को तोड़ दिया; **पर्वतस्य दृंहितानि**, पर्वत के सुदृढ़ स्थलों को खोल दिया; **रिणग् रोधांसि कृत्रिमाणि**, दानव द्वारा निर्मित अवरोधों को विच्छिन्न कर दिया। (२.१५.८)। ये अवरोध नदी के उद्गम स्थल पर हैं, उसके मैदानी जलमार्ग पर नहीं।

ये सारे पहाड़ और दुर्ग इसलिए तोड़े जाते हैं कि इनके भीतर जो जलसंपदा भरी है, वह बाहर आ जाए; गुफा द्वारों पर शिलाखंडों से नदियों को रोका गया है, वे मुक्त होकर प्रवाहित हों। इंद्र का दुर्गध्वंसक कार्य **आपः मातरः** की उपासना से अलग करके विश्लेषित नहीं किया जा सकता। इंद्र के पराक्रम की सार्थकता इन माताओं को मुक्त करने में है। इसीलिए इंद्र के विशद स्तवन के साथ इनकी उपासना क़ायम रहती है। समुद्र जिनमें ज्येष्ठ है, जल के मध्य स्थान से जो चलती हैं, कहीं रुकती नहीं हैं, जो सबको पवित्र करती हैं, वज्रधारी बलवान इंद्र ने जिनके लिए मार्ग बनाया है, **ता आपो देवीरिह मामवन्तु**, वे आपः देवियाँ **इह**, इस लोक में, मेरी रक्षा करें। (७.४९.१)। यहाँ इंद्र के सारे कर्म सार्थक हैं **आपः**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देवियों के संदर्भ में। अन्य मंडलों की अपेक्षा दसवाँ मंडल बाद की रचना माना जाता है। इसमें दो पूरे सूक्त **आपः** को संबोधित करके रचे गए हैं। **ऋग्वेद** के रचनाकाल के किसी भी दौर में **आपः मातरः** की उपासना समाप्त नहीं होती।

ङ इंद्र और बृहस्पति

इंद्र तथा अन्य देवता जलप्रवाहों को मुक्त करते हैं, वे प्रकाश को भी मुक्त करते हैं। वरुण ने नदियों के लिए मार्ग बनाया, उन्होंने सूर्य के लिए भी मार्ग बनाया। (७.८७.१)। बृहस्पति जल ले आते हैं, वह अंधकार का नाश भी करते हैं।

बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः (६.७३.३)। मित्र सूर्य है अमित्र अंधकार है ; इस अंधकार का नाश बृहस्पति अपनी किरणों से करते हैं। जल और प्रकाश की मुक्ति एक साथ होती है। बृहस्पति ने गायों को बाहर निकाला और उन्हें आकाश में बिखर जाने दिया। (२.२४.१४)। **मैकडनल** कहते हैं : "He drove out the cows and distributed them in heaven." वह बादलों में पहुँचकर गायों को खूब ज़ोर से पुकारते हैं : "Being in the clouds (**abhriya**) he shouts aloud after the many cows." (१०.६८.१२)। गायें जल के अतिरिक्त प्रकाश की सूचक भी हैं। प्रकाश भौतिक है, नैतिक और मानसिक भी।

एक मंत्र में इन गायों के बारे में विशेष जानकारी दी गई है। वे गुफा में हैं और अनृत के बंधनों (**अनृतस्य सेतौ,** "bonds of falsehood"—**ग्रिफ़िथ**) में फँसी हुई हैं। बृहस्पति के बारे में बहुत स्पष्ट कहा है : **बृहस्पति स्तमसि ज्योतिरिच्छन्,** "Brihaspati seeks light amid the darkness"— **ग्रिफ़िथ,** "बृहस्पति ने उस अंधकार में प्रकाश पाने की इच्छा करके वहाँ रखी गायों को बाहर निकाला है" **सातवलेकर** (१०.६७.४)। बृहस्पति गायें ढूँढ़ते हैं, प्रकाश पाने की इच्छा भी करते हैं। गायें निकलती हैं, प्रकाश भी फैल जाता है। अनृत के बंधन टूट जाते हैं। ऋत है प्रकाश, अनृत है अंधकार। प्रकाश पाने की इच्छा मनुष्य के मन में पैदा होती है। कवि के छंद में जल, प्रकाश और मन, तीनों की कार्यवाही एक साथ लक्षित है। इन तीनों को ध्यान में रखे बिना गायों की व्याख्या नहीं हो सकती। कुछ संकोच के साथ, इनमें दो से, गायों का संबंध **मैकडनल** स्वीकार करते हैं : "These cows may represent the waters, which are expressly mentioned (२.२३.१८; ६.७३.३) or possibly the rays of dawn (cp. १०.६७.५,६८.६)." [हो सकता है, गायें जलों की प्रतिनिधि हों, जलों का स्पष्ट उल्लेख है (२.२३.१८; ६.७३.३) अथवा संभव है, उषा-किरणों की प्रतिनिधि हों (तुलनीय १०.६७.५,६८.६)।] और भी: "गायों को मुक्त करने में बृहस्पति अंधकार में प्रकाश खोजते हैं और प्रकाश उन्हें मिल जाता है। उन्हें प्रभात, प्रकाश और अग्नि मिले, और उन्होंने (बृहस्पति ने) अंधकार को दूर कर दिया (१०.६८.४,६)। दुर्ग को ध्वस्त करने में उन्हें प्रभात, सूर्य और गायें मिलीं।(१०.६७.५)।" **विभिद्यापुरम्,** यह वही पुर है जिसे बार-बार ध्वस्त करने से इंद्र को **पूर्भिद** कहा गया है।

बृहस्पति ने दुर्ग को ध्वस्त करके प्रकाश प्राप्त किया; **मैकडनल** के अनुसार उनमें युद्ध

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करने वाले की विशेषताएँ आ गईं। ऐसा कौन सा काम है जो इंद्र करते हैं बृहस्पति नहीं करते ? वह अपनी इच्छाशक्ति से, मन्यु से, वे सारे काम कर लेते हैं। **ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः**, महान् कर्म करने वाले बृहस्पति का मन्यु उसकी इच्छानुसार सत्य हुआ। (२.२४.१४)। मन्यु साधारण क्रोध नहीं है, वह असाधारण इच्छाशक्ति है, इसीलिए **यथावशं** सत्य में परिणत होता है। बृहस्पति ने अंधकार में प्रकाश पाने की इच्छा की, **ज्योतिरिच्छन्**,(१०.६७.४), मन्यु का संबंध इसी इच्छा क्रिया से है। उनके पास धनुष है पर इसकी डोरी है ऋत; इस ऋत वाली डोरी के, **ऋतज्येन**, धनुष से, **धन्वना**, जहाँ भी चाहते हैं (**वष्टि**), लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। (२.२४.८)। बृहस्पति कवि हैं, गायक हैं; **बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु**, ऋक्व (स्तोता) बृहस्पति सामगीतों से अर्चना करें। (१०.३६.५)। लोग बृहस्पति को **देवानां पितरम्** ("Father of the gods"—ग्रिफ़िथ) कहकर पूजते हैं। (२.२६.३)। देव कवियों की सृष्टि हैं, जो काम देव कर सकते हैं, उन्हें कवि भी कर सकते हैं। सामगायक बृहस्पति ही इंद्र के समकक्ष नहीं है; अन्य कवि भी वैसे ही काम कर सकते हैं। कवि अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए गर्व से कहता है: हमारे अङ्गिरा नामक पितरों ने शब्द से ही (**रवेण** पर्वत को तोड़ दिया (**अरुजन्**), अपने गीतों से (**उक्थैः**) सुदृढ़ दुर्ग को ध्वस्त कर दिया; विशद आकाश में उन्होंने हमारे लिए मार्ग बनाया, प्रकाश और दिवस, "सूर्य एवं गौवों को उन लोगों ने प्राप्त किया" (सातवलेकर; १.७१.२)।

और बृहस्पति ने अंधकार से घिरे हुए (**तमसा परीवृतं**) जलों के समुद्र को (**अपां**) इंद्र के सहयोग से नीचे बरसा दिया। (२.२३.१८)। घिरे हुए (परिवृतं) जलों को मुक्त करेंगे तो घेरा (**वृत्र**) भी तोड़ेंगे। **घ्नन वृत्राणि**, वृत्रों को मारते हुए उन्होंने दुर्ग ध्वस्त किए। (६.७३.२)। यद्यपि **वज्र** का उपयोग इंद्र की विशेषता है, पर आवश्यकता हो तो कवि भी अस्त्र उठा सकता है। बृहस्पति के मंत्र में इंद्र, वरुण, मित्र अर्यमन् देवों का निवास है। (१.४०.५)। वह अपना बल (**क्षत्र**) बढ़ाते हैं, राजाओं के साथ शत्रु को मारते हैं; भय उपस्थित होने पर भी वह अविचल रहते हैं, क्या बड़ा युद्ध, क्या छोटा युद्ध, इन वज्रधारी (**वज्रिणः**) का निवारण करने वाला, उन्हें परास्त करने वाला कोई नहीं है। (१.४०.८)। आकाश में वल नामक दानव का नाश करके वह प्रकाश फैलाते हैं। देवों में वह देवतम हैं; उनका कर्म यह है कि जो दृढ़ थे, उन्हें शिथिल किया, जो स्थिर थे, उन्हें अस्थिर किया, गायों को बाहर निकाला, मंत्र द्वारा (**ब्रह्मणा**) वल को विदीर्ण किया, अंधकार को दूर किया (**अगूहत् तमः**), प्रकाश को उद्भासित किया (**व्यचक्षयत् स्वः**)। (२.४०.३)। यही सब काम इंद्र करते हैं। इंद्र सोम पीते हैं, बृहस्पति भी सोम पीते हैं। कवि सोमपान के लिए दोनों का एक साथ आह्वान करता है। (४.४६.१)। इंद्र उपासकों के प्रति बहुत उदार हैं, बृहस्पति भी उदार हैं। कवि दोनों को **मघवाना** कहकर संबोधित करता हैं। (२.२४.१२)। मरुत इंद्र के साथ रहते हैं, सोमपान के लिए मरुतों को बृहस्पति के साथ भी बुलाया गया है। (१.४०.१)। इंद्र को आक्रमणकारी आर्यों का विशेष युद्ध प्रिय देवता माना गया है। उस संदर्भ में बृहस्पति की उक्त विशेषताएँ स्मरणीय हैं। कोई ऐसा कार्य नहीं है जिस पर इंद्र का एकाधिकार हो।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इंद्र समेत इन देवों को काम भी काफ़ी रहता है। जल और प्रकाश के मार्ग बनाकर उन्होंने छुट्टी नहीं पा ली, प्रतिदिन इनमें अवरोध उत्पन्न होते हैं और प्रतिदिन उन्हें हटाना आवश्यक होता है। इंद्र ने काले रंग वालों को प्रतिदिन (दिवे-दिवे) दूसरे आधे भाग से, उनके स्थान से हटा दिया; वृषभ (के समान शक्तिशाली) इंद्र ने दासों, वर्चिन् और शंबर को, वहाँ मारा जहाँ जल एकत्र होता है। (६.४७.२१)। ग्रिफ़िथ ने उद्व्रज का ठीक अनुवाद किया है : "where the waters gather." शंबर और वर्चिन् जल-प्रवाह को रोकते हैं, इसीलिए जहाँ जल एकत्र होता है, वहीं उन्हें मारा जाता है। यह कार्य प्रतिदिन होता है। ग्रिफ़िथ ने दिवे-दिवे का बिल्कुल सही अनुवाद किया है : "Day after day"। फिर उन्होंने काले रंग वालों (कृष्णाः) का संबंध आदिवासियों से जोड़कर पादटिप्पणी में लिखा : "इंद्र को दिखाया गया है कि उन्होंने काले आदिवासियों (the dark aborigines) को खदेड़ दिया और कृपण दैत्यों या बर्बर जनों, वर्चिन् और शंबर को मार डाला।" और यह कार्य वह प्रतिदिन करते थे। वर्चिन् और शंबर रोज़ मारे जाते थे और रोज़ जी उठते थे। इनका संबंध आदिवासियों से तो न हो सकता था।

इंद्र ने काले रंग वालों को दूसरे आधे भाग (**अन्यमर्ध** से हटाया। दूसरा आधा भाग दिन है, पहला आधा भाग रात्रि है। सायण ने दिवस को अहोरात्रात्मक बताया है; उसका एक भाग दिन है, दूसरा रात्रि है। वर्चिन्, शंबर तथा अन्य दैत्य अंधकार के द्वारा प्रकाश को रोकते हैं। इंद्र उन्हें हटाकर जल और प्रकाश दोनों को अपने-अपने मार्गों से आगे बढ़ने की सुविधा देते हैं। कुल मिलाकर इंद्र शत्रु के कितने सैनिक मारते हैं ? इंद्र ने दास वर्चिन् के "पाँच लाख सैनिकों को मार दिया।" (४.३०.१५)। यदि प्रतिदिन इतने सैनिक मारे जाते तो कुछ ही महीनों में भारत की वर्तमान आबादी का भी सफाया हो जाता, उस समय की आबादी का तो कहना ही क्या ! इंद्र कितने दुर्ग ध्वस्त करते हैं ? इंद्र ने शंबर के सौ दुर्ग ध्वस्त किए। (२.१४.६)। इंद्र और विष्णु ने शंबर के नौ और नब्बे दुर्ग ध्वस्त किए। (७.९९.५)। प्रतिदिन इतने दुर्ग ध्वस्त किए जाते तो सारी धरती खंडहरों के मलवे से पट जाती। दानवों और उनके दुर्गों का संबंध आदिवासियों से नहीं है, पर्वतों से है, जल और प्रकाश की मुक्ति से है।

च. देव और असुर

भारतीय देवतंत्र के अनेक नाम 'इंडोयूरोपियन परिवार' की भाषाओं में मिलते हैं। अधिकतर ये नाम पुल्लिंग रूप हैं, देवियों के नाम अत्यंत विरल हैं। भाषाओं के सामान्य तत्वों के आधार पर जैसे आदि इंडोयूरोपियन भाषा की कल्पना की गई है, वैसे ही इंडोयूरोपियन जातियों के सामान्य देवशास्त्रीय तत्वों के आधार पर आदि देवतंत्र की कल्पना की गई है। इस देवतंत्र के व्याख्याकारों के लिए सामाजिक विकास क्रम में मातृसत्ताक और पितृसत्ताक व्यवस्थाओं का कोई महत्व नहीं है। **द्यावापृथिवी** में यदि **द्यावा** कहीं स्त्रीलिंग हो तो वे उसे प्राचीनतर प्रयोग न मानेंगे। आदि देवतंत्र में उसके प्रतिरूप पुल्लिंग हैं, इसलिए **ऋग्वेद** में स्त्रीलिंग रूप विकृति मात्र हैं। **अपः** और **आपः** स्त्रीलिंग बहुवचन रूप हैं, उनके लिए इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथ्य का कोई महत्त्व नहीं है। **वरुण** के प्रतिरूप अन्य भाषाओं में हैं, देवीरूप में **अपः** और **आपः** के प्रतिरूप नहीं हैं। **आपः मातरः** की उपासना एक 'विकृति' है, इंडोयूरोपियन जनों की जो शाखा भारत आई, वह पुरुष देव वरुण की उपासक ही थी।

लैटिन में **अपः** की समकक्ष देवियाँ नहीं हैं पर **अप्** का प्रतिरूप **अक्व** स्त्रीलिंग है। इधर फारसी में **आप्** का प्रतिरूप **आब्** पुल्लिंग है। स्पष्ट ही **अप्** और **अक्व** का स्त्रीलिंग रूप अधिक प्राचीन है। इसी तरह **द्यावा** के स्त्रीलिंग रूप को प्राचीन मानना चाहिए, पितृरूप में **द्यौस** की कल्पना बाद की हैं। 'इंडोयूरोपियन' देवतंत्र में भारतीय देवीनामों की विरलता से निष्कर्ष यह निकलेगा कि इस देवतंत्र का निर्माण पितृसत्ताक व्यवस्था की उस मंज़िल में हुआ है जब देवियों का महत्व क्षीण हो गया है। इसके विपरीत भारतीय देवतंत्र पर जहाँ भी मातृसत्ताक व्यवस्था की छाप है, वहाँ उसे देवशास्त्रीय विकास की पूर्व व्यवस्था मानना उचित होगा। **अपः** स्त्रीलिंग, बहुवचन रूप है। **ऋग्वेद** में अन्य देवियों का गण नहीं है, बहुवचन रूप **अपः** देवियों के गण की सूचक हैं, अतः वे किसी भी एक देवी से अधिक प्राचीन हैं। इसी प्रकार मरुद्गण किसी एक देवता से अधिक प्राचीन हैं। बहुवचन रूप में रुद्र, वसु, अंगिरस्, ऋभु आदि प्राचीन गण व्यवस्था के स्मृति चिह्न हैं। इनमें, जर्मन विद्वान् **ब्रुगमन** के अनुसार, **अंगिरस्** का यूनानी प्रतिरूप **अंगॅल्लॉस्** (देवदूत, अँग्रेज़ी एंजेल) है और वह एकवचन है। यदि कोई इंडोयूरोपियन-पंथी दोनों शब्दों का संबंध स्वीकार करे तो वह कहेगा, **अंगिरस्** मूलतः एकवचन रूप था, भारत में आर्यों के प्रवेश के बाद उसका प्रयोग बहुवचन में होने लगा !

ऋग्वेद में एक अत्यंत महत्वपूर्ण देवी हैं **अदिति**। वह सदा एकवचन रूप में प्राप्त हैं। उनका अभ्युदय **अपः** के बाद का है किंतु जैसे अनेक देवता **अपः** के पुत्र हैं, वैसे ही बड़े से बड़े देवता अदिति के पुत्र हैं। इंद्र, वरुण, मित्र आदि शक्तिशाली देव इनके पुत्र हैं, **आदित्य** हैं। माता **अदिति** के नाम पर पुत्रों का नाम **आदित्य** ! यह पितृसत्ताक व्यवस्था की पद्धति नहीं है, मातृसत्ताक परंपरा की देन है। भारतीय देवों के चाहे जो प्रतिरूप इंडोयूरोपियन देवतंत्र में मिलें, उनमें कोई आदित्य नहीं है। **ऋग्वेद** के **भग अवेस्ता** में **बग** हैं। प्राचीन स्लाव में बॉगु हैं; दोनों जगह देववाचक हैं। **मैकडनल** कहते हैं, **भग** का ईरानी रूप तो प्राप्त है ही, "यह शब्द इंडोयूरोपियन भी है" क्योंकि उसका स्लाव प्रतिरूप भी है ![5] **भग** शब्द किसी इंडोयूरोपिय क्षेत्र से चला, स्लाव-ईरानी क्षेत्र पार करता हुआ भारत आया। किंतु वह **ऋग्वेद** में ही **आदित्य** है, स्लाव अथवा ईरानी में नहीं। शब्द की आदिस्थानीय ध्वनि **भ्** केवल भारत में सुरक्षित है, वह तथ्य अलग से। मैकडनल मानते हैं, अदिति "पूर्णतः भारतीय देवी" हैं। परंतु उनके कुछ पुत्र तो इंडोयूरोपियन हैं। नतीजा यह कि इन पुत्रों की तुलना में यह देवी "ऐतिहासिक रूप से अधिक तरुण (historically younger)" हैं।[6] अर्थात् अदिति के पुत्र तो इंडोयूरोपियकाल के हैं, अदिति उनकी माता बनीं भारत में आर्यों के प्रवेश के बाद !

सिंधु घाटी से लेकर पश्चिमी एशिया होते हुए क्रीट तक देवी माताओं की उपासना होती रही है। इस उपासना का चलन तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० के बाद से प्रायः अब तक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किसी न किसी रूप में अनेक देशों में बना रहा है। ये देवीमाताएँ किसी न किसी स्थान से संबद्ध रही हैं। समस्त देशकाल जिनमें समा जाए, ऐसी मातामही देवी केवल अदिति हैं। अदिति आकाश हैं, अदिति अंतरिक्ष हैं, अदिति माता हैं, पिता हैं, पुत्र हैं, विश्वेदेवा हैं, अदिति पंच जन है, जो उत्पन्न हुआ है, वह अदिति है, जो उत्पन्न होगा, वह अदिति है। (१.८६.१०)।

अदिति का विशेष संबंध प्रकाश से है। कौन ज्योति के लिए आदित्यों की, अदिति की स्तुति करता है ? (४.२५.३)। हम अदिति की मंगल ज्योति का स्मरण करते हैं। (७.८२.१०)। सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, दृश्यमान ब्रह्माण्ड में ज्योति पिंड भरे हुए हैं, वे सब अदिति के भीतर हैं। इसलिए अदिति का ज्योतिर्मय होना स्वाभाविक है। अदिति के अनेक पुत्र हैं, वे सब आदित्य हैं, इनमें सर्वाधिक प्रकाशमान है सूर्य। केवल आदित्य कहने से किसी एक ज्योति पिंड का बोध होता है तो वह है सूर्य। **उदगाद यमादित्यः**, यह आदित्य (अर्थात्) सूर्य उदय हुआ है। (१.५०.१३.)। वह सूर्य, आदित्य पर्वतों से उदय होता है। (१.१९१.९)। इस आदित्य विशेष की स्मृति हमारे ऐतवार में अब तक बनी हुई है। **मैकडनल** ने बताया है कि **शतपथ** ब्राह्मण के अनुसार देवता तीन तरह के हैं : आदित्य आकाश के देवता हैं, रूद्र वायु के और वसु धरती के देवता हैं।[7] यहाँ आदित्य, रुद्र और वसु, तीनों बहुवचन रूप हैं। उन पर यह गण व्यवस्था की छाप है और उनके प्राचीन होने का प्रमाण है। सप्तसिंधुओं के देश में अनेक गण समाज रहते थे। यह संभव है, इनमें कुछ आकाश के उपासक हों, कुछ वायु के, कुछ धरती के। देववाचक तीन शब्द इनकी भाषाओं की देन हों। ऋग्वेद की भाषा और संस्कृति दीर्घ विकास का परिणाम है। इस विकास के मूख्य सूत्रधार **भरत** जन हैं। भरत जन के कवि अन्य जनों के अस्तित्व के प्रति खूब सचेत हैं। उषा पाँच जनों (पञ्च क्षितीः) को जगाती हुई आती है। (७.७५.४)। **क्षिति** का अर्थ जनपद भी हो सकता है। **क्षि** क्रिया का अर्थ है निवास करना **क्षिति** हुआ आवास। **ग्रिफ़िथ** ने अर्थ किया है, "वे भूखंड जहाँ पाँच गण बसे हुए हैं —the lands where the five Tribes are settled"। इंद्र की शक्तियाँ पाँच जनों (**जनेषु पञ्चसु**) में व्यक्त हुई हैं। (३.३७.९)।सरस्वती पाँच जनों का संवर्धन करती है (**पंच जाता वर्धयन्ती** , ६.६१.१२)। जन को कृष्टि भी कहा गया है। हमारी समृद्धि पाँच जनों (**पंच कृष्टिषु**) में प्रकाशित हो। (२.२.१०)। कृष्टि वह भूमि है जिस पर खेती की जाती है। भूमि के साथ उस पर बसने वाले जन भी कृष्टि कहलाए। पाँच जन तो घनिष्ठ रूप में परस्पर संबद्ध थे, अन्य जनों से भी उनका संपर्क रहा होगा। जैसे **स्कंभ** और **स्तंभ** दो निकटवर्ती जनों के शब्द हैं—ध्वनिपरिवर्तन के किसी भी नियम से न तो स्तंभ को बदल कर स्कंभ बनाया जा सकता है, न स्कंभ को स्तंभ— वैसे ही यह संभव है, **अपः** और **अदिति** के उपासक दो निकटवर्ती जन थे।

संस्कृत में देववाचक जितने शब्द हैं, उतने यूरोप की किसी एक भाषा में नहीं हैं। इनमें अधिकांश प्रकाशसूचक हैं। आदित्य में सीधा प्रकाश का भाव नहीं है, प्रकाशमान पिंडों के लिए प्रयुक्त होने से आदित्य सूर्य का अर्थ देने लगा। किंतु वसु में सीधा चमकने का भाव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है। वस् क्रियामूल से उषा का सीधा संबंध है। सर्वाधिक प्रचलित शब्द है देव। दिव्य, दिवस, द्यौस, आदि एक ही कुल के शब्द हैं। यूरोप की भाषाओं में इस कुल के शब्दों का चलन मुख्यतः ग्रीक-लैटिन समुदाय में है। स्लाव भाषाओं में भग के प्रतिरूप का व्यवहार होता है। अँग्रेज़ी का गॉड (god और God) भिन्न कुल का है। इस भिन्नता का कारण यह है कि भारतीय जनों की भाषाओं ने अलग-अलग समय और अलग-अलग स्थानों पर यूरोप की भाषाओं—अर्थात् उनके मूल एशियाई रूपों—को प्रभावित किया है। इस प्रसंग में बहुत रोचक और शिक्षाप्रद है प्राचीन ईरानी में असुर के प्रतिरूप अहुर का प्रयोग। यद्यपि इराक़ के सामीजन असुर अथवा अंशुर के उपासक थे, पर ईरान से आगे इंडोयूरोपियन भाषाओं में कहीं इस असुर का प्रवेश नहीं हुआ। यूनानियों ने असीरिया (असुरिआ) और सीरिया (सूरिआ) नाम सामी देशों को दिया, पर उनकी भाषा में असुर का व्यवहार न होता था। इससे एक निष्कर्ष तो यह निकलता है कि असुर-उपासक किसी भारतीय जन का प्रभाव ईरान तक सीमित रहा, उसके आगे उसका प्रसार न हुआ। दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि देव उपासक जनों का प्रभाव दूर दूर तक फैला।

भारत में असुर दुष्ट हैं, ईरान में देव दुष्ट हैं। हिंदी- ईरानी शाखा के आर्यों में यह भेद कैसे फैल गया ?

बी०के० घोष का मत है: आदिम इंडोयूरोपियन धर्म में केवल प्रकृति संबंधी देवता (आकाश, सूर्य, वायु आदि) थे और अग्नि की पूजा होती थी। किंतु अविभाजित हिंदी-ईरानी शाखा में सोम पूजा भी होने लगी और पुराने प्रकृति संबंधी देवों के अतिरिक्त अमूर्तदेवों [देवरूप में अमूर्त धारणाओं] की उपासना होने लगी। हिंदी-ईरानी आर्यों के पूर्वजों में, पृथक होने से पहले, सांस्कृतिक वैषम्य उत्पन्न हो गया था। इस वैषम्य के कारण ही वे पृथक हुए। पुराना इंडोयूरोपियन शब्द था दॅइवॉ। इसका हिंदी-ईरानी रूप था दइव । इसे नए अमूर्त, नैतिक, देवताओं के लिए अपर्याप्त माना गया। इनके लिए एक नए शब्द असुर का प्रयोग होने लगा। संभवतः वह एक उच्चतर सभ्यता से उधार लिया गया था। इन नैतिक देवताओं में प्रमुख थे वरुण, जैसे कि पुराने प्रकृति देवताओं में प्रमुख थे इंद्र। 1400 ई० पू० के आसपास बोगाज़कुई की संधि में असुर देवता वरुण और मित्र हैं, इनके साथ दैव देवता इंद्र और नासत्य हैं। जैसा कि क्रिस्टेनसॅन ने बताया है, इससे सिद्ध होता है कि दैव-असुर उपासकों के बीच अभी शत्रुभाव प्रकट न हुआ था। प्रारंभिक हिंदी-ईरानी इतिहास में तो यह शत्रु-भाव केंद्रीय विशेषता बना है। किंतु ज़रथुश्त्र के आविर्भाव से पहले उसने प्रचंड रूप धारण कर लिया था।[8]

बी० के० घोष आगे स्वयं इस दैव-असुर विभाजन का खंडन कर देते हैं। ईरान में दैवोपासक भी थे और बहुत दिनों तक बने रहे क्योंकि पाँचवीं सदी ई० पू० में ईरानी सम्राट के अभिलेख से ज़ाहिर होता है कि उनका बलपूर्वक दमन किया जा रहा था। "और भारत में यह विचित्र स्थिति दिखाई देती है कि प्राचीनतम काल में सभी बड़े देवों को आलंकारिक विशेषण के तौर पर असुर उपाधि दी गई है। यद्यपि आगे चल कर वह शब्द केवल गाली

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के रूप में प्रयुक्त हुआ''।[9] इस स्थिति में विचित्र क्या है ? पहले मान लिया हिंदी-ईरानी आर्यों में लड़ाई थी; फिर देखा, **ऋग्वेद** में जो देव हैं, वे असुर भी हैं। यह 'विचित्र' स्थिति लेखक ने अपने मन से पैदा की है, उसका वस्तुस्थिति से कोई संबंध नहीं है।

असुर का आधारभूत शब्द है **असु** जिसका अर्थ है वायु, प्राण। जैसे प्रकाश के उपासकों का शब्द है, देव, वैसे ही वायु के उपासकों का शब्द है असुर। **निराला** ने **तुलसीदास** में लिखा था :

पीकर ज्यों प्राणों का आसव

देखा असुरों ने दैहिक दव,

बंधन में फँस आत्मा बाँधव दुख पाते।

यहाँ आत्मा बाँधव हैं प्रकाश के उपासक, असुर हैं वायु के उपासक। **निराला** ने ठीक भेद किया है। प्रकाश और वायु में कोई विरोध नहीं है पर उनके उपासकों में विरोध हो सकता है। वायु की उपासना पहले से चली आ रही हो तो प्राण-शक्ति के प्रतीक ज्येष्ठ होंगे, प्रकाश के प्रतीक देव उनसे छोटे होंगे। मित्र और वरुण **देवानामसुराः** देवों में असुर, ''देवों में अधिक बल वाले हैं'' वे **अर्या**, ''श्रेष्ठ'' हैं (सातवलेकर; ७.६५.२)। यहाँ असुरों की श्रेष्ठता, उनकी शक्तिमत्ता स्पष्ट है।

बी०के० घोष के अनुसार नैतिक देवताओं में प्रमुख थे वरुण; उनके लिए नए शब्द असुर का प्रयोग होने लगा। प्रकृति देवताओं में प्रमुख थे इंद्र, (इनके लिए पुराने देव शब्द का प्रयोग होता रहा)। किंतु **ऋग्वेद** में केवल वरुण को नहीं, इंद्र को भी बार-बार असुर कहा गया है। हे इंद्र, हे असुर, तुम हमारी रक्षा करो। (१.१७४.१)। असुर (इंद्र) का नाम अथवा यश महान् है। (३.३८.४)। महान इंद्र का असुरत्व महान् है। (१०.५५.४)। असुर कहने से नैतिक आचरण का बोध होता हो तो इंद्र का आचरण वैसे ही नैतिक है जैसा वरुण का। वास्तव में असुरत्व से नैतिकता का कोई संबंध नहीं है। सोम वनस्पतियों के स्वामी (**वीरुधां पतिः**) हैं। (८.११.२)। ऋषि उन्हें घोटकर देवताओं को पिला देते हैं। वह भी असुर हैं, **असुराय निर्णिजं**—''बलशाली सोम को छानने के लिए''। (सातवलेकर; ६.६६.१)।

असुरों की गरिमा समूचे **ऋग्वेद** में है।कोई भी मंडल ऐसा नहीं है जिसमें किसी न किसी देवता को असुर न कहा गया हो। किंतु ऐसे भी असुर हैं जो देवों के विरोधी हैं; इंद्र से कहा गया है कि वह इन **अदेवाः असुराः** का नाश करें। (८.६६.६)। इंद्र **असुरघ्नः**, असुरों का नाश करने वाले हैं। (६.२२.४)।बृहस्पति से प्रार्थना है कि वह असुरों के वीरों को मारें। (२.३०.४)। इंद्र के समान अग्नि भी असुरों का नाश करनेवाले हैं (७.१३.१) और इंद्र के समान वह स्वयं भी असुर हैं।(४.२.५)। इंद्र, अग्नि, बृहस्पति आदि को जिन शत्रुओं से जूझना पड़ता है, वे अत्यंत बलशाली हैं। नदियों के प्रवाह और सूर्य का प्रकाश तभी मुक्त होते हैं जब नित्य इन्हें रोकने वालों से युद्ध किया जाए। असुर का सामान्य अर्थ लें तो जैसे इंद्र, अग्नि आदि बलशाली हैं, वैसे ही उनके शत्रु भी बलशाली हो सकते हैं। इस दृष्टि से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दोनों को असुर कहने में कोई असंगति नहीं है। किंतु वसु और आदित्य के समान असुर भी मूलतः देवता हैं। मैकडनल का यह कहना सही है कि "ऋग्वेद में यह शब्द प्रधान रूप से देवों की उपाधि है"[10] किंतु ऋग्वेद में देवों और मनुष्यों के समानांतर असुर एक तीसरी कोटि के प्राणी हैं। (और देवता चाहे साँस न लेते हों, ये जरूर लेते होंगे क्योंकि प्राणवंत होने से ही वे असुर थे)। हे असुर वरुण, जो देव और मनुष्य हैं, उन सबके तुम राजा हो(२.२७.१०)। असुर वरुण ऊँचे आसन पर हैं, देव और मनुष्य दोनों उनकी प्रजा हैं। वरुण जल के देवता हैं, इंद्र उसी तरह जल के देवता नहीं हैं। वरुण अधिक प्राचीन हैं, देवों से असुर अधिक प्राचीन हैं। किंतु जल के देवता होने के कारण वह मूलतः असुर नहीं हो सकते। मूलतः असुर होना चाहिए रुद्र को।

छ. रुद्र और परशु

नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य—नमस्कारों से असुरदेव (रुद्र) की उपासना करो।(५.४२.११)। रुद्र इंद्र की तरह देव हैं किंतु बड़े बलशाली हैं, इसलिए असुरदेव हैं। **त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवः**, "हे अग्ने ! तू द्युलोक से प्राणों को देने वाला रुद्र है"। (सातवलेकर; २.१.६)। यहाँ वास्तव में पूर्वपरिचित देवता रुद्र के विशेषणों से अग्नि को अलंकृत किया गया है। "तू मरुतों का बल है" (उप०), यह उक्ति अग्नि से अधिक रुद्र के लिए सार्थक है। तुम अरुण वातों के साथ चलते हो—**त्वं वातैररुणैर्यासि**। (२.१.६)। मरुतों की तरह वातों के साथ मूल संबंध रुद्र का है। अन्यत्र कहा गया है, रुद्र मरुतों के पिता हैं, वह मरुतों से युक्त (**मरुत्वान्**) हैं, वह "देवों के द्वारा लाई गई आपत्तियों को दूर" करते हैं। (सातवलेकर; २.३३.१,६,७)। जो देवों से बड़ा हो, वही देवों द्वारा लाई हुई विपत्तियों को दूर कर सकता है। वह भुवन के स्वामी हैं और अनेक रूप धारण करने वाले हैं। (२.३३.६)। उनकी शक्तिमत्ता के कारण उन्हें बार-बार वृषभ कहा गया है। इनमें से अधिकांश विशेषताएँ इंद्र पर आरोपित कर दी गईं।

रुद्र जटाधारी हैं (१.११४.१), वह धनुष और बाण धारण करते हैं (२.३३.१०), धनुष और बाण दोनों उच्चकोटि के हैं (**स्विषुः** = सु-इषुः सुधनवा)(५.४२.११),वाणी कहती है: ब्रह्मद्वेषी को बाण से मारने के लिए मैं रुद्र का धनुष खींचती हूँ,(१०.१२५.६), रुद्र का धनुष सुदृढ़ है, उनके बाण वेग से चलने वाले हैं।(७.४६.१)। किसी समय रुद्र का धनुष उतना ही प्रसिद्ध रहा होगा जितना आगे चलकर इंद्र का वज्र प्रसिद्ध हुआ। पौराणिक शिव इन्हीं रुद्र का प्रतिरूप हैं। शिव विशेषण रूप में रुद्र के लिए ऋग्वेद में प्रयुक्त भी हुआ है : "सुखकर परमेश्वर (शिवः) द्युलोक से अपने भक्तों की अभिलाषाओं को पूर्ण करता है"। (सातवलेकर; १०.९२.९)।

रुद्र वायु के देवता हैं, बादल, बिजली, वर्षा से उनका गहरा संबंध है। आकाश से जो बिजली गिरती है, वही शिव का बाण है। "तुम्हारी जो विद्युत आकाश से छोड़ी हुई पृथिवी के साथ विचरण करती है, वह हमें छोड़ देवे" (सातवलेकर; ७.४२.३)। **प्र रुदेण**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यथिना यन्ति सिन्धवः, घुमंतू रुद्र से प्रेरित होकर नदियाँ वेग से बह चलती हैं, विशाल धरती को छाप लेती हैं; चारों ओर चक्कर लगाता हुआ परिज्मन् अंतरिक्ष में गरजता है और सभी पदार्थों को भिगो देता है। (१०.९२.५)। परिज्मन् से इंद्र की ओर संकेत किया गया हो, आवश्यक नहीं। परि=चारों ओर, ज्मन्—गम् से। बादलों के रूप में रुद्र ही आकाश में चक्कर लगाते हैं, गरजते और बरसते हैं, चराचर विश्व को भिगोते हुए नदियों को जल से भर देते हैं। रुद्र पर्वतों को तोड़कर जलप्रवाहों को मुक्त नहीं करते, वर्षा जल से नदियाँ सहज ही भर जाती हैं और बह चलती हैं। रुद्र वज्रबाहु। ("armed with the thunder"—ग्रिफ़िथ) हैं। (२.३३.३)। उनके वज्र से कोई वृत्र नहीं मरता, मनुष्य मरते हैं। कवि अग्नि से पूछता है: वृवः कद्रोरुद्राय नृघ्ने, नरसंहारक रुद्र से तुम क्या कहोगे ? (४.३.६)। इंद्र वृत्रघ्न हैं, रुद्र नृघ्न हैं। रुद्र की अनेक विशेषताएँ इंद्र में हैं किंतु दोनों में प्राचीन देवता रुद्र ही हैं। मैकडनल कहते हैं, रुद्र को मरुतों के योद्धाकर्म से कोई सरोकार नहीं है जैसा कि इंद्र को है, "कारण यह कि वह दानवों से युद्ध में नहीं भिड़ते—for he does not engage in conflict with the demons"।[11]

देवतंत्र के विकास को समझने के लिए मैकडनल का यह सूत्र बहुत महत्वपूर्ण है: रुद्र महाप्रतापी देवता हैं,वे दानवों से युद्ध क्यों नहीं करते ? इसलिए कि जिस युग की उपज रुद्र हैं, उस युग में दानव हैं ही नहीं। दानव पर्वतों में रहते हैं, वे नदियों का जल रोकते हैं, सूर्य को बाहर नहीं आने देते, उनका वध किए बिना मनुष्यों को न जल मिलेगा, न प्रकाश—यह सारी कथा बाद की है। इसका अर्थ यह भी है कि सुमेर और मिस्र में इस कथा का जो प्रसार देखा जाता है, वह रुद्र के उद्भव से बहुत बाद का है। वज्र, धनुष, जलवर्षण, मरुतों का साहचर्य आदि विशेषताएँ मूलतः रुद्र की हैं, इंद्र की नहीं। मूल रूप में रुद्र ही असुर हैं क्योंकि वह वायु के देवता हैं। उनके असुरत्व को ऐसी ख्याति मिली कि इंद्र असुर हुए, वरुण भी असुर हुए। आर्यों की पश्चिमी शाखा में वरुण की उपासना का चलन बना रहा, वह अहुर मज़्दा कहलाए। जब देव और असुर एक दूसरे के शत्रु माने गए, तब वरुण के उपासक देवराज इंद्र से, देव शब्द से,घृणा करने लगे। पर यह बहुत बाद की बात है।

ईरानियों के अहुर मज़्दा वरुण के प्रतिरूप हैं। इसी तरह यूनानियों के ज़ॅउस् अथवा दॅउस् इंद्र के प्रतिरूप हैं। द्यौस् और ज़ॅउस् में केवल नाम की समानता है। ज़ॅउस् वज्रधारी हैं, इंद्र की तरह। द्यौस् किसी पर वज्रप्रहार नहीं करते। इंद्र वज्र से पर्वतों को तोड़ते, वृत्र को मारते, जल और प्रकाश को मुक्त करते हैं। ज़ॅउस् यह सब नहीं करते। उनके वज्र से मनुष्यों को ही अधिक भय है। पश्चिमी एशिया में रुद्र की उपासना व्यापक थी। संभव है, ज़ॅउस् संबंधी कल्पना उससे प्रभावित हुई हो।

पश्चिमी एशिया में रुद्र की उपासना दूर-दूर तक प्रचलित थी। गूर्ने का मत है कि वह हित्तियों के विशिष्ट देवता थे और वह अनेक रूपों में रुपायित किए जाते थे। "सीरिया के शिल्प में वह परशु चलाते हुए और बिजली कौंधने के प्रतीक के साथ अक्सर अकेले खड़े दिखाई देते हैं"।[12] प्रिचार्ड के चित्र ग्रंथ में अनुमानतः दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के मध्य की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एक सीरियाई मुद्रा पर मौसम के देवता (रुद्र) हाथ में परशु लिए अंकित हैं। अनुमानतः ग्यारहवीं या बारहवीं सदी ई०पू० के एक भग्न इराक़ी स्तंभ पर सूर्यबिंब के नीचे यही रुद्र परशु लिए अंकित हैं। परशु दाहिने हाथ में,तीन शूलों वाली बिजली (त्रिशूल) बाएँ में है। मिनोअन संस्कृति में परशु महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इसे वज्रधारी आकाश के देवता का चिह्न माना गया है। यह परशु दुधारा होता था। एक ही बेंट में गेंती की तरह दो संयुक्त फरसे हों, वैसा यह परशु था। लघु एशिया के करिआ प्रदेश में यह परशु यूनानी देवता ज़ॅउस का चिह्न था। निल्सन का विचार है कि पशुबलि में काम आने से कुल्हाड़ी पवित्र मानी गई थी, पर उन्होंने यह भी बताया है कि मिनोअन संस्कृति के समानांतर लघु एशिया की हुर्री संस्कृति के तेशुब (रुद्र के प्रतिरूप) दुधारा परशु धारण करते थे और हित्तियों ने अपने 'रुद्र' की धारणा हुर्रियों से प्राप्त की थी। मिनोअन परशु प्रतीक का संबंध किसी आकाश देवता से नहीं है, इस मत के समर्थन में निल्सन का तर्क है : मिनोअन संस्कृति में दुधारा परशु धारणा करना किसी पुरुष देवता की विशेषता नहीं है।[13] निल्सन के विपरीत इवान्स का कहना था कि यह परशु मिनोअन देवी माता और उनके अनुगत पुरुष देवता का चिह्न था।[14]

मिनोअन शिल्प में निल्सन को कहीं इस बात का प्रमाण नहीं मिला कि कुल्हाड़ी से पशु की बलि दी जाती थी। उन्होंने कल्पना की है कि दुधारा परशु बैल के सिर पर चोट करके उसे अचेत कर देने के काम आता था, इसके बाद उसे मेज पर रखकर उसकी गर्दन में कटार भोंककर लोग उसकी बलि देते थे।[15] यदि यह बात सही हो तो मानना चाहिए कि मिनोअन लोगों ने बैल के सिर पर ऐसा प्रबल आघात करने के लिए कि वह अचेत हो जाए बहुत ही अनुपयुक्त अस्त्र चुना था। दोनों तरफ तो धार थी, घन चोट किधर से की जाती ? बढ़ई-लुहार जैसा भारी घन काम में लाते हैं, वैसा अस्त्र अधिक उपयुक्त होता, बशर्ते कि साँड़ माथे पर चोट खाने को तैयार हो। यूनानी भाषा में लाब्रुस् का अर्थ है परशु; परशुधारी ज़ॅउस् को ज़ॅउस् लाब्रौंदॅउस् कहा गया था।[16] पवित्र देवचिह्न के रूप में परशु का प्रसार दक्षिणी यूरोप से उत्तरी यूरोप की ओर हुआ। मिकिनीअन सभ्यता के विस्तार की चर्चा करते हुए ई.ओ. जेम्स ने लिखा है कि मिनोअन-मिकिनीअन स्रोत से निकलकर परशु पूजा स्टोनहेंज और ब्रिटनी पहुँची, इसके प्रमाण मिले हैं।[17] अर्थात जहाँ परशु पूजा के चिह्न मिले हैं, वहाँ केल्त जन आकर बसे थे। पश्चिमी भारत से पहले दक्षिणी यूरोप, फिर वहाँ से उत्तरी यूरोप होते हुए इंग्लैंड। इस तरह एक भारतीय देव प्रतीक ने अपनी लंबी यात्रा पूरी की।

परशु भारतीय देव प्रतीक है, इसका प्रमाण ऋग्वेद है। न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीते— "Even the Celestial Axe bows down before him" ग्रिफ़िथ; ५.३२.१०)। दिव्य परशु भी इंद्र के सामने नत हो जाता है। परशु इंद्र की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। इंद्र की गौरववृद्धि के लिए उसे नत होते कहा गया है। स्वधिति का अर्थ परशु ही है, यह अन्य संदर्भों से स्पष्ट हो जाता है। सोम देवों में ब्रह्मा हैं, विप्रों में ऋषि हैं, स्वधितिर्वनानाम् वनों में स्वधिति हैं (९.९६.६)। कुल्हाड़ी से ही लकड़ी काटी जाती है, सातवलेकर ने यहाँ स्वधिति का अर्थ शस्त्र किया है। अग्नि के लिए कहा गया है, पूतेव स्वधितिः—वह तीक्ष्ण शस्त्र के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समान" है (सातवलेकर; ७.३.६)। वनस्पति के संदर्भ में स्वधितिस्तेत्रमानः—"अत्यंत तीक्ष्ण फरसे" (उप., ३.८.११) का उल्लेख है। स्वधिति से इंद्र का संबंध इस प्रकार है : "इस इंद्र का वज्र (स्वधिति) आकाशमार्ग से अन्नसाधक उदक उत्पन्न करे। (उप० १०:६२.१५)। यहाँ 'वज्र' वास्तव में परशु है। यह अन्यत्र इंद्र के ही संदर्भ में परशु शब्द के प्रयोग से ज्ञात हो जाता है। उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह—"इंद्र का वज्र तेज के साथ उदित हो" (उप., १०.४३.९)। मूलतः परशु इंद्र का नहीं, रुद्र का अस्त्र है, इसका संकेत इसी मंत्र में है: विरोचता मरुषो भानुना शुचिः—"स्वयं तेजस्वी इंद्र दीप्ति से शोभासंपन्न और शुद्ध हो" (उप०)। यहाँ सूत्र शब्द है अरुषः जो रक्त वर्ण का द्योतक है। उसे रुद्र का पर्याय मान सकते हैं। ग्रिफ़िथ ने उसका अनुवाद "Red God" सही किया है। रुद्र को सीधे अरुषंकपर्दिनं रक्ताभ और जटाधारी कहकर बुलाया गया है। (१.११४.५)। रुद्र घुमंतू देवता हैं, चारों ओर चक्कर लगाते हुए अंतरिक्ष में गरजते हैं। (१०.६२.५)। जिस सूक्त में परशु के उदित होने की बात है, उसमें, परशु वाले मंत्र से ठीक पहले, इंद्र के आकाश में दौड़ने की बात है: वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा—क्रुद्ध वृषभ के समान वह अंतरिक्ष में दौड़ते हैं।(१०.४३.८)। यह वर्णन इंद्र की अपेक्षा रुद्र के लिए अधिक उपयुक्त है। रुद्र का एक अस्त्र बिजली है। "तुम्हारी जो विद्युत् आकाश से छोड़ी हुई पृथिवी के साथ विचरण करती है..."(सातवलेकर; ७.४६.३)। यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि यह बिजली ही रुद्र का परशु है।

मरुत् गण रुद्र के पुत्र हैं, स्वयं रुद्र हैं। (१.३९.७)। उनके हाथों में चमकती हुई बिजलियाँ हैं ५.५४.११ और वे वाशीमन्तः—"कुठार से युक्त" हैं (सातवलेकर; ५.५७.२)। ये कुठार सोने के हैं, हिरण्यवाशीभिः "सुवर्णरंजित कुल्हाड़ियों का उपयोग करने वाले मरुतों के साथ विद्यमान अग्नि की भलीभाँति सराहना करो।" (सातवलेकर; ८.७.३२)। वाशी, परशु, स्वधिति आदि कुठार के अनेक नाम हैं। रुद्र और मरुत् कभी सीधे बिजली लिए होते हैं, कभी उसे कुठार के रूप में धारण करते हैं। यही दिव्य परशु इंद्र के सामने नत हो जाता है। रुद्र की अनेक विशेषताएँ इंद्र में समाहित हैं, उनका वज्र कभी-कभी परशु की तरह काम करता है। "इंद्र हाथों में तीक्ष्ण वज्र को दृढ़ता से पकड़ते हुए...जैसे बढ़ई वन के वृक्ष को काटता है, उसी तरह शत्रुओं को काटता है, (परश्वा इव) कुल्हाड़े के समान शत्रु को काटता है।" (सातवलेकर; १.१३०.४)। कोई आश्चर्य नहीं, यूनानी देवता ज़ॅउस् भी परशुधारी के रूप में कल्पित किए गए। इंद्र की तरह उनका मुख्य अस्त्र वज्र है। रुद्र के संपर्क से परशु भी पवित्र माना गया और पश्चिमी एशिया से लेकर उत्तरी यूरोप और ब्रिटेन तक शिल्प में उसका उपयोग देवचिह्न के रूप में होता रहा।

कल्पना यह है कि नदियों का जल पर्वतों में बंद है, उन्हें तोड़े बिना वह बाहर नहीं आता; इसी तरह वर्षा का जल बादलों में बंद रहता है, उन्हें तोड़े बिना वह जल धरती पर न गिरेगा। इसीलिए बादलों और पर्वतों में इतनी समानता है। पर्वत दुर्ग जैसे हैं तो बादल इन दुर्गों से कम नहीं हैं। पर्वत स्थिर होते हैं पर यदि वे उड़ने लगें, तो समझना चाहिए, ये आकाश में उड़ने वाले बादल हैं। इसी तरह दुर्ग भी स्थिर होते हैं, उन्हें गतिशील कहा जाए

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तो समझना चाहिए, आशय बादलों से है। इंद्र ने अपने अस्त्रों से शुष्ण के गतिशील दुर्ग—पुरंचरिष्ण्वं—को तोड़ा (८.१.२८), यह दुर्ग आकाश में है। शुष्ण—सूखे—के कारण खेती चौपट हो जाएगी, इसलिए बादल का दुर्ग ध्वस्त करके जल बरसाना आवश्यक है। इंद्र का असाधारण महत्व इस बात में है कि वह पर्वतों को तोड़कर जलप्रवाहों को मुक्त करते हैं, साथ ही बादलों को विच्छिन्न करके धरती पर जल बरसाते हैं। मरुत् उनके सहायक हैं। मरुतों को पृष्णि (धरती) ने जन्म दिया है—**महते रणाय**, बड़े युद्ध के लिए। (१.१६८.६)। यह युद्ध होगा आकाश में, बादलों से। युद्ध के फलस्वरूप मरुतों ने "अन्न देने वाली अपनी धारक शक्ति को ही चतुर्दिक देख लिया।" (सातवलेकर; उप०)। मरुत् युद्ध करेंगे, पानी बरसेगा, धरती अन्न उपजाएगी।

युद्ध के लिए अस्त्र चाहिए। मरुत् **ऋष्टिविद्युतः** हैं, बिजलियाँ ही उनके अस्त्र हैं। "आयुधों से विराजमान वीर मरुतोः तुम अन्न के लिए बहुत प्रेरणा करने वाले हो" (उप०, १.१६८.५)। बिजली गिरे तो मनुष्य की जान ले लेगी, बादल को तोड़कर जल बरसाए तो मनुष्य के जीने के लिए साधन जुटा देगी। कवि मानता है, रुद्र की **हेति** हमें छोड़कर अन्यत्र जाए।(२.३.१४)। बिजली ही हेति नाम का अस्त्र है। मानव विनाशक अस्त्र के कारण रुद्र को नरहंता (नृघ्न) कहा गया है। (४.३.६)। उनका धनुष सुदृढ़ है, वाण द्रुतगामी हैं, आयुध तीक्ष्ण हैं। (७.४६.१)। रुद्र के क्रोध से भय है, वह वीरों का वध न कर दें। (१.११४.८)। साथ ही वह शरणागत को वैसे ही सुख देते हैं जैसे धूप से पीड़ित जन को छाया। (२.३३.६)। वह रुद्र हैं, वह शिव भी हैं। (१०.९२.९)।

इंद्र के पास भी धनुष है और ऐसा बाण है जो सैकड़ों धारों, हज़ारों पंखों वाला है। (८.७७.७)। वह सोने का (**हिरण्ययः**) है। (८.७७.११)। इंद्र ने "मेघ को चारों ओर से मारा" और "मेघों से (पानी को) निकाला और विस्तृत शस्त्र को तथा पके हुए अन्न को धारण किया (सातवलेकर; ८.७७.५,६)। इंद्र के आयुधों का मेघों से, मेघों का खेती से, संबंध यहाँ स्पष्ट है। इंद्र वृत्र का वध करते हैं और उनके पास एक दीर्घ अंकुश है। (८.१७.९,१०)। उनके सुनहले बाण और लंबे अंकुश का संबंध बिजली से अवश्य होगा। वर्षा और खेती के संदर्भ में रुद्र, इंद्र,मरुतों के पराक्रम, उनकी अस्त्रसज्ञा की सार्थकता देखनी चाहिए। इसी अस्त्रसज्ञा के अंतर्गत है परशु। **देवास आयन्‌ परशूँरबिभ्रन्‌**—"हाथों में परशु धारण करने वाले विजय की इच्छा करके देव आते हैं"। किससे लड़ेंगे और विजय पाएँगे, आगे स्पष्ट किया गया है : "और वे लोगों के साथ मेघों को काटते हुए मुक़ाबला करके जल बरसाते हैं : नदियों में उस उत्तम जल को रखते हैं; वे जहाँ मेघ में जल देखते हैं, उसे शुष्क करके जल निकाल देते हैं।" (सातवलेकर; १०.२८.८)। जब तक बादल से जल निकालने की क्रिया पर ध्यान न दिया जाए, तब तक परशुओं की उपयोगिता समझ में नहीं आती। ग्रिफ़िथ ने अपने अनुवाद में देवों को कुल्हाड़ियाँ लिए आते हुए बताया है; फिर उन्होंने लकड़ी चीरी, अग्निस्थान में उसे रखा, और जहाँ घास उगी देख पड़ी, उसमें आग लगा दी। किंतु पादटिप्पणी में उन्होंने सायण का हवाला दिया है जिनके अनुसार बात बादलों को चीरने और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नदियों में जल भरने की है। (मेघवधार्थ परशून्वज्रानबिभ्रन् । धारयंतिच। —सायण; मेघ के वध के लिए परशुओंअर्थात वज्रों को धारण करते हैं।) ग्रिफ़िथ ने लुडविग के मत का उल्लेख भी किया है जिनके अनुसार यहाँ खेती की शुरुआत दिखाई देती है। लुडविग का मत सही है। जैसे इंद्र का संबंध वर्षा और खेती से है, वैसे ही उनसे यहाँ पर परशुधारी देवों का संबंध है। पश्चिमी एशिया से लेकर ब्रिटेन तक के शिल्प में जिस परशु का उपयोग होता रहा, उसका पूरा सांस्कृतिक संदर्भ ऋग्वेद में है।

ज. वरुण और त्रित

प्राचीन ईरानियों के अहुर मज़्दा वैदिक वरुण के प्रतिरूप हैं, यह बात अनेक विद्वान स्वीकार कर चुके हैं। नैतिक आचरण पर ज़ोर, पाप-पुण्य का विवेक, पापियों को दंड—दोनों की समानता का यह आधार है। अहुर मज़्दा का प्रत्यक्ष संबंध जल से नहीं है, ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में भी वरुण का संबंध जल से नहीं है। वह ऋत के महान संरक्षक हैं। यह बात अहुर मज़्दा के लिए भी कही जा सकती है। ऋत के ईरानी रूपांतर अष से उनका संबंध वैसे ही है,जैसे ऋत से वरुण का। आपः के समानांतर अवेस्ता में आपो का चलन है। इसके सिवा ईरान में अर्द्वि सूर अनाहित नाम की देवी, कॉँगा के अनुसार जलों की महान देवी ("The great goddess of the waters") की उपासना का चलन था।[18] राजकुमार सिद्धार्थ को, उनके बुद्ध होने के पहले, जैसे मार ने प्रलोभन देकर भ्रष्ट करना चाहा था, वैसे ही प्राचीन ईरान के धर्म प्रवर्तक ज़रथुश्त्र को अङ्र मैन्यु ने भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। उस समय ज़रथुश्त्र ने, कॉँगा के शब्दों में, "शुभ दाइत्य के शुभ जलों की पूजा की"।[19] और भी; ज़रथुश्त्र ने अङ्र मैन्यु के दल को मारने की प्रतिज्ञा की और यह भविष्यवाणी की कि मानव जाति का विजयी उद्धारकर्ता "कोसव के जलों से उत्पन्न होगा"।[20] प्राचीन ईरानियों के धार्मिक विश्वासों में जल के महत्व को विज्ञापित करने के लिए इतना काफ़ी है।

वरुण के वृ क्रियामूल से अहुर मज़्दा का कोई संबंध नहीं है। किंतु वर शब्द अवेस्ता में प्रयुक्त हुआ है, ठीक वैसे ही जैसे वह संस्कृत में होगा।अहुर मज़्दा ने यिम (ईरान के मनु) को सावधान किया, प्रलय होने वाली है, वह एक वर ("enclosure"—कॉँगा)[21] या बाड़ा बनाएँ और उसमें बचाने योग्य प्राणियों को रख लें,जिससे प्रलय के बाद फिर सृष्टि हो। यह शीत और तुषार की प्रलय है, 'जलप्रलय' से किसी हद तक भिन्न है। यहाँ मूल बात यह है कि यिम से वर बनाने को कहा गया है; जो घेरे और रोके वह वर है। ऋग्वेद में न यो वराय है(१.१४३.५),जिसे रोका नहीं जा सकता। अवेस्ता में वृत्र का मूल अर्थ लुप्त हो गया पर वृत्रघ्न, वृत्रहन् के रूपांतर खूब प्रयुक्त हुए हैं। वरग्रघ्नम् (यश्त, ६.१७)— विजय; वरथ्रजाओ (यश्त, ६.१६)— विजयी, वर थ्राजनम् (यश्त ५७.२)— विजयी, वृत्र का अपना अस्तित्व नहीं है पर वृत्र वध की ख्याति ऐसी फैली कि वृत्रघ्न विजय का पर्याय बन गया। वृत्र का अहिरूप अवेस्ता में सुरक्षित रहा। ऋग्वेद में वृत्रेण यत् अहिना, इंद्र ने वृत्र अहि से युद्ध के लिए शस्त्र धारण किए।(१०.११३.३)। वृत्रघ्न और वृत्रहन् में एक ही क्रिया है; घ्न् का रूपांतर है हन्। इसी तरह अहि का मूल रूप है अघि, अवेस्ता में इसका रूपांतर है अज़ी :

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यो जनत् अझीम् (यस्न, ६.११), जिसने अहि को मारा। अवेस्ता में यह सर्प धूर्त है, पापी है, अष (ऋत) का नाश करने वाला है। बाइबिल के सर्प (शैतान) से अवेस्ता का अझी और ऋग्वेद का अहि मिलता-जुलता है।

वरुण पवित्र हैं, शुद्ध हैं, ऋत के संरक्षक हैं, अहि अपवित्र है, अनृत है, पाप रूप है। कवि मरुतों से कहता है, इंद्र को साथ लेकर वृत्र को मारो; मानो दुःशंस ईशत, कोई दुष्ट हमारा प्रभु बने। (१.२३.९)। यहाँ वृत्र को दुष्टता का प्रतीक माना गया है। वह छलकपट का प्रतीक भी है; इंद्र ने उसका बध करके सभी मायावियों की माया का नाश कर दिया। (१.३२.४)। इंद्र ने सिंधु में लेटे हुए मायावी वृत्र का वध किया। (२.११.९)। वह साधारण सर्प नहीं है, भारी अजगर है, सब कुछ निगलने वाले (जिगर्ति) को इंद्र ने मारा, उसे सब कुछ उगलना पड़ा जर्गुराणः। (५.२९.४)। इंद्र ने उसके मर्म पर आघात किया और तमसि हर्म्ये धाः, अंधकारपूर्ण स्थान में डाल दिया। (५.३२.५)। ग्रिफ़िथ के अनुवाद में "in the pit in darkness" से नरक का चित्र उपस्थित हो जाता है। असूर्येतमसि वावृधानम्, सूर्यहीन अंधकार में बढ़ते हुए वृत्र को इंद्र ने मारा, यहाँ अंधकार से वृत्र के संबंध को सुदृढ़ कर दिया गया है (५.३२.६)। हर्म्य का अर्थ प्रासाद है, अवश्य ही इंद्र ने उसे राजमहल में न रखा था। हर्म्य का एक अर्थ ज्वालामय गर्त ("a fiery pit"—मोनियर विलियम्स) है। इस गर्त में पड़े हुए कण्व को नासत्यों ने उबारा, यहाँ हर्म्ये, ग्रिफिथ के अनुवाद में, ("into the heated pit" है। (८.५.२३)। यह अनुवाद सही हो तो वृत्र उस गर्त में डाला गया है जो अंधकारपूर्ण होने के साथ ज्वालामय भी है। इस तरह शैतान और नरक की आदिम रूपरेखा यहाँ वृत्र के संदर्भ में स्पष्ट हो जाती है।

वृत्र से मूल विरोध इंद्र का नहीं, वरुण का होना चाहिए। लोगों के सत्य और अनृत को देखते रहना वरुण का काम है। (७.४९.३)। सत्य और अनृत का द्वैत जैसा वृत्र और वरुण के विरोध में देखा जाता है, वैसा वृत्र और इंद्र के विरोध में नहीं। इंद्र से भिन्न एक जल देवता और हैं जो वृत्र का वध करते हैं और वरुण से उनका घनिष्ठ संबंध है। इनका नाम त्रित अथवा त्रित आप्त्य है। आप्त्ये अर्थात् अपां पुत्रो त्रिते—सायण। (८.४७.१५)। अन्न से बल प्राप्त करके त्रित ने वृत्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। (१.१८७.१)। एक सूक्त में वरुण की स्तुति की गई है, उसी में उन्हें त्रित कहा गया है। चक्र में नाभि के समान सभी ज्ञान जिस वरुण में केंद्रित हैं, उस त्रित की शीघ्र स्तुति करो। (८.४१.६)। सायण ने यहाँ त्रितं का अर्थ त्रिस्थानं वरुणम् (तीनों लोकों में प्रतिष्ठित) किया है। त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे, इसका सीधा अर्थ होगा—त्रित समुद्र में वरुण को धारण करता है। (९.९५.४)। सायण ने त्रित को तीन स्थानों में विद्यमान इंद्र कहा है। त्रित इंद्र से भिन्न प्रतीत होते हैं। इंद्र ने वृत्र को वैसे ही मारा जैसे त्रित वल की परिधियों का नाश करते हैं। (१.५२.५)। इंद्र, त्रित आप्त्य तथा मरुतों के साथ, सोम पीते हैं। (८.१२.१६)। इंद्र से शक्ति पाकर त्रित ने वराह (दानव, वृत्र) का नाश किया। (१०.९९.६)।

त्रित की विशेषता यह है कि वह मनुष्यों के सारे पाप समेट लेते हैं और वे मुक्त हो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जाते हैं। हमारा जो प्रकट पाप हो, जो गुप्त हो, वह त्रित आप्त्य को चला जाए। (८.४७.१३)। जो दुःस्वप्न हमारा अहित करने वाला हो, वह त्रित आप्त्य को चला जाए।(८.४७.१४)। पाप या दुःस्वप्न दूर करने के लिए सीधे त्रित से नहीं, किसी अन्य देवता से कहा जाता है। त्रित की यह स्थिति देव से अधिक दानव के अनुरूप है। जो सीधे भले आदमियों को सताते हैं; सोम उन्हें अहि को दे दे। (७.१०४.९)। जैसे कुछ अहित्व वरुण में था, वैसे ही त्रित में है। वरुण और अहि अलग हुए, त्रित और अहि अलग हुए। त्रित ने वृत्र को मारा, यह इंद्र का विशेष कर्म हो गया। त्रित की अपेक्षा वरुण सत्य और नैतिकता से अधिक संबद्ध हुए। दोनों को मिलाकर वृत्र से इनकी भिन्नता देखें तो ऋत और अनृत का द्वैत स्पष्ट हो जाएगा।

यूनानी देवकथाओं में समुद्र के एक देवता त्रितोन् हैं जो वैदिक त्रित के प्रतिरूप जान पड़ते हैं। ऋग्वेद में एक त्रैतन हैं जिन्होंने दीर्घतमा ऋषि का सिर काटना चाहा था। उल्लेखनीय है कि उनके साथियों ने दीर्घतमा को बाँधकर नदी में डाल दिया था। (१.१५८.५)। इससे संकेत मिलता है कि वह नदी में या उसके आसपास रहे होंगे। त्रैतन को दास कहा गया है, उनके साथी भी दास हैं। दानवों को अक्सर दास कहा गया है; अतः बहुत संभव है त्रैतन नदीवासी दानव हों। अवेस्ता में थ्रएतओ निस्संदेह त्रैतन के रूपांतर हैं और विशेष बात यह कि उन्होंने अहि को मारा है। (यस्न, ९.७,८)। 'चिन्मय' दत्त ने अझिम् दहाकम् में दंश्, दश् से दहाकम् को व्युत्पन्न माना है। संभव है हिंदी डसना की तरह दस्क्रिया का चलन रहा हो; दहाकम् का दह् दश् का नहीं दस का रूपांतर हो। अवेस्ता के थ्रएतओन से संकेत यह मिलता है कि त्रित की तरह त्रैतन ने भी दानव को मारा होगा।

अवेस्ता में त्रित भी हैं—थ्रितो रूप में। वह वैद्य हैं, आदि भिषज्। ऋग्वेद में आपः सर्वाधिक मातृत्वपूर्ण भिषज हैं—भिषजो मातृतमाः, इसलिए आपः से थ्रितो के प्राचीन संबंध की कल्पना की जा सकती है। त्रित आप्त्य नाम से यह संबंध ऋग्वेद में विज्ञापित है। अवेस्ता में त्रित और आप्त्य अलग हो गए हैं; आप्त्य के रूपांतर हैं आथ्व्यो, और वह थ्रएतओन के पिता हैं। मैकडनल ने लिखा है कि त्रित का नियमित विशेषण है आप्त्य और वह आप् से व्युत्पन्न जान पड़ता है, "अतः वह व्यवहारतः अपां नपात् के अर्थ का द्योतक है"।[22] ईरानी परंपरा में यह अपा नपात् धरती पर एक स्थान ("a locality on earth") है; वहाँ थ्रित रहते हैं।[23] यह स्थिति ऋग्वेद के बाद की ही हो सकती है जब अपां और नपात् दोनों का अर्थ प्राचीन ईरानियों की स्मृति से लुप्त हो गया है। किंतु मैकडनल के चिंतन पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत हावी है और वह अवेस्ता की देवकथाओं को 'इंडोईरानियन पीरियड' से जोड़ते हैं अर्थात उनकी रचना ऋग्वेद से पहले हुई, उस समय हुई जब भारतीय आर्य ईरान में बसे हुए थे। थ्रित ने अहुर मज़्दा से दस हज़ार वनस्पतियाँ प्राप्त कीं। वे अमृत वृक्ष, श्वेत हओम (सोम) के चारों ओर उगी थीं। "इससे विदित होत है कि बहुत पहले, इंडोईरानियन काल में ही त्रित सोम से संबद्ध थे"।[24] और इस वाक्य से पहले वह बता चुके हैं कि त्रित धरती पर जिस जगह रहते थे, उसका नाम अपांनपात् था! केवल अवेस्ता की भाषा वैदिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भाषा का अपभ्रंश रूप नहीं है, प्राचीन ईरानी देवकथाएँ भी वैदिक देवकथाओं का अपभ्रंश रूप हैं। निस्संदेह अपभ्रंशों में बहुत से 'देशज' तत्व हैं और संस्कृत से भिन्न कुछ प्राचीन भाषा तत्व भी हैं पर इससे अपभ्रंश संस्कृत की माताएँ नहीं हो जातीं। 'इंडोईरानियन पीरियड' की धारणा के अनुरूप ऋग्वेद की व्याख्या अपभ्रंश से संस्कृत की उत्पत्ति सिद्ध करने के समान है।

त्रित आप्त्य, त्रैतन, अहिर्बुध्न्य, वृत्र, वरुण आदि सब जल से संबद्ध हैं। जल की यह उपासना मातृसत्ताक समाज में आरंभ होती है और वैदिक पितृसत्ताक समाज में क़ायम रहती है। अहि शक्ति का प्रतीक है, अहिर्बुध्न्य की स्तुति से ज्ञात होता है कि सांस्कृतिक विकास की एक मंज़िल में उसकी पूजा होती थी। मार्शल ने सिंधु सभ्यता की जल-पूजा को वैदिक जल-पूजा से अलगाया है, वैसे ही उत्तरकालीन संस्कृति से नाग-पूजा का विशेष संबंध दिखाकर उन्होंने उसे वैदिक संस्कृति से अलगाया है। पर वैदिक समाज में नागपूजा का नितांत अभाव नहीं था, यह स्पष्ट है। नाग जहाँ दुष्टता का प्रतीक है, वहाँ वह बाइबिल के शैतान का भी पूर्वरूप है। अवेस्ता में वह ज़रथुश्त्र को तरह-तरह के प्रलोभन देता है, काँगा ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि इसी तरह राजकुमार सिद्धार्थ को मार प्रलोभन देता है। शैतान ने ईसा मसीह को प्रलोभन दिए, उससे पहले यह कार्य भारत और ईरान में हो चुका है। परमेश्वर और शैतान से पहले वरुण और वृत्र, अथवा इंद्र और वृत्र के द्वैत का विकास हो चुका है।

यूनानी देवकथाओं पर अपनी पुस्तक में ऐच० जे० रोज़ ने लिखा है कि यूनानियों के लिए धरती चपटी और गोल थी। जहाँ पहाड़ियाँ थी, वहाँ आकाश का गुंबद उन्हें छूता था। सूर्य और नक्षत्र एक ओर से उदय होते हैं, दूसरी ओर अस्त होते हैं।[25] सूर्यदेव पश्चिम के समुद्र में डूबते हैं, नहाते हैं, विश्राम करते हैं, फिर एक बड़े प्याले में उतराते हुए पूरब से निकल आते हैं।[26] मूलतः यह वही कल्पना है जो मिस्र, सुमेर और भारत की देवकथाओं में प्रचलित थी। यूनानी यह भी मानते थे कि धरती के चारों ओर एक नदी बहती है जिसका नाम है ऑकॅअनॉस् (अँग्रेज़ी का ओशन्)। लिडेल और स्कॉट ने ग्रीक भाषा के कोश में बताया है कि यह नदी "सभी लघु जलों का स्रोत" थी, अर्थात नदियों, कुँओं, झरनों आदि को मीठा पानी उसी अदृश्य नदी से प्राप्त होता था। यह नदी सुमेरी अप्सू से मिलती-जुलती है। कवि हेसिऑद की सृष्टिकथाओं में ऑकॅअनॉस् के पिता हैं ऑउरनॉस् जो वरुण के प्रतिरूप हैं। वह आकाश का मंडप है पर अदृश्य नदी के पिता होने के कारण जल से उनका संबंध बना हुआ है। ऑउरनॉस के पुत्र हुए ख्रॉनॉस् और इनके पुत्र हुए ज़ॅउस्। देवों की नई पीढ़ी ने पुरानी पीढ़ी को अपदस्थ कर दिया। हित्ती क्षेत्र के कुम्बार्बिदेव के साथ भी ऐसा ही हुआ था। रोज़ ने लक्ष्य किया है कि हित्ती-यूनानी कथाओं में साम्य है। उनका विचार है कि हेसिऑद इस हित्ती कथा से या उस जैसी किसी अन्य कथा से परिचित थे।[27] ऐसा प्रतीत होता है कि होमर की तरह हेसिऑद के लिए भी हित्ती प्रदेश अनेक कथाओं का स्रोत था। संभव है, ये कथाएँ वहाँ भारत से पहुँची हों।

ज़ैबस् का पितृत्व ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वह ख्रॉनॉस् (काल, समय) के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुत्र हैं। यूनान के अधिकांश देवी देवता बहुत ही ठोस भौतिक प्रपंचों से संबद्ध होते हैं, काल की धारणा काफ़ी अमूर्त है। द्यौस् का प्रतिरूप है ज़ॅउस्। ऋग्वेद में द्यौस् काल पुत्र नहीं हैं। क्या इंडोयूरोपियन काल की अमूर्त धारणा का भारत आते-आते ह्रास हो गया ? वास्तव में काल आदि जनक है, सब कुछ उससे उत्पन्न हुआ है, द्यौस भी उससे उत्पन्न हुआ है, यह धारणा भारतीय है किंतु ऋग्वेद के बाद की है। कालोऽमूं दिवमजनयत्, काल ने आकाश को उत्पन्न किया (अथर्ववेद, १६.५३.५)। यूनान के बाहर केवल भारत में काल को आकाश का जनक माना गया है—अथर्ववेद में। यह धारणा ऋग्वेद की रचना के कई शताब्दियों बाद यूनान पहुँची होगी। वैदिक परंपरा में अनेक धाराएँ थीं, जिस धारा के प्रभाव से ख्रॉनॉस् को जेउस् का पिता माना गया, वह कालवादी रही होगी। सब कुछ जल से उत्पन्न हुआ है, इस धारणा के विपरीत अथर्ववेद में यह प्रतिपादित किया गया है कि जल काल से उत्पन्न हुए हैं—कालादापः समभवन् (उप०, १६.५४.१)। भारत में ये दो भिन्न धाराएँ दिखाई देती हैं—एक कालवादी, दूसरी जलवादी। यूनानी देवतंत्र में ये दोनों मिल गई हैं। कालवादी धारा की छायामात्र है, ख्रॉनॉस् ज़ॅउस् के पिता है, इसके अतिरिक्त आदि तत्व अथवा आदि देव के रूप में काल पर ज़ोर नहीं है। मूल प्रभावशाली धारा वही जलवादी है।

कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री में यूनानी देवतंत्र का विवेचन करते हुए गुथ्री ने लिखा है कि होमर में सृष्टि संबंधी यह विचार सुरक्षित रहा है कि सभी पदार्थों का उद्भव स्थान जल है। होमर के बाद के उल्लेखों से पता चलता है कि यूनानी यह भी मानते थे कि आरंभ में आकाश और पृथिवी संयुक्त थे। गुथ्री ने बैबिलोनी, हित्ती, हुर्री कथाओं का उल्लेख किया है जिनमें नए पुराने देवताओं में युद्ध होता है और पृथिवी आकाश को बलपूर्वक अलग किया जाता है।[28] ऐसा ही यूनानी देवकथाओं में हुआ। मिस्री, सुमेरी, भारतीय देवकथाओं में यह कार्य अधिक प्राकृतिक ढंग से वायु की शक्ति द्वारा, संपन्न हुआ। मिस्र और सुमेर से भिन्न यूनान और भारत की देवकथाओं में एक बात सामान्य है, वह यह कि जल के भीतर से धरती के उभरने के साथ कामदेव उत्पन्न हुए। कामस्तदग्रे समवर्तत —सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ (१०.१२६.४) ग्रिफ़िथ ने अपने अनुवाद के साथ पादटिप्पणी में यूनानी देवता ऍरोस्, कामदेव के प्रतिरूप का उचित ही उल्लेख किया है।

ई० ओ० जेम्स ने ज़ॅउस् के लिए कहा है कि उनमें आकाश देवता और मौसम के देवता का मिश्रण है।[29] अर्थात वह द्यौस् और रुद्र का मिश्रित रूप है। यह बात इंद्र के लिए भी कही जा सकती है। वास्तव में ज़ॅउस् का पूर्व रूप इंद्र है, द्यौस् नहीं। रुद्र की विशेषताएँ द्यौस् में नहीं हैं, इंद्र में हैं। द्यौस् और रुद्र जैसे विशिष्ट देव यूनानी देवतंत्र में नहीं हैं,अतः वहाँ इनके मिश्रित होने का प्रश्न नहीं था। ऋग्वेद में द्यौस् और रुद्र पृथक् और विशिष्ट देव हैं, इंद्र में उनकी विशेषताओं के मिश्रण की प्रक्रिया वहाँ स्पष्ट देखी जा सकती है। इस कारण मानना चाहिए कि ज़ॅउस संबंधी कल्पना का आधार इंद्र हैं, द्यौस नहीं। जेम्स ने इस प्रसंग में वरुण का उल्लेख भी किया है। यूनान में बहुत से स्थानीय ज़ॅउस् थे, वे बादल बटोरते, जल बरसाते, झंझावात प्रवर्तित करते थे। "लेकिन आकाश से उनके पूर्व संबंध कभी टूटे नहीं, जब वरुण वाले अपने वैदिक रूप में, दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के शुरू होते-होते, यूनान में प्रवेश करने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से पहले, 'विशाल आकाश, बादलों और ज्योति दोनों में ही, उनका भाग था''।[30] देशकाल के विचार से यह वाक्य सारगर्भित है। ज़ॅउस् का वरुण वाला वैदिक रूप—भारत में—पहले निर्धारित हुआ, यूनान में उसका प्रवेश बाद में हुआ। यह हुई देशगत स्थापना। यूनान में वरुण का प्रवेश दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के आरंभ में हुआ। अतः वरुण का वैदिक रूप इससे पहले, तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० में किसी समय, निर्धारित हुआ होगा। यह कालगत स्थापना हुई। इन दो स्थापनाओं से दो धारणाएँ खंडित हुईं—एक तो इंडोयूरोपियन अभियान वाली कि यूनानी शाखा पहले अलग हुई, हिंदी शाखा ने भारत में प्रवेश उसके बाद किया, दूसरी यह कि ऋग्वेद की रचना 1500 ई०पू० के बाद हुई थी।

पर ये आनुषंगिक बातें हैं। मुख्य बात यह कि यूनान में ज़ॅउस् ने वरुण वाले वैदिक रूप में प्रवेश किया। वरुण मूलतः जल के देवता हैं। ऋग्वेद के वरुण संबंधी विवरण पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जाएगा कि यूनान के आकाशीय ऑउरनॉस् वरुण के पूर्वरूप नहीं, उनके अंतिम रूपांतर हैं।

जलसंबंधी कथाओं कीतरह अनेक अग्निसबंधी कथाएँ भी वेष बदलकर यूनान पहुँची हैं। ऋग्वेद में देवों और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ की भूमिका अग्निदेव निबाहते हैं। अग्नि से विशेष संबंध अंगिरसों का था। ये भी मध्यस्थ माने गए। भाषा-विज्ञानी ब्रुगमन के अनुसार अंगिरस्''उन दैवी प्राणियों का नाम था जो देवों और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ माने जाते थे।'' ब्रुगमन ने इस शब्द का ग्रीक प्रतिरूप दिया है अङ्गॅल्लॉस्—दूत।[31] इसी ग्रीक रूप से अँग्रेज़ी का एञ्जॅल् (फरिश्ता रूप बना। मैकडनल ने अंङ्गिरस और अङ्गॅल्लॉस् की व्युत्पत्तिमूलक समानता स्वीकार की है।[32] अग्नि के पीछे ज़ॅउस् से यूनानी वीर प्रॉमेथॅउस् का झगड़ा हुआ था। ज़ॅउस् मनुष्यों से रुष्ट हुए तो अग्नि कहीं छिपा दी। हेसिऑद् के वृत्तांत में प्रॅमिथॅउस् एक पोले डंठल में अग्नि को रखकर उसे चुरा लाए।[33] यह पोला डंठल वैदिक अरणि का प्रतिरूप है। अरणियों के मंथन से अग्नि प्रकट होती है। वेद-विशेषज्ञ जर्मन विद्वान काऑंगी ने लिखा है कि अग्नि उत्पन्न करने के लिए पारिभाषिक क्रिया मथ्, मंथ्। प्र-मंथ्-अन वह लकड़ी थी जिसे घुमाकर काष्ठ से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। ग्रीक प्रॉमेथॅउस् इस प्रमंथन का प्रतिरूप है। थूरिअन लोग ज़ॅउस् प्रॉमंथॅउस् के उपासक थे।[34] अर्थात मथ् और मंथ् दोनों क्रियारूपों का व्यवहार यूनान में होता था। अरणिमंथन से अग्नि के उत्पन्न होने की वास्तविकता ने यूनान में प्रॉमेथॅउस् संबंधी कल्पना का रूप लिया।

ऋग्वेद के कवि इस बात के प्रति काफ़ी सचेत हैं कि उनका देवतंत्र अपरिवर्तनशील नहीं है।

देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वे ऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।

''हे इंद्र ! पूर्वे देवों अर्थात असुर लोगों ने अपने बल और क्षात्र तेज को तेरे बलों की अपेक्षा हीन ही मान लिया था।'' सातवलेकर; ७.२१.७)। पूर्वे देवों, पहले के देवों, ने इंद्र को अधिक बलवान माना। यदि ये देव असुर थे तो उनके लिए देवाः का प्रयोग सिद्ध करता है कि अभी असुर देवत्व से खारिज नहीं हैं। असुर्याय में असुर्य का संबंध उसी असु से है जिससे असुर का है। और भीः देवानां पूर्वे युगे ऽसतः सदजायत—''देवों के पूर्व युग में असत् से सत्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उत्पन्न हुआ।" (उप०, १०.७२.२)। आगे देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत में युगे प्रथमे द्वारा कवि ने पूर्व युगे की व्याख्या कर दी। मनुष्य मर्त्य हैं, देवता अमर हैं। मनवः मृत्युबंधवः—वैदिक जनों में यदि यह कहावत प्रचलित रही हो, तो संभव है, देवा अमृतबन्धवः (१०.७२.५)—इस कहावत का भी चलन रहा हो। परंतु यह भेद शाश्वत और निरपेक्ष नहीं है, कुछ कवि विश्वास करते थे कि अमरत्व अर्जित किया जा सकता है। "हे बुद्धिमानो ! तुम गोपनीय स्थानों का निर्माण करो जिससे देव अमरत्व प्राप्त करते हैं"—येन देवासः अमृतत्वमानशुः। (१०.५३.१०)। वे गोपनीय स्थान जो भी हों, यह निश्चित है कि इस ऋचा के अनुसार अमरत्व अर्जित किया जा सकता है। यह विश्वास मिस्र, सुमेर, यूनान—किसी भी देश के देवतंत्र से संबद्ध नहीं है। कोई आश्चर्य नहीं, भारत देवदेश है, यहाँ के लोग अमरत्व का रहस्य जानते हैं, यह ख्याति सुमेर तक फैल गई थी।

भारतीय देवतंत्र का सारा विकास जलसंबंधीधारणाओं से जुड़ा हुआ है।यही जल भारतीय दर्शन के उन पाँच तत्वों में एक तत्व बनता है जिनसे मनुष्य समेत समस्त प्रकृति की रचना हुई है। ऋग्वेद का ऐतिहासिक महत्व यह है कि देवकथाओं के प्राचीनतम स्तरों से उठकर हम इस जल को दार्शनिक स्तर के तत्व तक पहुँचते हुए देख सकते हैं। यह संपूर्ण व्यापार 'इंडोयूरोपियन परिवार' के किसी अन्य घटक के सांस्कृतिक इतिहास में देखने को नहीं मिलता।

तब न सत् था न असत् था,न लोक था. न आकाश से परे कुछ था। सब को कौन ढँके हुए था ? सब का आधार क्या था ? अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्—"अगाध और गंभीर जल क्या था ?" (सातवलेकर, १०.१२६.१)। तब अंधकार था, सब कुछ अंधकार से ढँका था। अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्—"अज्ञात दशा में यह सब कुछ जल ही जल था।" (उप०, १०.१२६.३)। बुद्ध-पूर्व दर्शन के इतिहासकार बेनीमाधव बरुवा ऋषि परमेष्ठिन् के लिए कहते हैं : "उनके विचार से मूल पदार्थ को न तो सत् की व्याख्या के अंतर्गत रखा जा सकता है न असत् की। परमेष्ठिन् ने थलेस के समान व्याख्या के लिए जल (सलिल) को मूल सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया। जल से सभी वस्तुओं का निर्माण होता है; जो कुछ भी विद्यमान है, उसका मूल तत्व जल है"।[35] थलेस छठी सदी ईसा पूर्व के यूनानी दार्शनिक थे। उनसे यूनानी दर्शन की शुरुआत होती है। वह जल को सृष्टि का आदि तत्व मानते थे। उनसे बहुत पहले ऋग्वेद में इस तत्व की अवधारणा हो चुकी थी और वह सृष्टि संबंधी भारतीय चिंतन का अपरिहार्य अंग बन गई थी। महाभारतकार का कहना था :

पुरा स्तिमितमाकाश मनन्त मचलोपमम्।
नष्ट चन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव सम्बभौ।।
ततः सलिलमुत्पन्नं, तमसिवापरं तमः।
तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः।।

पूर्वकाल में अनंत आकाश पर्वत के समान निश्चल था। उसमें चंद्रमा, सूर्य अथवा वायु किसी के दर्शन नहीं होते थे। वह सोया हुआ सा जान पड़ता था। तदनंतर आकाश से जल की उत्पत्ति हुई; मानो अंधकार में ही दूसरा अंधकार प्रकट हुआ हो। उस जलप्रवाह से वायु का उत्थान हुआ (शांतिपर्व,, १८३.६-१०)। सारा सृष्टि क्रम वही है जो ऋग्वेद में है। जब तक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विश्व अव्यक्त अवस्था में है, तब तक केवल अंधकारमय आकाश है। व्यक्त अवस्था में सबसे पहले जल उत्पन्न होता है। भारतीय चिंतन में आकाश स्वयं एक तत्व है; यूरोप के चिंतन में इस तत्त्व का अभाव रहा है।

संदर्भ

1. आर० सी० मजूमदार, द वेदिक एज, पृ० 70.
2. उप०, पृ० 73.
3. ऐटकिंसन, जिऑलॉजी ऑफ़ द हिमालयाज़, पृ० 182.
4. वाडिया, जिऑलॉजी ऑफ़ इंडिया, पृ० 23.
5. मैकडनल, वैदिक मिथौलोजी, पृ० 45.
6. उप०, पृ० 123.
7. उप०, पृ० 130.
8. मजूमदार, पूर्वोल्लिखित, पृ० 219-20.
9. उप०।
10. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 156.
11. उप०, पृ० 74.
12. गुर्ने, द हिट्टाइट्स, पृ० 134.
13. निल्सन, द मिनोअन-मिकीनीअन रिलीज़न, पृ० 220-23.
14. उप०, पृ०, 226.
15. उप०, पृ० 224.
16. उप०, पृ० 223,
17. जेम्स, द एन्शेंट गॉड्स, पृ० 42.
18. कांगा और सोनटक्के, अवेस्ता, भाग 3, पृ० 30.
19. उप०, पृ० 26.
20. उप०।
21. उप०, पृ० 4.
22. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 69.
23. उप०, पृ० 68.
24. उप०।
25. रोज़, ए हैंडबुक ऑफ़ ग्रीक मिथौलौजी, पृ० 16.
26. उप०, पृ० 33.
27. उप०, पृ० 20.
28. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री, खंड II, भाग 2 , पृ० 892-93.
29. जेम्स, पूर्वोल्लिखित, पृ० 222.
30. उप०, पृ० 273.
31. ब्रुगमन, ए कंपैरेटिव ग्रामर ऑफ़ द इंडो-जर्मेनिक लैंग्वेज, खंड 2, पृ. 200.
32. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 143.
33. कर्क, मिथ, पृ० 226.
34. काअंगी, द रिग्वेद : द ओल्डेस्ट बुक ऑफ इंडियंस, पृ० 37.
35. बरुआ, ए हिस्ट्री ऑफ प्रिबुद्धिस्ट इंडियन फ़िलौसॉफ़ी, पृ० 20.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

7

सृष्टिकथाएँ और दार्शनिक उद्‌भावनाएँ

क. असत् और रात्रि

सृष्टि संबंधी अनेक मिलती-जुलती कथाएँ और कल्पनाएँ जो पहली सहस्राब्दी ई० पू० में या उससे पहले मिस्र, सुमेर-बैबिलोन, यूनान, फ़िलिस्तीन आदि देशों में प्रचलित दिखाई देती हैं, उनके संकेत ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषदों, तथा जब-तब भारतीय काव्यों और पुराणों में मिलते हैं। इनमें ऋग्वेद की जो दार्शनिक उद्‌भावनाएँ भारत से बाहर देवकथाओं का रूप लेती हैं, वे बहुत दिलचस्प हैं। इनमें एक है असत् की अवधारणा।

"देवों के पूर्वयुग में — आदि सृष्टि में — असत् से सत् उत्पन्न हुआ (अव्यक्त ब्रह्म से व्यक्त देवादि उत्पन्न हुए)। देवों के पूर्वयुग में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। इसके अनंतर दिशाएँ उत्पन्न हुईं और उसके पश्चात वृक्ष उत्पन्न हुए" (सातवलेकर, १०.७२.२, ३)। एक मिस्री कथा में देवों और देवियों के चार जोड़े संसार की रचना में भाग लेते हैं। चौथे जोड़े में अमुन् देव और अमौनेत् देवी हैं। इन्हें कभी-कभी दो आश्चर्यजनक नाम दिए जाते हैं — निआ और निअत्। इनका वही अर्थ है जो असत् का है। प्राचीन सृष्टिकथाओं पर अपनी पुस्तक में ब्रैन्डन ने लिखा है कि इन शब्दों का निर्माण "उस क्रियामूल से हुआ है जिसका अर्थ है 'कुछ नहीं (nothing) और वे 'वायु' का अर्थ देते प्रतीत होते हैं"।[1] वायु की बात उठा रखें, निआ और निअत् अस्तित्व के अभाव के परिचायक हैं। असत् के दो भाग कर दिए गए हैं, एक पुरुष, दूसरा स्त्री। स्त्री-पुरुष के संयोग के बिना सृष्टि हो नहीं सकती; इसलिए जो कुछ नहीं है, उसने भी देव-देवी के जोड़े का रूप धारण किया!

बाइबिल में कहा गया है: और पृथ्वी बेडौल और सुनसान पड़ी थी; और गहरे जल के ऊपर अंधियारा था; तथा परमेश्वर का आत्मा ज़ल के ऊपर मंडलाता था" (उत्पत्ति, 1.2) धरती बेडौल और सुनसान थी। अँग्रेज़ी रूपांतर में: The earth was waste and void. इस वाक्य में जो waste and void विशेषण है, उन पर ब्रैन्ड्न की टिप्पणी है: "हीब्रू शब्दों तोहू बा-बोहू का अनुवाद 'waste and void' किया गया है। इस प्रसंग में मूलतः उनका अर्थ है 'अस्तित्वहीन' ('nonexistent'), जैसा कि १.९-१० में कही बात से स्पष्ट है। दूसरे शब्दों में आरंभ में धरती का अस्तित्व नहीं था; केवल गहरा जल (the deep) था"।[2] १.९-१० में बताया गया है, पहले केवल जल था; जब ईश्वर ने कहा, सारा जल एक जगह इकट्ठा हो जाए, तब सूखी भूमि दिखाई दी। पहले भूमि नहीं थी, फिर वह अस्तित्व में आई। यदि असत् का अर्थ अव्यक्त करें तो यहाँ भी सत् की उत्पत्ति असत् से हुई।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ब्रह्मांड के उभरने से पहले केवल **अप्रकेतं सलिलम्** (१०.१२९.२) है। अप्रकेत को हम अव्यक्त का पर्याय मान सकते हैं, जहाँ कुछ भी पृथक नहीं है, वह अप्रकेत (अव्यक्त) है। इस प्रकार जल ही अव्यक्त का स्वरूप होगा। धरती, आकाश, सूर्य, चंद्र, दिन, रात, अमरता और मृत्यु से पहले–ये सब व्यक्त जगत की विशेषताएँ हैं–न सत् था, न असत् था (१०.१२९.१,२)। इस उक्ति का आशय यह हो सकता है कि एक समय अव्यक्त रूप जल भी नहीं था। किंतु असत् का अर्थ अनस्तित्व है, यह धारणा व्यापक रूप से प्रचलित रही होगी। तीसरी सहस्राब्दी ई॰पू॰ के मिस्री अभिलेखों में राजा को अमर बताने के लिए उसके जन्म को सत्-असत् से पहले की स्थिति से जोड़ा गया है। राजा का जन्म नुन् (आदिम जलराशि) में हुआ "जब आकाश का अस्तित्व नहीं था, और धरती का अस्तित्व नहीं था, जब उसका अस्तित्व नहीं था जो स्थापित होने को था, जब अव्यवस्था (disorder) का अस्तित्व नहीं था, जब उस भय का अस्तित्व नहीं था जो होरस की आँख के द्वारा अस्तित्व में आया"।[3] जो स्थापित होने को था, वह है सत् (व्यक्त जगत्); जो अव्यवस्था है, वह है असत् (अप्रकेत, अव्यक्त)। सत्-असत् से पहले की स्थिति से राजा उत्पन्न हुआ। किंतु सत्-असत् से पूर्व की दार्शनिक उद्‌भावना राजा की प्रशंसा से जोड़ी गई है, अब उस में असंगति पैदा हो गई है, क्योंकि राजा का जन्म नुन् में हुआ है। ब्रैन्डन ने लिखा है, कि "मिस्री चिंतन में आदिम पदार्थ शून्य जल है (the primeval waste of waters)"।[4] बाइबिल के waste and void पर ब्रैन्डन की जो टिप्पणी पहले उद्‌धृत की गई है, वह यहाँ स्मरणीय है। आदिम जलराशि में सब कुछ अस्तित्वहीन है, इसलिए केवल waters कहना काफ़ी नहीं है। waste of waters मज़े में **अप्रकेतं सलिलं** का अनुवाद हो सकता है।

उसी कालखंड के एक अन्य मिस्री अभिलेख में राजा के लिए कहा गया है, उसे अतुम् देव ने जन्म दिया "जब आकाश का अस्तित्व नहीं था; धरती का अस्तित्व नहीं था; मनुष्यों का अस्तित्व नहीं था; देवों के जन्म से पहले; मृत्यु के अस्तित्व से पहले"। एक युग ऐसा है जो देवों के जन्म से पहले है (१०.७२.२); एक समय मृत्यु नहीं थी, अमरता नहीं थी (१०.१२९.२) ये धारणाएँ राजा की प्रशंसा से जोड़ी गई हैं। मृत्यु का अर्थ है मनुष्य; अमरता का अर्थ है देवता। देवों से पहले के युग में देवता नहीं थे, मनुष्य नहीं थे। तब राजा की उत्पत्ति किसी देवता से न हो सकती थी। किंतु राजा की प्रशंसा के लिए किसी देवता से उसका उत्पन्न होना जरूरी था। इसलिए उसे अतुम् देव से उत्पन्न बता दिया गया। ऋग्वेद में देवता अमृतबंधु हैं (१०.७२.५), मनुष्य मृत्युबंधु है (८.१८.२२)। जब मनुष्य नहीं है, तब मृत्यु भी नहीं है। मिस्री अभिलेख में होरस की आँख से अस्तित्व में आने वाले जिस भय की ओर संकेत है, वह मृत्यु का भय होगा। एक समय "उस भय का अस्तित्व नहीं था"; यही बात दूसरे अभिलेख में मानों स्पष्ट कही गई है–"मृत्यु के अस्तित्व से पहले"। मृत्यु से पहले की स्थिति अव्यक्त जगत की स्थिति है। बाइबिल में उसे व्यक्त जगत की स्थिति से जोड़ दिया गया है। आदम ने ईश्वर की आज्ञा न मान कर ज्ञान के वृक्ष का फल खा लिया, तब मनुष्य जाति को दंड देने के लिए मृत्यु का आविर्भाव हुआ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋग्वेद की अवधारणा--कि आरंभ में न सत् था, न असत् था -- के साथ स्मरणीय है अंधकार (१०.१२६.१,३)। यह अंधकार केवल प्रकाश का अभाव नहीं है; वह एक तत्व के समान है, विश्व रचना में उसकी सक्रिय भूमिका है। अथर्ववेद में रात्रि के शक्तिशाली स्वरूप का वर्णन है। उसने पृथिवी के स्थानों को भर दिया है, वह द्युलोक के स्थानों को भरकर रहती है। (अथ० १६.४७.१)। उसका पार दिखाई नहीं देता, उसमें कुछ भी अलग-अलग प्रतीत नहीं होता। (अथ० १६.४७.२)। ऋग्वेद में जलराशि को अप्रकेत कहा गया है। (ऋग्वेद १०.१२६.३); उसमें यही किसी चीज के पहचान में न आने का भाव है। न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः, दिन और रात प्रकेत नहीं थे, अलग-अलग अभी वे पहचाने न जाते थे। (१०.१२६.२)। इस आदिम अप्रकेत अंधकार का प्रतीक है रात्रि। न यस्याः पारे ददृशे - उसका पार नहीं दिखाई देता। (अथ० १०.४७.२)। कौन तम के पार रे कह ! रात्रि मातः (अथ० १०.४८.२), यह रात्रि मनुष्यों की माता है।

होमर के काव्य में रात्रि इतनी शक्तिशाली है कि वह मनुष्यों को ही नहीं, देवों को भी झुका लेती है। नींद के देवता का नाम है हुप्नॉस्। वह सभी देवों को सुला सकते हैं। ओकॅअनॉस् नदी की धाराओं से देवता उत्पन्न हुए हैं, उन धाराओं को वह सुला सकते हैं। किंतु जब तक जॅउस् स्वयं न बुलाएँ, तब तक वह उन्हें सुलाने न जाएँगे। (इलिअदॉस्, १४.२४३-४८)। यूनानी देव मंडल में जॅउस् की स्थिति ऋग्वेद के इंद्र जैसी है। इसलिए हुप्नॉस् उनसे डरते हैं। पर जॅउस् की पत्नी ने हुप्नॉस् को राजी कर लिया और वह जॅउस् को सुला आए। जॅउस् की नींद टूटी तब वह बहुत क्रुद्ध हुए, देवों को उठा कर इधर-उधर फेंकने लगे। हुप्नॉस् को खोजते रहे, मिलने पर उनकी हड्डी पसली का पता न चलता। हुप्नॉस् कहते हैं, "वह मुझे आकाश से गहरे खड्ड में फेंक देते कि फिर मैं कभी दिखाई ही न देता यदि मुझे रात्रि ने न बचाया होता -- रात्रि जो अपने प्रभुत्व के आगे देवों और मनुष्यों, दोनों को झुका लेती है।" (उप० १४.२५६.६१) जॅउस् सब देवों से शक्तिशाली हैं किंतु रात्रि की देवी उनसे भी अधिक शक्तिशाली है।

ख. आदिम जलराशि और रसा

हुप्नॉस् का विचार है कि वह जॅउस् की पकड़ में आ जाते तो आकाश से गहरे खड्ड में फेंक दिए जाते। यह गहरा खड्ड कहाँ है ? अवश्य ही वह धरती आकाश के बीच में नहीं है। होता तो हुप्नॉस् आकाश से फेंके जाने पर धरती पर आते। पर इस खड्ड में गिर कर वह फिर कभी दिखाई न देते। होमर ने पॉन्तो शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है समुद्र। अंग्रेजी में मरे ने इसका अनुवाद The deep किया है। बाइबिल के अँग्रेजी रूपांतर में इसी शब्द का प्रयोग किया गया है, "and darkness was upon the face of the deep." हिंदी अनुवाद में मूर्तिविधान और भी स्पष्ट है, "और गहरे जल के ऊपर अंधियारा था" (उत्पत्ति, १.२)। हुप्नॉस् जिस खड्ड में फेंके जा सकते थे, वह जलमय है। रात्रि का निवास इसी खड्ड के आस-पास है, इसीलिए हुप्नॉस् को खड्ड में फेंके जाने से वह बचा लेती है। ऋग्वेद में कवि का प्रश्न है : अम्भः किमासीदगहनं गंभीरम्-- "अगाध और गंभीर जल क्या था ?"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(सातवलेकर, १०.१२९.१)। पृथ्वी आकाश इसी अगाध और गंभीर जल से बाहर निकले हैं। उनके बाहर निकलने के बाद वह जलराशि समाप्त नहीं हो गई। वह आकाश और पृथ्वी को घेरे हुए है। इसीलिए आकाश से हुप्नॉस् फेंके जाएँ तो वे अगाध समुद्र में अदृश्य हो जाएँगे।

इस आदिम जलराशि के लिए एक यूनानी शब्द है खऑस्; उसका अँग्रेजी प्रतिरूप है chaos। इसी केऔस को लक्ष्य करके मिल्टन ने लिखा था : The Heavens and Earth Rose out of chaos. (पैराडाइज लॉस्ट, १.९.१०)। यूनानी कवि हेसिऑद ने लिखा था : "सत्य ही आरंभ में खऑस् अस्तित्व में आया परंतु उसके बाद विशद वक्ष वाली धरती जो अमरों का सदृढ़ आधार है..."।[5] ब्रैन्डन ने बताया है कि हेसिऑद के एक बाद वाले संकेत से ज्ञात होता है कि उनके विचार से केऔस अंधकारमय था।[6]

बाइबिल में यह केऔस जलमय है। ब्रैन्डन ने भजन संहिता (१०४.५-६) से आदिम जलराशि का वर्णन उद्धृत करते हुए "जलों के आदिम केऔस (The primeval chaos of waters) के भव्य मूर्तिविधान" का उल्लेख किया है।[7] प्रिचार्ड ने मिस्री सृष्टिकथा के प्रसंग में अतुम् देव को "जलों के केऔस (the waters of chaos) से बाहर उठती हुई पहाड़ी के ऊपर" प्रतिष्ठित बताया है।[8] प्राचीन धर्मों और देवकथाओं के विवेचक केऔस को जल से बराबर संबद्ध करते हैं, यह इन दो उदाहरणों से स्पष्ट है। जहाँ सब कुछ अव्यवस्थित हो, वह केऔस है--यह धारणा नई नहीं है। ग्रिफिथ ने अप्रकेतं सलिलं का अनुवाद किया है indiscriminate chaos, जो अप्रकेत है, वह indiscriminate है, उसमें कुछ भी अलग से पहचान में नहीं आता, सब कुछ अव्यवस्थित है। सलिलं, आदिम जलराशि, chaos है। अप्रकेतं सलिलं (१०.१२९.३) के लिए ब्रैन्डन के शब्दबंध the primeval chaos of waters का प्रयोग सार्थक होगा।

आदिम जलराशि का एक रूप यूनानियों की ओकेंअनॉस् नदी है। होमर के अनुसार उससे "सभी नदियों में, प्रत्येक समुद्र में, और सभी झरनों और गहरे कुँओं में जल प्रवाहित होता है" (इलिअदॉस् २१.१९६.९७)। ओकेंअनॉस् धरती को घेरे है और वह धरती के नीचे भी है, वर्ना कुँओं में उससे जल न पहुँचता। होमर के काव्य में एक देवशिल्पी ने ढाल बनाई। उसमें उसने धरती, आकाश, सूर्य, चंद्र, समुद्र आँके, फिर "उस सुदृढ़ अंकन वाली ढाल के एकदम बाहर किनारे-किनारे ओकेंअनॉस् नदी की महाशक्ति भी अंकित कर दी।" (इलिअदॉस्, १८.४८३-८५)। इस पर ब्रैन्डन की टिप्पणी है, "कवि ने विश्व की, अर्थात् धरती, समुद्र, और नक्षत्रयुक्त आकाश की यह स्पष्ट कल्पना की है कि वह ओकेंअनॉस् नाम की विशाल नदी से घिरा हुआ है"।[9] ब्रह्मांड एक विशाल जलराशि से घिरा हुआ है। यह आदिम जलराशि है और ब्रह्मांड उसी से बाहर आया है। अँग्रेजी का समुद्रवाचक ओशन् यूनानी ओकेंअनॉस् का रूपांतर है। जैसे संस्कृत सिंधु का अर्थ नदी और समुद्र दोनों है, वैसे ही संभव है, ओकेंअनॉस् से नदी के अलावा कभी समुद्र का भी बोध होता हो। दिलचस्प बात है कि मरे ने अपने अनुवार में ओकेंअनॉस् को एक जगह नदी (the river oceanus) और दूसरी जगह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समुद्र (deep flowing Ocean) कहा है। (इलिअदॉस, १८.६०७ और २१.१९५)।

ओकॅअनॉस् ऋग्वेद की रसा नदी से तुलनीय है। ग्रिफ़िथ ने १.११२.१२ के अनुवाद पर अपनी टिप्पणी में मैक्समुलर के मत का हवाला दिया है कि रसा एक वास्तविक नदी थी जो आर्यों के पंजाब पहुँचने पर "धरती की चरम सीमाओं को घेरने वाली एक प्रकार की ओकॅअनॉस् हो गई। ग्रिफ़िथ ने सरमा और पणियों के प्रसंग में लिखा है कि "यहाँ वह देवकथात्मक नदी है जो धरती और अंतरिक्ष के चारों ओर बहती है।" (१०.१०८.१ पर टिप्पणी)।(सायण ने यास्क का अनुसरण करते हुए १.११२.१२ के भाष्य ने रसा को सामान्य नदी माना है पर १०.१०८.१ के भाष्य में उन्होंने उसे सौ योजन विस्तार वाली अंतरिक्ष नदी कहा है। रसा अगाध दुस्तर नदी है। पणि आश्चर्य से पूछते हैं : तुमने रसा के जलों को कैसे पार किया ? सौ योजन का विस्तार समुद्र जैसा है। उनका एक प्रश्न और हैः तुम्हारी रात्रि कैसे बीती ? सायण ने यास्क का अनुसरण करते हुए परितक्म्या का अर्थ रात्रि किया है। अंधकार में बहती हुई रसा, वैसे ही अंधकार में बहती हुई ओकॅअनॉस्। दोनों धरती और अंतरिक्ष को घेरकर बहती हैं, इतनी विशाल हैं कि उन्हें समुद्र भी कहा जा सकता है। रसा और ओकॅअनोस् आदिम जलराशि का वह भाग हैं जो धरती आकाश के बाहर निकलने पर बच रहा है। ऋग्वेद में कुभा, कमु और सिंधु नदियों के साथ रसा का नाम आया है। अवश्य ही वह एक वास्तविक नदी थी। सरस्वती भी वास्तविक नदी थी और वह आकाश में भी थी। सप्तसिंधु प्रदेश के सीमांत पर बहने वाली रसा इसी तरह धरती-अंतरिक्ष को घेरकर बहनेवाली नदी बन गई। ओकॅअनॉस् नाम की कोई नदी यूनान में नहीं थी। धरती की नदियों को आकाश में पहुँचा देना यूनानी देवकथाओं की विशेषता नहीं है। धरती अंतरिक्ष को घेर कर बहनेवाली नदी की धारणा यूनानियों ने भारत से ग्रहण की। जर्मन विद्वान काॲंगी का मत है कि ओकॅअनॉस् शब्द वैदिक आशयान का प्रतिरूप है।[10] वृत्र के प्रसंग में इस शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। महां सिंधुमाशयानं...वृत्रम् सिंधु में लेटे हुए विशाल वृत्र को (इंद्र ने मारा : २.११.६), वृत्र माशयानं...वराहुम-पानी को घेर कर लेटे हुए वृत्र (इंद्र ने मारा, १.१२१.११)। पुनरावृत्ति से विशेषण संज्ञा रूप में ग्रहण किया गया हो, यह संभव है।

सुमेरी-बैबिलोनी काव्य का नायक गिलगमेश जब उत्नपिश्तिम् से मिलने जाता है, तब उसे घोर अंधकार में यात्रा करनी होती और वह ऐसे समुद्र को पार करता है जिसे सृष्टि के आरंभ से कोई मनुष्य पार नहीं कर सका। ये सब आदिम अंधकार और जलराशि के अवशेष हैं। ब्रैन्डन ने ओकॅअनॉस की धरणा का स्रोत मेसोपोटामिया को माना है। लिखा है "विश्व जल से घिरा हुआ है, यह विचार बेशक बैबिलोनी विश्वतंत्र की याद दिलाता है, इसलिए मेसोपोटामिया के प्रभाव को सुविधापूर्वक होमर की ओकॅअनॉस अवधारणा का स्रोत माना जा सकता है, यद्यपि यह कहना पड़ेगा कि स्रोत तक के रास्ते का पता नहीं चलता"।[11] जिस रास्ते ऋग्वेद का अप्सु रूप सुमेर पहुँचा, उसी रास्ते रसा की अवधारणा भी वहाँ पहुँची होगी। यूनान में वह नदी ओकॅअनॉस् बनी। हेसिऑद् ने लिखा था, देवता धरती से, आकाश से, रात्रि से और समुद्र से उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद के अनुसार देवता अदिति से, पृथ्वी से और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जलों से (अद्भ्यः) उत्पन्न हुए थे (१०.६३,२)। जलों के प्रमुख भारतीय देवता थे वरुण। इनके सुमेरी प्रतिरूप एनूकि (अथवा एअ) अप्सू में निवास करते थे। वह ज्ञान के देवता भी थे। यह कल्पना इस्राएल पहुँची। इस्राएली जन जिस कनान देश में जाकर बसे थे, उसके देवता एलु जल में रहते थे और ज्ञान के देवता थे। विशेष यह कि ब्रैन्डन के अनुसार वह "दो समुद्रों की सरणियों के बीच नदियों के उद्गम पर" रहते थे।[12] ठीक यही स्थिति वरुण की है। वह सिन्धूनाम् उपादये, नदियों के उद्गम पर रहते हैं (dwelling at the rivers' source"— ग्रिफिथ, ८.४१.२)। और वरुण ज्ञान के देवता तो हैं ही।

ऋग्वेद में वृत्र जलप्रवाहों को रोकता है। जलप्रवाहों की मुक्ति के लिए इंद्र उसका वध करते हैं। सुमेरी देवकथाओं में वृत्र से मिलती-जुलती भूमिका कुर नाम के दानव की है। एनूलिलु के पुत्र निनुर्त उसका वध करते हैं। निनुर्त इंद्र के समान योद्धा हैं। ब्रैन्डन के अनुसार जलप्रवाहों से कुर् का संबंध यह है, "उल्लेखनीय है कि यह दानव (ड्रैगन) आदिम जलराशि से यों संबद्ध था कि वह उसे रोके रहता था।[13] दानव जलप्रवाह को रोकता है, देवता उसका नाश करता है—यहाँ तक सुमेरी कथा ऋग्वेद के अनुरूप है। किंतु सुमेर का प्राकृतिक परिवेश सारस्वत् प्रदेश के परिवेश से भिन्न है। हमारे यहाँ जलप्रवाहों की मुक्ति आवश्यक है, वहाँ उनकी मुक्ति से हानि की संभावना है। इसलिए कुर् को मारने के बाद देवता के लिए जलप्रवाहों को रोकना आवश्यक हो जाता है। ब्रैन्डन कहते हैं, "उसके (कुर् के) विनाश के फलस्वरूप ये जल ऊपर सतह तक चढ़ने लगते हैं, और वे यह भी करते हैं कि मीठे जलों से प्रवाह को धरती से काट देते हैं। निनुर्त को यह स्थिति सुधारनी होती है। वह स्थिति को यों सुधारते हैं कि मृत कुर् के शरीर पर पत्थरों के ढेर लगा देते हैं जिससे कि वे 'शक्तिशाली जलों को' रोके रहें"।[14] जलों को रोकने का काम तो कुर् दानव ही कर रहा था, उसे मारने की क्या आवश्यकता थी ? वृत्र वध की कथा पश्चिमी एशिया में व्यापक रूप से प्रचलित रही होगी, इसलिए सुमेरी देवकथाओं में उसका प्रवेश हुआ। निनुर्त (इंद्र) ने कुर् (वृत्र) को मारा। प्राकृतिक परिवेश की माँग थी कि जल ıवाहों को रोका जाए। अतः निनुर्त ने कुर् की देह का उपयोग करके वह काम भी कर दिया ! इस तरह एक ही कथा में दो परस्पर विरोधी कल्पनाओं का समावेश हुआ।

बाइबिल में परमेश्वर ने अनेक दानवों को मारा और एक बड़े दानव लेविआथान का नाश किया। ये सारे दानव जल में रहते हैं।

> **तूने अपनी शक्ति से समुद्र को दो भाग कर दिया,**
> **तूने जल में मगरमच्छों के सिरों को फोड़ दिया।**
> **तूने तो लिव्यातानों के सिर के टुकड़े टुकड़े करके जंगली जंतुओं को खिला दिए। (भजन संहिता, १०४.५.७)।**

मगरमच्छों (dragons) को सर्पाकार दानवों में गिनना चाहिए।हिंदी अनुवाद में लिव्यातानों की बात कही गई है, अँग्रेज़ी रूपांतर में Leviathan एक ही है। वैसे ऋग्वेद में वृत्र एक है और वृत्र अनेक भी हैं। वृत्र को अनेक प्रकार से मारा जाता है, इनमें उसके सिर के टुकड़े

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करना शामिल है। **वृत्रस्य अभिनत् शिरः** का सटीक अनुवाद ग्रिफिथ ने किया है—"clave into pieces Vritra's head" (वृत्र के सिर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, ८.७६.२)।

वृत्र सर्प है और वह इंद्र का शत्रु है। **बाइबिल** में ईश्वर का शत्रु जल में रहने वाला सर्प है। वह उसे मार देते हैं।

> **वह अपने बल से समुद्र को उछालता,**
> **और अपनी बुद्धि से घमंड को छेद देता है।।**
> **उसकी आत्मा से आकाश मंडल स्वच्छ हो जाता है,**
> **वह अपने हाथ से वेग भागनेवाले नाग को मार देता है।।** (अय्यूब, २६.१२-१३)।

वृत्र और इस नाग में अंतर यह है कि ईश्वर अपने शत्रुओं का नाश करने के लिए उन्हें इस नाग से कटवा भी सकते हैं।

और चाहे वे समुद्र की थाह में मेरी दृष्टि से ओट हों, वहाँ भी मैं सर्प को उन्हें डसने की आज्ञा दूँगा (आमोक्ष, ९.३)।

ग. अंडा और पक्षी

जल से अनेक देव और दानव उत्पन्न हुए। उसी जलराशि से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ। आरंभ में पृथ्वी आकाश जुड़े हुए थे, अतः वे संयुक्त रूप में अंडाकार थे। वायु की क्रिया से वे पृथक हुए और उनके बीच से पंखों वाला एक देवता उत्पन्न हुआ।

मिस्र के दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के एक अभिलेख में आदिम अंडे से प्रार्थना की गई है "हे जल के अंडे, धरती के स्रोत, आठ देवों के उत्पाद (अंडे के छिलके), आकाश में महान और पाताल में महान..."।[15] अंडा जल में है। धरती उसी से उत्पन्न हुई है। आकाश पाताल उसी के अंतरति हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के ही अन्य अभिलेख में सूर्य से कहा गया है : गुप्त अंडे से बाहर, आठ देवों के वत्स के रूप में, तुम ऊपर ऊँचे चढ़ गए हो"।[16] आदिम जल राशि से ब्रह्मांड के उद्‌भव की कल्पना से मिस्र के लोग परिचित थे। परंतु प्रजापति अथवा देवों द्वारा विश्व की रचना से यह कल्पना मेल नहीं खाती। जल से निकलने वाले अंडे को आठ देवों का उत्पाद कहा गया है। इसके सिवा उस मंत्र में थोथ नाम के देव संबोधित हैं। थोथ का रूप सारस जैसे पक्षी का था। ब्रैन्डन का कहना है कि "यह आदिम अंडा मूल रूप में थोथ से संबद्ध रहा होगा"।[17] ब्रैन्डन के अनुसार ही "इस अंडे में सूर्य के देवता रे बंद थे, वह संसार के भावी रचनाकार थे"।[18] इस प्रकार कई देवता विश्वरचना से संबद्ध हो जाते हैं। एक ओर वह अंडा विश्वरूप है, दूसरी ओर वह विश्व अभी रचा जाने को है। ऐसा लगता है, जल से ब्रह्मांड के उद्‌भव की दार्शनिक अवधारणा मिस्र में बाहर से आई है और उसके साथ वहाँ की देवकथाएँ जोड़ दी गई हैं।

आरंभ में धरती-आकाश जुड़े हुए थे, इस कारण विश्व अंडे जैसा था, यह धारणा सुमेर और यूनान में फैली हुई थी। ब्रैन्डन कहते हैं, "इस बात के कुछ संकेत हैं कि मूलतः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्-कि अंतः संबद्ध संपूर्ण इकाई जैसा कल्पित किया गया था।[19] ब्रैन्डन ऋग्वेद की ओर देखते तो स्पष्ट हो जाता कि सुमेरी अन् (आकाश), कि (धरती) वैदिक द्यावा-पृथिवी के रूपांतर हैं। मिस्र के वायुदेव शु की तरह सुमेर के वायुदेव एन्-लिल् ने उन्हें अलग किया।[20] यूनान का ओर्फ़िक संप्रदाय मानता था कि एक विराट् अंडे से समस्त देवी-देवता जन्मे हैं

नाटककार अरिस्तोफनेस् ने पक्षी नाटक में सृष्टिकथाएँ रचनेवालों का उपहास करते हुए लिखा था : "सबसे पहले खऑस् और रात्रि थे और काला ॲरॅबॉस् और विशद तर्तरॉस् थे, और न धरती थी, न वायु, न आकाश थे। ॲरॅबॉस के अनंत विस्तार में काले पंखों वाली रात्रि ने एक वायु अंडा दिया, उससे, उपयुक्त समय बीतने पर, दहकते हुए ॲरोस् का आविर्भाव हुआ, उनकी पीठ सुवर्ण पंखों से दमक रही थी मानों वह चकरघिन्नी खाती हवाओं जैसे हों।"[21] ब्रैन्डन ने बताया है कि अरिस्तोफनेस् कवि हेसिऑद के देवतंत्र की नकल उतार रहे थे पर उन्होंने यह भी सूचित कर दिया है कि उस देवतंत्र में अंडेवाली अवधारणा नहीं है। नाटककार अरिस्तोफनेस् ने चाहे जिसकी नकल उतारी हो, इसमें संदेह नहीं कि यूनानी देवतंत्रकार भारतीय सृष्टिकथाओं से परिचित थे। इनमें अनेक कथाएँ अवश्य ही नष्ट हो गई होंगी, ऋग्वेद के सृष्टि सूक्त में उनकी झलक भर है। ॲरॅबॉस्, तर्तरॉस् विशाल गह्वर हैं। उन्हें पाताल और रसातल कह सकते हैं। ऋग्वेद के अम्भः गहनं गभीरम् में पाताल, रसातल सब सिमट आते हैं। (१०.१२९.१)। व्यक्त संसार में दिन और रात अलग पहचाने (प्रकेत) जाते हैं। (१०.१२९.२)। अव्यक्त अवस्था में सब कुछ अप्रकेत है।

यूनानी देवकथाओं की रात्रि ने एक अंडा दिया। उससे सुवर्ण पंखों वाले दहकते ॲरोस् का जन्म हुआ। ॲरोस् काम हैं, कामस्तदग्रे समवर्तत—उससे सर्वप्रथम काम उत्पन्न हुआ। (१०.१२९.४)। काम और ॲरोस् दोनों ही देवता हैं तथा कामना भी। तपसस्तन्महिना जायतैकम्—वह एक, तपस् (उष्णता) की शक्ति से उत्पन्न हुआ। (१०.१२९.३)। उष्णता है, इसलिए ॲरोस् दहकते हुए उत्पन्न हों, यह स्वाभाविक है। अद्भुत उपमा यह है कि उनकी पीठ सुवर्ण पंखों से यों दमक रही थी मानों वह चकरघिन्नी खाती हवाओं जैसे हों। सामान्यतः हवाएँ चमकती हुई नहीं देखी जातीं, बिजली का संबंध बादलों से अधिक होता है। किंतु किसी समय किसी क्षेत्र के यूनानियों को यह विश्वास था कि हवाएँ चमकती हैं। इसी विश्वास के बल पर ॲरोस् (कामदेव) की तुलना हवाओं से की गई है। यूनानी काव्य में चमक हवाओं का सामान्य गुण नहीं है, वह सामान्य गुण है ऋग्वेद में मरुद्गण का। ते स्वभानवः—वे अपने ही तेज से दीप्त हैं (१.३७.२)। वे अग्निश्रियः, अग्नि के समान प्रकाशयुक्त ("glorious as the fire"— ग्रिफिथ) हैं (३.२६.५)। वे सूर्यत्वचः, सूर्य के समान तेजस्वी हैं (७.५९.११)। हज़ारों साल बाद वैदिक मरुतों की स्मृति यूनानी देवतंत्र में बनी हुई थी। चौथी शताब्दी ई॰ पू॰ के नाटककार अरिस्तोफनेस् इसीलिए ॲरोस् के लिए कह सके थे कि उनकी पीठ ऐसे दमक रही थी मानों वह चक्करघिन्नी खाती हवाओं जैसे हों।

ॲरोस् के सुवर्ण पंख हैं। यूनानी देवतंत्र से प्रभावित यूरोप की अनेक जातियों में जहाँ भी ॲरोस् या उनके समकक्ष देवता की चर्चा होती है, उनके पंख जरूर होते हैं। भारतीय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कामदेव के पंख नहीं हैं। परंतु सूर्यदेव के पंख हैं। वह पतंग–पक्षी– है(१०.१७७.१) वह **अरुषः सुपर्णः** सुंदर पंखोंवाले रक्ताभ पक्षी हैं (५.४७.३), वह **रघुः श्येनः** शीघ्रगामी श्येन पक्षी हैं (५.४५.६)सूर्य को जहाँ मानवाकार कल्पित किया गया है वहाँ उनके पंख नहीं हैं, उनके हाथ हैं और वह रथ पर यात्रा करते हैं। यदि पृथ्वी और आकाश परस्पर सम्मिलित रूप में अंडा थे तो अंडे से पक्षी का ही जन्म होगा । जहाँ आदिम अव्यक्त को पुरुष कहा गया है, वहाँ उससे विराट् उत्पन्न हुआ। सायण के अनुसार यह विराट् ब्रह्मांड रूप था (१०.९०.५)। ग्रिफिथ की टिप्पणी है कि विराट् सांसारिक अंडे (mundane egg) के रूप में प्रकट हुआ। हमारे यहाँ ब्रह्मांड शब्द का चलन उसी विराट् अंडे की धारणा से जुड़ा है।

छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्मांड और सूर्य का सबंध बहुत स्पष्ट है। आदित्य ब्रह्म है। पहले वह असत् था। फिर वह सत् हुआ। जो पहले अव्यक्त था, वह व्यक्त हुआ। वह एक अंडे में परिणत हुआ। फिर जब वह फूटा, तब उसका रजतखंड पृथिवी हुआ, सुवर्णखंड द्युलोक हुआ। **अथ यत्तदजायत सोऽ सावादित्यः,** फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह आदित्य है। (३.१९.१-३)। यह कथा यूनान ही नहीं, सामी क्षेत्रों में भी पहुँची थी, यह बात **उपनिषदों** पर 1915 के अपने व्याख्यानों में रानडे ने लक्ष्य की थी। "तुलनात्मक देवशास्त्र के अध्येताओं को यह यादे दिलाना आवश्यक न होगा कि **छान्दोग्य उपनिषद्** की यह कथा बैबिलोन, मिस्र, फ़िनीशिया, ईरान और यूनान की तदनुरूप कथाओं से कितना मिलती-जुलती है। हमें पता है, यूनान में कैसे ओर्फिक विश्वतंत्र में ख्रॉनास् और अद्रस्तॅइआ, ने एक विशाल अंडा उत्पन्न किया, वह बीच से विभाजित हुआ, उसके ऊपरी भाग से आकाश बना, निचले भाग से धरती बनी, और अंडे से प्रकाशमान देवता फनॅस् बाहर निकले और वह अपने भींतर समस्त देवों के बीज लिए हुए थे।" अधिकांश विद्वानों की तरह रानडे मानते थे कि भारत में आर्य बाहर से आए। इसलिए उनका विचार था कि जब यूनानी और भारतीय आर्य एक साथ रहते थे, तब अद्रस्तॅइआ (=अदृष्ट) का भाव यूनानियों को भारतीयों से मिला होगा। अदृष्ट से अद्रस्तॅइआ का संबंध जोड़ने से अधिक महत्वपूर्ण असत् से सत् के उत्पन्न होने पर रानाडे का ज़ोर है: "अंडे से सूर्य के निकलने की कथा के समानांतर तत्व अनेक प्राचीन जनों की देवकथाओं में हैं किंतु एक आदिम असत् से एक अंडे के निर्माण की बात **छान्दोग्योपनिषद्** में प्राप्त कथा की विशेषता प्रतीत होती है"।[22]

यह कथा अवश्य ही **छान्दोग्य उपनिषद** से पुरानी है। वह **ऋग्वेद** के रचनाकाल में प्रचलित थी। इसका प्रमाण सूर्य का पक्षीरूप, और भी स्पष्ट श्येन रूप है। सृष्टिकथा के साथ यह श्येन, सूर्य के प्रतीक रूप में, समस्त पश्चिमी एशिया और मिस्र में पहुँचा था। असत् से सत् का जन्म हुआ, यह अति उन्नत कोटि की दार्शनिक धारणा है। अंडे से सूर्य के जन्म की कथा सत्-असत् विवेचन से अधिक प्राचीन होगी। **गूढं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्**—पितरो ने प्रच्छन्न ज्योति (सूर्य) को प्राप्त किया। (७.७६.४)। १०.१२९.३ में जो **तमसा गूढम्** है, वह यहाँ केवल गूढम् है, आशय यह कि सूर्य अंधकार में छिपा हुआ था। पितरों ने उसे बाहर निकाला। जहाँ अंधकार है, वहाँ अनंत जलराशि है। **अत्रा समुद्र**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आ गूढ्मा सूर्यमजभर्तन—देवों ने समुद्र में प्रच्छन्न सूर्य को बाहर निकाला। (१०.७२,७)। **तमसा गूढ्म्** और **समुद्रे गूढ्म्** में कोई अंतर्विरोध नहीं है। सूर्य के अभाव में अनंत जलराशि अंधकार से आच्छादित होगी ही।

धरती-आकाश के संयुक्त रूप अंडे से सुपर्ण सूर्य बाहर आया। यूनानी ॲरॉस् के पंख मूलतः सूर्य के पंख हैं। सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ (१०.१२६.४)। सूर्य के बिना कामदेव की पहचान न हो सकती थी। संभव है, दो कथाएँ प्रचलित रही हों;एक के अनुसार पहले काम उत्पन्न हुआ, दूसरी के अनुसार पहले सूर्य का जन्म हुआ। विश्व अंडा है, उसके फूटने से सूर्य पक्षी प्रकट होता है। इस कथा से ही ॲरॉस् के पंखों की व्याख्या होती है। **बाइबिल** के अनुसार विश्व की आदिम अवस्था में "गहरे जल के ऊपर अंधियारा था" फिर "परमेश्वर ने कहा, उजियाला हो तो उजियाला हो गया।" (उत्पत्ति, १.२,३)। पहले अंधकार से आच्छादित जल, फिर सूर्य का उद्‌भव—**बाइबिल** और **ऋग्वेद,** दोनों जगह सृष्टि संबंधी मूल कथा एक ही है।

घ. वायु और विश्व पुरुष

ब्रह्मांड अपनी आदिम अवस्था में वायुहीन था, फिर भी वह प्राणवंत था। **आनीदवातं स्वधया तदेकम्** —अवात अवस्था में वह एक अपनी ही शक्ति से **आनीत्**, "प्राण ले रहा था।" (सातवलेकर, १०.१२६.२)। यदि ब्रह्मांड की इस शक्ति को उससे अलग कर दिया जाए तो 'परमेश्वर' उसमें प्राण फूँकेंगे। जहाँ ब्रह्मांड को पुरुष रूप में कल्पित किया गया है, वहाँ पुरुष ने विराट् को उत्पन्न किया, फिर उन्होंने उसमें जीवरूप में प्रवेश किया (**तत्र जीवरूपेण प्रविश्य इत्यादि**' —सायण)। उल्लेखनीय है कि **विराजो अधि पूरुषः,** वह पुरुष विराट् के ऊपर स्थित होता है ('**विराड्देह स्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा**—सायण, १०.९०.५)। जो विराट् है, वह ब्रह्मांड है। पुरुष उस पर बैठ कर उसे प्राणवंत करता है। **बाइबिल** की सृष्टिकथा में : "और गहरे जल के ऊपर अंधियारा था, तथा परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर मंडलाता था।" (उत्पत्ति,१.२)। आत्मा यहाँ वायु है। अँग्रेज़ी अनुवाद में the spirit of God वायु की ओर संकेत करती है। ब्रैन्डन के अनुसार मूल हीब्रू शब्द का अर्थ वायु, श्वास या हवा है, the spirit of God moved upon the face of the deey में moved से 'brood' या 'hover' का भाव अधिक सार्थक है और इससे एक पक्षी की क्रिया का संकेत मिलता है"।[23] "क्या मनुष्यों का प्राण ऊपर की ओर चढ़ता है और पशुओं का प्राण नीचे की ओर जाकर मिट्टी में मिल जाता है ?" (समोपदेशक, ३.२१)। यहाँ प्राण अँग्रेज़ी स्पिरिट का रूपांतर है। जो आत्मा जल पर मंडराता है, वह प्राण है।

मिल्टन ने अपने महाकाव्य **पैराडाइज़ लौस्ट** के आरंभ में ईश्वर को स्पिरिट कह कर उसे पक्षीरूप में विशाल पंख फैलाए विराट् शून्य पर बैठा हुआ कल्पित किया है, उसके बैठने से वह गहन गंभीरता गर्भ धारण करती है। Thou from the first Wast present, and with mighty wings outspread Dove-like satst brooding on the vast Abyss And

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

mad'st it pregnant.

मिल्टन और उनके पाठकों की इच्छा से स्वतंत्र यहाँ ऐबिस् शब्द अत्यंत सार्थक है। ऋग्वेद में जो **अप्रकेत तमसाच्छादित सलिलं** है, वह अप्सु बनकर सुमेर पहुँचा, वहाँ से यूनान होता हुआ इंग्लैंड में वह ऐबिस् रूप में प्रकट हुआ। इस ऐबिस्,(गहराई) ब्रह्मांड पर जो बैठता है, वह स्पिरिट है। इस स्पिरिट के लिए मिल्टन कहते हैं कि वह आदि से ही विद्यमान थी। यह स्पिरिट वायु है। वायु आरंभ से है, व्यक्त रूप में नहीं तो निगूढ़ रूप में। **आनीत् अवातं स्वधया तत् एकम्**—वह एक अपनी शक्ति से प्राण ले रहा था; इस शक्ति को उस एक से अलग कर दें, तो वह शक्ति,वह प्राण पक्षी , उस विराट् को गर्भयुक्त करेगा।

वायु के लिए कहा गया है, वह **अपां सखा प्रथमजा ऋतावा** जलों का मित्र, सर्वप्रथम उत्पन्न और ऋत का अधिष्ठाता है। (१०.१६८.३)। वैसे तो बादलों में जल होता है और वे वायु से प्रेरित होकर आकाश में चक्कर लगाते हैं पर **अपाम्** में विश्व को उत्पन्न करने वाले जलों का भाव है और यह भाव **प्रथमजा** से पुष्ट होता है। उन आदि जलों के बाद वायु उत्पन्न हुआ, उसी की शक्ति से पृथ्वी-आकाश विभक्त हुए। ब्रह्मांड जहाँ पुरुष रूप में कल्पित है, वहाँ **प्राणाद्वायुरजायत,** पुरुष के प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।(१०.९०.११)। मिल्टन ने ईश्वर को स्पिरिट (अर्थात् वायु) कहकर जो उसे सृष्टि के आरंभ से विद्यामान बताया है वह उक्त प्रथमजा की परंपरा के अनुरूप है।

यूनानी कवि हेसिऑद् के विश्वतंत्र की चर्चा करते हुए ब्रैन्डन को मिस्र की सृष्टिकथा याद आती है जिसमें धरती-आकाश जुड़े हुए थे। धरती, आकाश आदि किस क्रम से उत्पन्न हुए, इस पर विचार करते हुए ब्रैन्डन ने लिखा है: "अब यदि धरती का आविर्भाव आकाश (ऑउरनॉस्) के साथ ही हुआ हो तो इस दिशा में हमें मिस्र का विश्वतंत्र याद आएगा क्योंकि वहाँ हमने देखा था कि धरती के देवता गेब प्रथम भूत (being) थे और वह आकाश की देवी नुत से तब तक चिपटे हुए थे जब तक वायु के देवता शु ने उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया। संभव है, ऐसी अवधारणा हेसिऑद् की कल्पना का आधार रही हो परंतु उस अस्फुट विवेकवाद से आच्छन्न हो गई हो जो उनके चिंतन से प्रमाणित होता है"।[24] इसकी पूर्ण संभावना है कि मिस्रियों और भारतीयों की तरह यूनानियों के लिए धरती-आकाश जुड़े हुए थे। इन्हें अलग किया वायु-पुत्र मरुतों ने; मिस्रियों के वायु देवता शु थे। अनेक देवों ने खंभे लगा दिए जिससे आकाश ऊपर टिका रहे। यूनानी देवकथाओं में अतलस् दानव मिस्री देव शु की तरह हाथों से आकाश साधे रहता है।

एक कल्पना यह है कि धरती-आकाश जुड़े हुए थे, उन्हें वायु ने अलग किया। दूसरी कल्पना यह है कि धरती-आकाश का निर्माण किसी दानव के शरीर से हुआ। सुमेरियों के लिए आदिम जलराशि का एक भाग खारा था, दूसरा मीठा। इसलिए खारा जल ऊपर चढ़ आए तो वह मीठे जलप्रवाह को रोक देगा। ऐसी कोई समस्या वैदिक कवियों के लिए नहीं है। वृत्र के मारे जाने से मीठे जलप्रवाह ही मुक्त होंगे, खारे जलप्रवाह नहीं। बैबिलोनी जन खारे जलप्रवाह से और भी त्रस्त थे। सुमेरियों के लिए समुद्र विश्वजननी था; बैबिलोनियों ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उसे दानव बना दिया "जिससे देवों के अस्तित्व के लिए संकट पैदा हो गया"।[25] बैबिलोनी देवता मर्दुक ने आदिम जलराशि से संबद्ध दानव को मारा, फिर आकाश का निर्माण किया। ब्रैन्डन का विचार है कि जैसे सुमेरी देवता निनुर्त ने आदिम जलराशि के विरुद्ध कुर् के शरीर का अंशतः उपयोग करके अवरोध बनाया, वैसे ही बैबिलोनी देवता मर्दुक ने तिआमत (समुद्र की दानवी) के शरीर का अंशतः उपयोग करके आकाश के गुंबद का निर्माण किया और वह गुंबद चारों ओर से घेरने वाले समुद्र को रोके रहता है।[26]

सुमेरी दानव कुर् जलप्रवाहों का अवरोधक था, अतः उसके शरीर से अवरोध बनाना स्वाभाविक था। किंतु बैबिलोनी मर्दुक ने तिआमत के शरीर से आकाश बनाया, यह भिन्न स्तर की कल्पना है। अवरोध और आकाश में बड़ा अंतर है। आकाश और धरती ब्रह्मांड के दो भाग हैं, अवरोध इनकी तुलना में धरती का अल्पांश है। बैबिलोनी कल्पना ब्रह्मांड के भारतीय पुरुष रूप से अधिक मिलती है। **शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत**—विराट् पुरुष का सिर आकाश बना। (१०.९०.१४)। वैदिक कल्पना में रूपक का भाव स्पष्ट है।विराट पुरुष संसार से अलग नहीं हैं, संसार ही पुरुष रूप है। बैबिलोनी कल्पना में यह रूपक देवकथा बन गया है : तिआमत मर्दुक एक दूसरे से भिन्न हैं, मर्दुक तिआमत के शरीर से आकाश बनाते हैं। एक है सृष्टि, दूसरा है उसका स्रष्टा, बैबिलोनी कथा का यह भेद ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में नहीं है।

वह पुरुष सहस्रशीर्ष है, सहस्राक्ष है, सहस्रपाद है और वह भूमि को चारों ओर से घेरे हुए है। (१०.९०.१)। यह पहली स्थिति हुई। यदि एक सिर से आकाश बनता है तो यहाँ हज़ारों सिर हैं, ब्रह्मांड में हज़ारों आकाश हैं। **चक्षोः सूर्य अजायत**—आँखों से सूर्य उत्पन्न हुआ है। (१०.९०.१३) आदि पुरुष की हज़ारों आँखें हैं, अर्थात् ब्रह्मांड में केवल एक सूर्य नहीं, अनगिनत सूर्य हैं। यह महाविराट् ब्रह्मांड पृथ्वी को घेरे हुए है। जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, वह ब्रह्मांड का छोटा सा भाग है। यह पहली स्थिति है। आदि पुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ, इस विराट की आँखों से सूर्य, प्राणों से वायु उत्पन्न हुए। (१०.९०.१३) । यह दूसरी स्थिति है। इससे तुलनीय है अतुम् देव संबंधी मिस्री कल्पना। "तुमने जो थूका, वह शु था। तुमने जो वमन किया, वह तेफ़नुत् थी।" शु वायु के देवता हैं, वह आदिदेव अतुम् के मुख से निकले। तेफ़नुत के लिए कहा गया है कि वह संभवतः आर्द्रता की देवी है। इन दोनों से सृष्टिक्रम चला। सामान्य कल्पना यह कि विश्व रूप पुरुष के अंगो से देव उत्पन्न हुए।

वायु, सूर्य आदि के अस्तित्व में आने के बाद पशु और मनुष्य उत्पन्न हुए। यह तीसरी स्थिति है। उस आदि पुरुष का मुख ब्राह्मण हैं, बाँहें राजन्य हैं, जाँघें वैश्य हैं, **पद्भ्यां शूद्रः अजायत**—पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। (१०.९०.१२)। शूद्र अन्त्यज नहीं हैं, आर्यों से भिन्न द्रविड़ नहीं हैं, वे एक ही समाज पुरुष के अपरिहार्य अंग हैं। ब्रह्मांड में जो पृथ्वी का स्थान है, वही समाज में शूद्रों का है। आगे कहा है : **पदभ्यां भूमिः** , जैसे सिर से आकाश बना, वैसे ही पैरों से भूमि बनी। (१०.९०.१४)।

भारतीय वर्णों की तरह यूनानी देवकथाओं में मनुष्यों की भिन्न रंगों वाली नस्लों की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धारणा प्रचलित थी। पहली नस्ल सुनहले रंग की थी। इस नस्ल के लोगों को श्रम नहीं करना पड़ता,बुढ़ापे का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। दूसरी नस्ल रुपहले रंग की थी, इस नस्ल के मनुष्य एक-दूसरे से होड़ करने में समय नष्ट करते हैं। तीसरी नस्ल पीतल के रंग की थी, इस नस्ल के मनुष्य लड़ाकू और हिंसक थे। चौथी नस्ल लोहे के रंग की है। इस नस्ल के मनुष्यों को निरंतर श्रम करना और दुख सहना पड़ता है, इससे वे दुष्ट स्वभाव के हो जाते हैं (हेसिऑद् के विवरण में पीतल के रंग वाली नस्ल के बाद होमर के महाकाव्य के वीर आते हैं, जिन्हें मृत्यु के बाद स्वर्ग जैसे स्थान में रहने का सुख मिलता है।[27] वास्तव में चार रंगों वाली चार ही नस्लें हैं)।

चार वर्ण, उनके चार अलग-अलग रंग, यह कल्पना अवश्य ही भारत से यूनान पहुँची है। भृगु ने भरद्वाज से कहा, ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनाए; इनमें ब्राह्मण श्वेतवर्ण के, क्षत्रिय लाल रंग के, वैश्य पीले और शुद्र काले रंग के हैं। (महाभारत, शांति पर्व, १८८.६)। हेसिऑद् की कथा में तीसरी,चौथी नस्लों का रंग ठीक नहीं है जो यहाँ हैं। भारत में शूद्रों के काले रंग का उल्लेख पढ़कर विद्वान तुरंत उन्हें द्रविडों से जोड़ देंगे। यूनानी देवतंत्र में पीतल के रंग वालों के बाद लोहे के रंग वालों का जिक्र है, उससे यूनान के आदिवासियों के बारे में ऐसा ही निष्कर्ष निकालना चाहिए। वर्ण का अर्थ रंग भी होता है, इसलिए चार वर्णों (श्रेणियों) के लिए चार रंगों की कल्पना भारतीय कथाकारों के लिए स्वाभाविक थी। ऐसा कोई आधार यूनानी नस्लों के रंग का नहीं है। कथा है कि विराट् पुरुष के नाभिकमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ और उसी विराट् पुरुष की प्रेरणा से ब्रह्मा संसार रचते हैं (भागवत २.६.२२.३१)। इससे मिलती-जुलती कथा मिस्र में प्रचलित थी। आदिम जलराशि नुन् के भीतर से एक कमल निकला, उसके कोश में एक सुंदर शिशु था, यह बालरूप सूर्यदेव थे।[28] कमल के ऊपर किसी देवी देवता का आसीन होना सुपरिचित भारतीय कल्पना है। सुर्योदय के समय कमल खिलता है और सूर्यास्त के समय वह बंद हो जाता है, यह भी हमारे काव्य का सुविदित तथ्य है। एक मिस्री पिरामिड अभिलेख में इसी तरह कमल के खुलने और बंद होने का प्रसंग है। "प्रतिदिन क्षितिज के ऊपर जब रे (सूर्य)का आविर्भाव होता है, तब जैसे उनकी नाल के पास कमल होता है," वैसे ही पुनर्जीवित सम्राट का आविर्भाव होता है। (यह कमल मॅफॅर्तेम देवी का रूप है और वह गंध की देवी है—ये धारणाएँ यहाँ विचारणीय नहीं हैं। कमल से सम्राट की तुलना पर ब्रैन्डन की टिप्पणी है, "प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त के साथ कमल का फूल खुलता और बंद होता है। इस तथ्य ने संभवतः इस कल्पनाशील तुलना की प्रेरणा दी होगी। उससे इस कुतूहलवर्धक परंतु अवश्य ही काव्यात्मक विचार की व्याख्या होती है कि प्रतिदिन रे का आविर्भाव कमल के फूल से संबद्ध है।" चौथी शताब्दी ई० पू० के एक अभिलेख में रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए सूर्यदेव रे प्रार्थना की गई है, उसमें उनकी यह विशेषता बताई गई है : "जो ऊँची पहाड़ी पर कमल से बाहर आए थे और अपने नेत्रों से दोनों प्रदेशों को उद्भासित करते हैं"।[29] दोनों प्रदेश मिस्र के उत्तरी और दक्षिणी भाग हैं।) पहाड़ी पर कमल कुछ विचित्र सी बात है। ऐसा लगता है, दो कल्पना सूत्र उलझ गए हैं। पहला सूत्र यह है कि आदिम जलराशि से पहाड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निकली, उस पर अतुम्देव विराजमान थे। (उदयाचल, सूर्योदय का स्थान, पर्वत है।) दूसरा सूत्र यह कि स्रष्टा (ब्रह्मा) कमल पर आसीन थे। दोनों के उलझने से कमल पहाड़ी पर पहुँच गया।

तीसरी से पहली शताब्दी के बीच के एक अन्य अभिलेख में सूर्य को अर्पित रत्नजटित कमल के लिए कहा गया है। "विशाल जलाशय से महाकमल बाहर आया, आदिकाल में उसने प्रकाश उद्घाटित किया"।[30] मिस्री कथाओं में सूर्यदेवा (अतुम्, रे) संसार रचते और उस पर शासन करते हैं। ऋग्वेद में सविता को भुवनस्य प्रजापतिः कहा गया है, संसार में जो कुछ स्थावर और जंगम है, वह सविता के अधीन है। (४.५३.२)। ऋग्वेद में विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, शेष अंगों से अन्य वर्ण उत्पन्न हुए। रत्नजड़ित कमल संबंधी मिस्री अभिलेख के अनुसार "देवता उनके (सूर्यदेव के) मुख से निकले और मनुष्य उनकी आँखों से निकले"।[31]

धरती-आकाश विराट् पुरुष के ही अंश हैं, मनुष्य, पशु, पक्षी उसके अंश हैं। ब्राह्मण और शूद्र उसके अंश हैं, पुरुष के साथ स्त्री को भी उसी पुरुष का एक अंश होना चाहिए। जब संसार के स्रष्टा की धारणा का प्रचार हुआ तब यह कल्पना भी की गई कि स्त्री पुरुष का ही आधा अंग है। मनुस्मृति में इस धारणा का उल्लेख हैः

द्विधा कृत्वा ऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषो ऽ भवत्।
अर्धेन नारी तस्यांच विराजम सृजत्प्रभुः १.३२.

प्रभु (ब्रह्मा) ने अपने शरीर के दो भाग किए एक भाग से वह पुरुष हुए और दूसरे भाग से स्त्री हुए। उस स्त्री से उन्होंने विराट् को उत्पन्न किया, जैसे ऋग्वेद में सहस्त्र शीर्ष पुरुष ने विराट् को उत्पन्न किया, वैसे ही यहाँ स्रष्टा ने स्त्री से विराट् को उत्पन्न किया। स्त्री और पुरुष दोनों ही स्रष्टा पुरुष के भाग हैं, अतः दोनों समान हैं। स्त्री पुरुष से घटकर नहीं है। यह कल्पना उस युग की है जब पितृसत्ताक व्यवस्था का जन्म तो हो चुका है पर उसमें जड़ता नहीं आई। नारी पुरुष की आज्ञाकारिणी दासी नहीं है।

नारी के सृजन के बारे में इससे मिलती-जुलती कथा बाइबिल में है। "और यहोवा परमेश्वर ने उस पसुली को जो उसने आदम में से निकाली थी, स्त्री बना दिया"। (उत्पत्ति, २.२२)। निषिद्ध फ़ल खाने के बाद स्त्री को पीड़ित जीवन बिताने का शाप मिला, यहोवा ने कहा, "और तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा" (उप. ३.१६)। यह कथा उस समय की है जब पितृसत्ताक व्यवस्था काफ़ी पुरानी पड़ चुकी है और स्त्री पुरुष की दासी बन गई है। ईश्वर से पुरुष और स्त्री का संबंध एक-सा नहीं है। पुरुष का स्वरूप ईश्वर के स्वरूप जैसा है : "फिर परमेश्वर ने कहा, हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएँ।" (उप.१.२६)। स्त्री को यहोवा ने अपने स्वरूप के अनुसार नहीं बनाया, उसने पुरुष की पसली निकालकर उसे बनाया। इसके विपरीत, मनुस्मृति में जिस कथा की ओर संकेत है, उसके अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों स्रष्टा की देह के दो भाग हैं। दोनों में कोई किसी का प्रभु नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ङ आदिभूत और स्रष्टा

सृष्टि संबंधी भारतीय चिंतन में मानवेतर दार्शनिक उद्भावनाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। जहाँ रूपक है, यथा विराट् पुरुष की कल्पना में, वहाँ भी उन्हें पहचानना कठिन नहीं है। मिस्र, यूनान आदि के चिंतन में दार्शनिक उद्भावनाएँ प्रच्छन्न हो जाती हैं, मानवीय संबंध प्रधान हो जाते हैं। संतान की उत्पत्ति के लिए नर-नारी का जोड़ा आवश्यक होता है, ऐसा ही जोड़ा संसार की रचना के लिए चाहिए। मिस्र के प्रमुख नगरों की अपनी-अपनी सृष्टि कथाएँ थीं, कभी मिलती-जुलतीं, कभी एक-दूसरे को प्रभावित करतीं। हर्मोपोलिस नगर का दावा था कि आदिम जलराशि से पहाड़ी यहीं निकली थी। यहाँ आठ देवों ने वह अंडा रखा जिसमें सूर्यदेव बंद थे। इस देवाष्टक में चार जोड़े हैं, हर जोड़े में एक देव और एक देवी। पहले जोड़े में नुन् और नीनेत् हैं। नुन् तो आदिम जलराशि हैं, नीनेत् धरती के नीचे का आकाश हैं। भारतीय चिंतन में जल और आकाश तत्व हैं और सृष्टि के लिए आवश्यक हैं। यहाँ वे देव और देवी बन गए हैं। आकाश तत्व की भूमिका समाप्त हो जाती है; नीनेत् अनाज उगाने वाली देवी बन जाती हैं। दूसरे जोड़े में हुह् और हीतेत् हैं। ब्रैन्डन का विचार है कि ये दोनों अनंत का भाव दर्शाती हैं, संभवतः जल की अंतहीन, निरंतर विस्तारशील गति का भाव। **ऋग्वेद** में अदिति की, **अथर्ववेद** में काल की, धारणाएँ इससे मिलती-जुलती हैं। तीसरे जोड़े में कुक् और कौकेत् हैं। ब्रैन्डन के अनुसार ये "प्रकाश की रचना से, अर्थात सूर्यदेव के आविर्भाव से, पहले आदिम जलराशि को ढँकने वाले अंधकार के मानवीकरण प्रतीत होते हैं"।[32] ठीक **ऋग्वेद** के सृष्टि सूक्त की तरह अंधकार आदिम जलराशि को ढँके हैं किंतु यहाँ भी अंधकार का जोड़ा है, एक देव, दूसरा देवी। वे दोनों रात्रि के रूप में भी प्रकट होते हैं; वे प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त के कारण हैं और यमलोक का अंधकार भी हैं। यूनानियों की रात्रि संबंधी कल्पना, यहूदियों की अंधकारमय नरक संबंधी अवधारणा मिस्री मूर्ति-विधान से मिलती-जुलती है।

चौथा जोड़ा बहुत दिलचस्प है। इसमें अमुन् और अमौनेत् है। अमुन् का अर्थ है प्रच्छन्न। ब्रैन्डन का मत है कि इस जोड़े से किसी आदिम कार्य अथवा क्रियाशीलता का बोध होता है जो अदृश्य थी। "आगे चलकर अमुन् को वायु अथवा श्वास के देवता के रूप में पूज्य माना गया—इस तथ्य से उनकी पहचान संभव है"।[33] **ऋग्वेद** के **तमसा गूढ़म्** में यही प्रच्छन्नता का भाव है। इस भाव को वायु की धारणा से मिला दिया गया है। **आनीदवातम्** वायुहीनता की दशा में वह साँस ले रहा था (१०.१२९.२); आदिम जलराशि इस प्रकार अपनी ही शक्ति से आंदोलित होती है। अमुन् और अमौनेत् के जोड़े में आदि तत्व की गूढ़ता और गतिशीलता की धारणाएँ प्रच्छन्न हो गई हैं। भारतीय चिंतन और मिस्री कथा में एक अंतर और है। भारतीय चिंतन में जलराशि गतिहीन नहीं है, मिस्री कथा में वह गतिहीन है। वायुहीनता की दशा में वह आदिम एक, अपनी ही शक्ति से (**स्वधया**), स्पंदित है। **ऋग्वेद** में गतिहीन कुछ भी नहीं है। निश्चल जड़ प्रकृति की अवधारणा बाद की है। ब्रैन्डन कहते हैं, नुन्—आदिम जलराशि—मूलतः गतिहीन थी; इससे पहले कि सृष्टि आरंभ हो, उसे गति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रदान करना आवश्यक था।"[34] कोई तत्व अपनी ही शक्ति से गतिशील हो सकता है, यह दार्शनिक धारणा यहाँ नहीं है।

पर इस प्रसंग में रोचक तथ्य यह है कि "चौथे जोड़े के नाम कभी निआ और निआत् दिए जाते हैं।"[35] इनकी चर्चा पहले हो चुकी है। ऋग्वेद में और बाद के दार्शनिक चिंतन में असत् की धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद की धारणाएँ किसी न किसी रूप में मिस्री चिंतन को प्रभावित कर रही थीं, इसका प्रमाण निआ और निअत् का जोड़ा है। असत् को ही देव और देवी में विभाजित करके यह जोड़ा बनाया गया है।

दार्शनिक उद्भावनाएँ इतनी प्राचीन, व्यापक और शक्तिशाली थीं कि पश्चिमी एशिया के सृष्टि कथाकारों के लिए उनकी अपेक्षा करना या उन्हें अपने धर्मशास्त्र में खपा लेना आसान न था। एक उद्भावना यह है कि संसार की रचना जल-तत्व से हुई है। इस आदिम जलराशि को किसी स्रष्टा ने नहीं रचा पर उस स्रष्टा ने सारे संसार की रचना की है। वह आदिम जलराशि इस संसार से पृथक् अपना स्वयंभू अस्तित्व बनाए रही। इस आदिम जलराशि का वर्णन बाइबिल में है। ब्रैन्डन कहते हैं, सृष्टिकथाकार ऐसा दार्शनिक नहीं था कि इस बात पर ध्यान देता कि "उसने जब आदिम गहराई (जलराशि) का वर्णन किया, तब उसने गुपचुप भूत (मैटर) के किसी रूप का अस्तित्व स्वीकार किया था।"[36] भूत, पदार्थ, वस्तु के बिना संसार की रचना नहीं हो सकती। स्रष्टा यदि सब कुछ रचता है तो वह इस भूत को भी बनाएगा। पर वह जलराशि पहले से विद्यमान है, कथाकार इस धारणा की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसी तरह यूनानी कवि हेसिऑद् जॅउस् को देवों और मनुष्यों का जनक मानते हैं पर जो प्रपंच सबसे पहले अस्तित्व में आया, वह खऑस् था। इसलिए जॅउस् चाहे जितने शक्तिशाली हों, हेसिऑद् ने यह दावा नहीं किया कि "उनका स्वरूप स्रष्टा का था।"[37] यहोवा और जॅउस् दोनों स्रष्टा हैं और दोनों के सृष्टि कर्म से पहले जलतत्व विद्यमान है। इसका अर्थ यह है कि सृष्टिकथा की रचना से पहले जल संबंधी दार्शनिक उद्भावना विद्यमान थी।

जल पृथ्वी पर है, उसके नीचे है, आकाश में है। जॅउस् और यहोवा, दोनों का संबंध वर्षा जल से है, बादलों के गरजने से है। यहोवा ने जब पृथ्वी बनाई, तब उस पर पेड़-पौधे नहीं थे "क्योंकि यहोवा परमेश्वर ने पृथ्वी पर जल नहीं बरसाया था"। (उत्पत्ति, २.५)। यहोवा के अनेक कार्यों में जल बरसाना भी एक काम था। उनकी आवाज बादलों के गरजने जैसी है। "तेरे गरजने का शब्द सुनते ही, वह (जल) उतावली करके भाग गया।" (भजन संहिता, १०४.७)। अंग्रेजी अनुवाद में The Voice of thy thender से यहोवा का बादलों से संबंध और भी स्पष्ट है। और भी "क्या तेरा बाहुबल ईश्वर के तुल्य है ? क्या तू उसके समान शब्द से गरज सकता है ?" (अय्यूब, ४०.९)। अंग्रेजी अनुवाद फिर यहाँ अधिक स्पष्ट है : or Can't thou thunder with a voice like him ? इस तरह के मूर्ति विधान पर इंद्र के कार्यों की छाया देखी जा सकती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किसी एक आदि तत्व से संसार निर्मित हुआ है, वैदिक काल में यह धारणा व्यापक रूप से मान्य थी। पर यह तत्व जल था, वायु था, या अग्नि था, इस संबंध में अनेक धारणाएँ प्रचलित थीं। वायु अथवा प्राण से सारा जगत् प्रतिष्ठित है, बादल गरजते हैं, वह प्राण है, बिजली चमकती है, वह प्राण है। विराट् प्राण है, सूर्य-चंद्र प्राण हैं, प्राण प्रजापति हैं। (अथर्ववेद, ११.४.१, २, १२)। अवेस्ता में वायु का प्रतिरूप वयु हैं। ब्रैन्डन के अनुसार यह देव इतने शक्तिशाली हैं कि अहुर मज्दा भी उनकी सहायता चाहते हैं : "विश्वतंत्रीय ऊहापोह में उन्हें सभी सत् (being) का स्रोत और संसार के प्राण (anima) माना जाता है।"[38] केवल ऋग्वेद नहीं, अथर्ववेद में प्राप्त धारणाएँ भी पश्चिमी एशिया में फैली थीं। प्राण की तरह काल संबंधी महत्वपूर्ण चित्रण अथर्ववेद में है। कालो भूतिमसृजत् - काल ने सृष्टि रची है। (उप०, १६.५३.६)। अवेस्ता में काल के प्रतिरूप जुर्वान् देव हैं। ब्रैन्डन का मत है कि इनकी उपासना बारहवीं सदी ई० पू० में प्रचलित थी।[39] ऋग्वेद से अवेस्ता के संबंधों पर विद्वानों ने ध्यान दिया है, अथर्ववेद से उसके संबंधों की ओर उनका ध्यान कम गया है। ब्रैन्डन ने त्सएनर (R.C. Zaehner) का हवाला दिया है जिनका विचार था कि "जरथुश्त्र के अहुर मज्दा के पीछे एक प्राचीन हिंदी ईरानी देव हैं जिनका संबंध आकाश से है और ऋग्वेद में जिनका नाम वरुण है।"[40] जैसे अहुर मज्दा वरुण के प्रतिरूप हैं, वैसे ही जुर्वान् काल के प्रतिरूप हैं। वरुण की प्रतिष्ठा ऋग्वेद में है, काल की अथर्ववेद में। वास्तव में वरुण और काल भिन्न है ; काल की धारणा दार्शनिक है और वह देव संबंधी विश्वासों का खंडन करने वाली है।

त्सएनर ने अपने ग्रंथ ज़ुर्वान् में बताया है कि ईरान के सम्राट् खेर्खेस (Xerxes) के समय में मग लोग पश्चिमी एशिया में आकर बसने लगे थे। इन पर बैबीलोनी विचारधारा का असर था। उन्होंने बैबिलोन के खाल्दी पुरोहितों से "ज्योतिष विज्ञान और काल को प्रथम सिद्धांत मानने का रुझान सीखा।"[41] अपने पश्चिमी आप्रवास के दौरान ये धारणाएँ वे साथ ले गए। क्यूमों का हवाला देने के बाद त्सएनर ने लिखा है कि मिथ्र संबंधी गुह्य कथाएँ जहाँ तक देवमंडल में क्रोनोस-जुर्वान को शीर्षस्थान देती हैं, वहाँ तक वे जुर्वान्‌पंथी हैं।[42] त्सएनर के इन काल संबंधी उल्लेखों से दो परिणाम निकलते हैं : (i) बैबिलोन में ये काल संबंधी धारणाएँ प्रचलित थीं, (ii) यूनानी देव कथाओं के क्रोनोस, ईरानी, जुर्वान् और भारतीय काल के प्रतिरूप हैं। यूनानी देवमंडल में क्रोनोस का अस्तित्व पाँचवी सदी ई० पू० के बहुत पहले से है, अतः मानना चाहिए आदि जनक के रूप में काल की धारणा इराक होती हुई दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में यूनान पहुँच गई थी। उसका आदि स्रोत है अथर्ववेद।

ईरानी साम्राज्य के उत्कर्षकाल में जरथुश्त्र का मत जुर्वान्‌पंथी था, त्सएनर ने इस धारणा का खंडन किया है। मज्दा के उपासक स्वर्ग-नरक में विश्वास करते थे और मानते थे, पापी को दंड मिलेगा और पुण्यात्मा को पुरस्कार मिलेगा। "और ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक इन्हीं प्रश्नों पर मज्दा मत और जुर्वान्‌ पंथ में अंतर था। शिकंद् गुमानि वज़ार में एक संप्रदाय का ज़िक्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है जिसे वह दहरी कहता है। इस्लाम के दौर में यह एक सुपरिचित भौतिकवादी संप्रदाय (a materialist sect) था और शिकंद ने उस [इस्लाम के पूर्ववर्ती] संप्रदाय के जो विचार बताए हैं वही इस [इस्लामी दौर के] संप्रदाय के हैं। और अरबी शब्द दहर 'काल' वाचक तो है ही। ये दहरी और जुर्वान्‌पंथी एक हैं, यह कहने का समय अभी नहीं है।"[43] जो लोग ईश्वर की सत्ता अमान्य ठहराते थे, प्रकृति को ही सब कुछ मानते थे, वे अरबी में दह्रिया कहलाते थे। बैबिलोन काल से लेकर ईस्लाम के प्रसार काल तक पश्चिमी एशिया में दूर-दर तक एक भौतिकवादी मत अपना अस्तित्व बनाए रहा। इसका स्रोत अथर्ववेद था।

काल मृत्यु-सूचक है। यूनानी देव क्रोनोस (ख्रॉनॉस) अपने पुत्रों को मार डालते थे, इस कल्पना में काल से मृत्यु का संबंध देखा जा सकता है। जेंउस् ने पिता क्रोनोस का वध किया, यह कर्म भी इस सत्य की ओर संकेत करता है कि काल की दार्शनिक उद्‌भावना को खत्म किए बिना जेंउस् की देवपूजा शुरू न हो सकती थी।

भारत में एक मत्स्य जनपद था। भरतों के विनाश के बाद कुरु-पांचालों के साथ मत्स्यों ने वेदों की रक्षा की थी। इस प्रकार मानव सभ्यता के विकास में मत्स्यों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। बैबिलोन में बेरोस्सोस् नाम के एक पुरोहित थे। उनके लेखन की जानकारी यूनानी स्रोतों से होती है। बेरोस्सोस् के अनुसार खाल्दिया प्रदेश (इराक) में पहले असभ्य जन रहते थे। वहाँ लाल सागर के तट से एक विचित्र प्राणी आए। उनका सारा शरीर मछली का था, मछली के सिर के नीचे दूसरा सिर था और उसकी पूँछ के नीचे मनुष्य के दो पैर थे।[44] यदि कोई व्यक्ति मछली को अपना गणप्रतीक मानता हो, तो उसका वेश कुछ इसी तरह का होगा। मत्स्य जन किसी समय यही वेश धारण करते रहे हों, यह संभव है। वरुण के प्रतिरूप सुमेरी जल देवता एनकि अथवा एअ इसी वेश में कल्पित किए गए थे। ब्रैन्डन का कहना है कि "वास्तव में इसके प्रमाण हैं कि जो पुजारी इस देवता की सेवा में होते थे, वे मछली जैसी पोशाक पहनते थे।"[45] जल की उपासना भारत से सुमेर पहुँची, इसकी प्रबल संभावना है। मछली की पोशाक पहनने वाले पुजारियों के वर्णन से यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि भारत के जो लोग वहाँ जल की उपासना ले गए, वे मत्स्य जन थे और वे जल को आदि तत्व मानते थे। सुमेरवासियों ने सभ्यता की मुख्य बातें बाहर वालों से सीखीं, यह विश्वास उनकी परंपरा का अंग था।"

बेरोस्सोस् के अनुसार वह मत्स्य वेशधारी व्यक्ति नित्य लोगों से मिलते-जुलते थे, वह उनका भोजन ग्रहण न करते थे (partaking of no food)। मनुष्य होने से भोजन तो करते ही होंगे: आशय यह होगा कि इतर जनों के यहाँ भोजन न करते थे), वह उन्हें लिखना-पढ़ना और हर तरह की विद्या और कौशल सिखाते थे, उन्हें नगर बसाना और मंदिर बनाना, कानून बनाना और भूमि की नाप-जोख करना सिखाते थे। बीजों का उपयोग कैसे करना चाहिए, फलों के वृक्ष कैसे लगाने चाहिए, उन्होंने उन्हें सिखाया। जीवनयापन के लिए प्रतिदिन जो भी आवश्यक था, उसे प्राप्त करना उन्होंने उन्हें सिखाया। उनका नाम था ऑअन्नेस् (Oannes)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूर्यास्त होते वह समुद्र में चले जाते थे और रात को वहीं रहते थे। वह जलचर, थलचर दोनों थे। उन्होंने सृष्टि के बारे में और राजनीतिक कार्यों के बारे में लिखा और अपना आलेख उन्होंने मनुष्यों को सौंप दिया। बाद को उन जैसे अन्य प्राणी भी आए, लेकिन इनका वर्णन राजाओं के अभिलेखों में नहीं है।

इस प्रसंग में दिल्मुन् की खोज करने वाले बिबी की उक्ति याद करें कि सुमेरियों को विश्वास था कि उनके आदि पुरुष समुद्र के रास्ते कहीं बाहर से आए थे। बहरीन द्वीप में भारत सुमेर संपर्क के प्रमाण स्वरूप जो बाँट मिले थे, वह हड़प्पा क्षेत्र के बाँटों जैसे हैं -- बिबी की यह बात भी याद करें। वैदिक अप्सु रूप, हो सकता है, मत्स्य जनों के साथ सुमेर पहुँचा हो। ऑअन्नॅस् नाम में ऑस भारतीय व का ग्रीक रूपांतर जान पड़ता है। संस्कृत शब्द वनाश

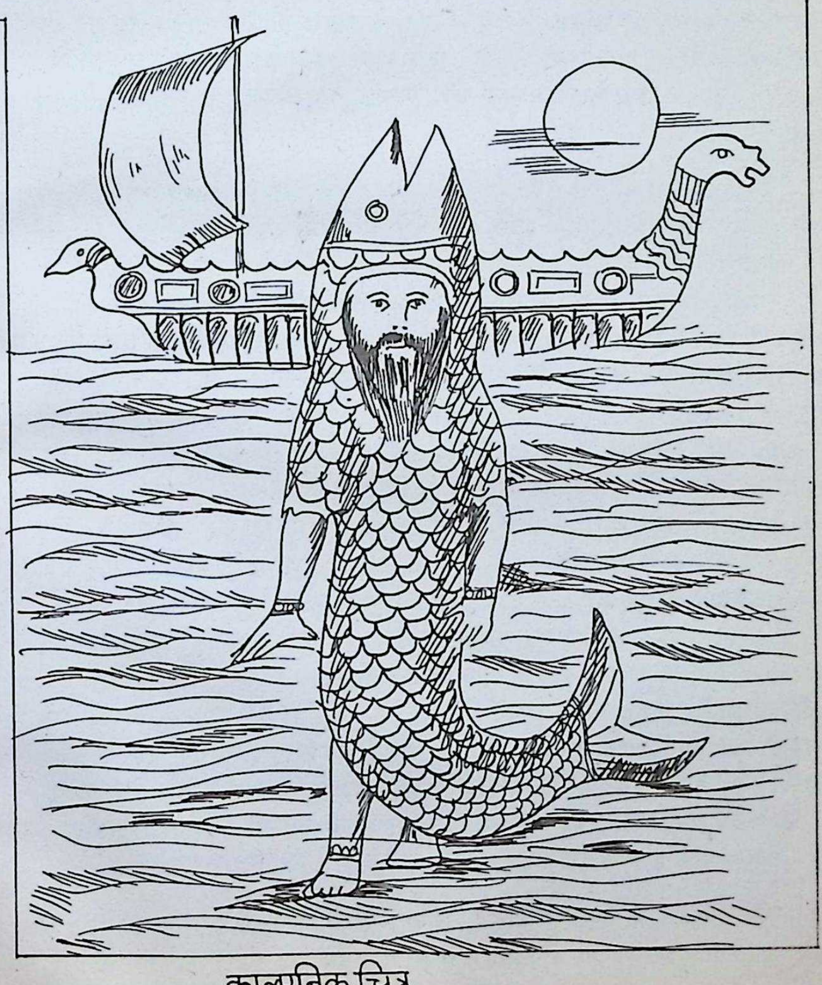

काल्पनिक चित्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का अर्थ है पानी पीकर जीने वाला। संभव है जल के उपासक होने से उनका नाम **वनाश** या ऐसा ही कुछ हो रहा हो। मत्स्य जन मंदिर बनाते रहे हों, इसकी संभावना कम है। सुमेरियों ने सभ्यता की अधिकांश बातें उन मत्स्य जन से सीखीं, अतः परंपरा से प्राप्त कथा में मंदिर बनाने का श्रेय भी उन्हीं मत्स्य जन को दिया गया। मंदिर निर्माण जैसी चीजों से अधिक महत्वपूर्ण यह उल्लेख है कि वह मत्स्य जन सृष्टि के बारे में भी अपने विचार लिखकर सुमेरियों को दे गए। सुमेर और भारत के सृष्टि संबंधी चिंतन में जो समानता है, उसके संभावित कारण का यहाँ संकेत मिलता है।

बेरोस्सोस् के बारे में कहा गया है : "वह कहते हैं, एक समय ऐसा था जब केवल अंधकार और जल था। इसमें चमत्कारी और विचित्र रूपों वाले जीव उत्पन्न हुए। कारण यह कि ऐसे मनुष्य पैदा हुए जिनके दो पंख थे, कुछ के चार पंख और दो मुख थे, नर और नारी, इनके शरीर पर एक या दो सिर थे। इसके सिवा उनकी जननेंद्रियाँ नर और नारी दोनों की थीं"।[47] सृष्टि से पहले केवल अंधकार और जल था, यह धारणा सुमेर को बाहर से मिली हो तो वह भारत से ही मिली होगी।

वह मत्स्य जन भारतवासी थे यह संभावना यहाँ पुष्ट होती है। विश्व अंडे जैसा था, उसके फूटने से श्येन रूप सूर्यदेव प्रकट हुए। इस कल्पना से पंखों वाले प्राणियों की कथा गढ़ी गई होगी। भारत में अनेक मुखों और दो से अधिक भुजाओं वाले देवी-देवता प्राचीनकाल से हैं। इनकी आकृतियों की कथाएँ सुमेर पहुँची हों तो आश्चर्य नहीं। इन कथाओं के आधार पर मूर्तियाँ बनाई गईं और बैबिलोन के मंदिरों में रखी गईं। इन सब पर एक नारी का शासन था। उसके खाल्दी नाम **थलत्थ**, ग्रीक रूप **थलस्स**, का अर्थ है समुद्र। ब्रैन्डन कहते हैं संख्या विचार से समुद्र चंद्रमा के समतुल्य हुआ। **ऋग्वेद** में अपः, आपः सदा माताएँ हैं। सिंधु नदी भी माता है और सिंधु का अर्थ समुद्र भी है। सुमेरी भारतीय संपर्क के पहले दौर में यहाँ मातृसत्ताक व्यवस्था रही हो तो उन प्राणियों पर नारी का शासन करना स्वाभाविक होगा। चंद्रमा समुद्र से उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसका उल्लेख भी प्रासंगिक है। बैबिलोन के देवता बेल् ने उस नारी के दो भाग किए, एक भाग आकाश हो गया, दूसरा पृथ्वी। विराट् यदि पुरुष हो सकता है तो मातृसत्ताक व्यवस्था में वह स्त्री भी हो सकता है। उसी से धरती आकाश बने। ये धरती आकाश जुड़े हुए थे। बेल् ने "अंधकार को बीच से काटकर उसके दो टुकड़े किए, धरती-आकाश को एक दूसरे से जुदा किया, और विश्व को सुव्यवस्थित किया"।[48] धरती-आकाश का संयुक्त रूप है **रोदसी** और यह शब्द स्त्रीलिंग है। विराट् पुरुष की तरह विराट् स्त्री विश्वरूप है, धरती आकाश उसी के दो भाग हैं, यह धारणा अवश्य ही सुमेर-बैबिलोन भारत से पहुँची होगी। (मोनियर विलियम्स के अनुसार **रोदः** धरती और आकाश के बीच का रिक्त स्थान है। संभवतः रोदः का अर्थ गर्भस्थान और रोदसी का अर्थ जननी था। तुलनीय हैं रूसी रोदीत्—जन्म देना, रोदिना—मातृभूमि)।

सुमेरी सृष्टिकथाओं की एक विचित्र विशेषता यह है कि उनमें सृष्टि का आरंभ और सभ्यता का आरंभ लगभग एक ही समय होता है। इस बारे में ब्रैन्डन ने जो कुछ लिखा है,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वह सुमेरी ही नहीं, भारतीय इतिहास को भी समझने में सहायक होगा। उन्होंने लिखा है : "ऐसा लगता है, सुमेरियों के मानस को सृष्टि, अथवा कहें सृष्टि की प्रक्रिया, ऐसी घटना के रूप में न दिखाई देती थी जो एक तरह के 'देवताओं के युग' में घटित हुई हो, किसी अति दूर पुराण कथाकाल में, जो मानव इतिहास से एकदम असंबद्ध हो। निप्पुर स्थान से एक पट्टिका मिली है : क्षतिग्रस्त दशा के कारण वह दुर्भाग्य से खंडित रूप में यह दिखाती है कि मानवजाति की सृष्टि से ही आगे की मंज़िलों वाली मानव कार्यवाही शुरू हो जाती है, बादशाही की संस्था और छह नगरों की, प्रत्यक्षतः धार्मिक क्रियाओं के केंद्र रूप में, स्थापना विशेष स्मरणीय बताई गई है...इसके बाद मानव जाति के नाश के लिए देवों द्वारा प्रेरित जलप्रलय से मानवीय कार्यवाही के सिलसिले में व्यवधान पैदा होता है"।[49] यदि किसी देश में सभ्यता बाहर से आई हो तो उसे बर्बर अवस्था से सभ्यता तक पहुँचने के विकासक्रम का बोध न होगा। इस बात के अनेक संकेत हैं कि कृषि और नगर निर्माण वाली सभ्यता सुमेर में बाहर से आई थी। अतः सुमेरियों के लिए सृष्टि और सभ्यता के आरंभ का समय लगभग एक सा है। सभ्यता के विकास का सिलसिला जलप्रलय से कुछ समय के लिए टूटता है, उसके बाद फिर चालू हो जाता है। अब यदि जलप्रलय कथा भी सुमेर में बाहर से आई हो तो वह सृष्टिकथाओं से जुड़ जाएगी। उल्लेखनीय है कि जिस **गिलुगमेश** काव्य में जलप्रलय कथा कही गई है, उसकी "विषय-वस्तु एकदम भिन्न थी"।[50] कथा लोकप्रिय थी; अप्रासंगिक होने पर भी उसे सुमेरी वीरगाथा में शामिल कर लिया गया। ऐसे ही **बाइबिल** में उसे रखना था; अतः कवि को "उसके लिए अवसर खोज निकालना था"।[51]

एक तरह से सुमेरियों के लिए सृष्टि आरंभ हुई जलप्रलय के बाद। अतः सृष्टिकथा के एक रूप में वह सृष्टि वर्णन के साथ जुड़ गई। बैबिलोनी सृष्टि काव्य **एनुमाएलिश** के प्रसंग में हुक ने लिखा है : "कथा के इस उत्तरकालीन संपादित रूप के पीछे कई और पुराने तथा भिन्न रूप हैं। सृष्टिकथा के एक प्राचीन सुमेरी रूप में सुमेरी देवमंडल के तीन बड़े देवता—अनु, एन्‌लिल्, और एन्कि (अर्थात एअ) देवी निन्खर्सग्गा की सहायता से सृष्टि के काम में परस्पर सहयोग करते हैं। (बैबिलोनी) सृष्टिकाव्य में जैसा संघर्ष है, वैसा यहाँ कुछ नहीं है। देवों की रचनात्मक कार्यवाही में जलप्रलय से पहले के पाँच नगरों के निर्माण को सिमट आते बताया गया है। वृत्तांत में आगे जलप्रलय का विवरण है : वह यहाँ सृष्टि कर्म से सीधे जुड़ा हुआ है (the account goes on to describe the Daluge, which is here directly connected with the work of creation)। (बैबिलोनी) सृष्टिकाव्य में जलप्रलय का उल्लेख नहीं है, और जैसा कि हम देखेंगे, देवों की रचनात्मक कार्यवाही से जलप्रलय की बैबिलोनी कथा का कोई संबंध नहीं है वरन वह **गिलुगमेश** महाकाव्य के अंश के रूप में हम तक पहुँची है"।[52]

प्राचीन सुमेरी काव्य में जलप्रलय का विवरण देवों के सृष्टिकर्म से सीधे जुड़ा हुआ है। जलप्रलय से पहले के देव निर्मित पाँच नगर देवकथाओं के युग के हैं। जिन वास्तविक नगरों से सभ्यता के विकास का संबंध है, वे जलप्रलय के बाद के हैं। सुमेरी कवियों का ध्यान इस प्रलयोत्तरकाल पर केंद्रित है : इसलिए सृष्टि और जलप्रलय के बीच, जलप्रलय और सभ्यता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के विकास के बीच, उन्हें समय का विशेष अंतराल नहीं दिखाई देता। असंभव नहीं कि वह मत्स्य जन जलप्रलय के बाद ही सुमेर पहुँचे हों ! **बाइबिल** की सृष्टिकथा इसी प्राचीन सुमेरी कथा के अनुरूप है। संसार की रचना, फिर जलप्रलय, मानव इतिहास वास्तव में जलप्रलय के बाद शुरू होता है। कुछ समय बाद सुमेरी कवियों को अवश्य लगा होगा कि सृष्टिकथा से प्रलय कथा का कोई संबंध नहीं है। उन्होंने उसे सृष्टिकथा से अलग किया, पर कथा रोचक थी, उन्होंने उसे गिलूगमेश की वीर गाथा से जोड़ दिया और बैबिलोनियों ने उनका अनुसरण किया। बैबिलोनियों ने एक काम और किया: सृष्टि कर्म में देवों के सहयोग के बदले उनमें संघर्ष करा दिया। शायद यह इंद्र और वृत्र के युद्ध का छाया रूप था। वृत्र जल में रहता था; बैबिलोनी कथा में खारी जलराशि तिआमत बन गई, उसे मार कर मर्दुक् ने उसके अंगों से संसार रचा।

छ. अग्नि और तम्मुज़् मर्दुक्

बैबिलोनी सृष्टिकाव्य उपाख्यान मात्र नहीं था, सांप्रदायिक-सामाजिक क्रियाओं में उसका उपयोग होता था। नव वर्ष आरंभ होने पर विशेष उत्सव में उसका पाठ किया जाता था। दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० में यह कथा प्रचलित थी। ब्रैन्डन ने ध्यान दिलाया है कि उसका आधार पहले की परंपराएँ हैं,यथा इसमें "एअ (एनूकि) देव की विचित्र भूमिका है", अर्थात विश्व की उत्पत्ति जल से हुई है, यह परंपरागत धारणा इस बैबिलोनी कथा का आधार भी है।[53] बैबिलोन नगर का प्रभुत्व सारे पड़ोसी क्षेत्र पर था; मर्दुक इस नगर के देवता थे, उनका महत्व भी बढ़ा चढ़ाकर दिखाया गया था। ब्रैन्डन के विचार से "यह मानने का यथेष्ट कारण है कि धरती-आकाश के निर्माता की अपनी भूमिका में मर्दुक् ने एनूलिलू की उपलब्धि को हथिया लिया है",[54] अर्थात ब्रह्मांड, वायु (एनूलिलू) द्वारा, विभक्त हुआ; उसका एक भाग धरती, दूसरा आकाश बना। इस कार्य का श्रेय मर्दुक् को दिया गया।

मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई, यह कथा एक मंत्र की भूमिका बन गई है। मंत्र का संबंध प्रसव क्रिया को सरल बनाने से है। विश्वास यह था कि आदि माता ने जैसे सरलतापूर्वक मनुष्यों को जना, वैसे ही यह माता शिशु को जन्म देगी, इस मंत्र में आदि माता से कहा गया है :

तू मातृ-गर्भ है
जो मानवजाति को रचता है।[55]

धरती-आकाश के बीच का स्थान गर्भ है, उससे मानवजाति ही नहीं, संसार के समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं। ऐसा हो तो धरती आकाश हुए **रोदसी;** उनके बीच का रिक्त स्थान, रोदः हुआ गर्भ।इन प्राचीन शब्दों की सांकेतिक व्यंजना बैबिलोनी मंत्र में प्रतिध्वनित है।

किंतु इस सृष्टिकाव्य का उपयोग प्रसव क्रिया को सरल बनाने के लिए आनुषंगिक रूप से ही किया जाता था। काव्य पाठ मूलतः कृषि संबंधी कर्मकांड के दौरान किया जाता था। इस प्रसंग में ब्रैन्डन ने ऐस०ए० पैलिस का जो मत उद्धृत किया है, उसमें दो बातें उल्लेखनीय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं : (1)"एनुमा एलिश् मूल रूप में एक धार्मिक पाठ था...उसका संबंध बैबिलोन के उस आदिम-कालीन कृषि नाटक से था जो **अकीतु** उत्सव में प्रदर्शित होता था।" (2) "एनुमा एलिश् के जिस रूप से हम आज परिचित हैं, वह धार्मिक पाठ नहीं है। महाकाव्य का पाठ ऐसा है जो शहरी संस्कृति से प्रभावित है"।[56] सृष्टिकथा पुरानी है; उसका संबंध बैबिलोन नगर से नहीं है। बैबिलोन से पहले सुमेरी नगर थे, उनसे भी उसका संबंध नहीं है। वह कृषिकर्मी जनों की रची हुई कथा है, उसे सुमेर और बैबिलोन के लोगों ने अपनाया और उसके रूप बदलते गए। ब्रैन्डन कहते हैं कि नए वर्ष के उत्सव में **एनुमा एलिश्** को धार्मिक पाठ की तरह पढ़ा जाए, यह समझ में आने वाली बात है क्योंकि वर्ष के आरंभ में और संसार की रचना में विषय वस्तु की सहज समानता है।[57] फिर भी कृषि संबंधी कथा और नगर सभ्यता का अंतर्विरोध बना रहता है।

जिस उत्सव में **एनुमा एलिश्** का पाठ होता था, उसका एक उद्देश्य मर्दुक् का महत्व घोषित करना था। मर्दुक् बैबिलोन के मुख्य देवता थे; उनका महत्व बैबिलोन का महत्व भी था। एक कठिनाई यह है कि **एनुमा एलिश्** का पाठ तब होता था जब मर्दुक् बंदी बना लिए जाते हैं। ब्रैन्डन कहते हैं : "यद्यपि काव्य के प्रासंगिक अंश से ऐसी स्थिति का स्पष्ट बोध होता है जिसमें मर्दुक् को (पाताल में ?) बंदी बना लिया जाता है, पर जैसा कि हम देखेंगे, **एनुमा एलिश्** का सारा ठाठ ऐसा है कि मर्दुक् कमज़ोर पड़ें या हारें, ऐसे संकेत को वह खंडित करता है"।[58] पर यदि मर्दुक् में अनेक देवों की विशेषताएँ समेट ली गई हों, तो उनका अजेय होना और पराजित होना, दोनों बातें संभव हैं। वह बंदी बनाए जाते हैं, संभवतः पाताल में। धरती से गायब होकर यमपुरवास तो वह निश्चित करते हैं। जब ऊपर आते हैं तब बसंत ऋतु में नई प्राण-शक्ति से धरती लहलहा उठती है।

सुमेर के एक प्राचीन देवता दुमु-ज़ि अथवा तम्मुज़् थे। इनसे संबंधित बहुत से शोक-गीत प्रचलित थे। हुक के अनुसार इन गीतों में यह कथा सुरक्षित है कि तम्मुज़् पाताल जाते हैं : इश्तर उनकी भगिनी और पत्नी दोनों हैं, वह उनके लिए विलाप करती हैं, फिर स्वयं पाताल में प्रवेश करती हैं, दोनों जब धरती पर लौट आते हैं, तब वसंत में उर्वरता और उछाह अपने साथ लाते हैं। हुक ने लिखा है,"स्पष्ट है कि तम्मुज़् एक वनस्पति-देवता की भूमिका निबाहते हैं, मृत वर्ष के साथ मरते हैं और वसंत के फूलों तथा नए धान्य के साथ फिर जन्मते हैं। बैबिलोनिया में इस धार्मिक क्रिया का जो विकास उत्तर-काल में हुआ, उसमें मरने और जी उठने वाले देवता की कथा और धार्मिक क्रिया नव वर्ष के बैबिलोनी महोत्सव के रूप में रुढ़िबद्ध हो गई"।[59] मर्दुक् से तम्मुज़् का संबंध तो स्पष्ट हो गया। तम्मुज़् अथवा दुमु-ज़ि सुमेरियों के प्रधान देवों में नहीं हैं, मर्दुक् बैबिलोन के प्रधान देव हैं। अतः मर्दुक् पराजेय और अपराजेय दोनों हैं।

तम्मुज़् की अनुपस्थिति में धरती की जो दुर्दशा होती है, शोक-गीतों में उसका वर्णन विस्तार से किया जाता है। पाताल के दानव तम्मुज़् पर हावी हो जाते हैं और नगर, मंदिर, जन, सब तबाह होते हैं। इश्तर विलाप करती हैं, अपने साथ विलाप में भाग लेने को पुजारियों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और अन्य सभी जनों का आह्वान करती हैं। पाताल की शक्तियों ने उपज को नष्ट कर दिया है। अब यदि अग्नि देव पृथ्वी से गायब हो जाएँ, दूर कहीं गुफा में, या जल में छिप जाएँ, वह अग्नि जो आकाश में सूर्य हैं और वनस्पतियों में जिनकी ऊष्मा है, तो पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों की दशा की कल्पना की जा सकती है। जब तक देव गण अग्नि को ढूँढ़ न लाएँ तब तक सारा जीवन अस्त-व्यस्त रहेगा। अग्नि जहाँ जाकर छिपते हैं, वहाँ जल है, अंधकार है, वहाँ यम राजा हैं, यम और वरुण साथ रहते हैं, मृत्यु के बाद लोग इसी स्थान में आते हैं।

"जल के बीच निगूढ़ इस अग्नि को विशेष रूप से सेवा उपासनाकरने वाले ऋषियां ने चोरों से अपहृत पशु को जिस प्रकार उसके पदचिह्नों से पता लगाते हैं, उसी प्रकार, अपने स्तुति वचनों से खोजा; गुहा में एकांत स्थान में—गुप्त रूप से विद्यमान अग्नि को उसके प्रेमी भक्त नमन, स्तुति वचनों से इच्छा करते हुए बुद्धिमान् तपस्वी भृगुवंशियों ने प्राप्त किया।" (सातवलेकर; १०.४६.२)। अग्नि जल में छिपे हैं, ऐसे छिपे हैं कि आसानी से पता न चले। **गुहा चतन्ताम्**—यह शब्दबंध ऐसे ही संदर्भ में अग्नि के लिए अन्यत्र (१.६५.१) भी प्रयुक्त हुआ है। कहीं अपहृत पशु के पगचिन्हों से उसका पता लगाने की उपमा भी है। अग्निदेव को ढूँढ़ निकालना सरल कार्य नहीं था उन्हें मनाने के लिए अनेक ऋषियों ने सामूहिक रूप से उनकी स्तुति की थी। यदि इस कथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया जाता हो तो सामूहिक स्तुति वाले उस दृश्य की कल्पना की जा सकती है। ऋग्वेद में नाटकीय संवाद वरुण और अग्नि के बीच है भी। वरुण कहते हैं, जब तुमने जल में प्रवेश किया था, तब तुम्हें उसमें प्रवेश करते एक देव ने देखा था। फिर वरुण ही कहते हैं, तुम्हें वह कार्य करते यम ने देखा था। जल में अग्निदेव क्यों छिपने गए थे, यह वह स्वयं बताते हैं; "हे वरुण देव ! मैं हविवहन कार्य से भय करता हुआ आ गया हूँ; मुझे इस प्रकार इस कार्य में देवता लोग नियुक्त न करें, यह मैं चाहता हूँ; उस कारण मैंने मेरा शरीर अनेक प्रकार से जल में छिपाया है; इस हविवहन कार्य को अग्नि मैं करना नहीं चाहता।" (सातवलेकर; १०.५१.१,३,४)।

एक ओर हैं देवता और उन्हें हवि भेंट करने वाले ऋषिगण और दूसरी ओर हैं अग्निदेव। वह हवि ढोते-ढोते ऊब गए हैं और भागकर अथाह जलराशि में छिप गए हैं। जलराशि तमसाकृत है; वरुण के शब्दों में **अरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने**—स्वयं प्रकाशमान होकर भी तुम अंधकार में रहते हो। (१०.५१.५)। मृत्यु के बाद मनुष्य यम और वरुण के दर्शन करता है (१०.१४.७), कारण यह है कि वरुण जल के देवता हैं और यमलोक जलमय है। यमलोक अंधकारमय भी है, ज्ञानी पुरुष अग्नि को अंधकार से बाहर लाए हैं। (६.१५.१७)। **अपः** माताएँ हैं, स्वभावतः अग्नि उन्हीं के पास जाते हैं। (३.६.२)। वहाँ वह अपनी इच्छा से जाते हैं। (३.६.५)। ऋषिगण अथवा देवगण उन्हें वहाँ से **लौटाकर** लाते हैं, यह धारणा **निवर्तनम्** शब्द से व्यंजित है। (३.६.२)। और अग्नि प्रातःकाल उदित होने वाले सूर्य हैं (१०.८८.६), तथा "लता आदि के मध्य अवस्थित होकर" वह अन्नादि को उत्पन्न करते हैं।" (सातवलेकर; १.२.१४)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अग्नि के जल में छिप जाने का उल्लेख ऋग्वेद में बार-बार हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के रचनाकाल में लोग इस कथा से अच्छी तरह परिचित थे। कवि के लिए आवश्यक नहीं था कि विस्तार से कथा सुनाए, उसकी ओर संकेत कर देना काफ़ी था। सूक्तों की संरचना में जहाँ-तहाँ संवाद आ जाते हैं, पूरे नाटक या उपाख्यान नहीं आते। पर यह असंभव है कि जिस समाज में ऐसे उच्चस्तरीय सूक्त काव्य की रचना हुई हो, उसमें साहित्य की अन्य किन्हीं विधाओं का विकास हुआ ही न हो। सृष्टि संबंधी ऋग्वेद की धारणाओं का प्रसार जिस समय पश्चिमी एशिया में हुआ, उस समय यह बहुत संभव है, अग्नि के धरती से लोप होने और देवों तथा ऋषियों के मनाने पर उनके पुनरागमन की कथा भी वहाँ पहुँची हो। जैसे सृष्टि संबंधी दार्शनिक उद्भावनाएँ नए सांस्कृतिक परिवेश में अपना रूप बदलती हैं, वैसे ही अग्नि के लोप होने की कथा तम्मुज़् (दुमुज़ि) और मर्दुक् के पाताल जाने, फिर धरती पर लौटने की कथा के रूप में अपनाई गई हो।

तम्मुज़् और मर्दुक् का पाताल धरती के नीचे है। भारतीय काव्यों और पुराणों के अनुसार भी पाताल और यमलोक धरती के नीचे हैं। यमलोक में यमराज हैं, पाताल में वरुण हैं। ऋग्वेद में वरुण जल के देवता हैं, आकाश में पहुँचने से पहले वह धरती के नीचे ही पाताल के स्वामी हैं और यम के मित्र हैं। संभवतः वरुण और मित्र (सूर्य) का जोड़ा बाद का है, यम और वरुण का जोड़ा उससे पहले का है। अग्नि देव वरुण के पास पहुँचते हैं, जल में छिपते हैं और उनका यह छिपना यम ने देखा है। भारतीय कथा में अग्नि के पलायन का एक कारण है : सुमेरी बैबिलोनी कथाओं में तम्मुज़्-मर्दुक् की पाताल यात्रा का कोई कारण नहीं है। और भी; यदि अग्नि (जिनका एक रूप सूर्य है) तमसावृत जलराशि में कुछ समय के लिए लुप्त हो जाएँ, तो ऐसा लगेगा कि संसार अव्यक्त दशा में पहुँच गया है। तप (ऊष्मा) के प्रभाव से संसार व्यक्त हुआ, उस तत्व का लोप होने से फिर वही अप्रकेत सलिल, तमसावृत जलराशि रह जाएगी। अग्नि के पाताल प्रवेश से यह सब हो सकता है किंतु मर्दुक् की पाताल यात्रा से संसार अव्यक्त स्थिति में पहुँचता क्यों प्रतीत हो ?

रू ने नए वर्ष के बैबिलोनी उत्सव का वर्णन करते हुए लिखा है : "वर्ष में एक बार, वसंत ऋतु में सुमेर और अक्कद में सर्वत्र फैली हुई धार्मिकता बैबिलोन में मूर्तिमान होती थी। कई दिनों तक समग्र जनता का चिंतन राजधानी में होने वाली क्रियाओं पर केंद्रित होता था क्योंकि उनसे प्रत्येक मेसोपोटामियावासी को अपनी आशंकाओं और आकांक्षाओं का उत्तर मिलता था। ऐसी भावना थी कि प्रकृति में जो नवीनीकरण हो रहा है, उसमें समस्त मानवजाति भाग ले रही है कि अतीत निरस्त कर दिया गया है, कि ब्रह्मांड क्षण भर को अव्यक्त स्थिति में लौट गया है (that the cosmos momentarily reverted to chaos), कि देश का भविष्य देवों द्वारा घोषित किए जाने वाले निर्णय पर निर्भर है। जादुई गुणों वाले पेचीदा कर्मकांड से कम कोई भी चीज मानव जाति को संत्रस्त करने वाली भयावह अनिश्चयता का अंत और अपरिहार्य संकट का समाधान न कर सकती थी"।[60] प्रकृति के नवीनीकरण में मानव जाति भाग ले, यह बात समझ में आती है। अतीत निरस्त कर दिया गया है, यह भावना सहज

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और बोधगम्य है। किंतु भयावह अनिश्चियता से समस्त मानव जाति संत्रस्त हो उठे, यहाँ तक कि उसे लगे कि ब्रह्मांड क्षणभर को अव्यक्त स्थिति में लौट गया है —यह भावना समझ में नहीं आती।

दो बातें यहाँ विशेष ध्यान देने की हैं। पहली यह कि तम्मुज़् जब इच्छा करते हैं, तब वह पाताल से बाहर आ जाते हैं। वह पाताल जाते हैं स्वेच्छा से, वहाँ पीड़ित होते हैं स्वेच्छा से। चारों ओर उनके लिए जब विलाप शुरू होता है, तब हुक के अनुसार "यह विलाप पाताल में स्वयं तम्मुज़् की पुकार या 'शब्द' की प्रतिध्वनि प्रतीत होता है। 'शब्द' में जादुई शक्ति है और वह सर्वनाश तब तक बरपा करता जाएगा जब तक देवता स्वयं अपने 'शब्द' को वापस न बुला लें"।[61] दूसरी बात यह कि मर्दुक् बड़े शक्तिशाली देवता हैं और जैसा कि ब्रैन्डन ने कहा है, **एनुमा एलिश्** काव्य में कहीं यह संकेत नहीं है कि वह पराजित होंगे।[62] इस दूसरी बात से पहले वाली की पुष्टि होती है। शक्तिशाली देवता स्वेच्छा से ही पाताल-वास कर सकता है और जब उचित समझता है, तब स्वेच्छा से बाहर आ जाता है। पाताल जाना, फिर वहाँ से लौटना, ये दोनों कार्य स्वेच्छिक हैं; यह बात जितना ही अग्नि-कथा मे स्पष्ट है, उतना ही तम्मुज़्-मर्दुक् कथा में अस्पष्ट है। यदि वसंतोत्सव में, प्रकृति के नवीकरण के अवसर पर, अग्नि के पलायन की कथा, मानवजाति और विश्व के लिए उस पलायन के अपार दुष्परिणामों के साथ मिला दी जाए, तो उसका कुछ वैसा ही रूप होगा जैसा बैबिलोन के अकितु उत्सव का था।

तमसावृत जलराशि में निवास करते समय अग्निदेव को काफ़ी कष्ट उठाना पड़ा। "समस्त जगत् से छिपा हुआ, अनेक अत्यंत कठिन व्रतों कष्टों को करने वाले मुझ को देवों ने हव्यवाहन नियुक्त किया" (सातवलेकर; १०.५२.४); अग्निदेव ने बहुत कष्ट (बहुकृच्छ्रा) उठाए हैं, इसलिए हव्यवहन के कार्य में पुनः नियोजित होने पर वह विशेष हविभाग की माँग करते हैं : "हे देवो, मुझे प्रयाज और अनुयाज ये असाधारण भाग दो और हवि में से पुष्टि युक्त भाग भी मुझे दो। जल का सारभाग घृत औषधि से उत्पन्न प्रधान रूप भाग मुझे दो और मुझे अग्नि की दीर्घ आयु हो" (उप०, १०.५१.८)। इससे तुलनीय है सुमेरी-बैबिलोनी कथा में तम्मुज़् की माँग तथा उनसे मिलने वाले नरदेवों की यात्रा का उल्लेखः "तब पाताल से, लुप्त हुए तम्मुज़् से, एक पुकार आती है तुष्टि करने वाली भेंटों और धार्मिक कृत्य रूप भोज की तैयारी के लिए। भोज की तैयारी के बाद देवत्व प्राप्त राजाओं की औपचारिक शोभा यात्रा का वर्णन शुरू होता है"।[63] अग्नि को विशेष हविभाग चाहिए, तम्मुज़् को भेंट और भोज चाहिए। अग्नि को मनाने देवगण जाते हैं, तम्मुज़् को मनाने देवत्व प्राप्त राजा अपनी शोभा यात्रा निकालते हैं। मानना होगा, दोनों कथाओं में गहरी समानता है। वास्तव में मर्दुक् के पाताल प्रवेश का संसार की रचना से कोई संबंध नहीं है। मानव जीवन में अग्नि का महत्व घोषित करने वाला रूपक बैबिलोनी सृष्टिकथा में जोड़ दिया गया है।

बैबिलोनी वसंत उत्सव में सृष्टिकाव्य का पाठ किया जाता था, वसंत में प्रकृति के नवीकरण से इस सृष्टिकाव्य का प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किंतु इस नवीकरण से लोगों को जलप्रलय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के बाद सृष्टि के नए सिरे से रचे जाने की बात याद आ सकती है। बैविलोनी काव्य **एनुमा एलिश्** से पहले सृष्टिकथा अनेक रूपों में प्रचलित थी। जैसा कि हुक ने लिखा है, एक सुमेरी रूप में जलप्रलय का वर्णन है और वह सीधे सृष्टि कर्म से जुड़ा हुआ है। कथा के इस रूप से पता चलता है कि वसंत उत्सव में सृष्टि काव्य का पाठ क्यों होता था। काव्य पाठ एक धार्मिक कृत्य था, उस पाठ से सृष्टि रचना के कार्य को कल्पना में दोहराया जाता था। विश्वास यह था कि उस कार्य की आवृत्ति से संसार सुरक्षित रहेगा। सृष्टिरचना-कार्य काव्य-पाठ द्वारा कल्पना जगत् में ही न दोहराया जाता था, संभवतः उत्सव के आयोजक उसे ठोस दृश्य रूप भी देते थे। हुक ने सृष्टि काव्य के एक अन्य रूप का उल्लेख किया है : इसमें "गिलिम्म देव को धरती का सृजन करते बताया गया है। वह सरकंडों का पूला बाँधते हैं और उस पर मिट्टी डालते हैं। प्रारंभिक सुमेरी उपनिवेशियों ने नदी घाटी की जलप्लावित भूमि पर जिस तरह विकसित निवास संभव किए थे, स्पष्ट ही यह उसी का चित्र था। नए वर्ष के उत्सव के कर्मकांड में यह कथा भी शामिल है"।[64] गिलिम्म देव वास्तव में यहाँ पुरोहित का काम करते हैं। देवों ने धरती बनाई, उसकी अनुकृति है सरकंडों का पूला, जिस पर मिट्टी डाली गई है। पुरोहित वास्तविक सरकंडों का पूला बनाकर उस पर मिट्टी डालते होंगे, इस कृत्य का विवरण सुमेरी कथा के उक्त रूप में है। और यह कृत्य भारतीय यज्ञ की वेदी की निर्माण क्रिया से बहुत मिलता-जुलता है।

जब परमेश्वर ने देखा कि मनुष्यों के कारण पृथ्वी उपद्रवों से भर गई है, तब उन्होंने नूह से कहा : "मैं उनका पृथ्वी समेत नाश कर डालूँगा" (उत्पत्ति ६.८.१३) और "जितनी वस्तुएँ मैंने बनाई हैं सबको भूमि के ऊपर से मिटा दूँगा।" (उप०, ७.४)। यदि परमेश्वर पृथ्वी का नाश कर देते तो उसे फिर से बनाते। ऐसा उन्होंने नहीं किया। जलप्रलय में "जितने बड़े-बड़े पहाड़ थे, सब डूब गए" (30.7.19)। पृथ्वी का नाश हुआ तो इसी प्रकार। परमेश्वर ने मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों के अलावा वनस्पतियों का निर्माण भी किया था। उन्होंने कहा, पृथ्वी पर रहने वाले सभी जंतुओं के खाने के लिए "मैंने सब हरे-हरे छोटे पेड़ दिए हैं; और वैसा ही हो गया।" (उप०.१.३०)। विशेष रूप से उन्होंने "जितने बीजवाले छोटे-छोटे पेड़ सारी पृथ्वी के ऊपर हैं और जितने वृक्षों में बीजवाले फल होते हैं," वे सब मनुष्य को दिए। (३०.१.२६)। प्रलय से बचने के लिए परमेश्वर ने नूह से अपना परिवार तथा पशुओं, पक्षियों, सरीसृपों के नरमादा वाले जोड़े जहाज में साथ रखने को कहा। इस विवरण में वनस्पतियों का जिक्र नहीं है। मूलकथा में पृथ्वी का नवनिर्माण और वनस्पतियों की रक्षा, ये दोनों चीजें शामिल थीं।

नाट्यशास्त्र के आरंभ में कहा गया है कि नाटक का पाठ्य अंश **ऋग्वेद** से, गेय अंश **सामवेद** से, अभिनय **यजुर्वेद** से और रस **अथर्ववेद** से लिया गया है। (१.१७)। **यजुर्वेद** के अभिनय का विशेष संबंध पृथ्वी के नवनिर्माण और वनस्पतियों आदि की रक्षा से है। यज्ञ की वेदी बनाते समय ऋषि ईंट को संबोधित करते हुए कहते हैं : "हे इष्टके ! अंतरिक्ष लोक को धारण करने वाली, पूर्वादि दिशाओं को स्थिर करने वाली और सब प्राणियों की स्वामिनी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तुम को पृथ्वी के ऊपर स्थापन करता हूँ। तुम जलों की रस रूप तथा तरंग रूप हो। विश्वकर्मा तुम्हारा द्रष्टा है। अध्वर्यु अश्वनी कुमार तुम को इस स्थान पर स्थापित करें।'' (यजु०, सातवलेकर० १४.५)। धरती और आकाश के बीच में है अंतरिक्ष; उसे पृथ्वी धारण करती है। ईंट इस पृथ्वी का प्रतीक रूप है। पृथ्वी जल से बाहर आई है, वह स्वयं सजल है, तरंगरूप है। क्रमशः ठोस और स्थिर होती है। यह सारी प्रक्रिया अभिनय द्वारा प्रदर्शित की जाए तो विश्वास यह था कि धरती, अंतरिक्ष, आकाश, दिशाएँ सब यथास्थान स्थिर रहेंगे। इस मंत्र का सीधा संबंध **ऋग्वेद** के सृष्टिसूक्त (१०.१२६) से है। संभव है, अभिनय द्वारा सृष्टि क्रम का प्रदर्शन **यजुर्वेद** के पहले से चला आ रहा हो।

वेदी के निर्माण में ही सृष्टि की अनुकृति विद्यमान थी। युधिष्ठिर मीमांसक ने **वैदिक सिद्धांत मीमांसा** में लिखा है, जल से घिरी हुई पृथ्वी वराहमुख सी छोटी रह गई थी, ''अतएव वेदि निर्माण में वराह द्वारा खोदी गई बारीक मिट्टी बिछाई जाती है''।[65] यह सब **शतपथ ब्राह्मण** के समय होता था। आवश्यक नहीं कि **यजुर्वेद** के रचनाकाल में भी ऐसा होता रहा हो। **यजुर्वेद** और **शतपथ** में जो वस्तु सामान्य है, वह वेदि निर्माण में सृष्टि की अनुकृति है। **शतपथ** की भूमिका में सत्यप्रकाश ने लिखा है, अग्नि की वेदी ''कम से कम दृश्यमग्र विश्व का सूक्ष्म चित्र थी''।[66] **शतपथ** की रचना जलप्रलय के बाद हुई थी, **यजुर्वेद** में जलप्रलय की ओर कहीं कोई संकेत नहीं है। यज्ञ में सृष्टि के अनुकरण की प्रथा पुरानी थी; यज्ञ द्वारा सृष्टि का सारा व्यापार संचालित होता है, यह धारणा **ऋग्वेद** में प्रबल है। उसी के अनुरूप **यक्ष** में अभिनय द्वारा सृष्टि क्रम का प्रदर्शन है।

यजुर्वेद काल में इस प्रदर्शन को विस्तार दिया गया है। यज्ञ में मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पतियाँ, इन सब को एकत्र करना चाहिए अथवा इनके प्रतीक इकट्ठे करने चाहिए। इस प्रकार केवल पृथ्वी नहीं, उस पर रहने वाले सब प्राणियों की रक्षा हो सकेगी। **यजुर्वेद** के चौबीसवें अध्याय में बहुत से पशु-पक्षियों के नाम आए हैं ''घोड़ा, सींगोंवाला मेढ़ा और नील गाय ये तीनों प्रजापति के हैं।'' (यजु०, २४.१)। इसका आशय यह नहीं है कि इन्हें मारकर प्रजापति के भोजन के लिए उनके पास पहुँचा दिया जाए। वनस्पतियों के लिए उलूकों का आगमन होता है। (यजु० २४.२३)। इसका आशय यह नहीं है कि वनस्पितयों के खाने के लिए उल्लुओं को मारा जाता था। **वसन्ता कपिञ्ज आल भते** (२४.२०), इसका आशय यह नहीं है कि कपिंजल पक्षियों को वसंत ऋतु के भोजन के लिए मारा जाए। **ब्रह्मणे ब्राह्मणं** (यजु०, ३०.५) का आशय यह नहीं है कि ब्राह्मण के भोजन के लिए ब्राह्मण का वध किया जाए।

यज्ञ में जब पशुवध का चलन हुआ, तब पुरोहितों ने **यजुर्वेद** के उन मंत्रों को कर्मकांड से बाहर रखा जिनमें हिंस्र पशुओं का उल्लेख था। **सिंह हो मारुतः** (यजु०, २४.४०); मरुतों की प्रसन्नता के लिए एक तो सिंह को पकड़ना मुश्किल है, पकड़ भी लें तो उसका माँस खाएगा कौन ? **इमं मा हिंछंसीर्द्विपादं पशुछं**—इस दो पैरों वाले पशु को मत मारो। (यजु०, 13.47)। **पशुओं के लक्षण** बताते हुए अगले मंत्रों में **मा हिंछंसीः** शब्द दोहराए गए हैं। (यजु०,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१३.४८,४६,५०)। स्पष्ट आदेश है कि पशुओं का वध न किया जाए। माँसलोभी पुरोहितों ने जब पशु वध को यज्ञ का आवश्यक अंग बना दिया तब वे स्पष्ट ही वैदिक परंपरा का उल्लंघन कर रहे थे।

व्रीहि, यव, माष, तिल, मुद्ग, खल्वा, प्रियंगु, अणु (कनकी), श्यामक, नीवार, गोधूम, मसूर—ये सब **यज्ञेन कल्पताम्**, यज्ञ द्वारा निर्मित हों। (यजु०, 18-12)। धान्यों के नाम गिनाए गए हैं। इन सबके उत्पादन और रक्षण की कामना है। **सिकताश्च मे वनस्पतयीच** में (यजु० १८.१३), मेरे लिए बालू, मेरे लिए वनस्पतियाँ (यजु० १८.१३), **वीरुधश्च मे ओषधयश्च** में **कृष्टपच्याश्च मे ऽकृष्टपच्याश्च** में (यजु० १८.१४) मेरे लिए झाड़ियाँ और औषधिरूप वनस्पतियाँ, खेती से प्राप्त पौधे, खेती के बिना प्राप्त पौधे—जो कुछ संसार में है, वह मनुष्य के लिए है और यज्ञ द्वारा उसके उत्पादन और रक्षण की कामना है।

जलप्रलय के बाद यज्ञ और उससे संबद्ध अभिनय का महत्त्व अवश्य बढ़ा होगा। प्रलय कथा के साथ सृष्टि संबंधी नाट्य रूप भी पश्चिमी एशिया में पहुँचे होंगे। उनकी छाया नूह आदि की कथाओं में है। नाट्य रूपों के कुछ अंश ग्रहण किए गए, कुछ छोड़ दिए गए। पूरा विवरण **यजुर्वेद** में है। **यजुर्वेद** में **सरस्वती** की धारा क्षीण नहीं है।

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। (यजु०, ३४.११)। पाँच प्रवाहपूर्ण नदियाँ सरस्वती में आकर मिल जाती हैं। 1750 ई०पू० में सरस्वती सूखने लगी थी। उससे पहले **यजुर्वेद** की रचना हो चुकी थी ; कितना पहले, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परंतु जल-प्रलय से पहले अवश्य। इस वेद की रचना जलप्रलय से सृष्टि को बचाने के लिए नहीं की गई, उसमें प्रलय अथवा जल से मनुष्य के भयग्रस्त होने का कोई चिह्न नहीं है। यज्ञ द्वारा पृथ्वी और उस पर रहने वाले समस्त जीवों तथा वनस्पतियों की रक्षा होती है, इस सामान्य विश्वास की अभिव्यक्ति **यजुर्वेद** में है। इसी विश्वास के अनुरूप अनेक नाट्यों में अभिनय द्वारा सृष्टिक्रम प्रदर्शित किया जाता था। अभिनय करने वाले व्यक्ति **भरत** कहलाते थे।

जलप्रलय के बाद सरस्वती के तटवर्ती भरत नामक जन से जो लोग बचे, वे कुरु-पाँचालों में आ मिले। उनकी ख्याति से लाभ उठाकर कुरु भी स्वयं को भरत कहने लगे। **महाभारत** में कुरुओं को अनेक बार भरत या भारत कहा गया है, उसका यही कारण होगा। कुरु-पाँचाल क्षेत्र में भरत जन अपने साथ सृष्टि-संबंधी अभिनय कला भी ले गए होंगे। कुरु पाँचालों ने इन अभिनेताओं को भरत कहा, वैसे ही जैसे मगध के गायक मागध कहलाए। कालांतर में **ऋग्वेद** के रचनाकारों के वंशज शूद्र कहलाए। तब किसी विद्रोही भरत ने **नाट्यशास्त्र** रचा और घोषित किया :

न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजा परं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।। (१.१२)

शूद्र जातियों के लिए वेद का सुनना निषिद्ध है, इसलिए यह पाँचवाँ वेद सभी वर्णों के लिए रचा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह वैदिक संस्कृति के ह्रासकाल की बात है। यजुर्वेद में ऋषि की वाणी सभी वर्णों के लिए है :

यथेमांवाचं कल्याणीमवदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याछं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणायच। (२६.२)

कल्याण करने वाली वाणी सबके लिए है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, अपने विराने सभी जनों के लिए है।

संदर्भ

1. ब्रैंडन, क्रिएशन लेजेंड्स ऑफ़ द एन्शेंट निअर ईस्ट, पृ० 46.
2. उप०, पृ० 174.
3. उप०, पृ० 16.
4. उप०।
5. उप०, पृ० 167.
6. उप०, पृ० 169.
7. उप०, पृ० 154.
8. प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्टर्न टेक्स्ट्स, पृ० 3.
9. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 162.
10. फ्राऑगी, द रिग्वेद, पृ० 49.
11. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 163-64.
12. उप० पृ० 119-20.
13. उप० पृ० 102.
14. उप०।
15. उप०, पृ० 44.
16. उप०, पृ० 45
17. उप०, पृ० 44.
18. उप०, पृ० 45.
19. उप०, पृ० 171.
20. उप०।
21. उप०, पृ० 184.
22. रानडे, ए कंस्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ़ उपनिषदिक फ़िलौसॉफ़ी पृ० 60-61.
23. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 147-48.
24. उप.० पृ० 169.
25. उप०, पृ० 102.
26. उप०।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

27. उप०, पृ० 181-82.
28. उप०, पृ० 50.
29. उप० ।
30. उप ० ।
31. उप० पृ.० 51.
32. उप०, पृ० 46.
33. उप०, पृ० 47.
34. उप० ।
35. उप ०, पृ० 46.
36. उप०, पृ० 156.
37. उप०, पृ० 167.
38. उप०, पृ.० 196-97.
39. उप०, पृ० 197.
40. उप० ।
41. त्सेनर, जुर्वान, पृ० 19.
42. उप० ।
43. उप०, पृ० 23.
44. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 111.
45. उप० ।
46. उप०, पृ० 111-12.
47. उप० पृ० 112.
48. उप०, पृ० 113.
49. उप०, पृ० 87.
50. उप०, पृ० 143.
51. उप० ।
52. हुक, बैबिलोनिअन ऐंड ऐसीरिअन रिलीज़न, पृ. 58.
53. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 91.
54. उप० ।
55. उप०, पृ० 90.
56. उप०, पृ० 93.
57. उप०, पृ० 92.
58. उप० ।
59. हुक, पूर्वोल्लिखित, पृ० 21.
60. रू, एन्शेंट इराक़, पृ० 265.
61. हुक, पूर्वोल्लिखित, पृ० 28.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

62. ब्रैंडन, पूर्वोल्लिखित, पृ० 92.
63. हुक, पूर्वोल्लिखित, पृ० 29.
64. उप०, पृ० 58.
65. युधिष्ठिर मीमांसक, वैदिक सिद्धांत मीमांसा, पृ० 76.
66. गंगाप्रसाद उपाध्याय, शतपथ ब्राह्मणम्, खंड I. पृ० 137.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

8

अफ्रीकी एशियाई सभ्यता की प्रसार भूमि और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

क. भारत और सुमेर के भाषाई संबंध

कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री के तीसरे संस्करण (1986) में **आलब्राइट** और **लैम्बडिन** ने भाषा परिवारों के बारे में तीन महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं : (1) मनुष्य द्वारा भाषा का व्यवहार अत्यंत प्राचीन है। "यह बात दिन पर दिन अधिक संभव होती जान पड़ती है कि बोलचाल की भाषाएँ कम से कम एक लाख साल पहले खूब विकसित हो चुकी थीं।" (2) भाषाएँ अर्थात् उनका व्यवहार करने वाले समाज अत्यंत गतिशील रहे हैं और उनका क्षेत्र बड़े पैमाने पर घटता बढ़ता रहा है। "मानव भाषा अत्यंत प्राचीन तो है ही, आदिम भाषाओं की गतिशीलता के बारे में भी अतिशयोक्ति करना कठिन है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण है अमरीका में मनुष्यों का आकर बसना। इस काम को शुरू हुए बीस हज़ार साल से कम नहीं बीते...अभी हाल में सिर्फ दस हज़ार साल पहले अफ्रीकी एशियाई और हिंदी-हित्ती (Indo-Hittite) जैसे दूर-दूर तक फैलने वाले परिवार, हो सकता है, भौगोलिक प्रसार में अति सीमित रहे हों, उधर बास्क और दक्षिण कौकेशियाई जैसी अलग-थलग पड़ी भाषाएँ, हो सकता है,विस्तीर्ण क्षेत्रों में फैली रही हों।" (3) भाषा तत्व परिवर्तनशील हैं। "संरचनाएँ भी बहुत तेज़ी से बदल सकती हैं"।[1] इन तीन बातों से ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की सीमाओं को समझने में सहायता मिलती है। मानव समाज के इतिहास को देखते हुए भाषाओं का इतिहास अल्पकालिक है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान ने अपनी सामग्री लिखित भाषाओं से जुटाई है, इसलिए वह बोलचाल की भाषाओं की स्थिति को प्रकट नहीं कर पाता। भाषाओं के तुलनात्मक विवेचन में उनकी गतिशीलता और परिवर्तनशीलता पर कम ध्यान दिया जाता है।

बोलचाल के रूप में भाषाएँ अत्यंत प्राचीन हैं, लिखित रूप उन्हें बहुत बाद में मिला। उक्त लेखकों के अनुसार मानव जाति की प्राचीनतम ज्ञात लिखित भाषा सुमेरी है, इसके सबसे पुराने अभिलेख (इराक़ में प्राप्त) चतुर्थ सहस्राब्दी ई०पू० के अंतिम चरण के हैं। मिस्र की भाषा भी बहुत प्राचीन है किंतु सुमेरी ने प्रथम ज्ञात उच्च संस्कृति की भाषा होने के कारण कुल मिलाकर "पश्चिम को, मिस्र की अपेक्षा, कहीं अधिक प्रभावित किया"।[2] पश्चिम की एक भाषा है अँग्रेज़ी। उसमें कम से कम एक सुमेरी शब्द है ऐबिस् (abyss)। सुमेरियों के दिव्यलोक दिलमुन् की खोज करते हुए पुरातत्वज्ञ **बिबी** ने लिखा है, "अँग्रेज़ी भाषा में 'ऐबिस्' शायद सुमेरी से उधार लिया हुआ एकमात्र शब्द है। हज़ारों साल तक चालू रहने से उसका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अर्थ कुछ बदल गया है। मूलतः सुमेरी शब्द अब्ज़ का मतलब था पृथ्वी के नीचे का जल''।[3] यह शब्द सीधे सुमेरी से अँग्रेज़ी में नहीं आया। यूनानी भाषा में इसका रूप है **अबुस्सॉस्** (अतल, पाताल)। सुमेरी संस्कृति के उत्तराधिकारी बैबिलोन के लोग **अप्सू** रूप का व्यवहार करते थे। **प्रिचार्ड** के ग्रंथ में अक्कदी भाषा के जो अभिलेख अनुवादित हैं, उनमें सर्वत्र **अप्सू** रूप का व्यवहार हुआ है।[4] **रू** के अनुसार मेसोपोटामिया के लोग कल्पना करते थे कि धरती ''मीठे पानी के समुद्र, **अब्ज़ु** अथवा **अप्सू** पर तैर रही थी''।[5] **अब्ज़ु** और **अप्सू** दोनों एक ही शब्द के रूप हैं।

प्रिचार्ड के ग्रंथ में **रॉबर्ट ऐच० पूफ़ाइफ़र** ने एक अक्कदी अभिलेख के अनुवाद में **अप्सू** के साथ ऐबिस् शब्द का व्यवहार कर के मानों दोनों के संबंध की ओर संकेत किया है। स्वप्न में अशुर देव ने राजा अशुर बानीपाल के पितामह से कहा, ''You surpass in knowledge Apsu (the abyss) and all craftsmen (आप अप्सू तथा सभी शिल्पियों से ज्ञान में बढ़कर हो)''।[6] **बिबी** की पुस्तक 1969 में प्रकाशित हुई थी, **प्रिचार्ड** के ग्रंथ का पहला संस्करण 1950 में, दूसरा 1955 में, निकला था। **अब्ज़ु** अथवा **अप्सू** से **ऐबिस्** का संबंध जोड़ने का श्रेय बिबी से पहले **पूफ़ाइफ़र** को है।

मिस्र, सुमेर और भारत के लोग विश्वास करते थे कि यह चराचर संसार और समस्त देवी-देवता जल से उत्पन्न हुए हैं। **ऋग्वेद** में **अप्** का सप्तमी बहुवचन रूप है **अप्सु**। सुमेरी **अब्ज़ु** की अपेक्षा अक्कदी **अप्सू** मूल रूप **अप्सु** के अधिक निकट है, न केवल ध्वनि के विचार से, वरन अर्थ के विचार से भी। सुमेरी में **अब्ज़ु** जलराशि है, जल के देवता एन्‌कि उसमें निवास करते हैं। किंतु बैबिलोनी **अप्सू** स्वयं देवता हैं, वैदिक **अप्सु** की तरह, अंतर केवल यह है कि **अप्सू** एकवचन कर्ता रूप पुल्लिंग हैं, **अप्सू** बहुवचन अधिकरण रूप स्त्रीलिंग। **अपः** के साथ **अप्सु** रूप **ऋग्वेद** में अनेक बार दोहराया गया है : **अप्सु अन्तरमृ अप्सु भेषजमृ** (१.२३.१९), **अप्सु अग्ने सधिष्टव** (८.४३.९), **अप्सु त्वा मधुमत्तमम्** (९.३०.५), **अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह** (१०.१०४.२), **अप्सुअन्तः समुद्रे** (१०.१२५.७), **अप्सु मे सोमोअब्रवीत्** (१.२३.२०); पूरे शब्दबंध की आवृत्ति—**अप्सु मे सोमो अब्रवीत्** (१०.९.६)। ऐसे मंत्र और शब्दबंध बार-बार सुनकर कुछ लोगों ने **अप्सु** को, **अपः** से स्वतंत्र, एकवचन रूप मान लिया हो तो आश्चर्य नहीं। बिबी ने हज़ारों साल में **अब्ज़ु** के अर्थ बदलने की जो बात कही है, वह पूरी तरह सही नहीं है। **ऋग्वेद** में आदिम जलराशि के साथ अतल गहराई का भाव जुड़ा हुआ है : **अम्भः किमासीद्‌ गहनं गंभीरम्** (१०.१२९.१)। जो गहन गंभीर है, वही अतल या पाताल है, **ऐबिस्** है।

सुमेरी या अक्कदी में **अब्ज़ु**, **अप्सू** के आसपास कोई ऐसा शब्दमूल नहीं है जिससे इस रूप का निर्माण हुआ हो। शब्द मूल **अप्** तो भारतीय है। मानना चाहिए कि सुमेर और बैबिलोन को वह रूप भारत से प्राप्त हुआ है। लेकिन कैसे ? सुमेर और बैबिलोन दोनों के हड़प्पा राज्य से व्यापारिक संबंध थे, वहाँ हड़प्पाई व्यापारियों के उपनिवेश भी थे। इस संपर्क सूत्र के सहारे **अप्सु** रूप सुमेर पहुँचा हो, यह बहुत संभव है। उस स्थिति में मानना होगा कि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हड़प्पा राज्य में आर्य भाषाएँ बोली जाती थीं और वहाँ उपासना की वैदिक रीति का चलन था। हड़प्पा काल की समाप्ति के बाद यह शब्द सुमेर पहुँचा हो, यह असंभव है। तब तक सुमेरी संस्कृति का सूर्य अस्त हो चुका था। पर यह असंभव नहीं है कि हड़प्पा राज्य की स्थापना से पहले यह शब्द भारतीय प्रवासियों के साथ सुमेर पहुँचा हो।

क्रेमर का मत है कि सुमेर के मूल निवासियों, उबैदियों के अनेक शब्द सुमेरी भाषा में आ गए हैं। इनमें **उर्** और **निप्पुर** दो प्रसिद्ध नगरों के नाम हैं।[7] उर् और पुर् दोनों स्थानवाचक भारतीय शब्दमूल हैं। इनके सिवा **एन्गर** (किसान), **नन्गर्** (बढ़ई), **दम्गर्** (व्यापारी) जैसे शब्दों में **गर्** भारतीय **कर** का ही रूपांतर जान पड़ता है।[8] **आलब्राइट** और **लैम्बडिन** ने बताया है कि निप्पुर् का पूर्वरूप **निबुर्** था।[9] जैसे **पुर** के **पु** को सघोष रूप में ग्रहण किया गया, वैसे ही **कर** को **गर्** और **अप्सु** को **अब्जु** रूप में। इसलिए असंभव नहीं कि सुमेर में सुमेरियों से पहले, अतः भारत में हड़प्पा राज्य की स्थापना से पहले, **अप्सु** रूप भारतीय प्रवासियों के साथ सुमेर पहुँचा हो।

जलप्रलय कथा के प्रसंग में **दामोदर कोसंबी** ने लिखा है कि मत्स्य अवतार की धारणा भारत में सुमेर से आई और जैसे सुमेरी जलदेवता का प्रतीक बकरमच्छ जल के भीतर कोठे में सोता है, वैसे ही विष्णुनारायण जल पर सोते हैं। तथा—"नारायण नाम ही आर्येतर उद्भव का हो सकता है। नारा का अर्थ 'जल' किया गया है। संभवतः संस्कृत में यह उधार लिया हुआ शब्द है और द्रविड़ हो सकता है, असीरियन भी हो सकता है"।[10] असीरियन अर्थात सुमेरी संस्कृति के अवसान से बहुत बाद का, परंतु पड़ोस के ही क्षेत्र का। **कोसंबी** ने नारा के साथ लगे **यण** की व्याख्या नहीं की। पर उन्होंने बताया है कि बकरमच्छ जिस देवता का प्रतीक है, उसका नाम **एआ** अथवा **एन्कि** है। सुमेरी **एन्** का अर्थ है स्वामी। **एन्कि** का मूल अर्थ है पृथ्वी का स्वामी।[11] फिर इस शब्द का व्यवहार जल के स्वामी के लिए होने लगा। नारा—जल, एन्—स्वामी; द्रविड़-सुमेरी संयोग से जल के स्वामी बने नारायण ! संस्कृत में एक शब्द है **इन** जिसका-अर्थ है स्वामी। और यह शब्द सीधे **ऋग्वेद** में है : **इनो वाजानां पतिः इनः पुष्टीनां सखा** (१०.२६.७)। **इन ईश्वरः, इनः प्रभुः**— सायण। पूषा ईश्वर हैं, अन्न के स्वामी हैं, पूषा प्रभु हैं, सभी प्राणियों के मित्र हैं। अब नारायण का संबंध नारा से हो चाहे न हो, **इन** का संबंध सुमेरी **एन्** से अवश्य है। (संभव है मूल रूप **अन** हो)।

दिलचस्प बात है कि सुमेरी भाषा में संख्या शब्दों का निर्माण द्रविड़ पद्धति से होता है। पहले दहाई फिर इकाई : उ—दस; **उ-अश्** दस-एक (ग्यारह), **उ-मिन्** दस-दो (बारह)[12]—ट्वेंटीवन्, ट्वेंटीटू की तरह। जहाँ आर्य वहाँ द्रविड़, अत्यंत प्राचीनकाल से !

ख. अफ्रीकी एशियाई भाषा क्षेत्र और यूनान

इराक़ के उत्तरी भाग में हुर्री नाम की भाषा बोली जाती थी। दक्खिन-पश्चिमी एशिया में इसके अस्तित्व के प्रमाण 2400 ई०पू० से मिलते हैं। तुर्की और द्रविड़ भाषाओं की तरह वह पदार्थ-सूचक, क्रिया-सूचक शब्दों में पर-सर्ग जोड़कर अर्थविस्तार करती है। 15वीं-14वीं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शताब्दियों में हुर्रीजन पश्चिमी एशिथा में सीरिया और फ़िलिस्तीन तक फैलते चले जाते हैं। आलब्राइट और लैम्बडिन कहते हैं, "स्पष्ट ही पश्चिम और दक्खिन की ओर भारतीय आर्यों के अभियान में हुर्री लोग उनके साथ रहे"।[13] ये लेखक मानते हैं कि आर्यों ने हड़प्पा सभ्यता का नाश किया। उस समय आर्यों के साथ हुर्री थे या नहीं, उन्होंने नहीं बताया। भारत से निकलकर आर्य जब पश्चिमी एशिया की ओर बढ़े, तब उन्होंने किसी सभ्यता का नाश किया हो, इसका प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत उन्होंने मितन्नी और हित्ती जैसे समृद्ध राज्यों की स्थापना की। वे सीरिया और फ़िलिस्तीन पहुँचे और उनके साथ भिन्न भाषा प्रकृति वाले हुर्रीजन भी थे। प्राचीन जन अभियानों के बारे में इतिहासकार आमतौर से कल्पना कर लेते हैं कि एक जन अभियान में एक ही भाषा समुदाय के लोग थे। इसके विपरीत पुरातत्व से प्रमाणित हो रहा है कि पश्चिमी एशिया में आर्यों के साथ हुर्री भी थे।

पश्चिमी एशिया में, ईरानी भाषा के पड़ोस में, एलमी भाषा बोला जाती थी। इसके अस्तित्व का पता तीसरी सहस्राब्दी ई०पू० के आरंभ से होने लगता है। यह भी हुर्री की तरह परसर्ग संयोगी है। उक्त लेखक कहते हैं कि एलम के लोग उत्तरी पहाड़ों को छोड़कर इधर-उधर बढ़े हों, इसका प्रमाण नहीं है, पर "इसकी प्रबल संभावना है कि ब्राहूइ के द्वारा एलमी दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं से संबंधित है। ब्राहूइ अब भी बलूचिस्तान (दक्खिन पश्चिमी पाकिस्तान) में बोली जाती है। द्रविड़ भाषाओं की संरचना कुछ-कुछ एलमी की संरचना से मिलती है"।[14] भारत में आर्य, द्रविड़ पड़ोसी हैं: ईरान में द्रविड़ प्रकृति वाली एलमी भाषा बोलने वाले लोग ईरानियों के पड़ोसी हैं। स्वभावतः भाषाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। "ई०पू० पाँचवीं सदी के उत्तर भाग और चौथी सदी के पूर्व भाग तक वह (भाषा) उधार लिए हुए पुरानी फ़ारसी के शब्दों से भर गई थी"।[15] भारतीय आर्य भाषाओं में द्रविड़ शब्द भर गए, इस शोध परंपरा के विपरीत यहाँ द्रविड़ प्रकृति की भाषा में पुरानी फ़ारसी के शब्द भर गए।

भाषाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं, इसलिए किसी भाषा परिवार को नितांत पृथक इकाई मानकर उसका अध्ययन करने के बदले सांस्कृतिक रूप से सुसंबद्ध किसी विस्तृत क्षेत्र के समस्त भाषा समुदायों का एक साथ अध्ययन करना चाहिए। भारत को भाषाई क्षेत्र मानकर उसके अनेक भाषा परिवारों का एक साथ अध्ययन करने की आवश्यकता पर अनेक विद्वान बल दे चुके हैं। इससे आगे बढ़कर अफ्रीकी एशियाई सभ्यता की प्रसार भूमि के भाषा समुदायों का एक साथ अध्ययन करना आवश्यक है। **आलब्राइट** और **लैम्बडिन** ने अफ्रीकी-एशियाई परिवार की बात कही है पर इसमें उन्होंने केवल हामी (प्राचीन मिस्री) और सामी (अक्कदी आदि) भाषाओं को गिना है। उनका ध्यान अभी समान प्रकृति वाली भाषाओं के परिवार बनाने की ओर है। प्रश्न है भिन्न प्रकृति वाली भाषाओं के एक साथ अध्ययन का। इन लेखकों नें अफ्रीकी-एशियाई परिवार के बाद हिंदी-हित्ती परिवार का उल्लेख किया है। इंडोयूरोपियन समुदाय की चर्चा उन्होंने इसी परिवार के अंतर्गत की है, स्वतंत्र रूप से नहीं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लगभग एक शताब्दी के पुरातात्विक अनुसंधान से जो बात बहुत स्पष्ट हो गई है, वह यह कि भारत से लेकर मिस्र तक और मिस्र तथा भारत से लेकर यूनान तक,यह विशाल भूखंड एक अंतर्गठित, सुसंबद्ध सांस्कृतिक इकाई है। सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन यूनान इस अफ्रीकी-एशियाई भूखंड का अंग है, शेष यूरोप इस भूखंड से अलग है। यूनान में सभ्यता का विकास सबसे पहले क्रीट (क्रेते) द्वीप में हुआ। यह द्वीप ईजियन सागर में है, इसलिए विद्वान ईजियन क्षेत्र की बात करते हैं। इस क्षेत्र पर **सिंक्लेयर हुड** की पुस्तक की भूमिका में **स्टुआर्ट पिगॉट** ने यूनानी सभ्यता को अलग-थलग करके देखने का विरोध करते हुए लिखा है, "पिछले दिनों यूनान को लेकर विद्वानों में एक शोचनीय रुझान रहा है कि वे उसे प्राचीन संसार का अभिन्न अंग न मानकर उसे एक पृथक रहस्यात्मक इकाई मानते रहे हैं। इस (प्राचीन) संसार में मिस्र, पूर्वी भूमध्यसागर और लघु एशिया की सभ्यताएँ ही नहीं हैं वरन बाल्कन और कार्पेथियन क्षेत्रों से दक्खिनी रूस और कौकेशस तक फैले हुए बर्बर समाज भी हैं। जो पुरातत्वज्ञ इन विभिन्न जनों में किसी एक का विवेचन शेष को छोड़ते हुए करेगा, वह अपने लिए ख़तरा मोल लेगा"।[16] यूनान प्राचीन सभ्य संसार का अभिन्न अंग है, उस सभ्य संसार में मिस्र है, पूर्वी भूमध्यसागर है, लघु एशिया है, यूरोप नहीं है, न पूर्वी यूरोप है, न उत्तरी और पश्चिमी यूरोप है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान ने जो कमाल किया है, वह यह कि उसने सभ्य और बर्बर समाजों का भेद मिटाकर दोनों की भाषाओं को, सामान्य विशेषताओं के आधार पर, एक आदि इंडोयूरोपियन भाषा की पुत्रियाँ साबित कर दिया ! कम से कम ग्रीक तो सभ्य समाज की भाषा थी और जर्मन सभ्यता के विकास से कई हज़ार साल पहले थी, किंतु विद्वानों ने दोनों को आदि भाषा की पुत्रियाँ करार दिया। और अनेक जर्मन विद्वानों के लिए यह आदि भाषा थी इंडोजर्मैनिक !

पिगॉट ने पहले भारत और उत्तरी यूरोप को प्राचीन संसार से अलग रखा,किंतु आगे उन्होंने लिखा, "इसी तरह यूनानी भाषा की समस्या पश्चिम में केल्तिक से लेकर पूर्व में संस्कृत और तुखारी तक समूचे इंडोयूरोपियन भाषा परिवार की बृहत्तर समस्या का अंग मात्र है। प्राचीनकाल में यूनान और ईजियन क्षेत्र की यह मध्यस्थिति ही, न केवल भौगोलिक दृष्टि से, वरन सांस्कृतिक दृष्टि से भी, सभ्य और बर्बर जनों के बीच की स्थिति, उसे अनोखी और आकर्षक महत्ता प्रदान करती है"।[17] पश्चिम में केल्तिक से लेकर, आयरलैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स से लेकर जर्मनी समेत उत्तरी यूरोप, बर्बर समाजों का क्षेत्र, 'प्राचीन संसार' में सिमट आया। पश्चिम में केल्तिक से लेकर पूर्व में संस्कृत और तुखारी तक, उत्तर भारत और मध्य एशिया, उसी 'प्राचीन संसार' के अंतर्गत हैं। संस्कृत यूनानी भाषा की तरह सभ्यजनों की भाषा है या जर्मन की तरह बर्बर जनों की, पिगॉट ने स्पष्ट नहीं किया। पर उन्होंने सभ्य देशों में मिस्र का नाम लिया है, सुमेर और बैबिलोन को छोड़ दिया है। अन्यत्र उन्होंने हड़प्पा सभ्यता का विवेचन विस्तार से किया है। उसका उल्लेख भी उन्होंने नहीं किया। ऋग्वेद को अलग रखें तो भी हड़प्पा, सुमेर और मिस्र, ये प्राचीन सभ्यता के तीन प्रधान केंद्र हैं और परस्पर संबद्ध हैं, इस तथ्य से कौन इनकार कर सकता है ?

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भाषा का विकास उसका व्यवहार करने वाले समाज से अलग नहीं होता। जिन समाजों में सभ्यता का विकास हुआ, उनमें भाषा का विकास भी पहले हुआ। जो समाज बर्बर अवस्था में थे, उनकी भाषाएँ उनकी सीमित आवश्यकताएँ पूरी करने भर को विकसित थीं पर उनमें और सभ्य समाजों की भाषाओं में ज़मीन आसमान का फ़र्क था। विकास प्रक्रिया की यह भिन्नता ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में प्रतिबिंबित नहीं होती। उसका प्रतिबिंबित होना कठिन भी है क्योंकि हर शब्द का, भाषा संरचना के हर घटक का, इतिहास है। इस इतिहास की जानकारी चाहने पर भी हमेशा प्राप्त नहीं होती। जहाँ प्राप्त होती है, वहाँ पुरानी आदत से मजबूर विद्वान उसकी अनदेखी कर जाते हैं।

पिगॉट ने हड़प्पा सभ्यता का विवेचन करते हुए लिखा है कि पंद्रहवीं सदी में मितन्नी लोग मिस्र को रथों का निर्यात करने लगे थे।[18] सुमेरियों के रथ में गधे जोते जाते थे, उसके पहिये ठस होते थे।[19] इनकी जगह हित्ती-मितन्नी राज्यों के रथ में घोड़े जोते जाते थे और पहिये अरायुक्त होते थे। लघु एशिया में इन रथों का व्यवहार दूसरी सहस्राब्दी ई०पू० के आरंभ में होता था। उसके बाद इनका चलन ईजियन क्षेत्र में हुआ। मध्य और उत्तरी यूरोप में ये रथ पाँचवी सदी ई०पू० में पहुँचे।[20] इस तरह लघु एशिया से सभ्यता के एक उपकरण, अरायुक्त रथ के उत्तरी यूरोप पहुँचने में हज़ार साल का समय लगा। जाहिर है, रथ संबंधी शब्द भी इसी तरह दीर्घकालीन यात्रा के बाद एशिया से यूरोप पहुँचे होंगे। किंतु पिगॉट जहाँ भाषा-विज्ञान का सहारा लेते हैं, वहाँ दीर्घकालीन यात्रा एक छलाँग में समाप्त हो जाती है। लैटिन **रोत**, केल्त **रोथ**, जर्मन **रद्**, लिथुआनियाई **रतस्**, संस्कृत **रथ**, देशकाल की सीमाएँ लाँघकर एक साथ प्रकट हो जाते हैं।[21] भारतीय शब्द **रथ** की जो निर्णायक भूमिका है, वह यूरोपियन प्रतिरूपों में खो जाती है। भारत से जर्मनी तक **रथ** की यात्रा का विवरण देने के बदले **रथ, रद्, रोत** के किसी आदि रूप की कल्पना करना सरल है।

ग. यूनानी शब्दों के भारतीय व्युत्पत्तिसूत्र

भाषाविज्ञान के लिए, पुरातात्विक अनुसंधान से, यूनान के बारे में जो महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित हुआ है, वह यह कि पाषाण युग से लेकर सभ्यता के विकास काल तक एशिया के लोग वहाँ जा-जाकर बसते रहे हैं। **सिनूक्लेयर हुड** का मत है कि पत्थर के औजार इस्तेमाल करने वाले कृषिजीवी लोग सातवीं सहस्राब्दी ई०पू० में ईजियन तट-भूमि पर पहुँचे थे। "वे संभवतः अनातोलिया अथवा दक्खिनी अनातोलिया के किनारे-किनारे सिलीसिया से, अथवा और आगे सीरिया और फ़िलिस्तीन से आए थे"।[22] खेती-बाड़ी से जीविका के साधन जुटाने वालों का यह नवपाषाण युग तीन हज़ार साल तक चला। इस दीर्घ अवधि में एशिया की भाषाओं ने वहाँ अवश्य अपनी जड़ जमा ली होगी। उसके बाद आया काँस्य उपकरणों की सभ्यता का युग। हुड का मत है कि इस सभ्यता को जन्म देने वाले लोग मिस्र या फ़िलिस्तीन से आए थे।[23] खास बात यह कि ये नवागंतुक पाषाणयुगीन आदिवासियों में घुल-मिल गए। क्रीट द्वीप की प्राचीन कला के विवेचक **रैनौल्ड हिगिन्स** ने लिखा है, "2800 ई०पू० के लगभग जो प्रवासी लघु एशिया से आए और क्रीट के नवपाषाणयुगीन निवासियों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से घुल-मिल गए, वे वहाँ सभ्यता ले गए"।[24] 2000 ई०पू० के आसपास क्रीट में भव्य प्रासादों का निर्माण हुआ। "इन प्रासादों और इस सभ्यता का उद्‌भव स्पष्ट ही पश्चिमी एशिया और मिस्र से सघन होते हुए संपर्क का परिणाम था"।[25]

यूनानी परंपरा के अनुसार क्रीट में क्रोसोस नगर के प्रथम राजा **मिनोस्** थे। उन्हीं के नाम पर क्रीट की इस प्राचीन सभ्यता को मिनोअन सभ्यता कहा गया है। यह सभ्यता क्रीट द्वीप में सीमित न रहकर सारे ईजियन क्षेत्र में फैल गई। **हिगिन्स** के अनुसार क्रीट के अलावा जो लोग अन्य द्वीपों में, तथा यूनान की मुख्य भूमि में, बस गए, वे भी 2800 ई०पू० के आसपास लघु एशिया से आए थे।[26] जैसे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में अनेक क्षेत्रों के भाषा तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन होता है, वैसे ही पुरातात्विक इतिहास में अनेक क्षेत्रों के प्राचीन तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन होता है। इस तरह के अध्ययन से विशेषज्ञ लघु एशिया के प्रवासियों को मिनोअन सभ्यता का जनक मानते हैं। फिर एक ही क्षेत्र के पुरातत्वों की तुलना से वे विकासक्रम निर्धारित करते हैं, बताते हैं पुरानी सभ्यता गई, उसकी जगह नई सभ्यता आई। किसी एक क्षेत्र का भाषाई विकास समझने के लिए ऐसी ही पद्धति अपनाई जाती है। ई॰पू॰ सोलहवीं सदी मिनोअन सभ्यता का समृद्धिकाल है। इसके बाद पंद्रहवीं सदी ई॰पू॰ में यूनान की मुख्य भूमि पर मिकिनी नगर नई सभ्यता का केंद्र बना। 1400 से 1200 ई॰पू॰ तक इस मिकिनीअन सभ्यता का समृद्धिकाल है। **हुड** का विचार है कि संभव है, मिकिनी के शासक अनातोलिया के उन हमलावरों की संतान हों जिन्होंने यूनान की मुख्य भूमि को आक्रांत किया था।[27] एक सिद्धांत यह है कि हुक्सोस आक्रमण से मिस्र की रक्षा करने यूनान के लोग गए थे; उन्होंने लौटकर मिकिनी राज्य बसाया। अन्य सिद्धांत यह है कि मिस्र से "जो हुक्सोस निकाले गए थे, उन्हीं के अवशेष ये मिकिनी के शासक थे।" **हुड** को आपत्ति है कि यदि मिस्र से इन शासकों का संबंध इतना घनिष्ठ था तो उनके समाधिगृहों में मिस्र की चीज़ें इतनी कम क्यों हैं।[28] इस आपत्ति का उत्तर यह है कि हुक्सोस जन मिस्र के निवासी नहीं थे, उन्होंने मिस्र को अपनी सभ्यता से प्रभावित किया था। **टॉयनबी** ने हुक्सोस को आर्य कहा है।[29] निस्संदेह **मिकिनीअन** सभ्यता पर कहीं-कहीं भारतीयता की छाप देखकर ही कुछ लोगों ने उसे भारतीय माना था। **हिगिन्स** ने अपनी पुस्तक की भूमिका में उन व्याख्याताओं का ज़िक्र किया है जो इस सभ्यता को केल्त, शक आदि के अलावा "भारतीय तक (even Indian)" मान लेते हैं।[30] अर्थात् सब से निराधार कल्पना इस सभ्यता को भारतीय मान लेने की है ! यदि हुक्सोस आर्य थे और उनके अवशेष मिकिनी के शासक बने, तो वह कल्पना एकदम निराधार नहीं कही जा सकती। मुख्य बात यह कि मिनोअन और मिकीनिअन सभ्यताओं की स्थापना एशिया के लोगों ने की थी। यूनान ने जब सभ्यता के युग में प्रवेश किया, तब वह प्राचीनतर अफ्रीकी एशियाई सभ्यता की प्रसार भूमि का अंग बना।

सोलहवीं सदी ई०पू० में मिनोअन सभ्यता सारे ईजियन क्षेत्र पर छायी हुई थी। ई॰पू॰ चौदहवीं-तेरहवीं सदियों में मिकिनीअन सभ्यता और भी दूर-दूर तक फैल गई। उसकी परिधि में मख़दूनिया, थ्रास (थ्राके), साइप्रस (क्रुप्रुस), सिसिली और दक्खिनी इटली भी सिमट आए।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"एक विशाल भूखंड में संस्कृति बहुत हद तक एकरूप थी"।[31] क्या यह तथ्य पूर्वी भूमध्यसागर के इस क्षेत्र में 'इंडोयूरोपियन' भाषाओं के प्रसार की व्याख्या करने के लिए काफ़ी नहीं है ? यूनानी और लैटिन समुदायों की जो भाषाएँ यूरोप में फैलीं, उनका क्षेत्र यही है। उन्हें वहाँ एशिया के प्रवासी अपने साथ ले गए। वे 'इंडोयूरोपियन' बाद को हैं, 'इंडोशियन' पहले हैं। एशिया की भाषाओं में उनकी घनिष्ठ समानता भारतीय आर्य भाषाओं से है, अतः यह मानने का पर्याप्त आधार है कि **आर्य भाषाएँ बोलने वाले भारतीय जन मिनोअन-मिकीनिअन राज्यों के संस्थापक वैसे ही थे, जैसे वे मितन्नी-हित्ती राज्यों के संस्थापक थे।**

एक आश्चर्यजनक स्थिति यह है कि मिस्र के प्रथम राजा **मेनेस्** थे, क्रीट के प्रथम राजा **मिनोस्** थे, भारत में यज्ञसंस्कृति के आदि संस्थापक **मनु** थे। इन नामों में ध्वनिगत समानता आकस्मिक नहीं है। तीनों देशों में मनु-मेनेस्-मिनोस् सभ्यता के आदि प्रतिष्ठाता हैं। भारत में ही अनेक मनु हुए हैं, प्रवासी आर्य शासक अपने साथ यह नाम बाहर ले गए हों, यह बिल्कुल संभव है। विख्यात है कि मिस्र के आदि शासक बाहर से आए थे। यूनान की एक पुराण कथा में क्रीट के नरमांसभक्षी दैत्य **मिनोतउरॉस्** का वर्णन किया जाता है। वह आधा मनुष्य है, आधा वृषभ है। क्रीट के शिल्प में शक्तिशाली वृषभ के दर्शन बारबार होते हैं। सामने से आक्रमण करते हुए वृषभ के सींग पकड़कर पुरुष खिलाड़ी उस पर से छलाँग मारकर निकल जाता है। शिल्प कृतियों में जहाँ वृषभ के ऊपर छलाँग मारते उसे दिखाया गया है, वहाँ दो जीव मिलकर एक ही जीव नरवृषभ जैसे प्रतीत होते हैं। इस क्रिया में खिलाड़ी को वृभष द्वारा आहत होता हुआ भी अंकित किया गया। दैत्य की नरमांसभक्षी प्रसिद्धि का यह कारण हो सकता है। संभव है, वृषभ के ऊपर से छलाँग मारना क्रीड़ा मात्र न हो वरन् धार्मिक अनुष्ठान भी हो।

मिनोतउरॉस् शब्द युग्म में स्पष्ट ही **मिनो** मनुष्य वाचक है किंतु यूनानी भाषा में **मिनोस्** केवल क्रीट के राजा हैं, उनके नाम से मनुष्य का बोध नहीं होता। केवल भारत में **मनु** शब्द शासक और मनुष्य दोनों का सूचक है। जब **मिनोतउरॉस** शब्दयुग्म गढ़ा गया था, तब **मिनोस्** दोनों अर्थों का सूचक रहा होगा। आगे चलकर **मिनोस्** की प्रसिद्धि केवल राजा के रूप में रह गई। तब यह कथा गढ़ी गई कि उनकी रानी ने ऐसे दैत्य को जन्म दिया जो आधा नर था, आधा वृषभ था !

जैसे क्रीट के राजा **मिनोस्** थे, वैसे ही मुख्य यूनानी भूखंड में अगर्रेस् के राजा **दनऑस्** थे। जैसे **मनु** की संतान **मनु** या **मानव** हैं, वैसे ही **दनऑस्** की संतान **दनऑइ** हैं। **होमर** यूनानियों के लिए अक्सर दनइदइ शब्द का व्यवहार करते हैं। भारतीय भाषाओं में **मनुज** और **दनुज**, **मानव** और **दानव** के जोड़े प्रसिद्ध हैं। ऐसे जोड़े यूनानी भाषा में नहीं हैं। यूनानियों के लिए **दनऑइ** शब्द का व्यवहार समाप्त हो गया। **दनु** शब्द **ऋग्वेद** में नदी वाचक है। वृत्र की माँ का नाम भी **दानु** है। वृत्र को **दानु** कहा गया है और इंद्र के अनेक शत्रु **दानव** हैं।[32] पौराणिक परंपरा में दनु दक्ष की पुत्री थीं और उनकी संतान दानव थे।[33] संभव है नदीतटवासी जनों के एक समुदाय को जैसे **नाग** कहा गया, वैसे ही अन्य समुदाय को **दानु** और **दानव**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कहा गया हो। यूनानी **दनऑस्, दनऑइ** आदि की व्युत्पत्ति के सूत्र यूनान में नहीं, भारत में मिलते हैं।

यूनानियों के लिए हमारे यहाँ **यवन** शब्द का चलन रहा है। यूनान के गीति युग पर अपनी पुस्तक में **ऐन्ड्रीव बर्न** ने यवन का संबंध **इअओनॅस्** से जोड़ा है, बताया है कि इस शब्द का व्यवहार **होमर** ने किया है, बाद में यह संक्षिप्त होकर **इऑनॅस्** हो गया।[34] **होमर** का काव्य **इऑनिक** भाषा में है: लघु एशिया में यूनानियों ने दार्शनिक चिंतन इस भाषा में आरंभ किया। संभवतः लघु एशिया से एक जनसमुदाय यह नाम अपने साथ यूनान ले गया, वहाँ एक जनपद का नाम **इओनिआ** पड़ा। **बर्न** से बहुत पहले **नेयर अयम्स** ने अपने कोश में **यवन** शब्द का संबंध उस जनपद के निवासियों से जोड़ा था। फिर यह शब्द सभी यूनानियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। **इऑनॅस्** , **इअओनॅस्** आदि के व्युत्पत्तिसूत्र यूनान में नहीं, भारत में है। यवन का अर्थ है तेज दौड़ने वाला। दौड़ना यूनानियों के व्यायाम का मुख्य अंग रहा है। उनकी मरथोन दौड़ अब तक प्रसिद्ध है। भारतवासियों ने उन्हें **यवन** नाम दिया। यूनानी भाषा में **य्** नहीं है। **यवन** का रूपांतर है **इऑनॅस्**।

घ. इंडोयूरोपियन भाषा परिवार की एशियाई पृष्ठभूमि

2800 ई०पू० से लेकर 1200 ई०पू० के बीच में जो कालखंड है, उसमें दक्खिनी यूरोप की 'इंडोयूरोपियन' भाषाओं का निर्माण होना चाहिए। इस निर्माण का पहला और सबसे महत्वपूर्ण केंद्र होगा क्रीट। यहाँ से मिनोअन सभ्यता का प्रसार यूनान के द्वीपों तथा मूल भूमिखंड में हुआ। सभ्यता के साथ उसके प्रसार के माध्यम के रूप में क्रीट की भाषाओं का प्रसार भी हुआ हो, यह स्वाभाविक है। 1500 ई०पू० के आसपास एक नई सभ्यता का प्रसार हुआ। यह मिनोअन सभ्यता से प्रभावित थी, फिर भी उससे भिन्न थी। दोनों सभ्यताओं का निर्माण और प्रसार अफ्रीकी एशियाई प्रवासियों ने किया, यह तथ्य अधिकांश पुरातत्वज्ञ स्वीकार करते हैं। अतः मानना होगा, मिनोअन-मिकिनीअन सभ्यताओं की संवाहक भाषाएँ अफ्रीकी एशियाई मूल की थीं। अफ्रीकी एशियाई भाषाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय आर्य भाषाओं की थी। इसीलिए ग्रीक और लैटिन को इंडोयूरोपियन कहा जाता है। इनमें और संस्कृत में जो भाषा तत्व सामान्य हैं उनसे 'यूरोप' को कुछ लेना-देना नहीं है। उन्हें एशियाई प्रवासी अपने साथ यूरोप ले गए थे। यूरोप में जो इंडोयूरोपियन भाषाओं का क्षेत्र है, वह वास्तव में बृहत्तर भारतीय भाषा क्षेत्र का विस्तार है। मिकिनीअन सभ्यता का प्रसार सिसिली और दक्खिनी इटली में हुआ। इस प्रसारकाल में, ई॰पू॰ चौदहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में, लैटिन और उससे संबद्ध प्राचीन भाषाओं का निर्माण हुआ होगा। जैसे क्रीट की नवपाषाण संस्कृति के निर्माताओं में मिनोअन सभ्यता के संस्थापक घुलमिल गए थे, वैसे ही इटली की मूल भाषाओं में मिकिनीअन सभ्यता के प्रसारक भाषा तत्व घुलमिल गए होंगे। इस प्रक्रिया का स्पष्ट पुरातात्विक आधार है, किसी आदि इंडोयूरोपियन भाषा के पूरब या पश्चिम में पहुँचने और विभिन्न शाखाओं में बँट जाने का कोई पुरातात्विक आधार नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रीट में एक प्राचीन लिपि का व्यवहार होता था जिसे लीनिअर-ए नाम दिया गया है। यह लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी। फिर इसी के आधार पर लीनिअर-बी का विकास हुआ। इसका व्यवहार मिकीनिअन शासनकाल में हुआ। अधिकांश विद्वानों का मत है, इस लिपि का व्यवहार ग्रीक भाषा के लिए किया गया था। परंतु कुछ अनुसंधानकर्ता इस मत का विरोध भी करते हैं। क्रीट में लीनिअर-ए से पहले चित्रलिपि का व्यवहार होता था। वह भी पढ़ी नहीं गई। सुमेर में कीलाक्षरी से पहले जिस चित्रलिपि का व्यवहार होता था, वह भी नहीं पढ़ी गई। हड़प्पा की लिपि के लिए भी यही कहा जा सकता है;अथवा यह कि उसे पढ़ने का तरीका अभी सर्वमान्य नहीं हुआ। इस तरह भाषाविज्ञान की बहुत सी आधारभूत सामग्री अभी प्राचीन लिपियों के तिलिस्म में बंद है।

लीनिअर-बी को पढ़ने का दावा 1952 में इंग्लैंड के विद्वान माइकेल वेन्ट्रिस ने किया था। इनके सहयोगी जॉन चैडविक ने लीनिअर-बी के बारे में एक बहुत दिलचस्प बात कही है। सामी-हामी लिपियों से भिन्न, ग्रीक और रोमन लिपियों से भिन्न, किंतु भारतीय लिपियों के अनुरूप, लीनियर-बी के चिह्न पूरे वर्ण के द्योतक हैं, स्वरविहीन व्यंजनों के नहीं। इससे स्वरचिह्नों को पहचानने में सहायता मिली। वे शब्द के आरंभ में तो अक्सर दिखाई देते थे, बीच में बहुत कम थे क्योंकि व्यंजन चिह्न में स्वर शामिल था। जब किसी व्यंजन को अगले व्यंजन से जोड़ना हो, तो दोनों के बीच लिपिकार एक अतिरिक्त स्वर का निवेश कर देते थे।[35] चैडविक ने एक विशेषता और बताई है क चिह्न से ख, ग, त से थ, द और प से फ और ब का काम भी लिया जाता था।[36] तमिल लिपि की तरह ! उल्लेखनीय है कि चैडविक की तालिका में घ, ध, भ नहीं हैं। वर्णलिपि का व्यवहार साइप्रस द्वीप में भी होता था और पुरातत्वज्ञों का मत है कि यहाँ ई०पू० चौदहवीं-तेरहवीं शताब्दियों में मिकिनीअन लोगों ने अपना उपनिवेश बनाया था।[37] सुमेर के बाद बैबिलोन ने कीलाक्षरी लिपि अपनाई और पश्चिमी एशिया में दूर-दूर तक इसका उपयोग होने लगा।

चिन्मय दत्त ने बैबिलोन की अक्कदी भाषा के लिए लिखा है कि उसके लिए कीलाक्षरी चिह्नों का व्यवहार वर्गों और शब्दों के लिए होता था। यह स्थिति पुरानी फ़ारसी के लिए काम आने वाली कीलाक्षरी की थी। "पुरानी फ़ारसी के अक्षरों का क्रम वही है जो समान अक्षरों का संस्कृत में है यथा : अ, इ, उ, क, कु, ख, ग, गु..."।[38] पहले स्वर, फिर कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, पवर्ग और अंतःस्थ। इस वर्णमाला में स्वरों और व्यंजनों के विभाग स्पष्ट हैं। पहले शुद्ध स्वर, फिर स्वरांत व्यंजन। और ये व्यंजन एक क्रम से हैं : कंठ से चले, तालू और दाँतों के क्षेत्रों से होते हुए ओठों तक आ पहुँचे। स्वरों और व्यंजनों के बीच की ध्वनियाँ—अंतःस्थ, सबके अंत में ! पुरानी फ़ारसी के लिए इस वर्णमाला का चलन 600 ई०पू० से पहले आरंभ हो गया था।[39] प्राचीनकाल में भाषा की ध्वनियों के अध्ययन और वर्गीकरण के प्रमाण केवल भारत में हैं। अतः पुरानी फ़ारसी के लिए प्रयुक्त कीलाक्षरी चिह्नों का वर्गीकरण भारतीय प्रभाव का प्रतिफलन ही हो सकता है। भाषा को लिखित रूप देने, उसका मानक रूप स्थिर करने, दूर-दूर तक उसके व्यवहार को सुगम बनाने का अनिवार्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साधन है लिपि। स्वरों को व्यंजनों से अलग करते हुए उनके लिए वर्णचिह्न निर्धारित करना, इन वर्णों के विभाग उच्चावरण स्थानों के क्रमानुसार निश्चित करना भाषाविज्ञान की बहुत बड़ी सिद्धि है। इस सिद्धि से ईरान, तिब्बत तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के लोगों ने लाभ उठाया है।

यूनान की लीनिअर-बी लिपि में वर्ण पद्धति का अनुसरण, बैबिलोन में कीलाक्षरी चिह्नों का वर्णों-शब्दों के लिए व्यवहार, पुरानी फ़ारसी में वर्णक्रम संस्कृत के अनुरूप—यह सब एक ही ध्वनि-शास्त्र के विकास का चमत्कार है। यूनान में जब तक फ़िनीशिया की लिपि नहीं अपनाई गई, तब तक वहाँ की भाषाओं के विकास में वर्ण लिपि की भूमिका महत्वपूर्ण थी, यह मानना चाहिए। 1100 ई०पू० के आसपास बर्बर आक्रमणकारियों ने मिकिनीअन सभ्यता का नाश कर दिया। तीन सौ साल तक यूनान में अंधकार युग रहा। फिर आठवीं सदी के आसपास नवजागरण आरंभ हुआ। इस नवजागरण के वैतालिक थे **होमर**। **होमर** के महाकाव्यों में मिकीनिअन सभ्यता का चित्रण है, यह सर्वमान्य तथ्य है। स्वयं **होमर** अभी अंधकार युग में थे। मिकिनीअन सभ्यता लोक स्मृति में बनी हुई थी। **हिगिन्स** ने अच्छा कहा है कि **होमर** के नाम से प्रसिद्ध काव्यों का "एक चरण काँस्य युग में है, दूसरा अंधकार युग में"।[40] अब असली ग्रीक चाहे मिकिनीअन सभ्यता के विनाशक हों चाहे उसके संस्थापक, तीन सौ साल में पहले की हज़ार साल की स्थापित भाषाएँ नष्ट न हो गई होंगी।

यूनानी भाषा में संस्कृत से मिलते-जुलते कुछ ऐसे शब्द हैं जिन्हें बर्बर हमलावर अपने साथ बाहर से ला ही न सकते थे। संस्कृत—**तक्ष्** (लकड़ी की चीज़ बनान), ग्रीक—**तॅख्ने** (कला), सं०—अर्घ (मूल्य), ग्री०—**अल्फनो** (अर्जित करना), सं० क्री (खरीदना), ग्री०—**ऑप्रिअतॉ** (खरीद), सं०-पुर (नगर), ग्री०—**पॉलिस्**। कुछ शब्दों पर भारतीय आचार की स्पष्ट छाप हैः सं०-**यज्ञ**, ग्री०-**हगिऑस्**, **हग्नॉस्** (पवित्र), सं०—स्फ्य (यज्ञकर्म में प्रयुक्त लकड़ी का उपकरण), ग्री०—**स्फ़ेन्** (नुकीला लकड़ी का उपकरण)। ये सारे प्रतिरूप संस्कृत पर **बरो** की पुस्तक में दिए हुए हैं।[41] ये शब्द 1100 ई०पू० के विध्वंसकांड से पहले यूनान पहुँचे थे, यह निश्चित है।

यूनान में अंधकार युग आया तो "भित्ति चित्रकला, मुद्राओं पर नक्काशी आदि के साथ लेखन के ज्ञान का लोप हो गया। केवल तेज घूमने वाले चक्के पर मिट्टी के बर्तन बनाने का कौशल जीवित रहा"।[42] हाथी दाँत से तरह-तरह की सुंदर चीज़ें क्रीट में बनाई जाती थीं। जाक्रो नामक स्थान के प्रासाद में कुछ पूरे हाथी दाँत मिले थे।[43] क्रोसोस में हाथी दाँत के कारीगरों की एक दुकान थी।[44] हाथी दाँत का बढ़िया काम मोहेंजोदड़ो में भी होता था। सुमेर के लोग भारत को दिलमुन् कहते थे, इसके समर्थन में **क्रैमर** ने उर के उन प्राचीन अभिलेखों का ज़िक्र किया है जिनमें दिलमुन् से उर को हाथी दाँत और उसकी बनी चीज़ों के आयात की बात कही गई है।[45] **हुड** का विचार है, क्रीट में हाथी दाँत सीरिया से आते थे।।[46] पर यह संभव है, सीरिया अथवा बैबिलोन ने हाथी दाँत वाली कारीगरी भारत से सीखी हो। यूनानी भाषा में हाथी और हाथी दाँत के लिए जो शब्द है, वह भारतीय उद्भव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का है और उस पर सामी भाषाओं की छाप है। **बिबी** ने लिखा था कि अँग्रेज़ी में **ऐबिस्** शब्द सुमेरी से आया है, वैसे ही वह कह सकते हैं, अँग्रेज़ी का **एलिफ़ैंट** बैबिलोनी से आया है।

ग्रीक **ॲलॅफस्**—हाथी या हाथी का दाँत। यहाँ मूल शब्द **ॲफस्** संस्कृत **इभ** का प्रतिरूप है। उसके पहले **ॲल्** सामी भाषाओं का संकेतक है, अँग्रेज़ी के डेफिनिट आर्टिकल **दि** की तरह अरबी के **अल्** (**अल् हिलाल, अल् फतह**) की तरह। **मोनियर विलियम्स** ने अपने कोश में **इभ** के यूनानी प्रतिरूप **ॲल्-ॲफोस्** को हाइफन लगाकर छापा है। इस **ॲल्** से ज्ञात होता है कि **इफस्** सामी क्षेत्र से यूनान पहुँचा है। उसी अर्थ में ॲलेफस् से ॲलॅफन्तॉस रूप बना। इस रूप का व्यवहार **होमर** ने किया है: "जैसे कोई स्त्री हाथी दाँत (ॲलॅफन्त) पर लाल रंग लगाती है, कोई मिओनिया अथवा कारिया की स्त्री (ये दोनों प्रदेश लघु एशिया में थे), जो घोड़ों के मुखौटे बनाती है, और वह (हाथी दाँत) कोषागार में पड़ा रहता है, भले ही अनेक अश्वारोही उसे पहनने की प्रार्थना करें; लेकिन वह शाही संपत्ति की भाँति वहाँ पड़ा होता है, उसके (अश्वारोही के) घोड़े का आभूषण, वैसे ही उसके चालक का गौरव, वैसी ही मॅनॅलाऑस्, मुम्हार। रक्तरंजित जाँघें थीं, तुम्हारी सुघर जाँघें और तुम्हारे पैर और उनके नीचे तुम्हारे टखने"।[47] होमर यहाँ हाथी दाँत की जिस कारीगरी को याद कर रहे हैं, वह अंधकार युग से पहले की है। वह इस कला का अभ्यास करने वाली स्त्रियों को लघु एशिया में देखते हैं किंतु राजा का कोषागार मिकिनी की ओर संकेत करता है। जनश्रुति के अनुसार प्राचीन राजाओं के कोष मिकिनी में थे और पुरातत्वज्ञों ने उन्हें खोद निकाला है। और उनमें हाथी दाँत की चीजें भी मिलीं हैं।[48] हाथी दाँत का निर्यात भारत (दिल्मुन्) से उर को होता था, संभावना यह है कि बैबिलोन से **ॲलॅफॉस्** मिनोअन काल में यूनान पहुँचा था। उस हालत में **अप्सु** की तरह **इभ** का निर्यात भी हड़प्पा राज्य से हुआ था।

लगभग हज़ार साल की हड़प्पा सभ्यता, लगभग हज़ार साल की मिनोअन-मिकिनीअन सभ्यता, हड़प्पा और मिकिनी के बीच लगभग इतने ही समय की मितन्नी-हित्ती सभ्यताः एक विशाल भूखंड में, सुगठित राज्य व्यवस्था के अंतर्गत, दीर्घकाल तक इंडोयूरोपियन भाषा परिवार का निर्माण हुआ। **ॲलॅफस्** का पूर्वरूप **इभ** भारतीय है, इसका प्रमाण यह है कि **भ्** ध्वनि भारत से बाहर न पहले कहीं थी, न आज है। आदि इंडोयूरोपियन भाषा में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ थीं, सब विद्वान मानते हैं। वे भारत में ही क्यों बच रहीं, इसकी कैफ़ियत कोई नहीं देता। **बरो** कहते हैं, "सामान्य मत यह है कि इंडोयूरोपियन में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ थीं। उनकी पूरी श्रृंखला केवल संस्कृत में सुरक्षित है"।[49] इंडोयूरोपियन परिवार के निर्माण में भारत की निर्णायक भूमिका यहाँ स्वतः सिद्ध है।

ङ. सामी क्षेत्र में आर्य भाषाएँ

यूनानी की तरह लैटिन में भी **इभ** का प्रतिरूप **ॲलॅफस्** है पर लैटिन में इसके साथ अन्य प्रतिरूप **ॲबुर** भी है। **लीवस** और **शॉर्ट** लैटिन भाषा के कोश में संस्कृत **इभस्** को तुलनीय बताते हुए ग्रीक **ॲलॅफस्** के **ॲल्** को स्पष्ट सामी संकेतक कहते हैं। अँग्रेज़ी के ivory

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(हाथी दाँत) का स्रोत शब्द **अॅबुद्र** है। दो भाषा समुदायों में एक ने **भ्** को **फ्** रूप में, दूसरे ने **ब्** रूप में, ग्रहण किया। हाथी दाँत के निर्यात का प्रधान केंद्र हड़प्पा राज्य था। हाथी दाँत की चीज़ें बनाने का एक कारखाना मोहेंजोदड़ों में था, दूसरा क्रीट द्वीप के नगर क्नोसोस में। १७५० ई०पू० के आसपास हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के बाद भी, ऐसा प्रतीत होता है, पश्चिमी भारत हाथी दाँत का निर्यात करता रहा था। **बाइबिल** के अनुसार इस्राएल के राजा सुलेमान ने "हाथी दाँत का एक बड़ा सिंहासन बनवाया; और यह सिंहासन सोने से मढ़वाया गया था। (१ राजा, १० : १८)। हीराम ने अपने मल्लाहों के साथ सुलेमान के आदमियों को भेजा और "उन्होंने ओपोर को जाकर वहाँ से चार सौ बीस किक्कार सोना, राजा सुलेमान को लाकर दिया।" (१ राजा, ९ : २८)। संभवतः सोना और हाथी दाँत प्राप्त करने का स्थान एक ही था; "क्योंकि समुद्र पर हीराम के जहाज़ों के साथ राजा भी तर्शीश के जहाज़ रखता था, और तीन-तीन वर्ष पर तर्शीश के जहाज़ सोना चाँदी, हाथी दाँत, बंदर और मयूर ले आते थे।" (१ राजा, १० : २२)।

ऊपर जिसे ओपोर कहा गया है, वह अँग्रेज़ी में ओफ़ीर है। भारत क प्राचीन भूगोल पर अपने ग्रंथ में **कनिंघम** ने इसका मूलरूप **सौवीर** माना है।[50] उन्होंने यह भी बताया है कि **बाइबिल** के ग्रीक अनुवाद में हीब्रू ओफ़ीर को सदा सोफ़ीर लिखा गया है[51] कनिंघम के अनुसार सौवीर जन पश्चिमी राजस्थान में बसे हुए थे।[52] **मोनिअर विलियम्स** ने संस्कृत अँग्रेजी कोश में **महाभारत** का हवाला देकर बताया है कि सौवीर सिंधुतटवर्ती प्रदेश के निवासी हैं। अतः यह मानने का पर्याप्त कारण है कि पश्चिमी भारत से, हाथी दाँत के लिए विख्यात हड़प्पा राज्य के पुराने क्षेत्र से, इस्राएल को हाथी दाँत भेजा जाता था। हाथी दाँत के लिए हीब्रू शब्द हैं **सॅनूहबिम्**। इनमें **हबिम्** का **हब्** संस्कृत **इभ** का रूपांतर है, **इम्** बहुवचन सूचक चिह्न उसमें जोड़ा गया है। ऐसे ही जो बंदर लाए गए थे, वे **कॉफिम्** थे; **कॉफ्** के साथ वही **इम्**, और **कॉफ्** भारतीय **कपि** का रूपांतर है। इनके साथ मयूर हैं—**तुकिम्**, यहाँ **तुक्** संस्कृत **शुक** का रूपांतर है। इस व्यापार में कहीं द्रविड़ भी संलग्न हैं। जैसे श्री का तमिल रूप तिरु है, वैसे ही **शुक** का रूपांतर **तुक्** है। श्रीलंका पर अपने लेखों में **सर इमर्सन टेनेन** ने लिखा था कि हाथी दाँत, वानर और मोर सुलेमान के जहाज़ श्रीलंका से ले गए थे। इभ, कपि, शुक के मूलरूपों का उल्लेख उन्होंने किया था। कनिंघम की आपत्ति यह थी कि सुलेमान से कुछ शताब्दी पहले, ई०पू० १२०० या १५०० के आसपास, आर्य धुर दक्षिण न पहुँच सकते थे; उन्होंने अभी नर्मदा भी पार न की थी ![53] इस आपत्ति का आधार भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत है, किंतु अन्य कारणों से भी यह मानना उचित है कि हाथी दाँत का निर्यात सिंधु-सौवीर क्षेत्र से होता रहा था।

क्रीट की मिनीअन कला में हाथी दाँत, वानर और मोर तीनों एक साथ हैं। क्रीट के लोग हाथी दाँत की मुहरें बनाते थे,[54] हाथी दाँत की पट्टियाँ संदूकों में लगाते थे,[55] उन पर तरह-तरह की नक्काशी करते थे, हाथी दाँत की मूर्तियाँ बनाते थे, तलवारों की मूठ बनाते थे।[56] हाथी दाँत की एक मुद्रा पर वानर बैठाया गया है। आदमी जैसे स्टूल पर बैठे, वैसे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ही वह अपने आसन से नीचे पैर लटकाए बैठा है। विशेष यह कि वह अपने घुटनों पर हाथ रखे है। यह मुद्रा ई०पू० 2200 से 2000 के बीच की मानी गई है।[57] हिगिन्स का कहना है कि क्रीट की प्राचीन मुद्राएँ मिस्र की मुद्राओं से मिलती हैं। जिस हाथी दाँत की ये मुद्राएँ बनी हैं, वह सीरिया से आया होगा क्योंकि "वहाँ हाथी रहते थे और दाँतों के लिए उनका उपयोग किया जाता था; नवीं सदी ई०पू० में उनका सफाया कर दिया गया था"।[58] सीरिया से हाथी दाँत आया होगा, किंतु वानर ? और घुटनों पर हाथ धरे उसकी मुद्रा ? मैकाय ने लिखा है, "सुमेर और एलम की वानर मूर्तियों से प्राचीन सिंधु घाटी में प्राप्त मूर्तियों की घनिष्ठ समानता मार्के की चीज है। इन तीनों देशों में उन्हें प्रत्येक घुटने पर एक-एक हाथ धरे दिखाया गया है"।[59] सुमेर, एलम, भारत और अब इनके साथ क्रीट। चार जगह वानर की मूर्तियाँ असाधारण मुद्रा में, क्योंकि "मैंने वानर को कभी इस विशेष मुद्रा में नहीं देखा"—मैकाय।[60] मोहेंजोदड़ो में वानरों की मूर्तियों के अलावा मोर की मूर्तियाँ भी मिली हैं। "कहते हैं, यह भारत का देशज पक्षी है। वह पवित्र पक्षी है"—मैकाय।[61] जैसे वानर की मुद्रा असाधारण है, वैसे ही कला में मोर का अंकन भी असाधारण है। मैकाय ने लक्ष्य किया है, "जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अन्य देशों की प्राचीन कला में यह पक्षी अंकित नहीं है, यद्यपि मिनोस् वंशीय राजकुमार उसके पंख कलंगी के तौर पर धारण करते थे"।[62] हिगिन्स की पुस्तक में लंबे मोर पंख की कलंगी लगाए क्रीट के राजकुमार का चित्र दिया हुआ है।[63] मोर भारत का देशज पवित्र पक्षी है। क्रीट में वानर नहीं थे, सिन्क्लेअर हुड के अनुसार "वे संभवतः मिस्र से लाए गए थे"।[64] हाथी दाँत की मुद्रा पर बैठा हुआ वानर, हाथ दोनों घुटनों पर—इस वानर का स्रोत भारत अवश्य है।

क्रीट की उन प्राचीन मुद्राओं के बाद भी इस्राएल को भारत से हाथी दाँत, वानर और मोर तीनों भेजे जाते हैं। इसी क्रम में इभ के 'इंडोयूरोपियन' प्रतिरूप ॲलॅफस् और ॲबुर ग्रीक लैटिन भाषाओं में पहुँचे। हीब्रू ने इभ को हबू रूप में ग्रहण किया। दीर्घकाल तक पश्चिमी एशिया में आर्य-सामी भाषाएँ परस्पर संपर्क में रहीं। उनमें भाषा तत्वों का विनिमय हुआ हो, यह स्वाभाविक है। ऋग्वेद में देवों के लिए शक्ति सूचक शब्द असुर का प्रयोग अनेक बार हुआ है। मित्र और वरुण देवानां असुराः, देवों में अत्यंत शक्तिशाली हैं। (७.६५.२)। इंद्र को असुर कहकर संबोधित किया गया है; वह राजेंद्र हैं, मनुष्यों की रक्षा करें। (१.१७४.१)। अग्नि असुर हैं, सम्राज (सब के स्वामी) हैं, वह प्राणियों की रक्षा करें (७.६.१)। इस शब्द को असीरिया के सामी भाषा बोलने वालों ने अश्शुर रूप में ग्रहण किया। रू ने बताया है, "प्राचीन अभिलेखों में नगर, राज्य और उनके देवता सभी को अश्शुर कहा गया है"।[65] यूनानी लोग इनके देश को असुरिआ कहते थे। आजकल जिस देश को सीरिया कहते हैं, वह भी इसी असुरिआ का रूपांतर है। यूनान का गीति युग के लेखक के अनुसार सीरिया असूरिआ नाम का विकार है।[66] संभवतः भारत के लोग सभी सामी जनों को असुर कहने लगे थे। इसलिए दो देशों को एक ही नाम दिया गया। यूनानियों ने यह नाम सीधे आर्यों से पाया होगा क्योंकि असीरिया के लोग तो अपने देवता, नगर और राज्य को अश्शुर कहते थे। असुर को अश्शुर रूप संभवतः उन मागध वृत्ति वाले भारतवासियों ने दिया जो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स् के तालव्यीकरण के आदी थे।

मितन्नी के राजा अर्तशुम्र मूलतः ऋतस्मर हैं। हित्ती-मितन्नी राजाओं ने जो संधि की थी, उसमें वैदिक देवता नासत्य नश रूप में नशतिअ हैं। बैबिलोन के कस्सी शासकों के देवता शूरिअश् (सूर्य), मरुत्तश् (मरुत्) हैं, उनके एक राजा अबिरत्तश् (अभिरथ) थे।[67] संस्कृत दीर्घ यूनानी में तो डॉलिबॉस् है पर हित्ती में दलुगश् है।[68] इस प्रकार मागधी शकारवाद बहुत पुराना है और उसका प्रभाव पश्चिमी एशिया में दूर-दूर तक दिखाई देता है। भारत में भिन्न ध्वनि प्रकृति वाली भाषाओं के अनेक समुदाय थे, इन भाषाओं का व्यवहार करने वाले लोग अपनी ध्वनि प्रकृति भारत के बाहर भी ले गए। अरबी सलाम का मूल अर्थ है, सकुशल, सुरक्षित (यथा सही-सलामत)। इसका हीब्रू प्रतिरूप है शालेम। बाइबिल में कथा है : "और गिलादियों ने यरदन (नदी) का घाट उनसे पहले अपने वश में कर लिया और जब कोई एप्रैमी भगोड़ा कहता, कि मुझे पार जाने दो, तब गिलाद के पुरुष उससे पूछते थे, क्या तू एप्रैमी है ? और यदि वह कहता नहीं, तो वे उससे कहते, अच्छा, शिब्बोलेत कह, और वह कहता सिब्बोलेत, क्योंकि उससे वह ठीक बोला नहीं जाता था; तब वे उसको पकड़कर यरदन के घाट पर मार डालते थे।" (न्यायियों. १२ : ५-६)। इस क्षेत्र पर अनेक आर्य सामंत राज्य करते रहे थे। संभव है, वे मागधी शाखा वाले आर्य हों और उनके प्रभाव से श् का उच्चारण जातीयता की महत्वपूर्ण पहचान बन गया हो। बरो के अनुसार मितन्नी प्रभाव से आर्य नामों का विस्तार सीरिया और फ़िलिस्तीन तक हुआ। उनके उदाहरणों में संस्कृत के कुछ मागधी रूप इस प्रकार हैं : स्वदति—शुवर्दतः सत्वर—शतुअर; सुबंधु—शुबंदु।[69]

जो शक्तिशाली है, गतिशील है, शाश्वत् है ऋग्वेद में वह यह्वः है। पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य, शक्तिशाली अग्नि सूर्य के संचरण की रक्षा करता है। (३.५.५)। "वर्षा करने वाला, महान और अदम्य अग्नि ने आकाश से वर्षणशील मेघ के दोहन से यज्ञ करने वाले यजमान के लिए जलों की वर्षा की—पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः (सातवलेकर १०.११.१)। असंभव नहीं कि यहूदियों का ईश्वर वाचक शब्द यहोवा इसी वैदिक यह्वः का प्रतिरूप हो। "और यहोवा ने नूह से कहा, तू अपने सारे घराने समेत जहाज़ में जा...क्योंकि अब सात दिन और बीतने पर मैं पृथ्वी पर चालीस दिन और चालीस रात तक जल बरसाता रहूँगा।" (उत्पत्ति, ७.१.४)। मोनियर विलियम्स के अनुसार यह्व का अर्थ है द्रुतगामीः अग्नि, इंद्र सोम के अलावा निरंतर प्रवहमान जलों को भी ऋग्वेद में यह्व कहा गया है। और यहस् का अर्थ है शक्ति।

च. भारतीय भाषा तत्वों का निर्यात मार्ग

अफ्रीकी एशियाई सभ्यता की प्रसार भूमि में आमतौर से हम सांस्कृतिक तत्वों का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर देखते हैं। जैसे ही मितन्नी-हित्ती क्षेत्रों में भारतीय आर्य पहचान लिए जाते हैं, वैसे ही भारत से पश्चिम की ओर भाषा तत्वों का निर्यात निश्चित हो जाता है। जहाँ इन भाषा तत्वों पर सामी छाप हो, वहाँ उनकी यात्रा का मार्ग और भी सुनिर्धारित हो जाता है। इभ का रूपांतर ॲफस् सामी प्रभाव से ही ॲलेफस् बनकर यूनान पहुँच सकता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

था। यहाँ तो ॲफ्स् के साथ जुड़कर सामी संकेतक ॲल् उसी शब्द का अंग बन गया। सामी भाषाओं के प्रभाव से ग्रीक भाषा समुदाय ने मूल शब्द के साथ संकेतक के व्यवहार की पद्धति अपना ली। वह सर्वनामों को संकेतक बनाकर शब्दों के साथ जोड़ने लगा। यह प्रक्रिया 1100 ई०पू० के बाद किसी समय घटित हुई होगी। वेन्ट्रिस, लीनिअर-बी में, जब ग्रीक भाषा पढ़ रहे थे, तब उन्हें इस बात से परेशानी हुई कि क्लासिकल ग्रीक में तो निश्चयार्थी संकेतक है, मिकिनीअन ग्रीक में नहीं है। चैडविक ने उन्हें समझाया कि इससे परेशान होने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि भाषाविज्ञानियों ने सोच रखा है कि "भाषा की पूर्व अवस्थाओं में उसका अभाव रहा होगा"।[70] मिकिनीअन ग्रीक में संकेतक के अभाव से सिद्ध हुआ कि 1100 ई०पू० में मिकिनीअन सभ्यता के विनाश के बाद किसी समय क्लासिकल ग्रीक में संकेतक का प्रवेश हुआ।

सिसिली और दक्खिनी इटली मिकिनीअन साम्राज्य में थे। उस समय यूनान से वहाँ जो भाषा तत्व पहुँचे, वे मिकिनीअन ग्रीक के अनुकूल थे। लैटिन में निश्चयार्थी संकेतक नहीं है, यह विशेषता उसे मिकिनीअन ग्रीक से जोड़ती है। लेकिन इटालियन, फ्रांसीसी, स्पैनिश आदि लैटिन कुल की भाषाओं में वह है। यही नहीं, इटालियन का इल् सामी ॲल् का सीधा प्रतिरूप है। फ्रांसीसी के ल, ला, ले आदि अपने सामी उद्‌भव की स्पष्ट घोषणा करते हैं। लैटिन कुल की भाषाओं ने और बहुत से तत्व तो लैटिन से लिए, संकेतक का व्यवहार उन्होंने सामी भाषाओं से लिया। यही प्रवृत्ति जर्मन और केल्त समुदायों की भाषाओं ने अपनाई। इंडोयूरोपियन परिवार की पश्चिमी शाखा संकेतक का व्यवहार करती है। पूर्वी, भारतीय-ईरानी-स्लाव, शाखा उसका व्यवहार नहीं करती। सामी भाषाओं का क्षेत्र है पश्चिमी एशिया, पूर्वी शाखा उन भाषाओं के प्रभाव से मुक्त थी।

संज्ञा के साथ निश्चयार्थी संकेतक का व्यवहार एक सामी तत्व है जो ग्रीक से लेकर अँग्रेज़ी तक यूरोप की भाषाओं से चिपक गया है। ऐसे अन्य तत्व भी हैं। यहाँ उनका विवेचन अनावश्यक है। सामी भाषा के क्षेत्र एशिया में हैं। संकेतक का व्यवहार एशियाई पद्धति है, जिसे यूरोप की भाषाओं ने अपनाया है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। ईरान की भाषा को अरबी ने बेहद प्रभावित किया है पर संकेतक का व्यवहार उसमें भी नहीं होता। भारतीय भाषाओं में अपने जातीय स्वरूप की रक्षा करने की पर्याप्त शक्ति है, उनमें संकेतक के व्यवहार की संभावना नहीं थी। "आदि इंडोयूरोपियन" भाषा की सघोष महाप्राण ध्वनियाँ केवल भारतीय आर्य भाषाओं में सुरक्षित रहीं, यह उनकी जातीय शक्ति का यथेष्ट प्रमाण है। यूरोप की किसी भी 'इंडोयूरोपियन' भाषा को इतने अधिक आर्येतर प्रभाव इतने लंबे समय तक नहीं झेलने पड़े जितने भारतीय आर्य भाषाओं को झेलने पड़े। हमें इस बात का गर्व है कि वैदिक और प्राग्वैदिक काल से चली आती ध्वनियाँ हमारे यहाँ अब भी बोलचाल और साहित्य में जीवित हैं। अरबी-फ़ारसी से आक्रांत उर्दू में भी इन ध्वनियों का व्यवहार होता है।

किंतु इंडोयूरोपियन परिवार की केंतुम्-सतम् शाखाएँ कभी इन ध्वनियों का व्यवहार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करती रही हों और बाद में उन्होंने उनका व्यवहार छोड़ दिया हो, इसकी संभावना बहुत कम है। अवेस्ता की प्राचीन ईरानी भाषा को देखिए। वह वैदिक भाषा से इतना मिलती-जुलती है कि वह थोड़े से ध्वनि परिवर्तन से लगभग संस्कृत बन जाती है। वैदिक भाषा के विशेषज्ञ मैकडनल ने लिखा है, ''वेदों की बोली से अवेस्ताई भाषा के प्राचीनतम रूप का संबंध—वाक्य रचना, शब्द भंडार, काव्य भाषा, छंद और सामान्य काव्य शैली में इतना विशद है कि ध्वनि नियम लागू करने मात्र से अवेस्ता के बंद के बंद शब्दशः वैदिक भाषा में यों रूपांतरित किए जा सकते हैं कि वे केवल रूप में नहीं, काव्य भावना में भी खरे उतरें''।[71] इंडोयूरोपियन परिवार की किन्हीं दो भाषाओं में ऐसी घनिष्ठता नहीं है जैसी अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषाओं में है। वास्तव में ये दो भाषाएँ नहीं, एक भाषा हैं। ध्वनि रूप बदलने से भाषा नहीं बदल जाती। भौगोलिक दृष्टि से ईरानी क्षेत्र एकदम हमारे पड़ोस में है। भाषा तत्वों के विचार से प्राचीन ईरानी संस्कृत का ही दूसरा रूप है। किंतु सघोष महाप्राण ध्वनियाँ उसमें भी नहीं हैं। तब और दूर की भाषाओं में वे क्या होंगी !

विद्वानों ने हिंदी-ईरानी शाखा की कल्पना की है, पर जब भाषा एक है, तब शाखा या तो हिंदी हो सकती है या ईरानी, हिंदी-ईरानी तो नहीं हो सकती। इस शाखा का मूल रूप ऋग्वेद में है या अवेस्ता में, इसका निर्णय करना सरल है। जिस ग्रंथ में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ विद्यमान हों, उसी में भाषा का मूल रूप (समस्त या अधिकांश) मान लें। अवेस्ता में जहाँ-तहाँ प्राचीनतर रूप हैं पर इससे मूल स्थापना खंडित नहीं होती। वैदिक इह की अपेक्षा पालि इध प्राचीन है पर इससे पालि वैदिक भाषा से अधिक प्राचीन नहीं हो जाती। प्राचीन ईरानी और वैदिक भाषा में इतनी घनिष्ठता है कि ध्वनि नियम लागू करने से ईरानी को वैदिक रूप दिया जा सकता है, उसमें रचे हुए छंद, भाव और शैली की दृष्टि से, वैदिक छंदों जैसे लग सकते हैं। इसलिए प्राचीन ईरानी के क्षेत्र को भारतीय क्षेत्र का विस्तार कहना युक्तिसंगत होगा।

ईरानी भाषाओं का क्षेत्र विशाल है। भारत के उत्तर में मध्य एशिया से वह कश्यप सागर तक फैलता चला गया है। उसके बाद आती हैं आर्मीनियन और स्लाव भाषाएँ। यह है पूर्वी शाखा का क्षेत्र। विद्वानों ने कल्पना की है कि आर्यगण स्लाव प्रदेशों से चले और ईरान होते हुए भारत आ पहुँचे। सघोष महाप्राण ध्वनियाँ कहीं भी उनके साथ न रहीं, सिंधु पार करते ही वे भारत में प्रकट हो गईं ! अथवा आर्य अनातोलिया से चले, हित्ती-मितन्नी क्षेत्रों में कहीं भी वे ध्वनियाँ उनके साथ न रहीं, जब भारत आए तब वे प्रकट हो गईं। दोनों ही स्थितियों में मूल ध्वनियाँ भारत में हैं, पूर्वी-पश्चिमी शाखाओं में उनके रूपांतर मात्र हैं। उल्टी गंगा बहाने के बदले एक बार मान लें कि घ्, ध्, भ्, इन सघोष महाप्राण ध्वनियों का स्रोत देश भारत है, तो एक धारा पूर्व को, दूसरी पश्चिम को सहज भाव से बहती दिखाई देगी; आर्येतर प्रभावों से भारत के बाहर ये ध्वनियाँ अपना रूप बदलती जाएँगी। लक्ष्य करने की बात है इन ध्वनियों के संदर्भ में आर्येतर प्रभाव जितने शक्तिशाली भारत के बाहर हैं, उतने भारत के भीतर नहीं हैं। ईरानी क्षेत्र पर अरबी का भारी दबाव रहा है, उस क्षेत्र के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बहुत से प्राचीन भाषा तत्व नष्ट हो गए हैं। फ़ारसी की तुलना में रूसी संस्कृत से ज़्यादा मिलती-जुलती जान पड़ती है। इसका रहस्य यही है कि स्लाव क्षेत्र कभी अरबी से आक्रांत नहीं रहा। वह अपनी प्राचीन संपदा बचाए रहा। पर यह संपदा वहाँ ईरानी क्षेत्र से होकर ही पहुँची थी। उत्तरी ध्रुव से भारतीय भाषा तत्व वहाँ न पहुँच सकते थे।

घ्, ध्, भ् के स्रोत देश भारत से एक धारा पूरब को बहती हुई रूस पहुँची, दूसरी पश्चिम को बहती हुई यूनान पहुँची। पूरब की धारा **सतम्** शाखा हुई, पच्छिम की धारा **केंतुम्** शाखा हुई। भारत से बाहर **सतम्** शाखा की सबसे प्राचीन भाषा **अवेस्ता** की है और वह वैदिक भाषा का रूपांतर सी है। केंतुम् शाखा की सबसे प्राचीन भाषा ग्रीक है और वह जितना संस्कृत के निकट है, उतना पश्चिमी यूरोप की अन्य भाषाओं के नहीं। इस संबंध में **बरो** कहते हैं, "ग्रीक में अन्य किसी केंतुम् गुट से निकट संबंध का कोई चिह्न नहीं है। इसके विपरीत उसका निकटतम संबंध **सतम्** भाषाओं से, खासकर इंडोईरानियन और आर्मिनियन से प्रतीत होता है।" 'इंडोईरानियन' का उल्लेख शाखा के नामकरण की रक्षा के लिए है। वास्तव में **बरो** की दृष्टि टिकी है संस्कृत पर ! अगले वाक्य में कहते हैं, "संस्कृत के किसी तुलनात्मक व्याकरण पर दृष्टिपात करते ही पता चल जाएगा कि इंडोईरानियन के बाहर किसी भी अन्य भाषा से संस्कृत की जितनी समानताएँ हैं, उनसे कहीं ज़्यादा संख्या में ग्रीक से संस्कृत की समानताएँ हैं"।[72] इस तरह संस्कृत की भूमिका एक सूत्रधार की है। पूर्वी शाखा में प्राचीन ईरानी उसका रूपांतर सी है और पश्चिमी शाखा में ग्रीक, अन्य केंतुम् भाषाओं की अपेक्षा, संस्कृत से घनिष्ठ संबंध बनाए हुए है। इसका अर्थ यह है कि यूनान तक पहुँचते-पहुँचते मूल भाषा में ध्वनिगत परिवर्तन तो हुए, पर व्याकरण रूप बहुत कुछ वैसे ही बने रहे। इस प्रकार इंडोयूरोपियन परिवार की दो प्राचीन भाषाएँ संस्कृत का विकार और विस्तार प्रतीत होती हैं।

यूनानी क्षेत्र में पहुँचकर संस्कृत का समूचा ध्वनितंत्र बदल गया हो, ऐसा नहीं है। एक ध्वनिगत विशेषता, प्रायः अपरिवर्तित, ग्रीक को संस्कृत से बाँधे रहती है। यह विशेषता है बलाघात (accent) की। **मैकडनल** ने वैदिक बलाघात के बारे में लिखा है, "वैदिक भाषा के प्राचीनतम रूप में **उदात्त** से मूलतः सबसे ऊँचे स्वर मान का बोध होता था, इसकी जानकारी तुलनात्मक भाषाशास्त्र से होती है। ग्रीक में, बलाघात के विचित्र नियम जिस हद तक अनुमति देते हैं, तीव्र बलाघात उसी वर्ण पर होता है जो वैदिक भाषा में **उदात्त** होता है (यथा **दिवॉ-स्; दिवस्; हॅप्त सप्तः ऑक्तौः अष्टौ**। (पहला शब्द ग्रीक है, दूसरा संस्कृत)। **सामवेद, मैत्रायणी संहिता** और **काठक** में उदात्त को चिह्नित करने के ढंग से भी उक्त निष्कर्ष का अनुमोदन होता है। किंतु **ऋग्वेद** में उदात्त का स्वरमान मध्यम है, स्वरित के स्वरमान से नीचे। इसकी जानकारी उसे चिह्नित करने के ढंग, और प्रातिशाख्यों में उसके विवरण. दोनों से होती है। यह एक नई उद्भावना होगी"।[73]

मैकडनल ने **ऋग्वेद** के बलाघात को नई उद्भावना इस मान्यता के आधार पर कहा है कि आर्य और ग्रीक पहले एक ही आदि इंडोयूरोपियन भाषा बोलते थे, इसलिए **ऋग्वेद** से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अलग वैदिक भाषा के जिस रूप से ग्रीक ज़्यादा मिलती हो, वह प्राचीनतम है। किंतु उन्होंने जिन ग्रंथों के आधार पर ग्रीक-वैदिक बलाघात का साम्य देखा है, वे ऋग्वेद से बहुत बाद के हैं। उनसे प्रमाणित यह होता है कि ग्रीक भाषा ने ऋग्वेद से पहले नहीं, बहुत बाद को, सीमित मात्रा में, वैदिक बलाघात स्वीकार किया। मैकडनल की बात मानी जाए तो यह विचित्र स्थिति उत्पन्न होगी कि आर्य भारत के बाहर जिस वर्ण को उदात्त बोलते थे, उसे भारत आकर मध्यम—स्वरित से भी नीचे—बोलने लगे; ऋग्वेद के बाद किसी कारण वे उसे फिर उदात्त बोलने लगे ! ऋग्वेद के बाद मूल स्वर-मान परिवर्तित हो, इसकी संभावना अधिक थी। वैदिक संस्कृति का मूल अधिष्ठान अब भरतों का सारस्वत प्रदेश नहीं था, कुरु-पांचालों का ब्रह्मर्षि प्रदेश था।

ऋग्वेद से अलग, वैदिक और ग्रीक शब्दों में, सीमित परिधि के भीतर, थोड़ी समानता भी हो तो वह महत्वपूर्ण है और आश्चर्यजनक है। ग्रीक वैदिक भाषा की शाखा हो या ग्रीक जन वैदिक प्रभाव क्षेत्र में रहे हों, तभी ऐसी समानता संभव है। यूनानियों को आर्य यवन कहते थे, अपने से भिन्न मानते थे। यवन भाषा का विकास वैदिक प्रभावत क्षेत्र में हुआ, इसी की संभावना अधिक है।

छ. क्रीट और हड़प्पा के सांस्कृतिक संबंध

यूनानी भाषा की विशेषता यह है कि उसके व्याकरण रूप सतम् वर्गीय भाषाओं के हैं, ध्वनितंत्र केंतुम् वर्गीय भाषाओं का है। बरो का कहना है, "हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि जो इंडोयूरोपियन बोली ग्रीक भाषा का आधार है, वह मूल रूप में मध्य बोली समूह के घनिष्ठ संपर्क में थी। सतम् वर्ग में जब ध्वनि परिवर्तन हुआ, उससे पहले यह संपर्क टूट गया था"।[73A] मध्य बोली समूह का अर्थ है संस्कृत तथा सतम् वर्ग की अन्य भाषाएँ। यूनानी की आधारभूत भाषा संस्कृत के घनिष्ठ संपर्क में थी, फिर यह संपर्क टूट गया। बरो आदि विद्वानों के अनुसार ध्वनि परिवर्तन सतम् वर्ग की भाषाओं में हुआ, केंतुम् वर्ग की भाषाओं में अपेक्षाकृत कम हुआ। उदाहरण के लिए संस्कृत श्वान् यूनानी में कुओन् है। शब्द की मूल ध्वनि क् यूनानी में सुरक्षित रही। संस्कृत पंच लैटिन में क्विंक्वे है। यहाँ भी मूल ध्वनि क् लैटिन में सुरक्षित रही। आश्चर्य की बात है कि जो भाषाएँ मूल सघोष महाप्राण ध्वनियों की रक्षा न कर सकीं, वे इस विचित्र क् ध्वनि की रक्षा कर सकीं जो संस्कृत में कहीं श् हो जाती है, कहीं च्। ज्ञातव्य है कि ग्रीक और लैटिन में न च् है न श् !

कल्पित आदि इंडोयूरोपियन में एक तो शुद्ध क् था जो संस्कृत में बचा रहा। संस्कृत अंक, ग्रीक ऑङ्कॉस्—दोनों जगह शुद्ध क्। दूसरा तालव्य क् था, य् का स्पर्श लिए। यह श् और च् में परिवर्तित हुआ। तीसरा था ओष्ठ्य क्, व् का स्पर्श लिए। संस्कृत गौस् (गाय) ग्रीक में बॉउस् है। यहाँ संस्कृत ने ओष्ठ्य तत्व छोड़ दिया; ग्रीक ने मूल कंठ्य तत्व छोड़ दिया, केवल ओष्ठ्य तत्व स्वीकार किया। इन परिवर्तनों से पहले ग्रीक और संस्कृत में जबर्दस्त घनिष्ठता थी। ऐसी घनिष्ठता ग्रीक और अन्य किसी केंतुम् वर्गीय भाषा में नहीं थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

केंतुम् वर्ग में ग्रीक किसी तरह दाखिल हो गई है, मूल व्याकरणगत संबंध उसका संस्कृत से है। इस बात को यों भी कह सकते हैं : ग्रीक मूलतः संस्कृत समुदाय की भाषा है, उसने संस्कृत से अलग हटकर केंतुम् वर्ग का ध्वनितंत्र अपना लिया है। पुरातत्व के सहारे हम उस देश की ओर संकेत कर सकते हैं जहाँ यह सारा विकास घटित हुआ था। जिस कालखंड में वह घटित हुआ था, उसका अनुमान भी हम कर सकते हैं।

यूनानी सभ्यता से पहले मिकिनीअन सभ्यता है, और इससे पहले मिनोअन सभ्यता है। तीनों में फ़र्क है पर वे पूरी तरह एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। मिकिनीअन शासक लीनिअर-बी लिपि का व्यवहार करते थे। अधिकांश विद्वानों के अनुसार इस लिपि में ग्रीक भाषा लिखी जाती थी। इससे पहले क्रीट में लीनिअर-ए लिपि का चलन था। लीनिअर-ए से ही लीनिअर-बी का विकास हुआ। ऐसा संबंध मिनोअन और मिकिनीअन भाषाओं में भी हो सकता है। मिकिनीअन लोगों की भाषा यदि ग्रीक थी तो मिनोअन भाषा से उसके संबंध को संदेह से परे मानना चाहिए। मिकिनीअन सभ्यता बड़े पैमाने पर नष्ट की गई, आक्रमणकारियों ने मिकिनीअन प्रासाद और नगर ध्वस्त कर दिए। तीन सौ साल तक अंधकार युग रहा। किंतु ग्रीक भाषा नष्ट नहीं हुई, वह फिर उभर आई; अलबत्ता लोग पुरानी लिपि भूल गए, फ़िनीशियावासियों से उनकी लिपि उधार लेकर उन्होंने काम चलाया। इसके विपरीत मिनोअन सभ्यता भूकंप से और ज्वालामुखी पर्वत की आग-राख से ध्वस्त हुई। उसका पूरी तरह नाश नहीं हुआ। लीनिअर-ए लिपि का व्यवहार ठप नहीं हो गया। मिकिनीअन शासकों ने मिनोअन सभ्यता की बहुत सी बातें अपना लीं। इसलिए स्वाभाविक यही होगा कि मिनोअन भाषा क़ायम रही हो और मिकिनीअन शासकों की भाषा उससे प्रभावित हुई हो।

निल्सन ने विस्तार से मिनोअन-मिकिनीअन संस्कृतियों का अध्ययन किया है। उनका विचार है कि मिनोअन संस्कृति के विधाता ग्रीक नहीं थे और इंडोयूरोपियन समुदाय से उनका कोई संबंध नहीं था। उन्हें विश्वास है कि यूनानी हमलावरों ने मिनोअन भाषा को हटाकर अपनी भाषा प्रतिष्ठित की लेकिन वे पुराने धर्म का सफाया न कर सके। "प्रकृति वाला धर्म धरती से जुड़ा होता है। आबादी और भाषा के विचार से देश बदल जाए पर नए आने वाले, देश के पुराने देवताओं के प्रति श्रद्धा जताने से इनकार नहीं करते"।[74] यूनान पर शताब्दियों तक तुर्कों का अधिकार रहा, न उन्होंने यूनानी देवताओं को अपनाया, न वे यूनानी भाषा को विस्थापित कर सके। भाषा धर्म से अधिक टिकाऊ होती है। भारत का अनुभव इससे मिलता-जुलता हैं। पर **निल्सन** मानते हैं कि मिनोअन भाषा के कुछ शब्द बच रहे और वे ग्रीक भाषा में प्रयुक्त होते रहे।[75] उन्हें एक शब्द के बारे में दृढ़ विश्वास है कि वह मिनोअन भाषा का है। "इसमें ग्रीक से पहले का—न्थ्—तत्व है और वीर के अलावा वह एक फूल का अर्थ देता है"।[76] यह शब्द है **हुअकिन्थॉस्**। यह और ऐसे अन्य शब्द मिनोअन हैं कि नहीं, यह अलग प्रश्न है। महत्वपूर्ण बात यह है कि **निल्सन** के अनुसार ग्रीक भाषा में कुछ मिनोअन शब्द अवश्य हैं। इससे भी दिलचस्प बात यह है कि मिनोअन संस्कृति की जो विशेषताएँ उन्होंने बताई हैं, उनमें कुछ मिस्र, सुमेर, बैबिलोन आदि में दुर्लभ हैं। वे यदि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कहीं मिलती हैं तो हड़प्पा क्षेत्र में।

निल्सन कहते हैं, मिनोअन लोग शांतिप्रेमी स्वभाव के थे। युद्ध और आखेट के चित्र यूनान की मुख्य भूमि में अक्सर मिलते हैं, क्रीट में वे बहुत ही कम हैं। क्रीट के नगरों के चारों ओर क़िलेबंदी नहीं है, मिकिनीअन स्थानों में भारी भरकम प्राचीरें हैं। इससे दोनों सभ्यताओं के अंतर का बोध होता है। "मिनोअन लोग युद्ध से और आखेट से भी परिचित थे, किंतु यह उनके लिए श्रेष्ठ क्रीड़ा न था जिसमें उन्हें मज़ा आता। उनके एक देवता पशुओं के स्वामी थे, इसलिए यह अत्यंत स्वाभाविक था कि वह कभी-कभी आखेटक देवता के रूप में प्रकट हों। पर इसमें संदेह है कि उन्होंने कभी युद्ध के देवता को रूपायित किया था। मिकिनीअन लोगों को युद्ध और आखेट से प्रेम था..."।[77] पशुपति हैं, युद्ध के देवता नहीं हैं। मिस्र से क्रीट का घनिष्ठ संबंध माना जाता है। मिस्र और सुमेर के राजाओं ने युद्ध के द्वारा अपने साम्राज्य का निर्माण और विस्तार किया था। मिनोअन लोगों का स्वभाव मिस्रियों-सुमेरियों से भिन्न हड़प्पावासियों के स्वभाव से मिलता-जुलता है।

मिस्र के राजा अपने देवताओं के लिए मंदिर बनवाते थे। इसके विपरीत क्रीट में मंदिर नहीं थे। निल्सन ने स्पष्ट लिखा है, "मंदिर का अर्थ यदि ऐसी अलग इमारत हो जिसमें देवता का निवास हो, उसकी मूर्ति और साथ का तामझाम सुरक्षित रखा जाता हो, तो मिनोअन सभ्यता में मंदिर नहीं हैं"।[78] हड़प्पा के विशाल राज्य में बरसों तक पुरातत्वज्ञों ने खोजबीन की परंतु मंदिर जैसी कोई इमारत उन्हें न मिली। मिस्र और सुमेर में मंदिर ही मंदिर थे। और वहाँ के शासक भव्य समाधि भवन बनवाते थे, शव के साथ और बहुत सा सामान उनमें दफ़नाया जाता था। ऐसे समाधि भवन न हड़प्पा में हैं, न क्रीट में। निल्सन ने लिखा है, "मिनोअन सभ्यता के स्वर्णयुग में समाधि भवन बहुत ही कम हैं, यह लक्ष्य करने की बात है। खोजबीन और उत्खनन का काम इतना ज़्यादा हुआ है कि यह बात आकस्मिक नहीं हो सकती। शव संबंधी किसी धार्मिक रीति की जानकारी हमें है ही नहीं। स्पष्ट ही मिनोअन लोग अपने मृत जनों के बारे में बहुत चिंता न करते थे"।[79]

हड़प्पावासियों के लिए वृक्ष पवित्र थे, अनेक पशु पवित्र थे। इनमें सर्प भी था। क्रीट में सर्प पूज्य है। कई जगह पात्रों से वृक्षों आदि को जल या अन्य कोई द्रव्य पदार्थ चढ़ाते दिखाया गया है। क्रीट के प्रधान नगर क्नोसोस के प्रासादों में कुछ कक्ष ऐसे थे जिनमें अनेक स्तंभ थे। निल्सन को आश्चर्य था कि कई जगह फर्श में धँसा हुआ थाल जैसा बनाया गया है और दो थालों को ऐसी नाली से जोड़ा गया है जो "खंभे को घेरे हुए है"।[80] ऐसा लगता है, मिनोअन जनों के लिए जल पवित्र था, और जिस वस्तु को वे पूज्य मानते थे, उसे जल चढ़ाते थे। इवान्स के अनुसार खंभा पवित्र वृक्ष के स्थान पर था।[81] अनेक मिनोअन वस्तुओं पर समभुजी क्रॉस अंकित किया जाता था। इवान्स के विचार से यह नक्षत्रों और सूर्य का प्रतीक था।[82] कुछ वस्तुओं पर स्वस्तिका भी अंकित पाई गई है। पुसाल्कर ने लक्ष्य किया था कि हड़प्पा की तरह क्रीट की मुद्राओं पर स्वस्तिका अंकित है; इससे इन मुद्राओं का "धार्मिक उपयोग या महत्व सूचित होता है"।[83] पुसाल्कर का मत है कि कुछ मुद्राओं पर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अंकित स्वस्तिका और चक्र "सूर्य के प्रतीक हैं" तथा सिंधु घाटी में "बैबिलोन और एलम की तरह स्वस्तिका और क्रॉस धार्मिक या जादुई प्रतीक जान पड़ते हैं"।[84]

क्रॉस का अंकन अनेक प्रकार से होता था। एक प्रकार ऐसा था जो क्रीट और सिंधु घाटी में एक सा था। क्रोसोस नगर के एक भित्तीचित्र में पानपात्र वाहक के वस्त्र पर क्रॉस से रूपांकन (डिज़ाइन) बनाया गया था। मैकाय के शब्दों में ये "क्रॉस एक दूसरे को बेधते चले जाते हैं जिससे बहुत कुछ वैसा ही अविच्छिन्न साँचा बनता है जैसा मोहेंजोदड़ो से प्राप्त चाँदी की अँगूठी के रूपांकन में है।"[85] असंभव नहीं, भारतीय प्रतीक-चिह्नों के साथ कुछ हड़प्पाई शिल्पी भी क्रीट पहुँचे हों ! और क्रीट से इन चिह्नों का प्रसार सभ्यता में पिछड़े हुए यूनान के मुख्य भूखंड पर हुआ हो। उत्तरी यूनान में नवपाषाण युग की एक सेलखड़ी मुद्रा मिली। उस पर उक्त क्रॉस विशेष ढंग से अंकित था। वह दोहरा या पंजरबद्ध (framed) क्रॉस था। उसकी रेखाएँ बीचों-बीच से एक-दूसरे को वैसे ही बेधती थीं जैसे मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर। मैकाय कहते हैं, "दरअसल दोनों में ऐसी गहरी समानता है कि मुझे यह संभव नहीं जान पड़ता कि ये क्रॉस स्वतंत्र उद्भव के होंगे"।[86] बैल के सींग पकड़कर उस पर छलाँग लगाना मिनोअन शिल्प का प्रिय विषय है। इसका सूत्र भी सिंधु घाटी में है। मोहेंजोदड़ो में एक ताबीज मिला था जिसमें बैल या भैंसे के ऊपर आदमी को छलाँग मारते दिखाया गया है। मैकाय के अनुसार यह आदमी "पशु के ऊपर वैसे ही छलाँग लगा रहा है जैसे कि वह क्रीट की कला में चित्रित है"।[87] इस सब में यदि मोर, हाथी दाँत और घुटनों पर हाथ धरे बंदरों को जोड़ दें, तो हड़प्पा सभ्यता से मिनोअन सभ्यता की घनिष्ठता स्पष्ट हो जाएगी।

हड़प्पा, सुमेर और मिस्र की सभ्यताओं में कुछ तत्व सामान्य हैं पर जैसी घनिष्ठता हड़प्पा से क्रीट की है, वैसी मिस्र और सुमेर की नहीं है। हड़प्पा सतमुवर्गीय भाषाओं का क्षेत्र है। वैदिक अप्सु इसी क्षेत्र से होकर सुमेर पहुँचा था। सुमेरी भाषा संस्कृत से भिन्न परिवार की है, इसके विपरीत क्रीट उस भाषा के क्षेत्र में है जिसका संस्कृत से गहरा व्याकरणगत साम्य है। समूचे सांस्कृतिक परिवेश पर विचार करने से एक ही निष्कर्ष निकालेगा : जो भाषा हड़प्पा क्षेत्र से क्रीट पहुँची, वह सतम्वर्गीय संस्कृत परिवार की है। लीनिअर-ए लिपि में यही भाषा लिखी जाती थी। मिकिनीअन ग्रीक ने इसका सारा ढाँचा अपना लिया पर अपना ध्वनितंत्र क़ायम रखा। यह ध्वनितंत्र केंतुम् वर्गीय 'इंडोयूरोपियन' भाषाओं का था।

ज. केंतुम् वर्ग का एशियाई क्षेत्र और इंडोयूरोपियन परिवार

चीनी तुर्किस्तान में एक केंतुम्वर्गीय भाषा बोली जाती थी जिसे तुखारी कहते हैं। इसके दस्तावेज़ छठी से दसवीं सदी ईस्वी के हैं पर यह भाषा बहुत प्राचीन है, यह सब मानते हैं। आसपास सतम् वर्ग की भाषाएँ हैं, उनके बीच उसका अस्तित्व ही उसकी प्राचीनता का प्रमाण है। बरो के विचार से इंडोयूरोपियन परिवार का एक पूर्वी बोली समूह शताब्दियों तक अलग-थलग पड़ा रहा, हिंदी-ईरानी शाखा वहाँ बहुत बाद में पहुँची।[88] इस 'पूर्वी' बोली

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समूह के अंतर्गत हित्ती को भी मानना चाहिए क्योंकि वह भी केंतुम्वर्ग की भाषा है। मध्य एशिया में तुखारी, दूसरे छोर पर लघु एशिया में हित्ती, इनकी भौगोलिक स्थिति केंतुम्वर्ग पर यूरोप की भाषाओं के एकाधिकार का खंडन करती है। इनके बीच में पड़ता है मितन्नी क्षेत्र। बरो ने बताया है कि मितन्नी भाषा का कोई भी दस्तावेज़ प्राप्त नहीं हुआ पर उसे बोलने वाले आर्यों का प्रभाव सीरिया और फ़िलिस्तीन तक फैल गया था।[89] युद्ध और शांति दोनों ही स्थितियों में हित्तियों से मितन्नियों का घनिष्ठ संबंध था। दोनों ही मित्र, वरुण आदि वैदिक देवताओं के उपासक थे और इसलिए उन्होंने संधि में उनका उल्लेख किया था। बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि अश्वप्रशिक्षण पर हित्ती भाषा में जो कृति मिली है, उसके कर्ता मितन्नी राज्य से गए थे। अश्व-विद्या, रथ-विद्या पूर्व से पश्चिम को जा रही थी। हित्ती केंतुम् वर्ग की भाषा है, संभावना यह है कि मितन्नी भाषा भी इसी वर्ग की थी। चीनी तुर्किस्तान में तुखारी, इराक़ में मितन्नी, वर्तमान तुर्की में हित्ती—इस तरह एक लंबी शृंखला बन जाती है और इसकी तीन कड़ियाँ केंतुम्वर्गीय भाषाओं के प्रसार की सूचना देती हैं।

तुखारी की जो स्थिति अब एशिया में है, कुछ वैसी ही स्थिति यूरोप में अल्बानिया की भाषा की है। यह सतम् वर्ग की भाषा है, केंतुम् वर्गीय भाषाओं के बीच अलग-थलग पड़ी दिखाई देती है। पर यदि हम मानें कि इजीअन क्षेत्र में सतम् वर्गीय भाषाएँ पहुँची थीं, उनका प्रधान केंद्र क्रीट था, इन्हीं से ग्रीक ने अपना मूल ढाँचा प्राप्त किया था, तो अल्बानिया में सत्मवर्गीय भाषा का अस्तित्व स्वाभाविक लगेगा। यही नहीं, इस प्रश्न का उत्तर भी मिल जाएगा कि लैटिन में तो च्, ज् नहीं हैं पर उसी से उत्पन्न इटालियन में वे क्यों हैं। इटली अल्बानिया के पड़ोस में है। सतम्वर्गीय भाषाएँ वहाँ भी पहुँची होंगी। लैटिन के वैभव काल में उनका ध्वनितंत्र बचा रहा, जैसे ही लैटिन का प्रभुत्व समाप्त हुआ, अपनी विशेषताओं सहित वह उभर आया। तुखारी, मितन्नी और हित्ती की एक सामान्य विशेषता यह है कि ये अपने-अपने क्षेत्र में आर्य शासकों की भाषाएँ थीं और उनका व्यवहार आर्येतर भाषाओं के क्षेत्रों में होता था।

तुखारी और यूनानी भाषाओं के ध्वनितंत्र में किस तरह की समानता है, कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा :

संस्कृत	तुखारी	ग्रीक
श्वन्, श्व, श्वा, श्वान	कु	कुओन्
श्रवस्	क्लिव्	क्लॲऑस्
शत	कैंत्	हॅकतॉन्
अष्ट	ऑक्त्	ऑक्तो
चक्र	कुकैल्	कुक्लॉस्
अर्जुन	आर्कि	अर्गास्
ज्ञा	क्ना	ग्नोतॉस् (ज्ञातः)

तुखारी और यूनानी भाषाओं में च्, ज्, श्, ष् ध्वनियों का अभाव है। केंतुम् वर्ग की सभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भाषाओं में यह स्थिति नहीं है। जर्मन में श् की भरमार है, अँग्रेजी में च्, ज्, श् तीनों हैं। तुखारी ध्वनितंत्र के जितना निकट ग्रीक-लैटिन का ध्वनितंत्र है, उतना अन्य किसी नई-पुरानी भाषा का नहीं है। यूरोप की नई भाषाएँ जहाँ च्, ज्, श् ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों को स्वीकार कर लेती हैं, वहाँ उनकी पूर्वज भाषाएँ उन्हें स्वीकार नहीं करतीं, उनमें केंतुम् पद्धति के अनुसार परिवर्तन करती हैं। परिवर्तन यूरोप की भाषाएँ करती हैं, पर भाषा-विज्ञानी कहते हैं, परिवर्तन संस्कृत में होता है। मानो मूल शब्द था कु, वह संस्कृत में ष हो गया। इसी तरह तुखारी ऑक्ष्ट संस्कृत में अष्ट हो गया ! उल्टी गंगा बहाने की यह बहुत अच्छी मिसाल है। उल्लेखनीय है कि नाग भाषा बोरो शुक, शनि, शूली जैसे शब्दों को कुकुर, कोनि, कुलि रूप में ग्रहण करती है !

हज़ारों साल से भारतीय भाषा परिवार एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। संस्कृत में ऋच् और ऋक्, युज् और योग, दिश् और दिक् के जोड़े देखते ही स्पष्ट हो जाएगा कि कंठ्य ध्वनियों के तालव्यीकरण की स्थापना, संस्कृत के संदर्भ में, मिथ्या है।

मिकिनीअन ग्रीक में अश्व का प्रतिरूप है इक्वॉ।[90] तुखारी भाषा में अश्व पहुँचेगा तो अक्व जैसे रूप में। लैटिन में अश्व का प्रतिरूप ऍक्वुउस् मिकिनीअन इक्वॉ से मिलता-जुलता है। तुखार क्षेत्र घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। तुक्खार अर्थात् तुखारी घोड़ा, अलग एक शब्द ही बन गया। अक्व रूप वहाँ से यूनान और इटली पहुँचा हो तो आश्चर्य नहीं। किंतु क्लासिकल ग्रीक में इक्वॉ जैसा कोई रूप नहीं है। वहाँ अश्व का प्रतिरूप है हिप्पॉस्। मिकिनीअन सभ्यता के विनाश के बाद यह रूप ईरान से वहाँ पहुँचा है। ग्रीक हिप्पॉस् का सीधा संबंध अवेस्ता के अस्पो से है। ओष्ठ्य क् की धारणा से इस रूप की व्याख्या नहीं होती। ऐसे रूप पूर्व से पश्चिम को जा रहे हैं, इसका एक प्रमाण और है। मिकिनीअन ग्रीक में होमर से पहले हाथी दाँत के लिए ऍलॅफन्नॅन्तॅइ रूप मौजूद है।[91] इसका ऍल् तो पश्चिमी एशिया की सामी भाषाओं से ही प्राप्त हो सकता था।

मिकिनी नगर मुख्य यूनानी भूखंड के दक्षिणी भाग में था। रथ वहाँ निश्चय ही मितन्नी-हित्ती क्षेत्र से पहुँचा है। यह अरायुक्त रथ है। मृद्भांडों, भित्तिचित्रों, समाधिगृह के स्तंभों और लेखन के लिए प्रयुक्त मृद्पट्टिकाओं पर उसके चित्र अंकित हैं। पहिए में सदा चार अरा होते हैं और रथ को घोड़े खींचते हैं। रथ तो एशिया से उधर ही गया है, अनेक पश्चिमी लेखक यह भी सोचने लगे हैं, शायद यूनानी भी एशिया से यूरोप पहुँचे हों ! कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री में गर्नी का कहना है, यूनानी कहाँ से आए थे, यह निश्चित नहीं है; "पुरानी धारणा कि वे उत्तर से आए थे, हाल के पुरातात्विक अनुसंधानों से डिग चुकी है। इनसे (हाल के अनुसंधानों से) उनका संबंध उत्तर-पश्चिमी अनातोलिया से सूचित होता है"।[92] इंडोयूरोपियन भाषाएँ गोरे लोगों की भाषाएँ हैं, इसलिए यूनानियों का उत्तर से आना ज़रूरी था, पर वे अपने साँवले रंग के लिए विख्यात थे। बर्न के शब्दों में कवयित्री साफ़ो नाटी और साँवली थी, "दरअसल औसत यूनानी जैसी थी—little and dark; typically Greek in fact..."।[93]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्र 2. सिंधु घाटी की मुद्रा पर अंकित योगी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

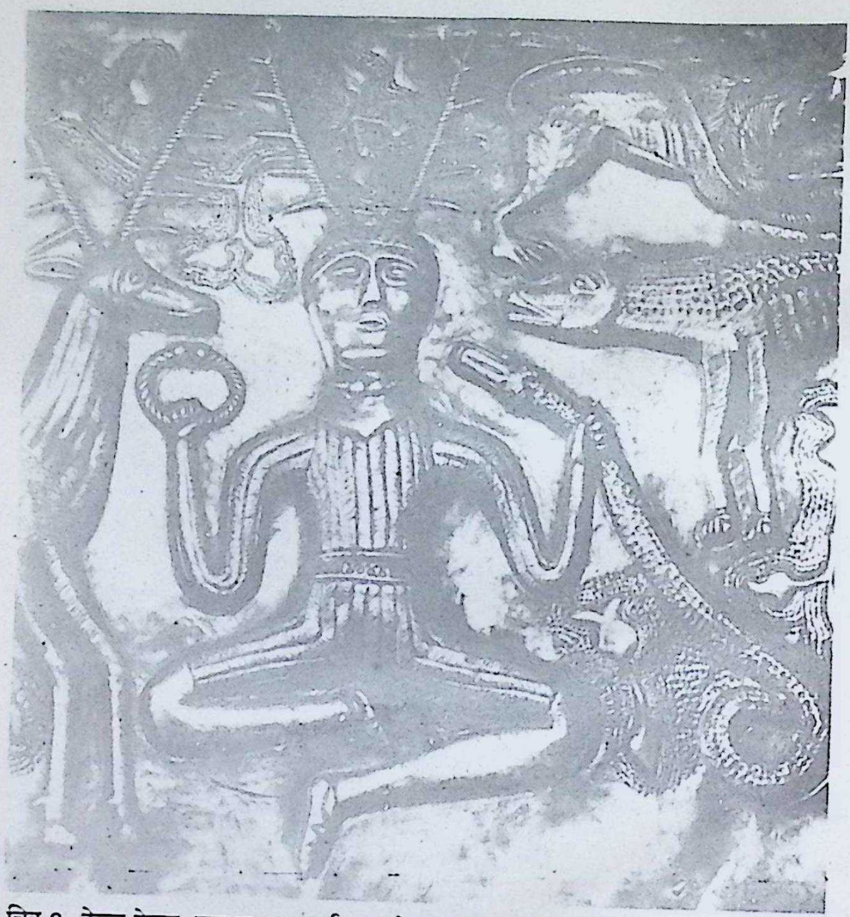

चित्र 3. केल्त देवता, लगभग 1000 ई० पू० के भांड पर अंकित। सिंधु घाटी के योगी से इनका आसन तुलनीय है। (मार्क अलेग्ज़ेंडर की पुस्तक 'ब्रिटिश फोकलोर, मिथ्स ऐंड लेजेंड्स'; लंदन, 1982 में पृष्ठ 13 पर प्रकाशित)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संभव है, यूनानियों की एक खेप भारत के उत्तरी सीमांत से गई हो। प्राकृतों में जिसे पैशाची कहा गया है, उसमें सघोष महाप्राण ध्वनियाँ वैसे ही बदलती हैं जैसे ग्रीक में। मेघ-मेख, धूलि-थूलि, भगवती-फकवती—ये पैशाची में ध्वनि परिवर्तन के नमूने हैं। इनसे तुलनीय हैं ग्रीक रूपांतरण— धूम-थूमॉस्, मधु-मथु, दीर्घ-दॉलिखॉस्। पैशाची का क्षेत्र भारत का उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश था। इसे बोलने वालों में चूलिक जन भी थे। इनका नाम तुखार, यवन, पल्लव और चीनियों के साथ लिया जाता रहा है। बृहत्तर भारत के तुखारी-पैशाची क्षेत्रों से जो लोग यूनान गए हों, वे अपने साथ इन भाषाओं की विशेषताएँ ले गए हों, यह बिलकुल संभव है। ये विशेषताएँ आर्य भाषाओं में द्रविड़, नाग अथवा अन्य आर्येतर प्रभावों से उत्पन्न हुई होंगी। इस प्रकार केंतुम् वर्ग की भाषाएँ भारत के उत्तरी क्षेत्र में से पश्चिमी यूरोप पहुँचती हैं और सतम् वर्ग की भाषाएँ भी उत्तर-पश्चिमी प्रदेश से ईरानी-स्लाव क्षेत्र में पहुँचती हैं।

पूर्व से पश्चिम की ओर भाषा तत्वों के प्रवाह का एक प्रमाण और है। केल्त समुदाय के वेल्श जन आदि स्थानीय ब् के पहले ग् जोड़ देते हैं। प्रचलित नाम वाल्टर को गुआल्तर, विलियम को गुइलोम कहेंगे। इस ध्वनि प्रकृति की लीक बलूचिस्तान-ईरान से इटली, स्पेन, पुर्तगाल होती हुई ब्रिटेन पहुँची है। संस्कृत-वात, बलूची ग्वात; सं० वृक, फ़ारसी-गुर्ग; सं० विद्—इतालवी गुइवारे (पथ दिखाना), स्पेनी-पुर्तगाली—गुरुप (पथदर्शक), अँग्रेज़ी गाइड; सं० विधवा—वेल्श गुएद्दु। केल्त जनों की मूल शाखा सिंधु नदी के तटवर्ती प्रदेश से गई थी, इसका एक प्रमाण और है। ब्रिटेन में लगभग 1000 ई०पू० का एक भांड मिला है जिस पर केल्त जनों के देवता का चित्र अंकित है। योगी की मुद्रा में रीढ़ सीधी किए वह पशुओं से घिरे, एक हाथ में सर्प लिए बैठे हैं।[94] उनके सिर से दो सींग निकले हुए हैं। उनकी योगी वाली मुद्रा उन्हें हड़प्पा के योगी अथवा पशुपति से जोड़ती है। दोनों में इतना साम्य है कि वह आकस्मिक नहीं हो सकता। बलूचिस्तान से, वात को ग्वात बोलते हुए, केल्त जन यूरोप पहुँचे और साथ में भारतीय देवचिह्न भी लेते गए।

तुखारी की तरह केल्त भाषाएँ केंतुम् वर्ग की हैं। मानना चाहिए, चीनी तुर्किस्तान से लेकर बलूचिस्तान तक केंतुम् वर्ग की भाषाएँ काफ़ी बड़े क्षेत्र में फैली थीं। इस वर्ग की भाषाएँ बोलने वाले अनेक जन पश्चिमी एशिया गए, संभवतः हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के बाद। चीनी तुर्किस्तान में तुखारी बच रही। छठी से दसवीं सदी ईस्वी के बीच भारतीय मूल के शासक वहाँ इसका व्यवहार करते रहे। इस भाषा के दो रूपों के बारे में बरो ने ज़ोर देकर कहा है कि उनका कोई भी विशेष संबंध हिंदी-ईरानी शाखा से नहीं है।[95] हिंदी-ईरानी अर्थात् संस्कृत। वास्तव में संस्कृत से जैसा संबंध अन्य प्राकृतों का है, वैसा ही संबंध तुखारी का है। और वैसा ही संबंध संस्कृत से प्राचीन ईरानी का है। अवेस्ता की भाषा "संभवतः संस्कृत के उतना ही निकट है जितना प्राकृत", **विलियम जोन्स** की यह धारणा सही थी।[96]

ईरानी भाषा के क्षेत्र का विस्तार धीरे-धीरे और बहुत बाद को हुआ। अफ़गानिस्तान इसका उदाहरण है। वैदिक काल में वह सप्तसिंधु क्षेत्र का अंग था। **ऋग्वेद के पक्थ**, ज़िमेर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के अनुसार, आज के पख्तून हैं।[97] ऋग्वेद की कुभा को काबुल नदी बनने में बहुत समय लगा। सिकंदर के आक्रमण के समय इसे लोग कुभा ही कहते थे, इसी कारण यूनानी वृत्तांतों में इसे कॉफॅनू कहा गया है। अवेस्ता में हप्त हिंदु का उल्लेख सिकंदर से कुछ ही पहले का है जब ईरानी शासक पंजाब पर अधिकार जमाने के लिए इस ओर बढ़ रहे थे।[98] उससे यह भी पता चलता है कि उस क्षेत्र का सप्तसिंधु नाम शताब्दियों तक प्रचलित रहा था।

भारतीय आर्य भाषा समवाय की एक शाखा है केंतुमूवर्गीय जो मितन्नी-हित्ती होती हुई यूनान पहुँची। इससे पहले दूसरी सतमूवर्गीय शाखा क्रीट पहुँची और अन्य दिशा में ईरान होती हुई पूर्वी यूरोप पहुँची। इंडोयूरोपियन भाषा परिवार में आधारभूत तत्व यूरोपियन नहीं भारतीय हैं। केवल भारत नहीं, बृहत्तर भारत एक अंतर्गठित भाषा क्षेत्र है। आर्य तथा आर्येतर भाषा समुदायों के निरंतर संपर्क से 'इंडोयूरोपियन' परिवार का निर्माण हुआ है।

झ. भाषा विज्ञान और लोक संगीत

आचार्य बृहस्पति का एक शिक्षाप्रद निबंध है—'हंगरी, रूस और मंगोलिया के संगीत पर भारतीय प्रभाव'। इसमें वह एक जगह कहते हैं : "हंगरी के लोक-संगीताश्रित कार्यक्रमों को सुनकर हमने यह निष्कर्ष निकाला कि वहाँ के एशियाई संगीत में भोपाली, मालकोस, मेघ, दुर्गा और धानी जैसे राग भलीभाँत प्रचलित हैं। बिलावल, खमाज, काफ़ी, आसावरी, भैरवी और कल्याण ठाठ भलीभाँति प्रचार में हैं और वे लोग उस **'मूर्च्छना-पद्धति'** द्वारा उन्हें प्राप्त करते हैं, जो 'नाट्य-शास्त्र', 'संगीतरत्नाकर' और 'संगीतराज' जैसे भारतीय ग्रंथों के स्वरशास्त्र का तो मेरुदंड है, पर व्यवहार में आज भारत से बहिष्कृत हो गई है"।[99] (शब्दों पर ज़ोर मेरा है—रा०वि०)।

हंगरी का संगीत वहाँ के लोक-संगीत से जुड़ा था। उसमें भारतीय राग सुनाई देते थे। यहाँ के शास्त्रज्ञ संगीतकारों से तो हंगरी के गायकों ने ये राग सीखे न होंगे। वे उन्हें परंपरागत लोक-संगीत से प्राप्त हुए थे। यह परंपरागत संगीत हमारे यहाँ भी था, शास्त्रकारों ने राग वहीं से प्राप्त किए थे। इनमें काफ़ी जैसा राग भी है। जो राग मुसलमान दरबारों की देन माने जाते हैं, उनमें काफ़ी भी है। "त्यागराज के द्वारा कल्याणी (तुरुष्कप्रिय राग), पंतुवराली (तुरूष्कप्रिय राग), दरबार, शहाना, काफ़ी, हुसेनी, नायकी रागों में निर्माण मुग़ल दरबारों के सुदूरवर्ती प्रभाव का परिणाम है"।[100] मुग़ल दरबारों का प्रभाव त्यागराज तक पहुँचा हो, यह तो संभव है पर वह हंगरी के परंपरागत लोक संगीत तक पहुँचा हो, यह संभव नहीं है।

स्पष्ट ही हंगरी निवासी मग्यार जनों के पूर्वज जब हमारे पड़ोसी थे, तब यह लोकसंगीत निर्मित हुआ था। मग्यार भाषा तुर्क-मंगोल परिवार की है और इस परिवार के अनेक भाषिक तत्व आर्य-द्रविड़ परिवारों में सुलभ हैं। इनका विवेचन मेरी पुस्तक **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी** के दूसरे खंड में है। मेरी स्थापनाओं की पुष्टि संगीत के सामान्य तत्वों से होती है। सोलहवीं सदी में हिंदुस्तानी संगीत का अभूतपूर्व विकास लोक-संगीत के आधार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पर हुआ। जो लोग हर अच्छी चीज का उद्भव शास्त्रों में देखते हैं, वे नए रागों को हिंदू शास्त्रों में नहीं पाते तो उन्हें मुसलमान शास्त्रों की उपज मान लेते हैं। काफ़ी राग के संबंध में एक घटना का उल्लेख प्रासंगिक होगा। मैं बलवंत राजपूत कालेज आगरा के प्रिंसिपल डा० रामकरन सिंह के घर के बरामदे में बैठा हुआ था, तभी वहाँ लखीमपुर खीरी के एक कालेज के प्रिंसिपल ठाकुर जयदेवसिंह पधारे। संगीत की चर्चा करते हुए उन्होंने लोक-गीतों को अनेक रागों का आधार बताया। फिर बोले—बिरहा यों गाते हैं, इससे काफ़ी राग यों बनता है। दोनों बातें उन्होंने गाकर स्पष्ट कीं।

जैसा अनुभव आचार्य बृहस्पति को हंगरी में हुआ, वैसा ही उन्हें रूस में हुआ। "हम लोगों को रूस के विभिन्न प्रदेशों का संगीत सुनने का अवसर मिला। साइबेरिया की बाइकाल झील के आसपास के **लोकसंगीत** में भारतीय राग 'सिंदूरा' के दर्शन हुए। स्योलेन्स्ख में 'भोपाली' विराजमान है, 'दोन' नदी के आसपास 'दुर्गा' के स्वर गूँजते हैं, बेलग्रेड की अनेक 'धुनें' भारतीय धुनों के सदृश हैं। कीव में 'झंझोटी', 'गुनकली', 'जौनपुरी' दिखाई दीं और येखान में 'जोगिया', 'गुनकली' इत्यादि के दर्शन हुए"।[101] आचार्य बृहस्पति को मालूम है, "संघ की राष्ट्रभाषा 'रूसी' भारोपीय परिवार की भाषा है और उसमें संस्कृत भाषा के शब्द भी कम नहीं हैं"।[102] इसलिए स्लाव जनों के लोकसंगीत और भारतीय रागों के सामान्य तत्व भी काफ़ी पुराने होने चाहिए। 'जौनपुरी' का नामकरण बाद में हुआ, राग के मूलतत्त्व लोकसंगीत में न जाने कब से बने हुए थे।

येरवान आर्मीनिया की राजधानी है। आर्मीनिया के लोग स्लाव नहीं हैं पर इनकी भाषा भी हमारे देश की आर्य भाषाओं से संबद्ध है। येरवान के अनुभव का वर्णन करते हुए आचार्य बृहस्पति ने लोकसंगीत से शास्त्रीय संगीत का संबंध बहुत स्पष्ट कर दिया है :

"येरवान पहुँचकर जब हमने **लोकगीतों पर आश्रित एक विशिष्ट कार्यक्रम** सुना, तब हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। हमारे अनेक राग उन लोकगीतों में मचल रहे थे। वादक प्रायः **उसी शैली से स्वरावलियों का विस्तार** कर रहे थे, जिस प्रकार हम लोग करते हैं।

"हमने अपने दुभाषिए से कहा कि हम इन स्वरावलियों से परिचित हैं। हमसे अनुरोध किया गया कि हम लोग मंच पर चलें और आर्मीनियन श्रोताओं के लिए कुछ प्रस्तुत करें। हम लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक यह अनुरोध स्वीकार किया और हम लोग मंच पर गए।

"सुलोचनाजी रस और भाव को समझती हैं। महाराष्ट्र कन्या होने के कारण उनमें उत्साह, आत्मविश्वास का प्राचुर्य है। उन्होंने 'जोगिया' राग चुना और प्रायः पच्चीस मिनट तक उस **राग का विस्तार** किया। हाल गूँज उठा। सन्नाटा छाया हुआ था, येरवान के वादक अत्यंत सफलतापूर्वक सुलोचना जी की संगति कर रहे थे। हम लोग भी अत्यंत प्रसन्न थे और श्रोता भी।

"इस कार्यक्रम में येरवान की एक गायिका के साथ सुलोचनाजी का 'जुगलबंदी **आलाप**' हुआ, क्योंकि स्वर तो भाषा-निरपेक्ष है। सुलोचनाजी ने 'गुनकली' आरंभ की, प्रायः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पंद्रह मिनट तक **'आलाप'** की भाषा में दोनों गायिकाएँ जैसे प्रश्नोत्तर करती रहीं। सभी लोग प्रसन्न, चकित और गद्‌गद् थे"।[103] (शब्दों पर ज़ोर मेरा है—रा०वि०)। स्वरावलियों का विस्तार, राग का विस्तार, आलाप—यह सब शास्त्रीय गायन माना जाएगा और वह लोकगीतों पर आश्रित एक विशिष्ट कार्यक्रम के अंतर्गत संपन्न हुआ था। यह सारी संपदा अति प्राचीन भारतीय लोकसंगीत में विद्यमान थी।

भाषाओं का इतिहास लिखने के लिए लोक भाषाओं का सर्वेक्षण ज़रूरी है। उसी तरह संगीत का इतिहास लिखने के लिए लोक-गीतों का सर्वेक्षण ज़रूरी है। देश में अनेक कला संस्थान हैं। ये भारत (और भारत के साथ पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल आदि) के लोक-गीतों का सर्वेक्षण करा सकते हैं। योजना के दूसरे चरण में वे मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों को समेट सकते हैं। तीसरे चरण में स्लाव क्षेत्रों और चौथे चरण में केल्त (आयरलैंड, वेल्स, स्काटलैंड), जर्मन, लातीनी भाषा क्षेत्रों को ले सकते हैं। पूरा सर्वेक्षण न हो, कुछ नमूने ही एकत्र कर लिए जाएँ तो उनसे दिलचस्प नतीजे निकलेंगे। भारत के प्रमुख भाषा परिवारों का विकास पारस्परिक संपर्क का परिणाम है। किसी भाषा क्षेत्र के लोक-गीत हों, यह असंभव है कि अन्य भाषा क्षेत्रों से उनके संगीत के तत्वों का विनिमय न हुआ हो। यह कार्य संगीत के इतिहास के लिए तो महत्वपूर्ण होगा ही, वह उसके विकास में भी असाधारण सहायता कर सकता है।

संगीत चिंतामणि में प्रकाशित विदेश-यात्रा वाले लेख में आचार्य बृहस्पति ने लोक-संगीत का बार-बार उल्लेख किया है :

"मेरी रुचि आतिथेय देशों के 'लोक-संगीत' की ओर अधिक थी"।
"कीव में यूक्रेनियन लोकगीत सुनकर हमारा हृदय प्रसन्नता से भर गया"।[104]

"हमें मंगोलिया के लोक-संगीत पर आश्रित एक कार्यक्रम बहुत अच्छा लगा। अनेक लोकगीतों में भारतीय स्वरावलियों और छंदों का प्रयोग हो रहा था...रागों के आलाप की प्रथा भारत की भाँति मंगोलिया में भी है। राष्ट्रीय वाद्यवृंद में हमें भोपाली, धानी, मालकोंस, मेघ और दुर्गा के दर्शन मंगोलिया में भी हुए"।[105]

बृहत्तर भारत, आंतरिक रूप से सुसंबद्ध, एक भाषाई क्षेत्र है। इसी प्रकार वह आंतरिक रूप से सुसंबद्ध संगीत क्षेत्र भी है। उसके लोकगीतों का सर्वेक्षण, उनका अंकन-टंकन शीघ्र न होगा तो बहुत बड़ी सांस्कृतिक संपदा नष्ट हो जाएगी। मादक औषधियों जैसा डिस्को संगीत हर तरफ फैल रहा है। सर्वेक्षण की शुरुआत आर्य भाषा क्षेत्र से कर सकते हैं और यहाँ के लोकसंगीत से रागों का संबंध निर्धारित कर सकते हैं।

संगीतशास्त्र में स्वर और श्रुति का संबंध महत्वपूर्ण है। वह पूरी संगीत पद्धति को प्रभावित कर सकता है। श्रुति को स्वर का एक घटक मान लें। स्वरों में इन घटकों की संख्या हिंदुस्तानी और कर्णाटक पद्धतियों में अलग-अलग तरह की है। आश्चर्य की बात यह है कि कर्णाटक पद्धति यूनानी पद्धति से मिलती-जुलती है। यदि ग्रीक भाषा में विद्यमान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्रविड़ तत्वों पर ध्यान दें तो संगीत पद्धतियों की इस समानता में आश्चर्य की कोई बात न होगी। परांजपे ने भारतीय संगीत के इतिहास में लिखा है: "भरत के शुद्ध स्वरग्राम की श्रुति संख्या दक्षिण के मुखारी नामक मेल से सर्वथा भिन्न है।" मुखारी मेल के ऋषभ और धैवत में दो-दो श्रुतियाँ होती हैं, शेष स्वरों में चार-चार होती हैं। इसके विपरीत हिंदुस्तानी संगीत के ऋषभ और धैवत में तीन-तीन, गांधार और धैवत में दो-दो तथा शेष स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ होती हैं। परांजपे कहते हैं : "आधुनिक उत्तरात्य संगीत की स्वर लिपि के अनुसार यह (दाक्षिणात्य) स्वर सप्तक निम्नानुसार होगा—सा रे रे ग म प ध ध सां—जो कि प्राचीन यूनानी संगीत के क्रोमैटिक अर्थात अर्धस्वराधारित मेल से मिलता-जुलता है"।[106]

इसी तरह सप्तक से भिन्न अष्टक की कल्पना है। बृहस्पति का कहना है: "ईरानी संगीत में इस शब्द (मुकाम) का प्रयोग अष्टक या ऑक्टेव के लिए होता है। सप्तक के स्थान पर अष्टक की स्वर प्राप्ति का आधार माना जाना यूनानी प्रभाव का द्योतक है"।[107] अष्टक का चलन कर्णाटक पद्धति में है और अब हिंदुस्तानी पद्धति में भी है। पश्चिमी एशिया के प्राचीन हुर्री जन, कुछ इतिहासकारों के अनुसार, द्रविड़ थे। संख्या सूचक शब्दों में दहाई के बाद इकाई रखना द्रविड़ पद्धति है! इस पद्धति का चलन फ़ारसी और ग्रीक दोनों भाषाओं में है, विशेष रूप से बीस के बाद इसका चलन धुर उत्तर की अँग्रेज़ी जैसी भाषा तक में है ('फिफ्टीन' में इकाई पहले है, 'ट्वन्टीवन' में दहाई के बाद है)। पश्चिमी एशिया और यूरोप की भाषाओं को आर्य भाषाओं ने ही नहीं द्रविड़ भाषाओं ने भी प्रभावित किया है। इसी तरह उनके संगीत को 'हिंदुस्तानी' संगीत ने ही नहीं, 'कर्णाटक' संगीत ने भी प्रभावित किया है। अत्यंत प्राचीन काल से भारतीय भाषातत्वों का निर्यात पश्चिम की ओर होता रहा है, दोनों ओर की संगीत संबंधी (आर्य + द्रविड़) समानताओं से इस स्थापना की पुष्टि होती है।

संदर्भ

1. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री (तीसरा संस्करण), खंड I, भाग 1, पृ० 130-31.
2. उप०, पृ० 145.
3. बिबी, लुकिंग, फ़ॉर दिलमुन्, पृ० 79.
4. प्रिचार्ड, एन्शेंट निअर ईस्टर्न टेक्सट्स पृ० 61-63.
5. रू, एन्शेंट इराक़, पृ० 96.
6. प्रिचार्ड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 450.
7. पोसेल, एन्शेंट सिटीज़ ऑफ़ द इंडस, पृ० 171.
8. उप०, पृ० 171-72.
9. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री, पृ० 149.
10. कोसंबी, ऐन इंट्रेडक्शन टु द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री, पृ. 111.
11. रू, पूर्वोल्लिखित, पृ.० 95.
12. गैड, सुमेरिअन रीडिंग बुक, पृ० 30.
13. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री, पृ० 153.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

14. उप०, पृ० 154.
15. उप०।
16. हुड, द होम ऑफ़ द हीरोज़, पृ० 8.
17. उप०।
18. पिगॉट, प्रिहिस्टौरिक इंडिया, पृ० 277.
19. उप०, पृ० 276.
20. उप०, पृ० 277.
21. उप०, पृ० 278.
22. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 17.
23. उप०, पृ० 35.
24. हिगिंस, मिनोअन ऐंड मिकिनीअन आर्ट, पृ० 16.
25. उप०, पृ० 17.
26. उप०, पृ० 67.
27. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 74.
28. उप०, पृ० 73.
29. टोयन्बी, ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री, खंड 1, पृ. 106.
30. हिगिंस, पूर्वोल्लिखित, पृ० 7
31. उप०, पृ० 80.
32. मैकडनल, वेदिक मिथौलौजी, पृ० 158.
33. मोनियर विलियम्स, ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० 468.
34. बर्न, द लिरिक एज ऑफ़ ग्रीस, पृ० 38.
35. चैडविक, द डिसाइफ़रमेंट ऑफ़ लीनिअर-बी, पृ०-52
36. उप०, पृ० 22.
37. उप०, पृ० 12.
38. चिन्मय दत्त, सेलेक्शंस फ़्रॉम अवेस्ता ऐंड ओल्डपर्शियन, पृ० XXV
39. उप० पृ० XXIV.
40. हिगिंस, पूर्वोल्लिखित, पृ० 189.
41. बरो, द संस्कृत लैंग्वेज, अध्याय तीन।
42. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 128.
43. उप०, पृ० 99.
44. उप०।
45. पोसेल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 169.
46. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 99.
47. इलिअडॉस, सर्ग 4, पंक्ति 141.
48. मिलोनस, एन्सेंट मिकिनी, पृ० 160-61.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

49. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 68.
50. कनिंघम, द एन्शेंट जिऑग्राफ़ी ऑफ़ इंडिया, पृ० 472.
51. उप०, पृ० 420.
52. उप०, पृ० 472.
53. उप० ।
54. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 41.
55. उप०, पृ० 85.
56. उप०, पृ० 104.
57. उप०, पृ० 41.
58. हिगिंस, पूर्वोल्लिखित 296-97.
59. मैकाय, फर्दर एक्सकैवेशंस, पृ. 293-94.
60. उप० ।
61. उप०, पृ० 296-97.
62. उप० ।
63. हिगिंस, पूर्वोल्लिखित, चित्र संख्या 102.
64. हुड, पूर्वोल्लिखित, पृ० 94.
65. रू, पूर्वोल्लिखित, पृ० 279.
66. बर्न, द लिरिक एज ऑफ़ ग्रीस, पृ. 44.
67. बरो, पूर्वोल्लखित, पृ० 27-28.
68. उप०, पृ० 75.
69. चैडविक, पूर्वोल्लिखित, पृ० 70.
70. उप० ।
71. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 7.
72. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 15.
73. मैकडनल, पूर्वोल्लिखित, पृ० 77.
73A. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 16.
74. निल्सन, द मिनोअन- मिकिनीअन रिलीजन, पृ० 2.
75. उप० पृ० 447.
76. उप०, पृ.० 556.
77. उप.०, पृ० 411-12.
78. उप०, पृ० 77.
79. उप०, पृ० 247.
80. उप०, पृ० 338-39.
81. उप०, पृ० 423.
82. उप० ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

83. द वेदिक एज, पृ० 183.
84. उप०, पृ० 189.
85. मैकाय, पूर्वोल्लिखित, पृ० 655.
86. उप०, पृ० 656.
87. उप०, पृ० 659.
88. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 17.
89. उप०, पृ० 27-28.
90. चैडविक, पूर्वोल्लिखित, पृ० 94.
91. उप०, पृ० 154.
92. द कैंब्रिज एन्शेंट हिस्ट्री, खंड II, भाग 3. पृ० 855.
93. बर्न, पूर्वोल्लिखित, पृ० 227.
94. अलेग्ज़ेंडर, ब्रिटिश फ़ोकलोर : मिथ्स ऐंड लेजेंड्स, पृ. 13.
95. बरो, पूर्वोल्लिखित, पृ० 16.
96. डार्मेस्टेटर, द जेंद अवेस्ता, भाग 1, पृ० xx.
97. द वेदिक एज, पृ० 247.
98. डार्मेस्टेटर, पूर्वोल्लिखित, पृ० 4.
99. बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, प्रथम खंड, पृ० 46.
100. उप०, पृ० 339.
101. उप०, पृ० 45.
102. उप०, पृ० 56.
103. उप०, पृ० 43.
104. उप०, पृ० 46.
105. उप०, पृ० 46-47.
106. परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० 207.
107. उप०, पृ० 211.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुस्तक सूची

Alexander, M. : British Folklore, Myths and Legends; London, 1982.

Allchin, B. and R. : The Birth of Indian civilization, Penguin, 1968.

Alkinson, E.T. : Geology of the Himalayas, New Delhi, 1980.

Barua, B. : A History of Pre-Buddhistic Indian Philosophy; Delhi, 1981.

Bibby. T.G. : Looking for Dilmun; New York, 1969

Brandon, S.G. T. : Creation Legends of the ancient Near East, London, 1963.

Brugmann, K. : Elements of the Comparative Grammar of the Indo Germanic Languages, Varanasi, 1972.

Bullfinch's Mythology, New York.

Burn, A.R. : The Lyric Age of Greece, Surrey, 1978.

Burrow. T : The Sanskrit Language; London, 1965.

Ceram, C.W. : The Secret of the Hittites; New York, 1958.

Chadurick, J. : The Deciphement of Linear B; Penguin, 1961.

Chattopadhyaya, D. : Religion and Society, Bangalore, 1987.

Childe, V.G. : New Light on the most ancient East, London, 1958.

Cumont, F. : Oriental Religions in Roman Paganism; Chicago, 1911.

Cunningham, A. : The Ancient Geography of India; Varanasi, 1963.

Darmesteter, J. : The Zend-Avesta, Part I, Delhi, 1965.

Dutt, C. : Selections from Avesta and Old Persian; Calcutta, 1973.

Emeneau, M.B. : Collected Papers; Annamalai, 1967.

Gadd, C.J. : A Sumerian Reading Book; Oxford, 1924.

Gourney, O.R. : The Hittites; Penguin, 1961.

Higgins, R. : Minoan and Mycenaean Art, London, 1967.

Homer : Iliados; London, 1978.

Hood, S. : The Home of the Heroes; London, 1967.

Hooke, S.H. : Babylonian and Assyrian Religion; Oxford, 1962.

James, E.O. : The Ancient Gods; London, 1960.

Jobb, R.C. : Introduction to Homer; Glasgow, 1894.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Kaegi, A. : The Regveda, the oldest literature of the Indians; New Delhi, 1972.

Kanga, M.F. : and Sotakke, N.S. : Avesta; Poona, 1962.

Kosambi, D.D. : An Introduction to the Study of Indian History; Bombay; 1956.

Kramer, S.N. : The Sumerians; Chicago, 1972.

Lal, B.B. & Gupta, S.P. : Frontiers of the Indus Civilization; New Delhi, 1984.

Macdonell, A.A. : Vedic Mythology; Delhi, 1981.

Mackay, E.J.H. : Early Indus Civilization; New Delhi, 1976.
: Further Excavations at Mohenjodaro; New Delhi 1938.

Majumdar, R.C. : The Vedic Age; London, 1951.

Marshall, J. : Mohenjodaro and the Indus Civilization; Delhi, 1973.

Marx-Engels : Collected Works, Vol4; Moscow, 1975.
: On Colonialism; Moscow, 1978.
: The First Indian War of Independence, Moscow.

Murray, M.A. : The Splendour that was Egypt; London, 1964.

Mylonas, G.E. : Ancient Mycenae, the capital city of Agamemnon, London, 1957.

Nilsson, M.P. : The Minoan Mycenean Religion and its Survival in Greek Religion; Lund, 1950.

Pargiter, F. E. : Ancient Indian Historical Tradition; Delhi, 1972.

Piggott, S. : Prehistoric India (to 1000 B.C.); London, 1962.

Possehl, G.L. : Ancient Cities of the Indus; New Delhi, 1979.

Pritchard, J.B. : Ancient Near Eastern Texts; Princeton, 1955.

Ranade, R.D. : A Constructive Survey of Upanishadic Philosophy; Bombay; 1986.

Rao, S.R. : Lothal and the Indus Civilization; New Delhi, 1973.

Renfrew, C. : Archaeology and Language; London, 1987.

Rose, H.J. : A Handbook of Greek Mythology; Methuen, 1958.

Roux, G. : Ancient Iraq; Pelican, 1983.

Smith, V.A. : The Early History of India, Oxford, 1962.

The Cambridge Ancient History, Vol. I, Part I; Cambridge, 1986.

The Cambridge Ancient History, Vol. II, Part II; Cambridge, 1975.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Toyanbee, A.A. : A study of History, Vol. I Oxford, 1979.
Wadia, D.N. : Geology of India; 1981.
Webester, T.B.L. : From Mycenae to Homer; Methuen, 1977.
Wheeler, M. : The Indus Civilization; Cambridge, 1962.
Williams, M. : The Sanskrit English Dictionary.
Zaehner, R.C. : Zurvan a Zoroastrian Dilemma; Oxford, 1955.

उपाध्याय, गंगा प्रसाद : शतपथ ब्राह्मणम्, भाग १; नयी दिल्ली, १९६७
धर्मशास्त्र (बाइबिल); बंगलौर
पराँजपे, श० श्री : भारतीय संगीत का इतिहास; चौखंबा, १९६९
बृहस्पति : संगीत चिंतामणि, भाग १; हाथरस, १९७६
मीमांसक, युधिष्ठिर : वैदिक सिद्धांत मीमांसा; सोनीपत, वि० सं० २०३३
सिंह, भगवान : हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य; नयी दिल्ली, १९८७

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनुक्रमणिका

अंगिरस्	105, 176, 190		154, 189, 193, 195, 207, 209, 219
अंगिरा	172, 174	अदद	110
अंग्रेजी	176, 178, 188, 190, 225, 226, 236, 237, 240, 248, 253	अदन	123
अंग्रेजों	40, 53, 137	अदिति (आदित्यों की जननी)	113, 158, 167, 176, 177, 207
अंतरिक्ष	197, 219, 220	अदोनिस्	115
अंधकार युग	235, 236, 244	अधिकारवादी शासनतंत्र	61
अंबाला	137, 142, 148	अनार्य	23, 32
अकबर	145	अनार्य सभ्यता	40
अक्कद साम्राजय	88	अनु (आकाश)	119, 121, 127
अक्कदी	124, 145	अनुपात	51
अक्कर्दी अभिलेख	226	अनृत	159, 160, 161, 162, 167, 173, 186, 187
अक्कदी काल	110	अनोतोलिया	38, 40, 78, 88, 111, 230, 231, 248
अक्कदी भाषा	95, 98, 109, 226, 234	अन्कि	96
अखायी	74	अन्नागार	48, 49, 62, 80
अख्मनी	32	अपः	18, 19, 113, 159, 169, 170, 175, 176, 177, 212, 216
अगदे	125	अपभ्रंश	188
अग्नि, अग्निदेव	23, 78, 99, 102, 113, 115, 116, 147, 148, 158, 163, 164, 167, 168, 173, 178, 179, 181, 182, 183, 190, 209, 216, 217, 218, 238, 239	अपां	186, 187
अग्निकांड	30, 66	अपां नपात	158, 165, 187
अग्नि-पूजा	78	अपोफिस	101
अग्नि संबंधी कथाएँ	190	अपोफिस (आ-पेफ)	100
अतलस्	76, 107	अप्पु	155
अतुम् देव	95	अप्सरा	159
अतुम प्रजापति	106	अप्सू	95, 96, 105, 116, 131, 188, 197, 211
अत्तिस्	115		
अथर्ववेद	20, 149, 150.	अफगानिस्तान	67, 71, 132,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

	137, 143, 155, 249
अफ्रीका	109
अफ्रीकी-एशियाई	17, 20, 85, 225
अफ्रीकी-एशियाई भाषा-परिवार	228, 233
अफ्रीकी एशियाई सभ्यता	239
अफ्रीकी हब्शी	53
अव्जू	131
अभिजात, अभिजात वर्ग	47, 79, 83,
अभिषेक	77
अमर, अमरता, अमरत्व	117, 118, 119, 120, 122, 123, 124, 127, 128, 129, 160, 191, 194
अमरी संस्कृति	45
अमर्ना, अमर्ना क्रांति	86, 89, 91
अमृत वृक्ष	187
अमृतबंधु	191
अमोरी राज्य	73
अरणि, अरणिमंथन	190
अरबी	201, 236, 240, 241, 242
अरायुक्त अश्वकर्षित रथ	155
अरायुक्त रथ	230
अरायुक्त रथचक्र	87
अरिस्तोफनेस्	200
अर्जुन	166
अर्थतंत्र का नियोजित और केंद्रबद्ध स्वरूप	49
अर्थशास्त्र	55, 56, 58, 59, 62
अर्धचंद्र	110
अर्बुद	170
अर्यमन् देव	174
अल्बानिया	247
अवेस्ता	67, 149, 150, 176, 185, 186, 187, 188, 209, 241, 249, 250
अवैदिक	36, 41
अशोक, अशोककालीन	38, 57, 58, 65
अश्ममयी	26
अश्वप्रशिक्षक, अश्व-प्रशिक्षण, अश्व-विद्या	72, 73, 84, 247
अश्वसंवर्धन	87
अश्विन् अश्विन् देव	106, 159
अश्विनों, अश्विनी कुमार	105, 220
अष्टक	253
असंभाषित	58
असत्	100, 191, 193, 194, 195, 201, 208
असिक्नी (चिनाब)	143
असीरिया, असीरियन	31, 73, 84, 104, 108, 145, 178, 227, 238
असु	179
असुर	107, 151, 166, 167, 178, 179, 180, 181, 238
अस्थिपंजर	25, 26, 30
अहि	101, 102, 105, 106, 165, 166, 169, 170, 185, 186, 187, 188
अहिबुध्न्य	166, 188
अहिवृत्र	166
अहुर मज्दा	181
अज्ञात आदिम इंडोयूरोपियन भाषा	117
आउरनॉश	188, 190
आकराध्यक्ष	56
आकाश, आकाशतत्व	96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 106, 107, 108, 112, 114, 116, 117, 158, 159, 171, 172, 173, 177, 178, 181, 183, 191, 192, 207
आकाश की देवी नुत्	98, 108
आक्रमणकारी आर्य	22, 23, 24, 26, 38, 75, 146, 154, 174
आचार्य बृहस्पति	250, 251

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आत्मा 100, 101, 118, 120, 193, 202
आदि इंडोयूरोपियन 243
आदि इंडोयूरोपियन भाषा 236, 240, 242
आदित्य 97, 109, 130, 166, 176, 177, 201
आदि भाषा 229
आदिम काल 158
आदिम ग्रामसमाज 24
आदिम जलराशि 95, 96, 105, 113, 194, 196, 199, 203, 204, 205, 207, 208, 226
आदिम भाषा 225
आदि मातामही भाषा 154
आदिम संस्कृतियाँ 47, 54
आदिवासी 22, 23, 24, 26, 102, 171, 175, 205
आदिवासी सभ्यताएँ 64
आप: 18, 96, 104, 113, 122, 132, 158, 159, 160, 161, 162, 172, 173, 175, 176, 185, 187, 212
आपया 143
आपि 163
आमा 26
आयरलैंड 229, 252
आयस 23
आयसी 23, 26
आर० के० सूद 139
आर्मीनियन 241, 242, 251
आर्य 17, 18, 20, 21, 22, 23, 25, 26, 30, 31, 36, 38, 39, 41, 42, 45, 54, 60, 66, 67, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 84, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 111, 123, 132, 140, 142, 149, 150, 155, 172, 176, 178, 179, 181, 187, 197, 201, 204, 227, 228, 231, 232, 237, 238, 239, 242, 243, 247, 250
आर्यगण 241
आर्य भाषा 40, 42, 77, 86, 227, 232, 249, 251, 253
आर्येतर 22, 26, 32, 36
आर्येतर प्रभाव 240, 241, 249
आर्येतर भाषा 247, 250
आर्येतर संस्कृति 33
आर्यों का आक्रमण, विनाश 18, 19, 27, 29, 30, 36, 41, 42, 54, 66, 67, 71, 88, 132, 187, 237
आर्यों का द्वितीय अभियान 72
आर्यों के उपनिवेश 89
आर्सेनिक 48
आलब्राइट 225, 227, 228
आलब्राइट तथा लैंबडिन 86, 87, ८८
आलाप 252
आसावरी 250
इंग्लैंड 51, 52, 182
इंजाक 127
इंझोटी 251
इंडोआर्यन 86
इंडोआर्यन आक्रमण 87
इंडोईरानियन 21, 41, 87, 116, 150, 187, 188, 242
इंडोजर्मैनिक 18, 39, 40, 229
इंडोयूरोपियन 18, 20, 21, 41, 66, 67, 74, 76, 88, 149, 150, 175, 176, 178, 189, 228, 238,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

243, 244
इंडोयूरोपियन अभियान 190
इंडोयूरोपियन देवतंत्र 176
इंडोयूरोपियन भाषा-परिवार 229, 232, 233, 236, 240, 241, 242, 246, 248, 250
इंडोशियन 232
इंदरूत 87
इंदॉस् 50
इंद्र 22, 23, 24, 27, 30, 33, 41, 66, 67, 71, 72, 75, 79, 88, 99, 101, 102, 105, 106, 110, 113, 114, 115, 116, 122, 131, 147, 155, 158, 161, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 171, 173, 174, 175, 176, 178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 195, 197, 198, 199, 208, 238, 239
इंद्रोत 87
इऑनिक भाषा 233
इटली, इटालियन 231, 233, 240, 247, 248, 249
इडा 149
इम 146
इराक़, इराकी 17, 20, 22, 27, 29, 30, 31, 36, 46, 49, 75, 76, 77, 78, 88, 98, 107, 109, 110, 111, 145, 146, 182, 225, 227
इल्लुयंकस् 112
इवान्स 182
इश्तर देवी 121
इस्लाम 210
ई० ओ० जेम्स 182, 189
ईजियन 74, 230, 231
ईजियन क्षेत्र 22
ईजियन सागर 229
ईंटें 48, 49, 60, 61, 63, 126, 132
ईरान, ईरानी 17, 18, 22, 27, 29, 30, 31, 36, 37, 46, 48, 66, 67, 78, 87, 88, 109, 123, 124, 125, 132, 137, 143, 146, 150, 155, 176, 181, 185, 187, 188, 201, 209, 228, 235, 240, 241, 248, 249, 250
ईरानी देवकथाएँ 188
ईरानी भाषा 228
ईरानी संगीत 253
ईलाम 34
ईशोपनिषद् 122
ईसाई देवशास्त्र 112
ईसाई धर्म 110
ईसा मसीह 103, 188
उतु 118, 123
उत्कीर्ण मुद्राएँ 50
उत्नपिश्तिम् 121, 122, 128, 130, 152
उद्योग 54,56,57,63,80
उपकरण 50,51,53,56, 73
उपनिवेशवाद 42
उपनिषद 72, 90, 193
उपयोगितावाद 47
उपयोगितावादी 51, 63
उपेल्लरि 97, 107
उवैदियों 227
उरानोसॅ 116
उर् 34, 227, 235

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उरूक	32
उर्दू	240
उर्वशी	165
उर्शनवी	130
उशीनरों	148
उषा	102, 105, 106, 178
ऋग्वेद	17, 18, 19, 20, 22, 23, 24, 26, 32, 33, 41, 42, 45, 66, 67, 71, 72, 75, 76, 77, 87, 90, 96, 97, 99, 100, 103, 104, 106, 107, 111, 113, 114, 115, 116, 117, 121, 122, 123, 125, 131, 132, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 147, 148, 149, 150, 153, 154, 155, 158, 161, 162, 163, 166, 170, 172, 173, 175, 176, 179, 180, 182, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 193, 194, 195, 197, 198, 200, 201, 202, 203, 204, 206, 207, 208, 209, 212, 216, 217, 219, 220, 221, 226, 227, 229, 232, 238, 239, 241, 242, 243, 249, 250
ऋग्वैदिक	148
ऋग्वैदिक आर्य	41
ऋग्वैदिक गण	142
ऋग्वैदिक संस्कृति	155
ऋचा	147, 191
ऋत	159, 160, 161, 162, 166, 167, 168, 174, 185, 186, 187, 203
ऋभु	176
ऋषभ	253
ऋषि	216, 217, 219, 222
ऋष्टिषेण	164
एंगेल्स	61
एआ	104, 116, 123, 152
एकेश्वरवाद	89
ए० घोष	138
एफ० ए० खान	27, 29, 31
एन० जी० मजूमदार	25
एनकि, एनकिदेव	103. 104, 117 120, 124, 125, 127, 131, 152
एन्किदु	118, 119, 120, 121, 122, 128
एन्कि और निन्हुर्साग कथा	122, 124, 126, 127
एन्कि और मिनहुर्साश् काव्य	123
एन्कि और विश्व - व्यवस्था कविता	125
एन्लिल (वायुदेव)	118, 120, 127
एन्शाश्	127
एमेनो	27
एलम	238, 246
एलमी भाषा	228
एशिया, एशियाई	109, 178
एशियाई-अफ्रीकी	63
एशिया के स्तेपी मैदानों	88
एश्किंगल	117
एस० पी० गुप्ता	139
ऐच (H) कब्रिस्तान	36, 37
ऐच० जे० रोज	188
ऐटकिन्सन	137
ऐतरेय ब्राह्मण	100, 154
ऐतिहासिक भाषा विज्ञान	18, 19, 20, 21, 154, 225, 229,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

	230
ऐदब (अतल)	107
ऐन्ड्रिव वर्न	233
ऐल	71, 116
एस० आर० राव	28, 128, 145
एस० ए० पैलिस	214
ओखली	49, 61
ओपेनहाइम	146
ओल्टम	137, 140, 141
ओसिरिस्	90, 103, 115
औद्योगिक क्रांति	63
औरंगजेब	145
औरेल स्टाइन	139
कंकाल समूह	41
कंगन	32, 33
कच्चा माल	145
कच्छ के रन	139, 140, 144
कच्छप	152
कठोपनिषद्	117
कथा	120
कथा के अक्कदी रूप	120
कपड़ा उद्योग	49
कपड़ा बनने	56, 58
कपसि	146
कपास	127, 145, 146
कपास की खेती	49, 50, 64
कबायलियों	25, 26
कबीलाई	57
कमु	197
कर्म्मार (धातुकर्मी)	80
कर	54
करिआ प्रदेश	182
कर्णाटक पद्धति	252, 253
कर्णाटक संगीत	253
कर्धनी	35
कर्निंघम	38, 237
कर्बसुस्	146
कर्मकर	59
कर्मकांड	55, 77, 89, 101, 214, 217, 219, 220
कलियुग	152, 153
कल्याण ठाठ	250
कल्याणी (तुरुष्कप्रियराग)	250
कवयित्री साफ़ो	248
कविता एन्कि और निन्हुर्साग	119
कश्मीर	46
कश्यप गोत्र	152
कस्सी	66, 73, 76, 85, 109, 239
कस्सी भाषा	73
काँगा	185, 188
कांसा	48, 84, 124
काँस्य दंड	52
काँस्य युग	
काँस्य युगीन सभ्यता	27, 53, 55
काअंगी	190, 197
काठक	242
काठियावाड़	45, 46
काफी, काफी राग	250, 251
काबुल	250
कामदेव	189, 200, 201, 202
कारीगर, कामगार	38, 46, 47, 58, 59, 61, 62, 63, 80, 82, 83, 85
कारीगर संघ	46, 59, 63
कारीगरी	235
कार्नवाल	124, 127
कार्नोलिअम	127
कार्पेथियन	229
काल	207, 209, 210
कालवादी	189
कालीबंगाँ	18, 28, 137, 140, 145
किलेबंदी	25, 26, 30, 245
किश् के राजा अगा	120
किसान	62, 80, 83
किसान राज्य	45
कीथ	148
कीलाक्षरी	145, 234, 235
कीलाक्षरी लिपि	87
कीव	251
कुंडलिनी	111
कुंभकार	80
कुठार	111
कुप्यगृह	56

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कुब्रूस द्वीप	32
कुभा	67, 197, 249
कुमार्बि, कुम्बार्बिदेव	116, 188
कुम्हार	37, 49
कुरु, कुरुजन	148, 151, 152, 154, 155
कुरु-पांचाल	20, 210, 221, 243
कुरुक्षेत्र	132, 143, 145, 154
कुल की भाषा	86
कुषाण	53
कुष्ठ वनस्पति	150
कृषि	76, 80, 152, 213, 215
कृषितंत्र	49, 56
कृषिजीवी	230
कृषि-वाणिज्य	153
कृष्ण	166
केंतुम् वर्ग की भाषाएँ	247, 249
केंतुमवर्गीय	243, 244, 246, 250
केंतुम् शाखा	242
केंतुम्-सतम् शाखाएँ	240
केंद्रबद्ध उद्योग	84
केंद्रबद्ध प्रशासन	54
केंद्रबद्ध राज्यसत्ता	19, 79, 82, 83, 85
केंद्रबद्ध शासन	78
केल्त	21, 230, 231, 240, 249, 252
केल्त जन	109, 182
केल्त जनों के देवता	249
केल्तिक	229
कैटभ	151
कोलंबस-पूर्व	64
कोलिन रेनफ्रीव	23
कोसंबी	52, 56, 57, 58, 62, 65, 81, 155, 172
कोष	56
कोष्ठागार	56
कौकेशस	229
कौटिल्य	55, 59, 63, 79, 80
कौरव पक्ष	72
क्षत्रिय	205, 222
क्षिति	177
क्यूबिट	51, 52
क्यूमों	209
क्रॉस	245, 246
क्रिवी	143
क्रिस्टेनसॅन	178
क्रीटी (क्रेते)	33, 74, 176, 229, 230, 231, 232, 233, 234, 235, 237, 238, 244, 245, 246, 247, 250
क्रुक	33
क्रुमु	143
क्रैमर	96, 98, 103
क्रोनोस्	116
खन्याध्यक्ष	56
खंडित मृद्पट्टिकाओं	120
खंभात की खाड़ी	126
खंभे पर टिका आकाश	76, 107
खंभे पर टिका हुआ सूर्य	113
खमाज	250
खानें	56
खानों से धातुएँ निकालना	48, 49
खाल्दिया प्रदेश (इराक़)	210
खेती	57, 59, 82, 145, 146, 168, 171, 172, 177, 184, 185
खेप्रि, खेप्रि सूर्य	98, 100
ख्रॉनॉस् (काल, समय)	188-189
गंगा	54,71, 137, 138
गतिशील दुर्ग	184
गणचिह्न (टोटेम)	152
गणनाम	143
गणप्रतीक	210
गणभाषा के रूप में ऋग्वेद की भाषा	149
गण-समाज	138, 143, 155, 177
गणित	52, 65

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गढ़	26
ग्रथी	248
गलाई हुई धातु	48
गांधार	253
गिल्गमेश्	110-22, 126-29, 154, 169, 170, 197, 213, 214
गिल्गमेश् और अग्गा	120
गिल्गमेश कथा (सुमेरी महाकाव्य)	116
गिल्गमेश की मृत्यु	118
गीत गोविंद	151
गुजरात	27, 28, 132, 137, 145
गुथरी	189
गुनकली	251
गुरदीप सिंह	139
गुलाम	53, 59, 61, 62
गूर्ने	72, 73, 75, 77-85, 107, 111, 114, 115, 181
गोअध्यक्ष	56
गोदाघर	126, 128
गोमती	143
गोर्डन चाइल्ड	24, 142
गोसीपिउस् अबोरिउम्	49
ग्रह	97
ग्रान समाज	63
ग्रिफिथ	22,76,97, 102, 107, 147, 163, 164, 173, 174, 175, 177, 182-86, 189, 196-98, 200, 201
ग्रीक	17, 18, 21, 49, 50, 154, 178, 190, 211, 229, 233, 235, 236, 237, 238, 240, 242, 243, 244, 247, 249, 253
ग्रीक भाषा	50, 146, 188, 234, 252
ग्रीक-लैटिन	248
घग्घर	137, 139, 140
घग्घर-हाकड़ा	147
चंद्र	97, 159, 176
चंद्रगुप्त मौर्य	54-55, 57, 58, 60
चंद्रदेव	98
चंद्रमा	191
चन्हुदड़ो	51
चर्मकार	80
चाँदी	50, 56, 62, 81, 84, 237
चाँदी की अंगूठी	246
चाँदी के सिक्के	81
चाइल्ड	32, 36, 37, 41, 145
चार वर्ण	205
चिन्मय दत्त	187, 234
चित्रलिपि	64, 78, 234
चीनी	249
चीनी-तुर्किस्तान	246-47, 249
चीनी लिपि	64
चुंगी	57
चुमुरि	102
चूलिक	249
छंदोग्य उपनिषद्	97, 201
जॅउस् अथवा दॅदस्	181
जनपद	57, 177
जपित्तुन	83
जमींदार	63
जयदेव	151
जयलुति	87
जरथुश्त्र	178, 185, 188, 209
जर्मन	21, 229-30, 240, 248,-252
जल	209
जलदेवता की उपासना	125, 132, 188
जल-प्रलय	20, 119, 120, 121, 132, 149, 150, 152-55, 185, 213, 214, 218, 219, 220, 221, 227

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जल-प्रलय की सुमेरी कथा	126
जलमाताएँ	103, 113
जलवादी	189
जल संबंधी कथा	190
जल संबंधी धारणा	191
जलवायु संबंधी परिवर्तनों	139
जहाज	219, 237
जातिप्रथा	19
जाति-बिरादरी	62-63
जॉन-चेडविक	234
जॉर्जरू	76
ज़िउसुद्र	119, 120, 122, 125, 126, 127, 130, 152
जिप्पबंद के ऋतुदेव	77, 78
ज़िमेर	249
जी (G) विभाग	25
जुगलबंदी आलाप	251
जुपिटर दोलिकेनुस्	111
जुर्वानपंथ	209, 210
ज़ेउस्	116, 131, 182, 188, 189, 190
ज़ेबस्	188
जेम्स बी० प्रिचार्ड	85
जोगिया	251
जौनपुरी	251
ज्यामिति	83
झूकर, झूकर संस्कृति	37, 39, 144
टीन	48
टैक्स	62
टोयननबी	55, 88, 91, 231
ठप्पा मुहर (Stamp-seal)	51, 78
ठाकुर जयदेव सिंह	251
डाइसन	139
डॉ० रामकरन सिंह	251
डी० ऐन० वाडिया	138, 170
डी० पी० अग्रवाल	139
डेरावार	46
डेल्स	29, 30
ढक्कनदार बर्तन	35
ढलाई	48
तक्षशिला	53
तमिल	234, 237
तम्मुज़	115
ताँबा	48, 84, 124, 125
ताँबे के छुरे	97
ताबीज	36, 38, 246
ताबीजों में स्वस्तिका	35
तिआमत्	95, 96, 116
तिब्बत	235
तुखारी	229, 246, 247, 248, 249
तुर्क-मंगोल परिवार	250
तुर्की	20, 40, 74, 75, 78, 227, 247
तुर्कों	88, 244
तुर्वस	23, 143
तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान	21
तुलनात्मक भाषाशास्त्र	242
तुलनात्मक व्याकरण	242
तुलसीदास	179
तूफान के देवता	98, 110, 111
तेज	19
तेल-एल-अमर्ना (मिस्र)	46, 89
तेलिपिन	76
तेलिपिनुस्	79, 83, 115-16
तेशब् (रुद्र)	111, 116
त्यागराज	250
त्वष्टा	158
त्सएनर	209
त्सिमर	143
थलेस	191
थूरिअन	190
थेबेस्	89, 103
थोथ्	112
थ्रास (थ्राके)	231
दक्खिनी बलूचिस्तान	51
दक्षिण कौकेशियाई	225
दज़ला	123
दजला नदी	104
दज़ला फरात-तटवासी	106
दनुज	232
दमिश्क	86
दयाराम साहनी	22
दरबार	250

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दहरी 210
दादापंथी सामाजिक संबंधों 152
दानपत्र 108
दानव 102, 119, 165, 166, 170, 172, 174, 181, 187, 199, 203, 204, 232
दान संबंधी अभिलेखों 109
दानु 165, 232
दामोदर धर्मानंद कोसंबी 152, 227
दारिउस 37
दार्शनिक अवधारणा 199
दार्शनिक उद्भावनाएँ 19, 20, 193, 207, 208, 210, 217,
दार्शनिक चिंतन 233
दास 23, 59, 62, 63, 80, 102, 162, 187
दासप्रथा 53, 61, 62, 81
दिलमुन् 103, 119, 122, 123, 128, 130, 145, 211, 225, 235
दिल्ली 137
दिवोदास 23, 26
दीर्घतमा ऋषि 187
दुर्ग 22, 23, 24, 26, 27, 30, 54, 56, 60, 114, 169, 172, 174, 175, 183
दुर्गध्वंसक 23, 26, 172
दुर्गा 35, 250-52
दुर्गों का ध्वंस 22, 24, 25, 115, 169, 174, 175, 184
देव 199
देवकथाएँ 40, 66, 115, 126, 131, 146, 166, 193, 196, 199
देवतंत्र 19, 20, 90, 107, 109, 113, 116, 131, 175, 176, 181, 190, 191, 200
देवता होरस्-श्येन 90
देवदारु 118, 121, 124, 127, 128
देवनाम 75
देवमंडल 67, 76, 209
देवराज एन्लिल् 119
देववात 148
देवशास्त्र 112, 114, 201
देवश्रवा 148
देवानांप्रिय 78
देवापि 163, 164
देवी इन्ना 117
देवीनिन्हुर्साग् 124
देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय 22-23
देवोपासक 147
देशजतत्व 188
दैत्य 23, 67, 101, 107, 112, 119, 166, 175, 232
दैन्यूब 109
दोन 251
दोनों अश्विन 113
द्यावा 176
द्यावापृथिवी 97, 112, 113, 114, 158, 167, 175, 200
द्युलोक 96, 99, 161, 162, 180, 195, 201
द्यौवत 253
द्यौ (सूर्य) 106, 114
द्यौस् 131, 176, 178, 181, 189
द्रविड़ 19, 27, 204, 205, 227, 249, 250, 253
द्रविड़ पद्धति 253
द्रविड़ भाषा परिवार 41, 227, 228, 253
द्रव्य का चलन 81-82

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्रषद्वती 138, 143, 148, 151
दुह्युजनों 71, 72
द्वीप 74
धरती 97
धरती-आकाश 95
धातु, धातुउद्योग 48, 53, 56, 58, 75, 84
धातुकर्मी कारीगर 37, 49, 62, 63
धातु के बने नाशपाती की आकृति के दर्पण 35
धातु के बर्तन 35
धातुनिर्मित दुर्ग 147
धातुशास्त्र 56
धानी 250, 252
धार्मिक कर्मकांड 38
धार्मिक विश्वास 55
धेनु 169
ध्वनियाँ, ध्वनिशास्त्र 234, 235
ध्वनियों का अध्ययन और वर्गीकरण 234
नक्काशी 235, 237
नक्षत्र 97
नगरनिर्माण 153, 213
नगरपालिका समिति, नगर परिषद 49, 54, 80
नगर प्रशासन 47, 49, 62, 80
नगर सभा 79
नगर सभ्यता 152
नगरों की शासन समितियाँ 78
नचिकेता 117, 118, 120, 122, 129
नदी के उद्गम स्थल 172
नदीमुख (Snout) 170
नदी सूक्त 140
नदी स्तुति 138
नमुचि 102
नर्तकी की मूर्ति 48
नर्मदा 237
नवजागरण 235
नवपाषाण युग 230, 246
नवपाषाण संस्कृति 233
नाग 232, 249
नाग दैत्य 112, 114
नाग पूजा 188
नागभाषा 248
नागरिक अर्थतंत्र 85
नागरिक मारे गए 38
नाट्यशास्त्र 219, 221, 250
नाप-जोख के बाँट 127
नाप-तौल 51, 54, 56, 57, 63, 83
नायकी 250
नारायण 227
नार्मन ब्राउन 28, 29
नाव 98, 99, 101, 102, 149, 150, 151
नासत्य 71, 88, 178, 186, 239
निप्पुर 227
नियंत्रित अर्थव्यवस्था 48
नियोजित अर्थव्यवस्था 47, 49, 84
नियोजित ढंग से उद्योग व्यापार 82
नियोजित नगर-निर्माण 52
निरंकुश 63, 78
निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता 60, 82
निरंकुश राजा, निरंकुश शासक 79, 81
निराला 179
निर्ऋति 161
निर्यात 145
नीलगिरि 46
नीलतटवासी मिस्री 106
नील नदी 102, 103, 104, 111
निल्सन 182, 244, 245
नुंत् 101
नुन् 95
नूह 153, 219, 221, 239
नृत्य और संगीत 77
नेऑर्कॉस 52
नेपाल 252
नौकरशाही, नौकरशाही तंत्र 52, 54, 56, 57, 60, 84

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न्यायव्यवस्था 82
न्यायालय 79
पंकुस् 80, 82
पंखयुक्त सूर्य 111
पंखयुक्त सूर्यबिंब 75, 76, 107-10
पंचाल 148, 151, 152, 155
पंचायत 80
पंजाब 26, 27, 33, 35, 36, 45, 50, 55, 63,67, 71, 138, 140, 144, 145, 148, 149, 154, 155, 197
पंतुवराली (तुरुष्कप्रिय राग) 250
पक्षी 201
पक्थ 143, 249
पख्तून 143, 250
पगार 58, 59, 62, 63, 80,81,82,83,85
पण 59, 62, 81
पणि 22, 81, 169, 170, 197
पण्याध्यक्ष 56
पटियाला 139
पठान 143
परकोटा 26, 42
परमेष्ठिन् 191
परशु 181-85
परांजपे 253
परिज्मन् 181
परिव्राार 225, 236
परिसु 83
पल्लव 249
पशुचारण 22
पशुपति 35, 245, 249
पशुवध, पशुबलि की प्रथा 77, 103, 104, 182, 220, 221
पाकिस्तान 27-31, 36, 46, 124, 125, 252
पाटलिपुत्र 54, 80
पाताल 11, 102-4,117-119, 215
पाताल की डाकिनी-
पिशाचिनी 117
पारसीजन 143
पारिश्रमिक 62, 82
पार्जिटर 67, 71, 72
पार्थ 143
पालि 241
पावक 147, 158
पाषाण युग 230
पिगॉट 19, 46-50, 52-67, 73-75, 78, 80-82, 84, 154, 230
पितर 105
पितृसत्ताक 114, 162, 175
पितृसत्ताक समाज व्यवस्था 158, 160, 176, 188, 206
पिरामिड 95, 205
पुजारी 77, 215
पुनर्जागरण काल 50
पुरंदर 22, 23
पुर 23, 26
पुराण 213
पुराणकथा 232
पुरातत्व, पुरातात्विक 231, 244
पुरातत्वज्ञों 234, 236, 245
पुरातात्विक अनुसंधान 230, 248
पुरातात्विक आधार 233
पुराने देवता अमोन (थेबेस के मेषरूप देव) 89
पुरानी लिपि 244
पुरु, पुरूजन 72, 143
पुरुष सूक्त 204
पुरोहा 22
पुरोहित 59, 60, 63, 79, 80, 89, 109, 219, 220, 221
पुर्तगाल 249
पुसाल्कर 71, 72, 138, 142, 148, 152, 153, 154, 245
पूँजीपति 47
पूँजीवाद 19
पूँजीवादी 20
पूषन् 99, 114
Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पूषा 147, 227
पृथु 143, 152, 154
पृथ्वी, पृथिवी 19, 96, 106
पेशावर 53
पौतवाध्यक्ष 56
पफात्र इफ़र 226
प्यूरिटन वृत्ति 47
प्रकोष्ठ 49
प्रजापति 209, 220
प्रशासन, प्रशासनिक 48,56
पर्शुगण 143
प्राकृत 249
प्राकृतिक प्रपंच 171
प्रागैतिहासिक काल 90, 145
प्रागैतिहासिक भारत 45, 46, 49
प्रागैतिहासिक सभ्यता 22, 23
प्रागैतिहासिक यूरोप 51
प्राग्वैदिक 36, 141, 240
प्राचीन 253
प्राचीन ईरानी 241
प्राचीन गणव्यवस्था 176
प्राचीन जन-अभियानों 228
प्राचीनतर अफ्रीकी-एशियाई सम्भ्यता 231
प्राचीन नगर 22
प्राचीनपंथी हिंदू 35
प्राचीन भारतीय चित्रलिपि 38
प्राचीन भाषातत्व 188
प्राचीन लिपि 234
प्राचीन हुर्रीजन 253
प्राण 179
प्राणवंत 118
प्राणवंतों का देश 119
प्रॉमिथॅअउस् 190
प्रिचार्ड 86, 88, 89, 90, 91, 95, 96, 98, 101, 102, 104, 106-11, 115, 181, 196, 226
फरात 123
फारसी 176, 228, 234, 235, 240, 242, 249, 253
फिनीशियन 109
फिनिशिया 86, 201
फिनिशिया की लिपि 235
फिनिशियावासी 244
फिलंडर्स पेट्री 35, 51
फिलाडेलफिया 29
फिलिस्तीन 77, 85, 86, 91, 193, 228, 230, 239, 247
फेयरसर्विस 137
फ्रांस, फ्रांसीसी 33, 79, 240
फ्रांस क्यूमों 109
फ्रैंकफोर्ट 98
बनमानुस-मूर्तियाँ 34
बंगाल 36
बंदर 237, 246
बरलो 35
बरो 148, 235, 236, 242, 243, 246, 247, 249
बर्न 248
बर्बर 29, 37, 47, 53, 88, 175
बलदेव सहाय 139
बलि 149
बलूचिस्तान 25, 45, 66, 67, 124, 228, 249
बहरीन का टापू 127
बहरीन द्वीप 123, 126, 128, 145, 211
बहावलपुर 137-38, 142, 144
बाँध 172
बाँट-बटखरे 45, 51, 52, 54, 56, 83, 128
बाइबिल 64, 85, 86, 91, 108, 123, 132, 150, 186, 188, 193, 194, 196, 199, 202, 206, 213, 214, 237, 239
बाघ (Tiger) 35
बाजार 46, 63, 145
बाबर 54

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बालू 116
बालियाँ 35
बाल्कन 229
बास्क 225
बिकाऊ माल 46, 56-59, 62, 63, 81
बिजली का त्रिशूल 110
बिबी 126, 127, 130, 131, 146, 211, 225, 226, 236
बिरहा 251
बिलावल 250
बीकानेर 46, 137, 138, 142
बी. के. घोष 155, 178, 179
बी. के. थापर 137
बी. बी. लाल 139
बीर्यवज 86
बुगमन 190
बुद्ध 185
बुनकर 63, 80
बुलफिंच 109
बृहस्पति 114, 168, 169, 171, 173, 174, 179, 253
बेनीमाधव बरूआ 191
बेलग्रेड 251
बैबिलोन, बैबिलोनिया 17, 31, 34, 37, 61-64, 73, 76, 83, 85, 108, 115, 116, 123, 126, 132, 145, 152, 153, 193, 201, 209, 210, 212, 214, 215, 217, 218, 226, 229, 234, 235, 239, 244-246
बैबीलोनी 75, 104, 127, 128, 130, 131, 189, 203, 204, 213, 219, 226, 236
बैबिलोनी कथा 116
बैबिलोनी देवमंदिर 111
बैबिलोनी प्रतिरूप एआ 122
बैबिलोनी मुद्रा 104, 108
बैबिलोनी राज्य 110
बैबिलोनी सृष्टिकथा 218
बैल 110, 111
बैशम 29
बोगाज़कुइ 72, 73, 86, 178
बौद्ध स्तूप 60
ब्रह्म 193, 201
ब्रह्मर्षि देश 152, 243
ब्रह्मा 151, 182, 193, 205
ब्रह्मांड 194, 196, 199, 201-04, 212 214, 218
ब्रह्मावर्त 151-52
ब्राह्मण 72, 204-206, 220, 226
ब्राह्मण ग्रंथ 116
ब्राह्मी (ब्राह्मी लिपि) 38, 39, 40, 65
ब्राहूइ 228
ब्रिजेट अ़लचिन 41
ब्रिटनी 1[illegible]
ब्रिटिश 61
ब्रिटिश पूँजीवाद 47
ब्रिटेन 53, 61, 63, 79, 109, 183, 185, 249
ब्रुगमन 176
ब्रैन्डन 193, 194, 196 197, 198, 200, 202, 203, 204, 205, 207, 208, 209, 210, 212, 214, 215, 218
भग 176, 178
भगवान सिंह 154
भटनेर 138
भटिंडा 137, 142
भटिआन 137
भट्टियाँ 49
भरत 142, 154, 155, 221, 253

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भरतजन 20, 72, 143, 148, 149, 210, 243
भरतों का लोप 149, 153
भरद्वाज 205
भर्ता 58
भलानस 143
भवसागर 99
भांड 63, 64, 249
भागवत् 151, 205
भारत का सृष्टि संबंधी चिंतन 212
भारत में आर्यों का प्रवेश 153, 176
भारतीय आर्यनाम 86
भारतीय आर्य भाषा समवाय 250
भारतीय आर्य भाषाएँ 228, 233, 240
भारतीय आर्यों का प्रथम अभियान 72
भारतीय कपास 49
भारतीय चिंतन 192
भारतीय दर्शन 191
भारतीय देवचिह्न 249
भारतीय देवतंत्र 100, 175
भारतीय देवनाम 73
भारतीय देवप्रतीक 182
भारतीय देवमंडल 66
भारतीय देवीनाम 176
भारतीय भाषातत्वों का निर्यात 253
भारतीय भाषा परिवार 248
भारतीय मध्यकाल 55
भारतीय रथ 18
भारतीय राग 250, 251
भारतीय रुद्र 110
भारतीय लिपियाँ 234
भारतीय वर्णो 204
भारतीय व्यापारी 146
भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश 50, 64, 85, 88
भारतीय शिव 110
भारतीय सृष्टिकथा 200
भारोपीय परिवार 251
भाषा 225
भाषातत्वों का तुलनात्मक अध्ययन 231
भाषातत्वों का निर्यात 239
भाषापरिवार 228-29
भाषाविज्ञान 230, 234, 235
भाषाओं के तुलनात्मक विवेचन 225
भित्तीचित्र, भित्ति चित्रकला 235, 246
भिषग विद्या 34
भिषज् 187
भूमि की विक्री 82
भूलोक 97
भू-सर्वेक्षण 52
भृगु 205
भृगुवंशियों 216
भैरवी 250
भोपाली 250-52
भौतिकवादी संप्रदाय 210
मंगोलिया 250, 252
मंदिर 60, 61, 77, 78, 80, 101, 104, 108, 109, 127
मकरान तट 45
मखदूनिया 231
मग 86, 209
मगध 56, 57, 81, 82, 86, 221
मगदल 86
मग्यारजन 250
मग्यार भाषा 250
मजदूर 59, 61, 62
मजीठ 49
मजेत्-पोत 98
मत्स्य, मत्स्यजन 149, 153, 210, 211, 212, 214
मत्स्य जनपद 151, 210
मथुरा 53
मद्रास 36
मधु 151
मध्य अमरीका 64
मध्यकालीन इमारतों 51
मध्यकालीन हिंदूसमाज 55
मध्यदेश 148, 149
मनु 122, 149, 151, 152, 153, 232
मनु वैवस्वत 152-53

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनुस्मृति	151, 206
मरथोन दौड़	233
मरुत, मरुतगण	76, 97, 114, 119, 155, 161, 164, 174, 180, 181, 183, 184, 186, 200, 203, 239
मरुत्-आदिति	107
मर्दुक्	116
मर्त्य	160, 191
महंत	78
महादेव	151
महाभारत	72, 151, 166, 205, 221, 237
महाभारतकार	191
माइकेल वेन्ट्रिस	234
मागध	221, 238
मागधी वृत्ति	86, 239
मातृसत्ताक	175
मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था	18, 113, 114, 158, 160, 162, 188, 212
मानकीकरण	47, 61, 62, 83
मापतंत्र	52
माया	34, 100, 120, 186
मार्क्स, कार्ल	21, 50
मार्गरिट मरे	89-91, 98, 103, 111-14
मार्शल	18, 23, 24, 28, 29, 31, 32, 36-41, 55, 139, 142, 154, 188
माल	46, 52, 56, 146
मालकोंस	250, 252
मालगुजारी	57
मिकिनी	236
मिकीनिअन	234, 240
मिकिनीअन-ग्रीक	246
मिकिनीअन सभ्यता	146, 183, 231, 233, 235, 244, 245, 248
मिट्टी के मोर	33
मितन्नी	66, 67, 73, 77, 85, 88, 107, 155, 228, 239, 247
मितन्नी मुद्रा	107
मितन्नी-हित्ती	117, 232, 248, 250
मित्र, मित्रदेव	66, 71, 88, 99, 109, 111, 113, 122, 155, 160, 161, 163, 164, 174, 176, 179, 217, 238, 247
मित्र-वरूण	114
मित्रादित्य	109
मिथकीय	153
मिनीअन	237, 245
मिनोअन	182
मिनोअन-मिकीनिअन	232, 236
मिनोअन सभ्यता	155, 182, 231, 233, 244
मिनोअस्	238
मिनोस	33
मिल्टन	202, 203
मिस्र	17, 18, 20, 32, 34, 35, 37, 46, 61, 63, 64, 65, 73, 74, 75, 85, 86, 88, 89, 90, 91, 95, 97, 98, 100, 103, 106, 107, 108, 109, 111, 114, 129, 131, 142, 155, 181, 188, 189, 191, 193, 198, 200, 201, 203, 205, 206, 225, 226, 229, 230, 232, 238, 244, 246

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मिस्र की प्राचीन भाषा 86,95
मिस्रियों 99, 102, 115
मिस्री 204
मिस्री अभिलेख 194, 206
मिस्री देवकथा 96, 97, 100, 102, 206
मिस्री देवतंत्र 106
मिस्री देवता थोथ 34
मिस्री देवी हथोर 108
मिहरान (सरस्वती) 145
मुखारी मेल 253
मुग़ल दरबार 250
मुद्रा 36, 38, 45, 52, 64, 78, 89, 108, 110, 127, 128, 235, 237, 238, 245, 246
मुद्रा (चोंगि जैसी) 78
मुद्रा पर अंकित नृसिंह 35
मुनाफा 46, 47, 57
मुनाफाखोरी 56, 85
मुनि 100
मुम्मू 95
मुर्कीवाले 33
मुहर (मुद्रा) 50, 56, 84
मूर्छना-पद्धति 250
मूर्तियाँ 237
मृत्युबंधु 194
मृद्-पट्टिकाएँ 84
मृद्भांड 32, 33, 37, 38, 45, 48, 66, 107, 248
ेकल 56
ेगास्थनेस 53, 55, 80
ेगिदो 86
मेघ 250, 252
मेमपिस् 111
मेसेक्केत्-पोत 98
मेसोपोटामिया 25, 27, 30, 31, 32, 49, 75, 76, 88, 111, 126, 127, 145, 153, 197, 217, 226
मैकडनल 67, 100, 115, 116, 130, 147, 148, 149, 150, 158, 165, 171, 173, 176, 177, 180, 181, 187, 190, 241, 242, 243
मैकाय 25, 27, 29, 32, 33, 34, 37, 238, 246
मैक्समुलर 148, 197
मैत्रायणी संहिता 242
मोनियर विलियम्स 163, 186, 212, 236, 237, 239
मोम का साँचा 48
मोर 246
मोहेंजोदड़ो 22-25, 27, 30, 32-41, 45, 47, 48, 49, 51, 53, 60, 62, 66, 67, 81, 142, 145, 235, 237, 238, 246
मोहेंजोदड़ो के एच (H) कब्रिस्तान 24
मोहेंजोदड़ो के डीके (DK) क्षेत्र 25
मौर्य 79
मौर्यकालीन 62
मौर्यकालीन सभ्यता 65
मौर्य राज्यसत्ता 54, 56, 78
मौर्य साम्राज्य 20, 53, 54, 58, 80, 81, 85
मौसम के देवता 110, 111, 182, 189
म्यूर 148
म्लेच्छ 72
यक्ष 220
यजुर्वेद 18, 219-22
यज्ञ 116, 143, 147, 148, 219, 220, 221, 239
यज्ञ संस्कृति 232
यज्ञीय 167-68
यदु 23, 72, 143

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यम 118, 120, 216, 217
यमपुरवास 215
यमलोक (यमपुर) 117, 122, 129, 207, 216, 217
यमुना 137-42
यवन 233, 243, 249
यशपाल 139-40
यहूदी 207, 239
यहूदी राजा सुलेमान 146
यास्क 197
युगल नासत्यों 72
युद्धदेवता पुरंदर 26
युधिष्ठिर मीमांसक 220
यूक्रेनियन 252
यूनान 17-19, 33, 74, 76, 81, 116, 155, 189-91, 193, 197, 200, 203, 205, 207, 209, 229, 230, 231, 235, 236, 238, 239, 240, 242, 244, 245, 246, 248, 249
यूनानी 22, 107, 176, 178, 181, 182, 210, 232, 243
यूनानी कथा 116
यूनानी पद्धति 252
यूनानी प्रभाव 253
यूनानी भाषा 226, 235
यूनानी दर्शन 191
यूनानी देवकथा 107, 187, 188, 197, 200, 203, 204, 209
यूनानी देवतंत्र 189, 195, 205
यूनानी देवता ज़ॅउस् 183
यूनानी-रोमन 62
यूनानी संगीत 253
यूनानी संस्कृति 17
यूनानी सभ्यता 33, 229, 244
यूरोप, यूरोपियन 21, 63, 64, 66, 74, 79, 85, 88, 109, 132, 177, 178, 182, 183, 192, 200, 229, 230
योगी की मुद्रा 249
योजना के अनुसार नगरों का निर्माण 64
योजनाबद्ध अर्थतंत्र 62
रंगपुर 28, 46
रक्षा 155
रथ 73, 74, 87, 98, 99, 107, 230
रथचालक 72
रथविद्या 73, 74, 76, 84, 107, 247
रथसंचालन 87
रथारूढ़ 41
रफीक मुग़ल 27, 138, 143
रवीन्द्रनाथ 165
रसा 197
रसातल 151
राइक्स 137, 139, 140
राक्षस 166, 171
राखालदास बनर्जी 22
राग 250
राजकुमार साल्तिकोव 21
राजकुमार सिद्धार्थ 185, 188
राजस्थान, राजस्थानी 27, 28, 46, 48, 71, 138-40, 144, 145, 154
राजा वेन 153
राज्यतंत्र 55
राज्यसत्ता 54,57,58,59, 61
राज्यसत्ता (केंद्रबद्ध) 60
रानडे 201
रामप्रसाद चंद 22, 123, 154
रु 77, 217, 226, 238
रु = रुद्र 101, 111, 112, 114, 119, 161, 176, 177, 180, 181, 183, 184, 189
रूस, रूसी 242, 250, 251

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रे 100, 101
रेखागणित 52
रेन्फ्रीव 41
रेमंड अल्चिन 41
रैनोल्ड हिगिन्स 230
रोठ 138
रोदसी 97
रोपड़ 46
रोम, रोमन 33, 47, 50, 52, 53, 61, 64, 66, 81, 109, 234
रोमनकाल 51
रोमन सभ्यता 53
रोमन साम्राज्य 109, 111
लंगट 35
लंदन 61
लगाश् नगर 125
लघु एशिया 74, 155, 182, 229, 230, 231, 233, 236, 247
लवणाध्यक्ष 56
लाजवर्द 125, 127
लातीनी 252
लिखने की पाटी (तख्तियाँ) 34, 35
लिडेल और स्कॉट 76, 188
लिथुआनियाई 230
लिथुआनियाई रूप पेन्कि 79
लिपि 38, 64, 65, 235
लिल् 96
लीनिअर-ए 234, 244, 246
लीनिअर-बी 234, 235, 240
लीवस 236
लीविस और शार्ट 146
लुडविग 185
लुडविग और वेवर 143
लेखनकौशल 39, 52, 65, 235
लैंगडन 38, 39, 41, 42, 65, 67
लैटिन 21, 146, 154, 176, 178, 230, 232, 233, 236, 238, 240, 247
लैम्बडिन 225, 227, 228
लोकगीतों 251-52
लोकभाषा 252
लोकसंगीत 250-52
लोगॉस् 112
लोथल 28, 126, 128, 145
लोहा 56, 84
लोहाध्यक्ष 56
लौहयुग 53
वज्र 111, 166, 168, 170, 174, 180, 181, 183, 185
वज्रधारी देवता अदद 111
वणिक 81
वराह 151, 186
वराहु 170
वरुण 66, 67, 71, 75, 76, 77, 88, 99, 104, 107, 111, 113, 115, 116, 122, 123, 131, 160, 161-68, 172, 173, 174, 176, 178, 179, 180, 181, 185, 186, 187-90, 198, 209, 216, 217, 238, 247
वरुणपाश 160, 161, 163
वर्चिन 102, 175
वर्णमाला 234
वर्णलिपि 234, 235
वर्णव्यवस्था 19, 81
वर्णों (श्रेणियों) 205, 221, 222
वर्षा 110, 111
वल 168, 169, 174, 186
वशों 148
वसिष्ठ 159, 162-166
वसु 176, 177, 180
वाचस्पति 114
वाजिनीवती (अन्नवती) 147
वाणिज्य 152
वाणी 112, 113, 149, 180

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वात 97
वानर 34, 238
वानरपूजा 33
वानरों की मूर्तियाँ 33, 34, 238
वायु 19, 97, 100, 110, 113, 165, 166, 177, 178, 179, 181, 189, 191, 193, 207, 209
वायु देवता 96, 107
वायुमंडल 96
वासुकि 166
विक्रमखोल अभिलेख 65
वितस्ता 143
वित्त का चलन 82, 152
विदेश व्यापार 63, 145
विदार नदी का ग्लैशियर 169
विधि-निपेध 159
विधि संहिता 81, 84
विध्वसंक 45
विनिमय 46,51,52,81, 82
विनिमय केंद्र 126
विन्सेन्ट स्मिथ 80
विपाष् 106, 113
विलियम जोन्स 21, 249
विशाल अन्नागार 47
विश्वकर्मा 114, 220
विश्व-प्रपंच 19, 112
विश्वरचना 199
विश्ववाद 89
विश्वामित्र 148
विश्वेदेवा 177
विष्टि 62
विषाणिन 143
विष्णु, विष्णुनारायण 149, 151, 152, 227
वी० एन० मिश्र 139, 144
वुली 32
वृश्चिक नर 129
वृश्चिक नारी 129
वृत्र 101, 102, 105, 112, 114, 122, 131, 165, 167, 168, 172, 174, 181, 185, 186, 187, 188, 197, 198, 199, 214
वृत्रवध 101, 102, 104, 106, 114, 115, 168, 184, 185, 186
वृषभ 111, 121, 175, 180, 183, 232
वृषभ अपिस् 111
वृषाकपि 33
वेतन 58-59
वेद 24, 140, 141, 142, 149, 151, 152, 190, 210, 221
वेदी 219, 220
वेन्ट्रिस 240
वेबर 148
वेब्स्टर 116
वेल्स 229, 252
वेल्श जन 109, 249
वैडविक 240
वैदिक 21, 37, 39, 40, 66, 72, 86, 87, 97, 99, 104, 108, 112, 116, 117, 132, 138, 140, 142, 148, 149, 151, 152, 153, 159, 163, 165, 166, 187, 188, 189, 190, 191, 200, 203, 204, 209, 211, 220, 226, 227, 239, 240, 246, 249
वैदिक आर्य 24
वैदिक काल 153
वैदिक छंद 241
वैदिक देवता 97, 155, 188
वैदिक देवतंत्र 102

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक परंपरा	221
वैदिक बलाघात	242, 243
वैदिक भाषा	148, 241, 243
वैदिक रुद्र	110
वैदिक संस्कृति	31, 155, 222
वैदिक सभ्यता	132, 154
वैदिक समाज	162
वैवस्वत् (यम)	117
वैश्य	204-05, 222
व्यंजन	234, 235
व्यापार, व्यवसाय	49, 50, 52, 56, 57, 58, 63, 65, 80, 84, 124, 127, 128, 145, 146
व्यापारी वर्ग	46, 47, 50, 56, 57, 61, 63, 65, 73, 81, 83
व्यापारिक अड्डे	128, 146
व्यापारिक पूँजी	57
व्यापारिक पूँजीवाद	85
व्यापारिक संगठन	54
व्यावसायिक सभ्यता	51
व्हीलर, सर मॉर्टिमर	18, 22, 23, 24, 31, 36, 40, 41, 42, 45, 59, 60, 61, 65, 66, 67, 88, 139, 142, 154
शंकु	35
शंबर	23, 26, 105, 168, 169, 175
शक	53, 231, 237
शतपथ ब्राह्मण	149, 153, 154, 177, 220
शब्द (मुकाम)	253
शमस्	129
शल	110
शवपेटिका	108
शहाना	250
शॉर्ट	236
शारदी	23, 26
शास्त्रीय संगीत	251
शास्त्रीय गायन	252
शिल्प	181
शिल्पीवर्ग	80
शिल्पी संघ	46
शिव	32, 35, 143, 166, 180, 184
शिव-पार्वती	111
शु	97
शुचि	158, 159
शुतद्री	67
शुल्कशाला	56
शुष्ण	23, 114, 115, 172, 184
शूद्र	62, 81, 204, 205, 206, 221, 222
शून्य	202
शूरसेन	152
शोषण	57
श्येन	201, 212
श्रम	58, 59, 61-63, 80
श्रमिक	46, 47, 58, 61, 62
श्री लंका	237, 252
श्रुञ्जया	143
श्रुति	253
संख्याशास्त्र	51
संगठित उद्योग	46, 63, 64
संगठित कृषितंत्र	47
संगीत चिंतामणि	252
संगीत पद्धतियाँ	253
संगीतरत्नाकर	250
संगीतराज	250
संगीतशास्त्र	252
संभाषित	58
संस्कृत	17, 20, 21, 27, 40, 66, 72, 148, 149, 154, 177, 185, 188, 196, 211, 227, 229, 230, 233-36, 239, 241-44, 246, 248, 249, 251

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संस्थाध्यक्ष 56
संहनिका (अथवा सिंहनिका) 62
संहिता 72, 149
सघोष महाप्राण ध्वनियाँ 236, 240, 241, 243, 249
सत् 96, 190, 191, 193, 195, 201
सत्-असत् 20
सत्मवर्गीय 243, 246
सत्मवर्गीय भाषा 247
सत्मवर्गीय शाखा 242, 250
सतलज 46, 138, 139, 140, 144
सतलज-यमुना 143
सन्निधाता 56
सप्तक 253
सप्तसिंधु 42, 72, 155, 177, 197, 249, 250
सप्तसिंधुतटवासियों 106, 128
समाजवादी व्यवस्था 19
समाधिग्रह 231, 248
समाधिभवन 245
समाधिस्थान "ऐच" (H) 144
सम्सुइलुना 145
सम्राट अशोक 78
सरमा 197
सरयु 138
सरसुती 138, 39
सरस्वती 18, 20, 104, 132, 137, 141, 143, 149, 151, 155, 177, 197, 221
सविता 106, 108, 122, 158, 159, 206
सहस्राक्ष 161
सहारनपुर 137
साइप्रस 32, 33
साइप्रस (क्रप्रसु) 231
साइबेरिया 251
सागर-यात्री पोत 125
सातवलेकर 33, 96, 97, 99, 101, 102, 104, 106, 113, 131, 147, 148, 159, 160, 164, 167, 168, 171, 173, 180, 182, 184, 190, 191, 193, 196, 218
सामंत 83, 86
सामंतवाद 85
सामंती अंधविश्वासों 82
सामंती बेगार 62
सामंती समाज व्यवस्था 49, 59, 82, 87
सामगीत 174
सामवेद 219, 242
सामी 65, 95, 109, 123, 145, 152, 239, 240, 228
सामी (अक्कदी) भाषा 77, 86, 288, 236, 238
सामीजनों 150, 152
सामी स्रोत 149
सामी-हामी 234
साम्राज्यवाद 19
साम्राज्यवादी 17
सायण 147, 160, 163, 164, 170, 171, 172, 175, 185, 186, 197, 227
सारस्वत क्षेत्र, जनपद 148, 151, 153, 154, 155, 198, 243
सिंक्लेयर हुड 229, 230, 238
सिंदॉन् 49, 50, 146
सिंदूरा 251
सिंध 36, 50, 51, 55, 63, 137, 138, 140, 144, 145, 146, 154
सिंधु 137, 138, 142, 143, 145, 147, 154, 196, 197
सिंधु घाटी 26, 27, 34, 50, 52, 125, 128, 176, 238, 246

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सिंधुघाटी की चौकोर मुद्रा 145
सिंधुघाटी की भाषा 40
सिंधुघाटी के बाँट-बटखरे 146
सिंधुतटवर्ती 237
सिंधु नदी 22, 25, 45, 55, 124, 131, 144, 212, 249
सिंधु लिपि (चित्रलिपि) 38, 39, 40, 145
सिंधु सभ्यता 22, 23, 24, 26, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 36, 37, 38, 39, 41, 42, 55, 125, 128, 137, 138, 139, 140, 142, 145, 172, 188
सिकंदर 17, 52, 146, 250
सिकंदरी अभियान 209
सींगवाला पशु 145
सिलीसिया 230
सिसिली 231, 233, 240
सीताध्यक्ष 56
सीरिया (शाम) 35, 76, 77, 85, 86, 87, 88, 91, 109, 111, 115, 178, 181, 228, 230, 235, 238, 239, 247
सीरियाई कथा 116
सीरियाई मुद्रा 108, 182
सुनियोजित अर्थतंत्र 19
सुमेर 18, 20, 31, 32, 34, 45, 48, 50, 51, 58, 59, 60, 61, 64, 65, 72, 74, 85, 88, 90, 95,97, 98, 103, 105, 106, 112, 114, 116, 117, 123-29, 131-32, 152, 154, 155, 181, 188, 189, 191, 193, 198, 200, 210, 211, 212, 213, 215, 217, 226-29, 234, 235, 244, 245, 246
सुमेर की चोंगा मुहरें 50, 78
सुमेरियों का नंदनवन 123, 125
सुमेरी कथा 116, 120, 122, 124, 126
सुमेरी काव्य इनन्ना की पाताल यात्रा 117
सुमेरी-जन 49, 76, 99, 104, 106, 130, 145, 150, 152, 154, 203, 204, 214, 218, 225, 226, 230, 236
सुमेरी देवकथा 96
सुमेरी देवता एन्कि 122
सुमेरी देवमंडल 213
सुमेरी-बैबिलोनी 128
सुमेरी भाषा 95, 227
सुमेरी लिपि 65
सुमेरी सभ्यता 22, 103, 145
सुमेरी-सामी 153
सुमेरी सृष्टिकथा 212
सुलोचनाजी 251
सूती कपड़ा 50, 127, 145
सूती कपड़ा बुनना 64
सूत कातने 56, 58, 64
सूती वस्त्र उद्योग 146
सूती वस्त्रों का व्यापार 49
सूत्रशाला 56
सूत्राध्यक्ष 56, 58, 80
सूरतगढ़ 138
सूर्य 36, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 105, 112, 117, 122, 123, 124, 128, 130, 131, 156, 162, 167, 173, 174, 177, 178, 179, 181, 191, 239, 245

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूर्यकेंद्रित सर्वात्मवाद 109
सूर्य के देवता अमोन् रे 98
सूर्य के देवता रे 95, 96, 97, 105
सूर्यदेव 98, 115. 129, 201
सूर्यदेव उतु 119, 124
सूर्य-पूजा 89, 90, 91, 107, 109, 110, 111, 113
सूर्यबिंब 90, 182
सूर्यवाचक रे 89
सूर्योपासक 108
सूसा 32, 34, 128
सृष्टि 211
सृष्टिकथा 20, 96, 106, 188, 193, 196, 200, 201, 203, 213, 214, 215, 219
सृष्टिकथाकार 208
सृष्टिकर्म 213
सृष्टि रचना 95, 219
सृष्टि संबंधी 96, 112, 113, 114, 191, 193, 217, 221
सृष्टि संबंधी भारतीय चिंतन 207
सृष्टि सूक्त 200, 207, 220
सेतेख्-मकर 90
सेथ् 101
सोना 50, 56, 84, 125, 237
सोम 114, 116, 117, 121, 122, 161, 169, 170, 174, 178, 179, 182, 186, 187, 239
सोम द्युलोक 108
सौदागर 81
सौराष्ट्र 144
सौवीर 237
स्कॉटलैंड 229, 252
स्टुअर्ट पिगॉट 45, 229
स्टोनहेंज 182
स्ट्रैची 169
स्तंभ 177
स्तंभ पर टिका हुआ आकाश 75
स्नानागार 51
स्पेन, स्पेनिश 146, 240, 249
स्मिथ 81
स्रष्टा (ब्रह्मा) 206
स्राबो 52
स्रोत भाषा 21
स्लाव, स्लावजन 21, 176, 178, 242, 249, 251
स्लाव भाषाएँ 241
स्वयंभू 158
स्वर 234, 235
स्वरपात के चिह्नों 65
स्वरपात या विशेषक 65
स्वरलिपि 253
स्वरशास्त्र 250
स्वस्तिक 35, 245, 246
स्वायत्त 63
स्वायत्त ग्राम समाज 58
स्वेच्छारिता 60, 85
हंगरी 250, 251
हड़प्पा 17-20, 23-24, 26-28, 32, 33, 36, 39, 41, 45, 47-53, 60-64, 78-80, 82, 83, 103, 116, 132, 140, 154, 155, 211, 226, 227, 229, 246
हड़प्पाई 38
हड़प्पाई अथवा सिंधुघाटी की संस्कृति 124
हड़प्पाई अर्थतंत्र 55
हड़प्पाई उद्योग 46, 48, 55
हड़प्पाई कारीगरों 81
हड़प्पाई किसान 82
हड़प्पाई जनों 143
हड़प्पाई जनों की भाषा 41
हड़प्पाई नगरों 47
हड़प्पाई बाट-वटखरों 81
हड़प्पाई मुद्राएँ 127
हड़प्पाई मुद्राएँ वर्गाकार 51

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हड़प्पाई मुहरों 78
हड़प्पाई राज्यसत्ता 56
हड़प्पाई लिपि 64-66
हड़प्पाई व्यापारियों के उपनिवेश 226
हड़प्पाई शिल्पी 246
हड़प्पाई संस्कृति 63, 144
हड़प्पाई सभ्यता 144
हड़प्पाई स्थानों 138, 144
हड़प्पा काल 139
हड़प्पा की लिपि 52, 234
हड़प्पा के योगी 249
हड़प्पा के विशाल राज्य 245
हड़प्पा राज्य 53, 54, 58, 64, 66, 84, 85, 132, 236, 237
हड़प्पावासियों 245
हड़प्पा सभ्यता 22, 41, 45, 46, 49, 50, 51, 54, 56, 60, 61, 65, 78, 116, 123, 132, 140-43, 145, 146, 153-55, 228-30, 236
हड़प्पा साम्राज्य 55
हत्तुसस 74
हस्तुसिलिस तृतीय 84
हत्याकांड 27, 29, 30
हनुमान 34, 106
हनुमानगढ़ 138
हमलावर आर्य 37
हम्मुखी 145
हर्म्य 186
हयग्रीव 151
हरह्वैति 155
हर्ष 54
हवि 167, 216, 218
हविवहन 168
हाइन 109
हाकड़ा 140
हाकड़ा-घग्घर 144
हाथी दाँत 125, 127, 145, 146, 235-38, 246, 248
हामी 88
हामी (प्राचीन मिस्त्री) 228
हाल 34
हिंगड़ों 35
हिंदी-ईरानी 179
हिंदी-ईरानी शाखा 178, 241, 246, 249
हिंदी-हित्ती 225
हिंदी-हित्ती परिवार 228
हिंदुस्तानी 252
हिंदुस्तानी पद्धति 253
हिंदुस्तानी संगीत 250, 253
हिंदू धर्म 33
हिंदु परंपरा 140
हिंदू संस्कृति 36
हिक्सोस 88, 89, 113
हिगिन्स 231, 235, 238
हित्तियों 38, 97, 111, 112, 114, 181, 182
हित्ती 66, 74-78, 82, 85, 99, 107, 115, 116, 155, 188, 189, 228, 239, 247
हित्ती कथा 107, 188
हित्ती-मितन्नी 71, 72, 230, 241
हित्ती राज्य 80, 81, 111
हित्ती साम्राज्य 73, 80, 83, 84
हिम 170
हिमलाय 45, 46, 71, 128, 144, 150, 170
हिरण्याक्ष 151
हिलेब्रांट 143
हीब्रू 193, 202, 237
हुक 213, 215, 218, 219
हुक्सोस आक्रमण 231
हुड 230, 231, 235
हुर्रियों 182
हर्री 189, 227

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हुर्री कथा 116
हुर्री जन 228
हुर्री संस्कृति 182
हुर्री-हित्ती क्षेत्रों 116
हुवावा 119-121
हुसेनी 250
हेति 184
हेबत् 111
हैप्पी ऑद् 188, 190, 200, 203, 205, 208,
होमर 74, 76, 116, 188, 189, 195, 196, 197, 205, 232, 233, 236
हौपकिंस 148

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रूप से भारत के प्राचीन इतिहास, ऋग्वैदिक समाज और हड़प्पा सभ्यता के अध्येयताओं के लिए एक अनिवार्य पुस्तक।

इस कृति की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है इसमें इतिहास और पुरातत्व के परंपरागत क्षेत्रों की एकदम हाल तक की अद्यतन जानकारी का सदुपयोग करने के साथ ही साहित्यिक सामग्री, भाषाविज्ञान, दर्शन, पौराणिक कथाओं, मिथकों और देवमंडल के विकास की विभिन्न मंजिलों का समाजशास्त्रीय विवेचन करते हुए निष्कर्ष निकाले गए हैं। इसके अलावा भारत के इस प्राचीन कालखंड के इतिहास को यूनान, मिस्र और पश्चिमी एशिया के तत्कालीन इतिहास से मिलाकर तुलनात्मक निष्कर्ष निकाले गए हैं। "ऋग्वेद" के प्रासंगिक अंशों की वैज्ञानिक और वस्तुपरक व्याख्या इस कृति की एक अन्य उपलब्धि है। कुल मिलाकर इस विषय की यह एक सर्वथा नई, मौलिक और युगांतरकारी कृति है। इसमें संदेह नहीं कि व्यापक हिन्दी संसार पिछली दोनों पुस्तकों की तरह इसका भी भरपूर हार्दिक स्वागत करेगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय के श्रेष्ठ प्रकाशन

इतिहास

1.	पृथ्वी से पुरातत्व	सर मॉर्टिमर व्हीलर	40.00
2.	प्रागैतिहास	मजुमदार व गोपालशरण	40.00
3.	भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद	डॉ० रामविलास शर्मा	45.00
4.	प्राचीन भारत का इतिहास	सं० डी० एन० झा एवं के० एम० श्रीमाली	50.00
5.	पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद	डॉ० रामविलास शर्मा	60.00
6.	प्राचीन भारत में दास प्रथा	देवराज चानना	25.00
7.	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	जयशंकर मिश्र	70.00
8.	भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि	डी० एच० गॉर्डन	35.00
9.	प्राचीनतम प्राच्य सभ्यता पर नया प्रकाश	गार्डन चाइल्ड	60.00
10.	बुद्धकालीन समाज और धर्म	डॉ० मदन मोहन सिंह	50.00
11.	प्राचीन भारतीय समाज	डॉ० शशि अवस्थी	70.00
12.	प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास	रामशरण शर्मा	60.00
13.	मध्यकालीन भारत 750-1540, भाग 1	सं० हरिश्चंद्र वर्मा	70.00
14.	मध्यकालीन भारत 1540-1761, भाग 2	सं० हरिश्चंद्र वर्मा	100.00
15.	हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन व परिस्थितियाँ	के० एम० अशरफ	25.00
16.	उत्तर मुग़लकालीन भारत	सतीश चंद्र	45.00
17.	भारतीय नवजागरण और यूरोप	डॉ० रामविलास शर्मा	प्रकाशनाधीन
18.	आधुनिक भारत का इतिहास	सं० रामलखन शुक्ल	85.00
19.	स्वाधीनता संग्राम के बदलते परिप्रेक्ष्य	डॉ० रामविलास शर्मा	35.00
20.	भारत का स्वतंत्रता संघर्ष	बिपिन चंद्र	65.00
21.	बंगाल का आर्थिक इतिहास	नरेन्द्र कृष्ण सिन्हा	40.00
22.	आधुनिक पश्चिम का उदय	सं० पार्थसारथि गुप्ता	70.00
23.	यूरोप का इतिहास	सं० पार्थसारथि गुप्ता	90.00
24.	यूरोप 1870 से	जेम्स जॉल	60.00
25.	ब्रिटेन का इतिहास	सं० पार्थसारथि गुप्ता	40.00
26.	अमेरिका का इतिहास	बनारसी प्रसाद सक्सेना	70.00

हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रधान कार्यालय : ई० ए०/ 6, मॉडल टाउन, दिल्ली-110009.

फोन : 7110166

बिक्री विभाग : बैरक नं० 2, कैवेलरी लाईन, दिल्ली : 110007.

फोन : 7257725/365 विस्तार, 2922480/365 विस्तार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal